UGC-CARE List-Social Sciences

ISSN 0974-0074

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

National Peer Reviewed Journal of Social Sciences

वर्ष 24 अंक 2

जुलाई–दिसम्बर, 2022

समाज विज्ञान विकास संस्थान

बरेली (उ.प्र.)

इस अंक में

1. भारत-चीन सीमा पर तवांग विवाद : एक पड़ताल — 1-9
डॉ. वीरेन्द्र चावरे

2. भारत के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन का मेव समुदाय के आर्थिक विकास पर प्रभाव — 10-16
डॉ. आसीन खाँ

3. विभाजनकारी भारतीय राजनीति में ब्रिटिश कालीन जनगणना 1871-2011 — 17-26
डॉ. प्रदीप कुमार

4. मध्यकालीन अर्थव्यवस्था में बंजारा समुदाय का योगदान : एक अध्ययन — 27-32
डॉ. अमिता शुक्ला
डॉ. मनीषा मिश्रा

5. वर्तमान भारतीय परिदृश्य में स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचारों की प्रासंगिकता — 33-41
डॉ0 प्रकाश लखेड़ा
सुश्री रेखा मौनी

6. मनरेगा योजना का ग्रामीण विकास के संदर्भ में मूल्यांकन — 42-49
देवादास बंजारे
प्रोफेसर मनीषा महापात्र

7. डिजिटल अशाब्दिक संचार- संचार की नई संस्कृति — 49-54
डा.रचना गंगवार

8. स्कूली शिक्षा में बहुभाषा एवं स्थानीय भाषाएं : उत्तराखंड में विद्यालयी शिक्षा का एक विश्लेषण — 55-62
डॉ उषा पाठक

9. महामारी नियंत्रण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका — 63-71
डॉ. नीरजा सिंह

10. उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों की मानव सुरक्षा और सामाजिक जोखिम मूल्यांकन — 72-81
डॉ. चित्तरंजन सेनापति

11. जल जीवन मिशन (हर घर जल) : सामाजिक, आर्थिक उन्नयन की दिशा में एक कदम — 82-89
सुश्री मोनिका अवस्थी
डॉ. कोमल मित्तल

12. जनजातियों की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में कणी कंसरी की कार्यात्मक भूमिका — 90-98
डॉ.अरुण पंडया
सुमीर गामीत

13. फेसबुक पर प्रदर्शित विज्ञापनों के प्रति उपयोगकर्ताओं के दृष्टिकोण का अध्ययन — 99-106
डॉ. अवधबिहारी सिंह
सुमित श्रीवास्तव

14.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम डॉ. तान्या शर्मा	107–114
15.	आपदा तत्परता प्रबन्धन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका डॉ0 राजेश कुशवाहा	115–122
16.	सोशल मीडिया का उच्चतर शिक्षार्थियों पर प्रभाव सुश्री गोल्डी कुमारी	123–130
17.	जनजातीय विकास में संवैधानिक प्रावधानों तथा सरकारी योजनाओं की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण दीपक कुमार खरवार प्रोफेसर विभूति भूषण मलिक	131–139
18.	कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन : एक अध्ययन सुश्री नेहा सविता डॉ. वन्दना द्विवेदी	140–146
19.	वन अधिकार अधिनियम और "जनजातीय" क्षेत्रों में वनों के बदलते स्वरूप का विश्लेषण गोपाल सिंह	147–155
20.	जनजातीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति : मातृसत्तात्मक खासी समुदाय के विशेष परिप्रेक्ष्य में डॉ. इन्दिरा श्रीवास्तव सुश्री निर्मालिका सिंह	156–163
21.	वैदिक लोक जीवन में अग्नि-एक समीक्षात्मक अध्ययन डॉ.सुनील कुमार	164–169
22.	माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया का प्रभाव डॉ. कुमारी स्वर्ण रेखा	170–175
23.	ग्रामीण महिला के आरोग्य की स्थिति और समस्या : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन डॉ. राजेश कुमार एम0 सोसा	176–181
24.	महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता एवं वर्तमान जनमाध्यम सुश्री शालिनी श्रीवास्तव प्रोफेसर गोपाल सिंह	182–186
25.	महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की वर्तमान समय मे प्रासंगिकता डॉ. सन्जू चलाना बजाज	187–192

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074**
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022 **UGC-CARE List-Social Sciences**

भारत-चीन सीमा पर तवांग विवाद : एक पड़ताल

❑ डॉ. वीरेन्द्र चावरे

सूचक शब्दः अरूणाचल प्रदेश, तवांग, यांग्त्से, अक्साई चिन, भारत-चीन।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध पत्र एक वर्किंग पेपर है। इसमें ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है। इस शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है। इसमें विषय से संबंधित शोध पत्रों, समाचार पत्रों में प्रकाशित लेख एवं विषय विशेषज्ञों के वक्तव्यों एवं तथ्यों से प्राप्त जानकारी के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

शोध के उद्देश्य : यह दिसम्बर 2022 में एलएसी पर अरूणाचल प्रदेश के तवांग में यांग्त्से में हुई भारत-चीन सेना के बीच झड़प की पड़ताल पर आधारित है। इस शोध पत्र में भारत-चीन सीमा पर चीनी घुसपैठ का तरीका और कारणों को जानना एवं भारत के पास क्या विकल्प है इसकी पड़ताल करना है।

शोध समीक्षा :

जान टीनो ब्रीदूवर, रॉबर्ट फॉकिंग, केविन ग्रीन, रॉय लिंडैलौफ, कैरोलिन टॉर्नक्विस्ट, वी एस सुब्रह्मण्यन, "राइजिंग टेंशन इन हिमायल, अ जियोस्पेशल एलालिसिस ऑफ चायनीज इन्कर्जन"[1], अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों के शोध में यह प्रमाणित किया गया है कि भारत में चीनी अतिक्रमण आकस्मिक नहीं बल्कि विवादित सीमा क्षेत्र पर सुनियोजित विस्तारवादी रणनीतियों का हिस्सा है। प्रस्तुत शोध में पिछले 15 वर्षों के मौलिक आंकड़ों का उपयोग कर अतिक्रमण का भू-स्थानिक विश्लेषण किया गया है। सीमा क्षेत्रों को अलग-अलग भागों में बांटकर भी विश्लेषण किया गया है। इसमें चीनी सेना की लगातार बड़ती घुसपैठ उजागर हुई है। चीन की विदेश नीति भी आक्रामक हुई है। इससे अन्य देशों के साथ भारत के संबंधों ने भी भारत-चीन संबंधों पर प्रभाव डाला है। जून 2020 में गलवान संघर्षो के बाद 29 महीनों से भी अधिक समय से पूर्वी लद्दाख में सीमा गतिरोध जारी है जबकि द्विपक्षीय संबंधों के विकास के लिए एलएसी पर शांति आवश्यक है। साथ ही यथास्थिति भारत-चीन के बीच तनाव वैश्विक सुरक्षा और अर्थव्यवस्था के लिए खतरा है। चीन की विस्तारवादी नीतियों का मुकाबला करने के लिए भारत को अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया के साथ संयोजित करने का विकल्प मिलता है।

राघवेन्द्र राव, "इंडिया-चाइना तवांग डिस्प्यूटः इवन ड्युरिंग द कॉरगिल वॉर, वाज द चाइनीज आर्मी मेकिंग इनरोड्स इन अरूणाचल प्रदेश"।[2] **भारत-चीन** सैनिकों के बीच हुई ताजा झड़प और हाथापाई अरूणाचल प्रदेश के तवांग जिले का यांग्त्से एक ऐसा इलाका है जहां भारत और चीन अभी या पिछले कुछ सालों से नहीं बल्कि 1999 से एक-दूसरे के साथ उलझ रहे हैं। यहां 2020 और 2021

अभी हाल ही में 9 दिसंबर,2022 को तड़के लगभग 3 बजे अरूणाचल प्रदेश तवाग जिले के यांग्से नामक बिंदु के पास ऊँची पहाड़ियों पर एलएसी के पास एक नाले में आमने-सामने की झड़प हुई। यह झड़प जून 2020 में पूर्वी लद्दाख में गलवान की घाटी में हिंसक झड़प के बाद हुई बड़ी घटना थी। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि यह झड़प उत्तराखंड की पहाड़ियों में औली में भारत-अमेरिका के संयुक्त सैन्य अभ्यास पर आपत्ति उठाने के 9 दिनों के बाद हुई जिसमें चीन ने दावा किया था कि भारत ने 1993 और 1996 के समझौते का उल्लंघन किया था और अभी हाल ही में नई दिल्ली ने दुनियां की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं वाले समूह जी-20 की मेजबानी की है जिसमें चीन भी सम्मिलित है। चीन अपनी विस्तारवादी नीति के अंतर्गत सीमा पर घुसपैठ, अतिक्रमण, यथास्थिति को बदलना, क्षेत्रीय स्थानों के नाम परिवर्तित करना, नए गाँवों को बसाना, इन्फ्रास्टक्चर का निर्माण कर रहा है। 2020 में गलवान घाटी संकंट ने यह स्पष्ट कर दिया कि बीजिंग का भारत के साथ अपने सीमा विवाद को कूटनीति से हल करने का कोई इरादा नहीं था और अब भी नहीं है। चीन लागतार अपनी आक्रामक विस्तारवादी नीतियों से एलएसी पर नए मोर्चे खोल रहा है इसने भारतीय नीति-निर्माताओं को कुछ निश्चित विकल्पों को चुनने के लिए प्रेरित किया। इन झड़पों से चीन ने एक बार फिर यह रेखांकित किया है कि बीसवीं सदी का संघर्ष 21वीं सदी में भारत-चीन संबंधों के प्रक्षेपवक्र को आकार देना जारी रखता है और नई दिल्ली की आकांक्षाओं को विश्व मंच पर बड़ी भूमिका निभाने के लिए विवश करता है क्योंकि चीन खुद की वैश्विक भूमिका की तुलना में भारत को एक क्षेत्रीय भूमिका के रूप में मानता है।

❑ **प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, (म.प्र.)**

में भी झड़प हो चुकी है। ताजा झड़प यह दर्शाती है कि एलएसी पर दोनों देशों के बीच कई स्थानों पर विवाद जारी है जोकि भारत के लिए चिंताजनक है और सतर्क रहने की आवश्यकता को दर्शाता है। चीन की आक्रामक नीति और बढ़ती घुसपैठ ने भारत को सीमा पर बुनियादी ढांचे को तेजी से विकसित करने को बाध्य कर दिया हैं। अरूणाचल प्रदेश में किसी भी गतिविधि और भारत की यात्राओं पर चीन कड़ा विरोध जताता आया है जबकि यह भारत का अभिन्न हिस्सा है।

दिलनवाज पाशा "इंडिया-चाइना टेंशनः वाय देयर वाज अ क्लैश ऑन बॉर्डर नाउ, इस दिज अ स्ट्रेटेजी ऑफ चाइना"।[3]

इस लेख में तवांग की वर्तमान की झड़प के बारे में भारत और चीन के द्वारा एक-दूसरे पर लगाए गए आरोप-प्रत्यारोप चीनी प्रतिक्रिया तथा भारतीय संसद में भारतीय रक्षा मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इसमें चीनी मामलों के कई विशेषज्ञ और जानकार दिब्येश आंनद, अलका आचार्य, गजाला वहाब, पूर्व लेफ्टिनेंट जर्नल शंकर प्रसाद, भारत के पूर्व सेना प्रमुख वीपी मलिक के तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। इसमें स्पष्ट है कि चीन जान-बूझकर योजनाबद्ध ढंग से पुराने विवाद को बढ़ा रहा है। चीन भारत को उतना शक्तिशाली नहीं मानता कि वह चीन का मुकाबला कर सके जबकि चीन अमेरिका जैसी महाशक्ति का मुकाबला कर रहा है तो भारत चीन की बराबरी कैसे कर सकता है? इसलिए चीन भारत को यह अनुभव करना चाहता है कि भारत उसके आगे कुछ भी नहीं है। भारत के कई ऐसे कदम है जो चीन को अस्वीकार्य लगे हैं। जैसे- वन चाइना पॉलिसी, क्वाड में सम्मिलित होना, लद्दाख को केन्द्र शासित प्रदेश घोषित करना। भारत-अमेरिका का बड़ता सामीप्य आदि। भारत-चीन तनाव भविष्य में बड़ा रूप ले सकते है।

सौतिक बिश्वास, ''इंडिया-चाइना डिसप्यूटः शेडो ऑफ 60-ईयर -ओल्ड वार एट बॉर्डर फ्लैश पॉइंट''।[4]

इस लेख में लेखक ने रेखांकित किया है कि अरूणाचल प्रदेश के तवांग में झड़प की घटना 60 वर्ष पहले 1962 के युद्ध की याद दिलाती है तब चीन और भूटान की सीमा नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (नेफा) में चीन के सैनिकों ने भंयकर गोलाबारी की थी। भारत-चीन सीमा विवाद दुनियाँ में सबसे लंबे समय तक चलने वाला सीमा विवाद है। जो अभी तक हल नहीं हुआ है और दोनों देशों के अपने दावों को लेकर एक-दूसरे पर आरोप लगातें रहे हैं। चीन अरूणाचल को दक्षिणी तिब्बत कहता है और उसने इस पर से अपना दावा छोड़ा नहीं है। सीमा पर लगातार चीन की आक्रमकता, घुसपैठ, स्थानीय क्षेत्रों के नाम बदलने, गांव बसाने जैसी घटनाओं को अंजाम दे रहा है। ताकि सीमा विवाद को जीवित रखा जा सके और भारत के साथ क्षेत्रों की अदला-बदली की बार्गेनिंग कर सकें। भारत की महत्वकांक्षा और रवैये को नियंत्रित करने के लिए अरूणाचल चीन के लिए रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि अमेरिका के साथ भारत की निकटता बढ़ी है।

कल्पित ए मानकीकर ''डू प्रोटेस्ट इन चाइना थ्रैटेन शी'ज पॉवर?''।[5]

संबंधित लेख में चाइनीज कम्यूनिस्ट पार्टी के 20वें राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान तीसरे कार्यकाल के लिए चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग की ताजपोशी की धूमधाम और उनकी जीरो कोविड रणनीति को खत्म करने के लिए चीनी जनता का बढ़ता प्रदर्शन, महंगाई और असंतोष से संबंधित कारणों एवं तथ्यों का उल्लेख किया गया है।

कार्तिक बोमा कांति के ''इन्फ्लूएंसिंग चाइनीज बिहेवियरः अ नीड फॉर अ स्ट्रेटेजिक शिफ्ट इन इंडियाज पॉलिसी''[6] में लेखक के अनुसार सीमा पर चीनी फौज की हरकतों की रोकथाम के लिए भारत को अपनी परमाणु क्षमताओं की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों में बढ़ोतरी करनी होगी। देपसांग और डेमचोक से चीनी फौज की वापसी सुनिश्चित करने के साथ-साथ पीपुल्स लिबरेशन आर्मी की विशाल महादेशीय आकार वाली सेना से निपटने के लिए भारत को कई कड़े कदम उठाने होंगे। भारत सामरिक बदलाव के जरिए ही चीन की चौतरफा चुनौती का सामना कर सकता है।

भारत-चीन के बीच तवांग का यह ताजा विवाद 60 वर्ष पहले 23 अक्टूबर 1962 की याद दिलाता है। उस समय चीन और भूटान की सीमा नार्थ ईस्ट फ्रंटियर (नेफा) में चीन के सैनिकों ने भयंकर गोलाबारी की थी। ये क्षेत्र आज अरूणाचल प्रदेश है जिस पर चीन अपना दावा करता है। आज दोनों पक्षों में तनाव की ताजा घटना यही है।[7]

9 दिसंबर 2002 को 17000 फीट की ऊँचाई पर एलएसी पर भारत-चीन विवाद तब गरमा गया जब चीनी सैनिकों ने भारतीय पोस्ट को हटाने के लिए घुसपैठ की कोशिश की। तीन सौ चीनी सैनिकों ने अरूणाचल प्रदेश में तवांग के यांग्त्से पर भारतीय सेना से झड़प की। भारत

और चीन के सैनिकों के बीच इस खूनी झड़प[8] में 20 भारतीय सैनिकों को मामूली रूप से चोटें आईं जबकि चीनी सैनिकों को भारत से ज्यादा नुकसान पहुंचा।[9] घायल भारतीय सैनिकों को गुवाहाटी के 151 बेस अस्पताल में भर्ती कराया गया।[10] भारत के जवाबी हमले के बाद फ्लैग मीटिंग हुई तब जाकर मामला शांत हुआ और विवाद वाली जगह से दोनों देशों की सैनाएं हटीं।[11]

इस बार भारतीय सैना ने चीन को मुंह तोड़ जवाब दिया। 2020 में गलवान घाटी में सैनिकों ने कांटेदार डण्डों का प्रयोग किया था। इसके बाद भारतीय सैनिकों ने भी इसी तरह के इलेक्ट्रिक बैटन और कांटेदार डण्डों को इस्तेमाल शुरू कर दिया। इस बार भारतीय सैनिकों ने कटीले डण्डों और लाठी से चीनी सैनिकों को मुहतोड़ जवाब दिया जिसमें दर्जनों चीनी सैनिकों की हड्डियां टूटीं और घायल हुए।

यह शोध पत्र एक वर्किंग पेपर है। यह दिसम्बर 2022 में एलएसी पर अरूणाचल प्रदेश के तवांग में यांग्त्से में हुई भारत-चीन सेना के बीच झड़प की पड़ताल पर आधारित है। इसमें भारत-चीन सीमा पर चीनी घुसपैठ के ढंग और कारणों को जानना एवं भारत के पास क्या विकल्प है इसकी पड़ताल करना है। इसमें ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है साथ ही विषय से संबंधित शोध पत्रों, समाचार पत्रों में प्रकाशित प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है।

इससे पहले भी 1975 में तवांग में विवाद हुआ था। तब भारत के चार सैनिक बलिदान हुए थे। इस क्षेत्र मे दोनों सेनाएं कुछ हिस्सों पर अपने दावा ठोकती आई हैं। 2006 से यह विवाद जारी है। 15 जून 2020 को लद्दाख के गलवान घाटी में दोनों सेनाओं के बीच झड़प में 20 भारतीय सैनिक शहीद हो गए थे, जबकि चीन के 38 सैनिक मारे गए थे। हालांकि कई महीनों बाद चीन की पीपुल्स लिब्रेशन आर्मी ने 4 सैनिक मारे जाने की बात भी स्वीकार की थी।[12]

वास्तव में एलएसी भारत चीन सीमा विवाद दुनिया का सबसे लंबे चलने वाला विवाद है। चीन अरूणाचल प्रदेश को अपना मानता है जबकि यह भारत का अभिन्न हिस्सा है। चीन इसे दक्षिणी तिब्बत कहता है। भारत इसे 3488 कि.मी. लंबी रेखा मानता है, जबकि चीन इसे 2000 कि.मी. लंबी मानता है। सीमा के पश्चिमी हिस्से में स्विजरलैंड के आकार के चीन के कब्जे वाले अक्साइचिन इलाके पर भारत का दावा है। भारत के अनुसार 1126 कि.मी. लम्बा ईस्टर्न बार्डर मैकमोहन लाईन है। इस रेखा का नाम ब्रिटेन के हेनरी मैकमोहन के नाम पर है जो कि 1914 में भारत के विदेश सचिव हुआ करते थे।

तवांग में चीनी घुसपैठ गलवान की पुनरावृत्ति है। यांग्त्से संघर्ष को अशांत सीमा पर अमन-चैन की बहाली के लिए शुभ संकेत नहीं माना जा सकता। जब कभी भी यदि चीनी दुसरा मोर्चा खोलते हैं, तो गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र यांग्त्से और तवांग होगा। चीनियों ने आगे बढ़ने और एक नया मोर्चा खोलने की इच्छा का संकेत दिया है।[13]

ये वहीं यांग्त्से है जहां अक्टूबर 2021 में दोनों देशों के दर्जनों सैनिक आमने-सामने आ गए थे और तनावपूर्ण स्थिति बन गई थी। ये तनाव कुछ घंटे ही चला था जिसमें दोनों पक्ष एक-दूसरे को पीछे हटने के लिए कहते रहे। लेकिन मामला स्थानीय सैन्य कमांडरों के स्तर पर सुलझा लिया गया था। इसमें अहम बात ये है कि यांग्त्से एक ऐसा क्षेत्र है जहां भारत और चीन अभी या पिछले कुछ वर्षों से नहीं बल्कि 1999 से एक-दूसरे के साथ उलझ रहे हैं।[14]

भारतीय सेना के पूर्व अध्यक्ष जनरल वी.पी.मलिक के अनुसार 1999 में करगिल युद्ध के समय भी चीन ने यांग्त्से के पास बड़ी संख्या में सैनिकों का जमावड़ा कर लिया था। लेकिन तीन महीने बाद चीनी सैनिक वापस लौट गये थे। यांग्त्से विवादित क्षेत्र का लम्बा इतिहास और पृष्ठभूमि है। इसकी वजह से चीन कुछ ऐसे भागों पर दावा करता रहा है जो भारत के नियंत्रण में हैं। दोनों देशों के बीच वर्ष 2020 में पूर्वी लद्दाख की गलवान घाटी में हुई हिंसक झड़प के बाद शुरू हुआ गतिरोध अभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। इस ताजा झड़प से यह साफ है कि दोनों देशों के बीच का सीमा विवाद लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल पर कई जगहों पर बरकरार है। 1990 के दशक में विवादों को निपटानें के लिए एक ज्वाइंट वर्किंग ग्रुप भी बनाया गया था। तब भारत और चीन ने कुछ विवादित क्षेत्रों की पहचान की थी। इनमें से 6 अरूणाचल प्रदेश में थे और यांग्त्से उनमें से एक था। बाद में कुछ और विवादित इलाकों की पहचान भी की गई लेकिन 2002 के बाद चीनियों ने नक्शों का आदान प्रदान बंद कर दिया।[15]

अरूणाचल प्रदेश में तवांग के यांग्त्से में झड़प का अर्थ – वास्तव में अरूणाचल प्रदेश में भारत की विकास

योजनाओं से चीन को दिक्कत है। भारतीय सेना के पूर्व अध्यक्ष जनरल वी. पी. मलिक के अनुसार चीन से पिछड़ने के बाद भारत को अरूणाचल प्रदेश में इन्फ्रास्ट्रक्चर की गतिविधियों में सुधार करने के लिए मजबूर होना पड़ा। वे तवांग की घटना को चीन की सोची समझी घटना कहते हैं। अरूणाचल प्रदेश विधान सभा के विधायक निनॉन्ग एरिंग का कहना है कि चीन की लगातार बढ़ती घुसपैठ की कोशिशों के पीछे एक बड़ा कारण भारत का अरूणाचल प्रदेश में आधारभूत ढांचा सुधारने की नई परियोजनाओं को शुरू करना भी है।[16] यही नहीं चीन अरूणाचल प्रदेश में वर्ष 2016 में भारत में अमेरिकी राजदूत रिचर्ड वर्मा राज्य सरकार के निमंत्रण पर एक महोत्सव में सम्मिलित होने तवांग गए थे तब भी चीन ने इस पर कड़ा विरोध जताया था। 2019 में भी चीन ने भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के अरूणाचल प्रदेश के दौरे पर आपत्ति जताई थी। 2021 में तत्कालीन उप-राष्ट्रपति वेकैया नायडू के अरूणाचल प्रदेश जाने का भी चीन ने विरोध किया था। अभी हाल ही में नवम्बर 2022 में उत्तराखण्ड के औली में भारत अमेरिकी संयुक्त सैन्य अभ्यास पर भी चीन ने कड़ी आपत्ति जताते हुए चीन ने इसे नई दिल्ली और बीजिंग के बीच किये गये दो सीमा समझौतों की भावना का उल्लंघन बताया था। यह सैन्य अभ्यास एलएसी से करीब 100 किमी की दूरी पर आयोजित किया गया था। इसके जवाब में भारत ने किसी भी देश के साथ सैन्य अभ्यास कर सकने की बात कहीं थी।[17]

जनरल वी.पी.मलिक के अनुसार चीन ने इस घटना को जान बूझकर और सोच समझ कर अंजाम दिया है। जब तक सीमा विवाद नहीं सुलझेगा चीन आगे भी ऐसा करता रहेगा। चीन एलएसी को नक्शें पर मार्क नही करना चाहता। वहीं पत्रकार गदाला वहाब का मानना है कि ये चीन की योजना का हिस्सा है क्योंकि चीन बिना योजना के कोई काम नहीं करता। चीन की नीति है कि अपने विरोधी के खिलाफ पूरी तैयारी से जाए, चीन आक्रोश में या किसी उकसावे में कुछ नहीं करता। चीन ने जो कुछ किया होगा वो सोच समझ कर ही किया होगा।[18]

जवाहरलाल नेहरू युनिवर्सिटी में चीनी मामलों की जानकार अलका आचार्य इस घटना को खास महत्व नहीं देती। वे मानती हैं कि एलएसी पर दोनों देशों में मतभेद होने के कारण और गश्त होने पर आमने सामने आने पर झड़प होने की संभावना बनी रहेगी। भारत के पूर्व लेफ्टिनेंट जनरल शंकर प्रसाद मानते हैं कि ये घटना अचानक नहीं हुई बल्कि इसके पीछे चीन की योजना है। चीन किसी योजना और आकलन के बाद ही ऐसा करता है। कई विश्लेषकों का यह भी मानने हैं कि भारत ने कई कदम ऐसे उठाए है जिससे चीन नाराज है। जैसे क्वॉड में भारत का सम्मिलित होना, भारत द्वारा लद्दाख को केन्द्र शासित प्रदेश घोषित करना। चीन तिब्बत और ताईवान को अपना मानता है और चीन चाहता है कि भारत वन चाइना पॉलिसी का सम्मान करें।[19]

सिंगापुर के नेशनल युनिवर्सिटी से जुड़े चीनी मामलों के जानकार प्रोफेसर पुष्प अधिकारी इस घटना के पीछे कई कारणों को एक पैकेज के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार भारत अमेरिकी बढ़ती निकटता, कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाले भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को खत्म करना साथ ही अमेरिका का एक प्रतिनिधि मण्डल अभी चीन जाने वाला है इससे ध्यान भटकाना आदि कारण बताए हैं।[20]

वास्तव में चीन पिछले कुछ समय से अरूणाचल प्रदेश की सीमा से लगे क्षेत्र में कई स्थानों के नाम बदल रहा है। 2017 में 6 स्थानों के नाम बदले थें। जब कि पिछले साल 15 स्थानों के नाम परिवर्तित चीनी और तिब्बती नाम रखे हैं। इन 15 में से 8 क्षेत्रों में तिब्बती लोग रहते हैं। चीनी मीडिया ने इसे चीन का ऐतिहासिक और प्रशासनिक आधार बताया था जबकि चीन की सिविल अफेयर्स मिलिट्री ने इसे अपनी प्रभुसत्ता और इतिहास के आधार पर उठाया कदम बताया था। इसी पृष्ठभूमि के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चीन किसी ना किसी रूप में अरूणाचल पर सीमा विवाद को जिंदा रखना चाहता है। बिजिंग भविष्य में भारत के साथ किसी भी समझौते की स्थिति में अक्साईचिन पर अपने दावे को बनाए रखने के लिए या क्षेत्रों पर दावों की अदला बदली की इच्छा रखता है ताकि भविष्य में सीमा पर भारत से बार्गेनिंग की जा सके।

तवांग की घटना उत्तराखण्ड की उंची पहाड़ियों में औली में भारत-अमेरिका के संयुक्त सैन्य अभ्यास आपरेशन युद्धाभ्यास पर चीन द्वारा आपत्ति जताने के कुछ दिनों बाद हुई जिसमें चीन ने दावा किया था कि यह 1993 और 1996 के सीमा समझौतों का उल्लंघन है।[21]

दोनों देशों में विवाद पहले भी होते थे लेकिन टकराव

या झड़प कम ही देखने को मिलते थे। हालांकि इसके बढ़ने की वजह एलएसी पर बढ़ता इंफ्रास्ट्रक्चर और बढ़ती सैन्य उपस्थिति है। दोनों पक्षों के बीच धक्का-मुक्की या हाथों से एक दूसरे को धकेलने की घटना होती रहती है। लेकिन यहां सीमा पर गोली चलाने पर प्रतिबंध है।

घुसपैठ को रोकने के लिए भारत और चीन के बीच 1993 और 1996 के समझौते[22] भारत और चीन के बीच एलएसी पर शांति बनाये रखने के लिए तीन दशकों में पांच महत्वपूर्ण समझौते हुए। 1993 के समझौते ने ही 1996, 2005, 2012 और 2013 के समझौतों की नींव रखीं। वास्तव में देखा जाये तो 1962 के युद्ध के बाद दोनों देशों के संबंधों की भलाई के लिए 1988 में तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी के चीन दौरे ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इसी पृष्ठभूमि के फलस्वरूप दोनों देशों के बीच 1993 और 1996 के समझौते हुए। 1993 में तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने चीनी प्रधानमंत्री ली पेंग से मुलाकात की थी। इस दौरान ही नौ बिन्दूओं पर सहमति बनी थी कि कोई भी पक्ष एक-दूसरे के खिलाफ बल या सेना का प्रयोग नहीं करेगा। यदि एक देश के जवान गलती से एलएसी पार कर जाते हैं और दूसरा पक्ष उनको बचाता है तो वे जवान तुंरत अपनी ओर वापस लौट आऐंगे। हर पक्ष सैन्य अभ्यास की भी पूर्व जानकारी देगा। तनाव बढ़ने पर दोनों पक्ष एलएसी पर जाकर हालात का जायजा लेंगे और बीच का रास्ता निकालने का प्रयास करेगें। 1993 के समझौते को 1996 में बढ़ा दिया गया। 1996 के समझोते में लगभग 1993 के समझौते में सम्मिलित बातों का ही जिक्र किया गया था। उस समय चीनी राष्ट्रपति जियांग जेमिन भारत आए थे तब भारत के प्रधानमंत्री एचडी देवगोड़ा थे। 1996 में तय हुआ था कि एलएसी के पास 2 किमी के भू-क्षेत्र में कोई फायर नहीं होगा, कोई पक्ष आग नहीं लगाएगा, विस्फोट नहीं करेगा और ना ही खतरनाक रसायनों का उपयोग करेगा। एलएसी पर दोनों पर दोनों पक्ष ना तो सेना का प्रयोग करेगें और ना ही इसकी धमकी देगें।

कुल मिलाकर 1993 और 1996 में हुए समझौते ही 2005, 2012 और 2013 के समझौतों के आधार बने। आगे इसमें यह तय हुआ कि एलएसी के जिन इलाकों में सहमति नहीं बनी वहां पेट्रोलिंग नहीं होगी और सीमा पर भारत और चीन की जो स्थिति है वही रहेगी। यही कारण है कि सीमा पर आमने-सामने की झड़प, धक्का-मुक्की या एक दूसरे को धकेलने की घटना तो होती है लेकिन गोली नही चलती।

चीनी घुसपैठ का तरीका - भारत में चीनी घुसपैठ के मुद्दे पर अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों ने शोध किये हैं। एक शोध राइजिंग टेंशन इन हिमालय, अ जियोस्पेशल एनालिसिस ऑफ चायनीज इनकर्शन में कई दावे और खुलासे किये हैं। यह शोध टेक्निकल युनिवर्सिटी ऑफ डेल्फ्ट के जॉन ब्रीदूवर ऑफ रॉबर्ट फार्कीग, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ पब्लिक इंटरनेशनल अफेयर्स के केविन ग्रीन नीदरलैंड्स डिफेंस एकेडमी के रॉय लिंडलॉक के साथ ही नीदरलैंड्स के कुछ और विशेषज्ञ, अमेरिका की थॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी के कम्प्यूटर सांईस डिपार्टमेंट के सुब्रहमन्यम और बफेट इंस्टीट्ट ऑफ ग्लोबल अफेयर्स ने इस शोध में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस शोध में जून 2020 के गलवान संघर्ष का भी जिक्र है।

इसमें 2006 से 2020 के बीच भारत में चीन के कथित घुसपैठ के आंकड़ों को एकत्रित कर अलग-अलग ढंग से इनका विश्लेषण किया गया। इसे दो अलग-अलग संघर्षों के तौर पर देखा जा सकता है। एक पूर्व (अरूणाचल प्रदेश) और दूसरा पश्चिम/मध्य (अक्साई चीन वाला क्षेत्र) इसमें 13 ऐसे हॉट स्पॉट चिन्हित किये गये हैं जहां चीन ने कई बार घुसपैठ की है। इसमें यह भी उजागर हुआ है कि चीन की घुसपैठ समय के साथ-साथ बढ़ी है। ये घुसपैठ गलती से होने वाली नहीं थी। अचानक या बिना पूर्व योजना के चीनी घुसपैठ की संभावना बहुत कम ही है। चीन थोड़ा सा क्षेत्र हथियाकर उसे जारी रखता है जब तक भारत उसे स्वीकार ना कर ले।[23]

चीन छोटे छोटे हिस्सों पर कब्जा करता है लेकिन समय के साथ साथ ये जमीन का बड़ा हिस्सा बन जाता है। चीन के विकास के लिए अक्साई चिन को रणनीतिक महत्व वाला मानता है जो चीन एवं तिब्बत, शिनजियांग जैसे उसके स्वायत्त इलाकों के बीच एक अहम मार्ग के रूप में है। इस शोध में यह पाया गया कि जब जब चीन खुद को सबसे अधिक असुरक्षित महसूस करता है, वो घुसपैठ की गतिविधि तेज कर देता है। जब जब चीन आर्थिक मोर्चे पर संकट से जूझ रहा हो, उसके उपभोक्ता का भरोसा डिगा हो, तो वह हमला करता है। भारत और अमेरिका के बीच करीबी बढ़ने पर भी चीन घुसपैठ की कोशिश तेज कर देता है। क्वॉड समूह में भारत के

सम्मिलित होने से भी चीन नाराज है। संभवतः सीमा पर चीन की गतिविधियों को तेज करने में भूमिका निभाई है।[24] **ऐसा** प्रतीत होता है कि चीन सोची समझी कोशिशों के अधीन कई अलग अलग स्थानों पर अपना स्थाई नियंत्रण चाहता है। कई बार यह संकेत देखें जा सकते हैं कि कुछ अनजानें में और कुछ सोची समझी गई रणनीति के अंतर्गत सीमा पर तनाव पैदा करने के प्रयास के रूप में समझा जा सकता है।

चीनी घुसपैठ के पैटर्न में लगातार परिवर्तन – आंकड़ों के अनुसार 2006 से 2010 के मध्य चीनी सेना ने घुसपैठ की 300 कोशिशें की थीं। यह घुसपैठ 2015 से 2020 के बीच 300 से बढ़कर 600 तक हो गईं। यह देखा गया है कि चीन कब्जा कर नई यथास्थिति बनाना चाहता है। दुनिया की सबसे लम्बी विवादित सीमा पर 76 हॉट स्पॉट पश्चिमी सेक्टर में और 7 पूर्वी सेक्टर में है। इन दोनों सेक्टरों में घुसपैठ का पैटर्न चीन की विस्तारवादी नीति का संकेत देता है। पश्चिमी सेक्टर में घुसपैठ इस्टर्न से तीन गुना अधिक है जबकि 2020 में यह पैटर्न पश्चिम में 10 गुना अधिक था। वही मध्य सेक्टर में अतिक्रमण की घटनाएं बाराहोती सैन्य बेस के इर्द-गिर्द रहीं। पूर्वी सेक्टर में 6 रेड जोन है और एक सिक्किम है। इनमें से पांच मेकमहोन रेखा के पास है। पश्चिमी सेक्टर में देपसांग, पैगांग, देनचोक, चुमुर, हॉट स्प्रिंग और गलवान में से चार हॉट स्पॉट में अतिक्रमण अधिक रहा है। हॉट स्प्रिंग और गलवान में सबसे कम अतिक्रमण रहा है।[25] तवांग में अतिक्रमण की सबसे ज्यादा घटनाएं देखी गई हैं। पूर्वी सेक्टर में विवाद के 7 बिंदु है। सिक्किम में सबसे ज्यादा अतिक्रमण हो रहा है लगभग 30 प्रतिशत। तवांग में 20 प्रतिशत, लुहन्जे में 10 प्रतिशत, बीजिंग में 5 प्रतिशत, एनिनी में 10 प्रतिशत और किबितू में 25 प्रतिशत घटनाएं प्रविष्ट हैं।[26]

चीन पिछले 17 वर्षो में से यानी 2006 से लगातार थोड़े थोड़ अंतराल पर इस प्रकार की घुसपैठ की घटनाओं के द्वारा दबाव बनाने के प्रयासों में लगा रहता है। चीनी सेना पहले तो छोटे छोटे से सैन्य दल के माध्यम से विवादित इलाकों में घुसपैठ करती थीं लेकिन अब चीन ने अपने पैटर्न में बदलाव करके 200 से 300 की संख्या में सैनिक भेजने लगा है। इसी कड़ी में 9 दिसम्बर 2022 को अरूणाचल प्रदेश के इलाकों में चीनी सेना की घुसपैठ इसकी पुष्टि करती है। भविष्य में सीमा पर घुसपैठ के लिए चीनी सैन्यदल और अधिक सैनिकों वाली टुकड़ी के साथ घुसपैठ कर सकते हैं। इनमें सैनिको की सख्या 500 से 1000 या उससे भी अधिक की हो सकती है। चीनी घुसपैठ की हरकतें रूक जाएगी इसकी संभावना कम ही नजर आती है। इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जाता सकता है कि चीन इन ऊँची पहाड़ियों में मौसम और बर्फ बारी का फायदा उठाकर नए मोर्चो को खोल सकता है। लिटमस टेस्ट के रूप में चीन कभी लद्दाख तो कभी एलएसी पर उकसाने वाली घटनाओं को जारी रख सकता है अर्थात् डर आगे भी बना रहेगा।

भारत के अलावा कई देशों के साथ चीन के जमीनी एवं समुद्री विवाद एवं तनावपूर्ण रिश्तें– कुल 17 पड़ोसी देशों के साथ चीन के तनावपूर्ण रिश्ते हैं। भारत के अलावा नेपाल, भूटान, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीपिंस, वियतनाम, जापान, उत्तर कोरिया, दक्षिण कोरिया, ब्रुनोई, लाउस, मंगोलिया और तिब्बत सम्मिलित हैं। इसमें ताईवान भी है जो खुद को स्वतंत्र और सम्प्रभु राष्ट्र मानता है जबकि चीन ताईवान को चीन मे सम्मिलित करना चाहता है। भारत, नेपाल, भूटान, तिब्बत, म्यांमार, लाओस और मंगोलिया के साथ चीन का भूमि विवाद है जबकि बाकि देशों के साथ सामुद्रिक विवाद है। इसमें दक्षिणी चीन सागर प्रमुख है। दक्षिणी चीन सागर में करीब 250 छोटे बड़े द्वीप है। ये क्षेत्र हिन्द महासागर और प्रशांत महासागर के बीच है। इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपिंस, ब्रुनोई, वियतनाम, ताईवान और चीन से घिरा हुआ समुद्र है। चीन इसी क्षेत्र पर दावा करता है और अपनी महत्वाकांक्षी परियोजना के अंतर्गत यहां कृत्रिम द्वीप बना रहा है। लेकिन विवाद ये है कि लगभग सभी देश इसके किसी ना किसी हिस्से को अपना मानते है। वर्तमान में रूस-युक्रेन युद्ध के बीच अमेरिका और पश्चिमी देशों के साथ भी चीन के रिश्ते तल्ख हुए है। हाल ही में अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ही चीन को बड़ा खतरा बता चुके है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि चीन के उसके पडोसी एवं दुरस्थ देशों के साथ भी संबंध तनाव पूर्ण है।

चीन ने दूसरे देशो की जमीन हड़पने की नीति भी अपना रखी है। चीन ने पांच देशों की 41 लाख वर्ग किलो मीटर की जमीन हड़प रखी है जबकि भारत के 90 हजार वर्ग किलो मीटर पर भी चीन की नजर है। चीन का कुल ऐरिया 97 लाख 6 हजार 961 वर्ग किलो मीटर है। इसमें से 43 प्रतिशत जमीन दूसरे देशों से हड़पी हुई है जिसमें

से पूर्वी तुर्कीस्तान का 16.60 लाख वर्ग किलो मीटर, तिब्बत का 12.28 लाख वर्ग किलो मीटर, इनर मंगोलिया का 11.43 लाख वर्ग किलो मीटर, हांगकांग का 1.04 वर्ग किलो मीटर, मकाउ का 115 वर्ग किलो मीटर का क्षेत्रफल है।

चीन की जनता का घरेलू व आंतरिक स्थिति से ध्यान भटकाने की कोशिश[27] : चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के विरूद्ध देशभर में बढ़ते असंतोष एवं जीरो कोविड नीति के खिलाफ राजधानी बीजिंग व संघाई से लेकर चेंगदू, ग्वांग झू, उरूमकी, नानजिंग, वुहान समेत देशभर में विरोध प्रदर्शन हो रहे है। जिनपिंग तीन साल तक पीपुल्स वार बताकर लड़ाई लड़ते रहे हैं। लेकिन चीनी जनता में गहरा असंतोष व्याप्त होने के कारण जिनपिंग को इन सबका मूल्य चुकाना पड़ सकता है। वह जीरो कोविड नीति के चलते विरोध का सामना करने के साथ बैकफुट पर भी दिखाई पढ़ते हैं।

बाहर से चीन भले ही एक बड़ी आर्थिक ताकत के रूप मे दिखाई देता हो लेकिन जनता बढ़ती महंगाई और कोरोना की प्रतिबंधों के विरोध में सड़कों पर उतरी। जनता द्वारा शी जिनपिंग वापस जाओं के नारे लगाने से जिनपिंग प्रशासन बौखला गया। इससे भले ही चीन की तानाशाह सरकार को सीधे तौर पर चुनौती न मिली हो लेकिन चीनी जनता में गहरा असंतोष उभरा। चीनी सरकार को कई अलग-अलग स्थानों एवं विश्वविद्यालयों में विरोध एवं आंदोलनों का सामना करना पड़ा। इससे शी जिनपिंग और उनके सलाहकार असमंजस में हैं।

चीन की आंतरिक परेशानियों को देखकर ये अनुमान लगाया जा सकता है कि जिनपिंग ने ध्यान भटकाने के लिए चीनी सैनिकों सीमा पर झड़प के द्वारा तनाव पैदा करने की कोशिश की है। जिनपिंग अपने आप को शक्तिशाली साबित करने के लिए भी कर सकता है। चीन के पास ऐसे दो ही क्षेत्र हैं जहाँ वह सैन्य कार्यवाही करके राष्ट्रवाद की भावना पैदा कर सकता है। एक ताईवान और दूसरा भारत। लेकिन वह ताईवान में हस्तक्षेप करने से बचना चाहेगा क्योंकि अमेरिकी विमान दक्षिणी चीन सागर में उपस्थित हैं। ताईवान और दक्षिणी चीन सागर के अलावा चीन की नजर एलएसी पर है। ताईवान और दक्षिणी चीन सागर के सापेक्ष चीन भारत को ज्यादा साफ्ट टारगेट मान रहा है।

भारत के पास विकल्प - लाईन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल पर तिब्बत क्षेत्र में चीन के पास भारत की अपेक्षा मूलभूत सुविधाएं कही ज्यादा है। भारत वाले हिस्से में इन्फ्रास्ट्रक्चर अभी विकसित हो रहा है। अतः भारत अभी चीन से दस से पन्द्रह साल पीछे है। वास्तव में भारत अभी उप-महाद्विपीय शक्ति है। जबकि चीन ग्लोबल और अंतर महाद्विपीय शक्ति बनकर उभर रहा है जो भारत को प्रतिकूल परिस्थितियों में डालता है। चीन हथियारों और रक्षा बजट के मामले में भी भारत से आगे है। चीन की सैन्य शक्ति भी ज्यादा है। लेकिन चीन की सैन्य प्रतिबद्धता ताइवान, हॉन्ग कांग, दक्षिणी चीन सागर में भी बहुत ज्यादा है। इस लिहाज से भारत पर चीनी सैन्य कार्यवाई करना इतना आसान नहीं है।[28] भारत के लिए चीन बड़ा खतरा है। अतः भारत को पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर को लेकर बयान बाजी करने की बजाए चीन की तरफ से आने वाले खतरे को गंभीरता से लेना चाहिए। लेकिन चीन पाकिस्तान को सैन्य और आर्थिक मदद करता है। इसके बदले में पाकिस्तान चीन को अपने नौ सैनिक अड्डे, पोर्ट और अरब सागर तक रास्ता देता है। चीन, पाकिस्तान और भारत प्रशासित कश्मीर में जारी चरम पंथ को जोड़ दे तो भारत के समक्ष ढ़ाई फ्रंट पर लड़ने की चिन्ता बनी रहती है। अतः भारत को अपने आप को मजबूत बनाना होगा। लेकिन भारत और चीन के बीच सीमा विवाद का कोई सैन्य समाधान संभव नहीं है। बातचीत ही एक मात्र रास्ता है। भारत को चाहिए वह खुद को पहले राजनीतिक तौर पर मजबूत बनाए और सैन्य शक्ति को बढ़ाए। क्वॉड समूह में भी मदद के रूप में सैन्य हल की बजाय कूटनीतिक हल तलाशना चाहिए। दोनों देशों के बीच नवंबर 2019 से स्थगित बातचीत फिर शुरू करना बेहद जरूरी है। भले ही चीन भारत को अपने बराबर की शक्ति नहीं मानता जिसका वैश्विक प्रभाव हो लेकिन चीन को भी यह समझना चाहिए कि एशिया-पैसिफिक क्षेत्र में अमेरिका और उसके सहयोगी सबसे ताकतवर समूह है, चीन दूसरी शक्ति है लेकिन भारत भी तीसरी शक्ति है।[29] दोनों देशों को संयम बरतना चाहिए कि जी-20 की अगली बैठक में शी जिनपिंग और नरेन्द्र मोदी आमने सामने हो सकते हैं तो ऐसी स्थिति में दोनों बातचीत कर सके। ऐसे में दोनों नेता भी नहीं चाहेगें कि सीमा पर कोई झड़प हो। यदि इस बीच सीमा पर कोई झड़प होती है तो संबंधों में और खटास आ सकती है।

भारत चीन रिश्तों का भविष्य - भारत और चीन

दोनों ही एशिया के अहम देश और सैन्य रूप से शक्तिशाली है। दोनों देशों के बीच दक्षिण एशिया में प्रभाव को बढ़ाने के लेकर प्रतिद्वंदिता भी है। भारत का आधिकारिक पक्ष है कि जब तक सीमा पर तनाव शांत नहीं हो जाता तब तक रिश्तें भी शांत नहीं हो सकते। जून 2020 में गलवान की घाटी में झड़प के बाद से तनाव बढ़ा है। सीमा पर दोनों देशों ने सैन्य उपस्थिति भी बढ़ाई है। 'भारत और चीन दोनों ही देशों में राष्ट्रवाद भी जोर पकड़ रहा है। घरेलू राजनीतिक कारण भी सीमा पर तनाव को हवा दे सकते है।'[30]

भारत और चीन के बीच संरचनात्मक समस्या और प्रतिद्वंदिता होने के कारण आगे भी सीमा पर तनाव की स्थिति बनी रह सकती है। भारत और चीन सीमा पर किसी भी गतिरोध के बीच कोई भी घोषणा या समझौते महत्वपूर्ण तो हो सकते हैं लेकिन सारे गतिरोध सुलझ जाएंगे और दोनों देशों के संबंध बहुत अच्छे हो जाएंगे ऐसा नहीं है। डिसइन्गेजमेंट या पीछे हटने से तनाव जरूर कम हो सकता है। लेकिन तनाव पूरी तरह समाप्त होने की संभावना की कोई गारंटी नहीं है। 'भारत को सीमा पर सतर्क रहना होगा। अब हिन्दी-चीनी भाई-भाई वाली भावना नहीं आ सकती।'[31]

अभी हाल ही में चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी की 20 वीं राष्ट्रीय कांग्रेस में शी जिनपिंग को चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के महासचिव के रूप में तीसरा कार्यकाल मिलने के बाद उस दौरान दिये गये बयानों से भी ये साफ स्पष्ट होता है कि अभी भारत चीन सीमा पर गतिरोध में कोई राहत मिलने वाली नहीं है। इसके बाद यदि शी जिनपिंग 21 वीं राष्ट्रीय कांग्रेस में अपने चौथे कार्यकाल के लिये दम ठोकते हैं तो यह समझने वाली बात है कि तब तक भारत-चीन सीमा पर हलचल बनी रहेगी। यानी भारत-चीन सीमा पर स्थितियां सुधरने की संभावना नहीं है। भारत को अलर्ट रहना चाहिए।

निष्कर्ष - चीन द्वारा एलएसी पर लगातार अपनी सैन्य घुसपैठ बढ़ाने और आधारभूत ढांचे को मजबूत करने से भारत को भी अपना आधारभूत ढांचा मजबूत करने और सैन्य तैनाती को बढ़ाने पर विवश कर दिया है। चीन द्वारा लगातार सैन्य घुसपैठ और झड़प की घटनाओं को बढ़ावा देने से सीमा पर तनाव की स्थिति बनी हुई है। पूर्वी लद्दाख में गलवान घाटी में हुई हिंसक झड़प के बाद से ही दोनों देश हाई अलर्ट पर है और अभी सीमा पर स्थितियां सुधरने की संभावना कम ही है।

सन्दर्भ

1. Jan-Tino Brethouwer , Robbert Fokkink, Kevin Greene, Roy Lindelauf, Caroline Tornquist, V S Subrahmanian ,"Rising tension in the Himalayas: A geospatial analysis of Chinese border incursions into India", Publmed.gov, 10 Nov 2022 https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/36355678/
2. Raghavendra Rao. BBC Correspondent, "India-China Tawang dispute: Even during the Kargil war, was the Chinese army making inroads in Arunachal Pradesh", 14 Dec 2022, https://india.postsen.com/News/130495.html
3. Dilnawazpasha, BBC Correspondent, "India China tension : Why there was a clash on border now, Is this a strategy of china?" https://www.bbc.com/hindi/india-639651111
4. Soutik Biswas, BBC, India Correpodence," India-China dispute: Shadow of 60-year-old war at border flashpoint", 14 Dec 2022. https://www.bbc.com/news/world-asia-india-63969040
5. Kalpit A Mankikar, "Do Protest in China threaten Xi's Power?", Observer Research Foundation (ORF), 01 Dec 2022, https://www.orfonline.org/expert-speak/do-protests-in-china-threaten-xis-power/
6. Kartik Bommakanti, "Infuencing Chinese behaviour : A need for a strategic shift in indias policy", Observer Research Foundation (ORF), 07 Dec 2022, https://www.orfonline.org/expert-speak/influencing-chinese-conducts/
7. Soutik Biswas, BBC, India Correpodence," India-China dispute: Shadow of 60-year-old war at border flashpoint", 14 Dec 2022. https://www.bbc.com/news/world-asia-india-63969040
8. ET Onlice, "Satellite images show China has built villages, road near border in Arunachal Pradesh: Indian Army sources" The Economics Times, 13 Dec 2022. https://economictimes.indiatimes.com/news/defence/satellite-images-show-china-has-built-villages-road-near-border-in-arunachal-pradesh-indian-army-sources/articleshow/96202347.cms?from=mdr
9. Vijay Singh Dinakar Peri, "Indian, Chinese soldiers injured in clash near Arunachal border", The Hindu, 12 Dec 2022. https://www.thehindu.com/news/national/several-army-soldiers-injured-in-clashes-with-chinese-pla-

on-dec-9-first-incident-of-its-kind-after-galwan/article66254984.ece

10. Bikash Singh, ET Bureau, Defence, "India-China border clash: Six army personnel undergoing treatment in Guwahati" The Economics Times, 13 Dec 2022.
https://economictimes.indiatimes.com/news/defence/india-china-border-clash-six-army-personnel-undergoing-treatment-in-guwahati/articleshow/96206676.cms
11. By Explained Desk, "Here's what we know about the clash between India, China soldiers in Tawang, Arunachal Pradesh" The Indian Express, 15 Dec 2022.
https://indianexpress.com/article/explained/india-china-soldiers-tawang-clash-explained-rajnath-singh-8321880/
12. Tahir Qureshi , "Indian Army Badly Wounds, Breaks Bones Of Many Chinese Soldiers, Chases Away 600 In Arunachal: Reports" India.com, 13 Dec 2022.
https://www.india.com/news/india/indian-army-badly-woundd-broke-bones-of-many-chinese-soldiers-chased-away-600-in-arunachal-reports-watch-video-5799550/
13. Maj Gen Ashok K Mehata (Retd), "Chinese intrusion in Tawang a replay of Galwan", The Tribune, 16 Dec 2022.
https://www.tribuneindia.com/news/comment/chinese-intrusion-in-tawang-a-replay-of-galwan-461369
14. Raghavendra Rao. BBC Correspondent, "India-China Tawang dispute: Even during the Kargil war, was the Chinese army making inroads in Arunachal Pradesh", 14 Dec 2022,
https://india.postsen.com/News/130495.html
15. Raghavendra Rao. BBC Correspondent, "India-China Tawang dispute: Even during the Kargil war, was the Chinese army making inroads in Arunachal Pradesh", 14 Dec 2022,
https://india.postsen.com/News/130495.html
16. Raghavendra Rao. BBC Correspondent, "India-China Tawang dispute: Even during the Kargil war, was the Chinese army making inroads in Arunachal Pradesh", 14 Dec 2022,
https://india.postsen.com/News/130495.html
17. Raghavendra Rao. BBC Correspondent, "India-China Tawang dispute: Even during the Kargil war, was the Chinese army making inroads in Arunachal Pradesh", 14 Dec 2022,
https://india.postsen.com/News/130495.html
18. Dilnawazpasha, BBC Correspondent, "India China tension : Why there was a clash on border now, Is this a strategy of china?"
https://www.bbc.com/hindi/india-639651111
19. Dilnawazpasha, BBC Correspondent, "India China tension : Why there was a clash on border now, Is this a strategy of china?"
https://www.bbc.com/hindi/india-639651111
20. Ikbal Ahmad, BBC Correspondent, "Chashes in Arunachal's Tawang, What is the option for India" 15 Dec 2022
https://www.bbc.com/hindi/india-63987177
21. by Ritu Sarin , Nirupama Subramanian , Shubhajit Roy , Deeptiman Tiwary, "Indian, Chinese soldiers engage in Tawang face-off; 'minor injuries' to both sides", The Indian Express, 12 Dec 2022.
https://indianexpress.com/article/india/india-china-troops-clash-lac-tawang-sector-minor-injuries-8320729/
22. by Ritu Sarin , Nirupama Subramanian , Shubhajit Roy , Deeptiman Tiwary, "Indian, Chinese soldiers engage in Tawang face-off; 'minor injuries' to both sides", The Indian Express, 12 Dec 2022.
https://indianexpress.com/article/india/india-china-troops-clash-lac-tawang-sector-minor-injuries-8320729/
23. Jan-Tino Brethouwer , Robbert Fokkink, Kevin Greene, Roy Lindelauf, Caroline Tornquist, V S Subrahmanian ,"Rising tension in the Himalayas: A geospatial analysis of Chinese border incursions into India", Publmed.gov, 10 Nov 2022
https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/36355678/
24. Jan-Tino Brethouwer , Robbert Fokkink, Kevin Greene, Roy Lindelauf, Caroline Tornquist, V S Subrahmanian ,"Rising tension in the Himalayas: A geospatial analysis of Chinese border incursions into India", Publmed.gov, 10 Nov 2022
https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/36355678/
25. Mukesh Koushik, Report, Dainik Bhaskar (Hindi) News Paper, Ujjain, M.P., 14 Dec 2022, Pg. 1
26. Mukesh Koushik, Report, Dainik Bhaskar (Hindi) News Paper, Ujjain, M.P., 14 Dec 2022, Pg. 1
27. Prerna, BBC Correspondent, "Againt whom china is preparing for war : should India be cautious?", 11 Nov 2022
http://www.bhaskar.com/db-original/explainer/news/india-china-border-dispute-how-much-area-has-china-illegelly- occupied-130675106.html.
28. General P R Shankar ,"Tawang incident should drive home urgency of army modernisation, reconsideration of ill-conceived Agnipath", The Indian Express, 22 Dec 2022.
https://indianexpress.com/article/opinion/columns/tawang-incident-urgency-of-army-modernisation-reconsideration-of-ill-conceived-agnipath-8324532/
29. Ikbal Ahmad, BBC Correspondent, "Chashes in Arunachal's Tawang, What is the option for India" 15 Dec 2022
https://www.bbc.com/hindi/india-63987177
30. Dilnawazpasha, BBC Correspondent, "India China tension : Why there was a clash on border now, Is this a strategy of china?"
https://www.bbc.com/hindi/india-639651111
31. Ikbal Ahmad, BBC Correspondent, "Chashes in Arunachal's Tawang, What is the option for India" 15 Dec 2022
https://www.bbc.com/hindi/india-63987177

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारत के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन का मेव समुदाय के आर्थिक विकास पर प्रभाव

❑ डॉ. आसीन खाँ

सूचक शब्दः स्वतंत्रता आंदोलन, क्रांतिकारी, मेवात, मेव समुदाय, आधारभूत सुविधाएं, आर्थिक विकास।

10 मई 1857 को मेरठ छावनी में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सैनिक विद्रोह के साथ क्रांतिकारियों ने दिल्ली पहुँच कर बहादुर शाह जफर को भारत का सम्राट घोषित करके प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन का उद्घोष कर दिया। इस आंदोलन में मेव समुदाय के लोगों ने अनुशासित जत्थे बनाकर अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी थी। सम्पूर्ण मेवात और देश के विभिन्न भागों में मेवों ने क्रांतिकारियों के साथ मिलकर ब्रिटिश शासन को कड़ी चुनौती दी थी इसलिए आंदोलन की असफलता के बाद मेवों को सबक सिखाने के लिए अंग्रेजों ने न केवल कठोर दंडात्मक नीति अपनाई बल्कि मेवात क्षेत्र और मेव समुदाय के आर्थिक विकास की संभावनाओं को समाप्त कर देने की द्वेषतापूर्ण नीतियों के माध्यम से इस क्षेत्र को आधारभूत सुविधाओं के विकास से भी वंचित रखा। प्रस्तुत अध्ययन में 1857 के स्वतन्त्रता आंदोलन के मेव समुदाय के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

1857 के स्वतन्त्रता आंदोलन में मेव समुदाय बड़ी संख्या में सम्मिलित था और लगभग 7 महीनों तक ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेता रहा। मेवों के लम्बरदारों व चौधरियों ने बहादुरशाह को पत्र लिखकर भारत सम्राट स्वीकार किया। सारा मेवात अंग्रेजों तथा उनके समर्थकों के खिलाफ सुलग उठा था। मेवों ने अंग्रेजी शासन से लड़ने के लिए अनुशासित लोगों के जत्थे बनाए जिन्हें स्थानीय भाषा में 'धाड़' कहा जाता था। इन धाड़ों में मेवों के साथ जाट, गुर्जर, राजपूत, अहीर आदि अन्य जातियों के वे लोग भी सम्मिलित थे जो देश से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना चाहते थे। मेवात में इन धाड़ों का नेतृत्व अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग लोगों ने किया। सआदत खाँ ने फिरोजपुर झिरका, दोहा, रावली क्षेत्र; फिरोज खाँ ने सोहना, तावडू व रायसीना क्षेत्र में और मौलवी मेहराब खाँ ने समस्त मेवात में लोगों को अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रेरित किया।

1857, भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मेवात और मेव लोगों के विकास के दृष्टिकोण से न केवल एक उल्लेखनीय विभाजक घटना है अपितु स्पष्ट रूप से एक 'मोड़ बिंदु' (टर्निंग पॉइंट) कहा जाना चाहिए विशेष रूप से आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से। ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए मेव समुदाय के लोगों ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों का तीव्र प्रतिरोध किया था और क्रांतिकारियों की सहायता भी की थी। सारा मेवात और मेवात से बाहर रह रहे मेवाती, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। मेवातियों ने अंग्रेजी फौज का डटकर मुकाबला किया और उसे भारी क्षति पहुंचाई। क्रांति की असफलता के बाद अंग्रेजों ने मेवात और यहाँ के निवासी-मेवातियों को सबक सिखाने के उद्देश्य से तात्कालिक रूप से दंडात्मक कार्यवाहियाँ कीं, परंतु उससे भी अधिक गंभीर, स्थायी व दूरगामी प्रभाव डालने वाली द्वेषतापूर्ण विकास नीतियां अपनाईं जिनके समग्र दुष्परिणामों के कारण मेवाती और मेवात आर्थिक विकास के क्षेत्र में पिछड़ा रह गया।

साहित्य की समीक्षाः के.सी.यादव[1] ने अपनी पुस्तक 'हरियाणाःइतिहास एवं संस्कृति' में लिखा है कि परंपरागत रूप से मेव क़ौम की बारह पालें हैं, जिनके अपने-अपने चौधरी होते हैं। मेवात में इन मेव चौधरियों ने क्रांतिकारियों का नेतृत्व किया और आंदोलन को दिशा देने का काम किया था जिनमें से कुछ प्रमुख नाम- सदरुद्दीन, सआदत खाँ, फिरोज खाँ, मौलाना मेहराब खाँ आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शहंशाह बहादुर शाह जफ़र के झंडे के नीचे खड़े होकर मेवाती योद्धा बड़ी बहादुरी से लड़े थे। समूचा मेवात अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। कई महीनों तक यहाँ न तो ब्रिटिशर्स की छावनी बची थी और न ही कोई सरकारी दफ्तर। पुस्तक में बताया है कि 1857 संग्राम की असफलता के बाद अंग्रेजों ने मेवातियों पर क्रूर अत्याचार किए। मेवों के बहुत से लोगों को फांसी दी गई, बहुतों को लंबी-लंबी कैद

❑ सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

की सजाएं दी गई, कई गांवों को आग के हवाले किया गया, मेवों की जमीनें जब्त करके अपने सहयोगियों को दे दी गयीं। एक नीतिगत तरीके से मेवात में न तो स्कूल व अस्पताल बनवाए और न ही कृषि व सिंचाई सुविधाओं का विकास किया इनकी बजाए कोर्ट- कचहरी और पुलिस थाने बनवाए गए जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र और यहाँ के निवासी आर्थिक विकास की मुख्य धारा से कट गए।

मौलाना अब्दुल शकूर[2] ''तारीख़ मेव क्षत्रिय'' पुस्तक में देश की जंगेआज़ादी के पहले आंदोलन में मेव कौम के योगदान का विस्तार से वर्णन किया है और मेव क्रांतिकारियों द्वारा अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लड़ी गई लड़ाइयों व प्रमुख घटनाक्रमों को भी बताया है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में मेवों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था और ब्रिटिश सरकार को कड़ी टक्कर दी, बहुत से मेवों ने अपनी जानें कुर्बान कर दीं। आंदोलन के खत्म हो जाने के बाद अंग्रेजी हुकुमत ने मेवों को कड़ी सजाएं दीं। लेखक ने बताया है कि मेव कौम और मेवात को लेकर हुकुमत का रवैया विकास विरोधी बना रहा।

मायाराम[3], 'Resisting Regimes: Myth, Memory and the Shaping of a Muslim Identity' पुस्तक में मेव समुदाय के इतिहास, उनकी संस्कृति, धार्मिक उदारता आदि के वर्णन के साथ 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में मेवों की भूमिका व योगदान पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। लेखक ने रेखांकित किया है कि मेवों ने अपनी वीरता की विरासत को कायम रखते हुए अंग्रेजी शासन को कड़ी चुनौती दी। **ब्रिटिश** अधिकारी क्लेफोर्ड की बहन को रायसीना के मेवों द्वारा तोपगाड़ी के पहियों से बांधकर घसीटने, अंग्रेज़ सैनिकों को काँटेदार बाड़ पर चलाने और सिर काटकर उनकी खोपड़ियों को गांव की चौपाल की सीढ़ियों के नीचे गाड़ने की घटनाओं को लेखक ने पर्याप्त स्थान दिया है। आंदोलन की असफलता के बाद मेवातियों के विरुद्ध अंग्रेजों के दमनचक्र, विकास के प्रति नकारात्मक नीतियों के निर्माण व रुख आदि को भी स्थान दिया है।

बालौत एवं सहारिया[4], ''मेवात का इतिहास और संस्कृति'' पुस्तक में बताया है कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में मेवातियों ने मेवात क्षेत्र के अलावा देश के अन्य भागों- मध्य भारत, उत्तर भारत और राजस्थान में भी ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने में सक्रिय सहयोग किया और सम्राट बहादुर शाह जफ़र को सैनिक व आर्थिक सहायता देकर आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर की मुख्य धारा से जोड़ने का काम किया। भारत सम्राट बहादुर शाह के आदेशानुसार मेवों ने अपने गांवों व कस्बों को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र घोषित करके वहां का प्रशासन अपने नियंत्रण में ले लिया। भारत के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन में मेवातियों की भूमिका एक प्रबल राजनीतिक शक्ति के रूप में प्रकट होती है जिसमें मेवाती किसान, मेवाती सैनिक और यहाँ के लंबरदार व चौधरियों ने अंग्रेजों से जमकर लड़ाई लड़ी और ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी।

सिद्दीक अहमद मेव[5] ने ''मेवात एक खोज'' पुस्तक में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में मेव समुदाय की सक्रिय भूमिका का विस्तार से उल्लेख किया है। मेवात के सोहना, तावडू पलवल, नूंह, पिनगवां, नगीना, दोहा, रायसीना, रूपड़ाका, घांसेड़ा आदि गांवों के मेवों ने अंग्रेजी फौज से खुलकर लड़ाई लड़ी थी। लेखक ने बताया है कि इस आंदोलन में मेव समुदाय के लोगों ने न केवल मेवात में बल्कि ब्रिटिश सेना में और देश के कई अन्य क्षेत्रों में भी अंग्रेजी सत्ता का सशस्त्र विरोध किया था इसलिए क्रांति की असफलता के बाद मेवातियों को कठोर सजाएं दी गईं। एक्ट 25, 1857-58 के अंतर्गत मेवों की ज़मीनें जब्त कर ली गई। ब्रिटिश शासन के समक्ष भावी चुनौतियों के दृष्टिगत मेवातियों को सेना व पुलिस में लेना बंद कर दिया, मेवात में विकासात्मक कार्यों से परहेज किया, शिक्षा व चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करने की बजाए पुलिस थानों व कोर्ट- कचहरियों की स्थापना करके लोगों को अनावश्यक मुकदमों में फंसाया गया। इस प्रकार द्वेषतापूर्ण नीतियों से मेवात के विकास का गला घोंटा गया।

उद्देश्यः प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के मेव समुदाय के आर्थिक विकास पर प्रभावों का अध्ययन करके उनकी विवेचना करना है। मुख्य उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य सहायक उद्देश्य भी हैं-

(1) देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में मेव समुदाय की भागीदारी एवं सक्रियता को जानना।

(2) भारत के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की असफलता के मेव कौम की सामाजिक व आर्थिक विकास एवं व्यावसायिक प्रगति पर पड़ने वाले दूरगामी व स्थायी प्रभावों की विवेचना करना।

अध्ययन पद्धतिः प्रस्तुत अध्ययन की पद्धति विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है जो कि द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसके लिए प्रकाशित विभिन्न पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों व आलेखों का अध्ययन किया है।

मुख्य अध्ययन एवं विवेचनाः किसी क्षेत्र एवं वहां रहने वाली कौम का आर्थिक विकास काफी हद तक उस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, भौगोलिक कारकों, जलवायु आदि के साथ-साथ ऐतिहासिक घटनाओं पर निर्भर करता है। मेव समुदाय के आर्थिक विकास और उसे प्रभावित करने वाले कारकों को ठीक से समझने के लिए इस समुदाय से संबंधित ऐतिहासिक महत्व के घटनाक्रमों का अध्ययन आवश्यक है। मुस्लिम शासनकाल के बाद दो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं ने मेव कौम एवं मेवात क्षेत्र के आर्थिक विकास को न केवल प्रभावित किया है अपितु अन्य कारकों के साथ मिलकर काफी हद तक नियंत्रित भी किया है। इन ऐतिहासिक घटनाओं में से पहली महत्तवपूर्ण उल्लेखनीय घटना है- भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता और दूसरी भारत की आजादी के समय देश का विभाजन, जिसने मेवात क्षेत्र और मेव कौम दोनों को स्थायी रूप से प्रभावित किया है।

1857 का स्वतंत्रता संग्राम और मेव समुदाय : 10 मई, 1857 को मेरठ छावनी से अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की शुरुआत हुई। 11 मई, 1857 को क्रांतिकारियों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और बहादुर शाह जफर को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। इसी के साथ भारत में प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के लिए क्रांति की ज्वाला फूट पड़ी। मेवात में भी क्रांति की शुरुआत हो गई। 13 मई, 1857 को मेरठ व दिल्ली के क्रांतिकारी सैनिकों ने गुड़गाँव पर धावा बोल दिया। इस अभियान में बड़ी संख्या में स्थानीय मेव लोग भी सम्मिलित थे, परन्तु मेवात में आंदोलन का नेतृत्व करने वाला प्रमुख उल्लेखनीय नाम सदरूद्दीन का है। सदरूद्दीन पिनगवां के एक किसान थे और वे बहुत समझदार, बहादुर, प्रबल देशभक्त तथा नेतृत्व के गुणों से संपन्न थे।[6]

मेवों ने सदरुद्दीन के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन की घोषणा कर दी। क्रांतिकारियों ने तावडूसोहना, फिरोजपुर झिरका, पुन्हाना व पिनगवां कस्बों को जीत लिया तथा इनको लूटकर आग लगा दी। नूँह में क्रांतिकारियों ने अपने नेता सदरूद्दीन के नेतृत्व में अंग्रेज समर्थक खानजादों तथा स्थानीय पुलिस से कड़ा मुकाबला किया। इस लड़ाई में खासतौर से नूँह, अडबर तथा शाहपुर नंगली के मेवों ने भाग लिया था। खानजादों तथा अंग्रेजों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। लड़ाई में अंग्रेज अफसर मैक्सन मारा गया। नूँह पर स्वतंत्रता सेनानियों का अधिकार हो गया। उसके बाद होडल व हथीन पर आक्रमण किया। होडल के रावत जाट और हथीन के राजपूत, अंग्रेजों की सहायता कर रहे थे। इन अंग्रेज समर्थकों पर होडल के सहरावत जाटों, सैवली के पठानों तथा मेवों ने संयुक्त आक्रमण किया। यह लड़ाई कई महीनों तक चलती रही क्योंकि अंग्रेजों ने अपने समर्थकों की सहायता के लिए सेना भेज दी थी। अंततः इनको पराजित करके क्रांतिकारियों ने कस्बों का सफाया कर दिया। पुराने दस्तावेजों तथा रिपोर्टस से पता चलता है कि नूँह व सोहना, मेव स्वतंत्रता सेनानियों की गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र थे। प्रसिद्ध शायर मिर्जा गालिब ने अपनी पुस्तक 'दस्तबूं' में लिखा है-''उधर सोहना व नूँह के इलाकों में मेवातियों ने विद्रोह कर रखा था, जैसे दीवाने जंजीरों से आजाद हो गये हों।''[7]

दिल्ली में क्रांतिकारियों पर काबू पाने के उद्देश्य से जून, 1857 में जयपुर रियासत के पोलिटिकल एजेंट मेजर डब्ल्यु. एफ.ईडन जयपुर से बड़े फौजी दस्ते के साथ रवाना हुआ। मेवातियों पर काबू किये बिना वे अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकते थे क्योंकि मेवात में हालात अंग्रेजों के नियंत्रण से बाहर थे। इसलिए मेजर ईडन ने मेवात के खराब हालात को ठीक करने के लिए भारी तोपें तथा 6000 से अधिक सैनिकों कोअपने साथ लेकर मेवात पर हमला कर दिया। मेजर ईडन को तावडू व सोहना के बीच मेवों का जोरदार विरोध झेलना पड़ा। कड़े मुकाबले में हथियारों के बल पर वह जीत तो गया परंतु उसे यह अहसास जरूर हो गया कि मेव क्रांतिकारियों पर नियंत्रण कर पाना आसान काम नहीं है। ब्रिटिश सेना ने सोहना व तावडू के बीच के कई गाँवों को बर्बाद कर दिया। मेजर ईडन की मेवात में उपस्थिति तथा यहाँ उसके द्वारा लगातार किये जा रहे आक्रमणों के बावजूद 25 जून, 1857 को 400 मेव क्रांतिकारी दिल्ली में स्वतंत्रता सेनानियों को सैनिक सहयोग देने के लिए सम्राट बहादुर शाह की सेवा में पहुँचे।[8]

20 सितम्बर, 1857 को अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया, तत्पश्चात बहादुर शाह जफर को भी कैद कर लिया। इसके बाद भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन की मशाल बुझ गई परंतु मेवात में स्वतंत्रता सेनानी पहले से भी अधिक जोशो-खरोश से मुकाबला कर रहे थे। मेव बहादुरी से लड़ते रहे, उनके साहस में कोई कमी नहीं आई।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रायसीना के मेव अंग्रेजों के खिलाफ मैदान-ए-जंग में मजबूती से खड़े थे परंतु भौंडसी के राजपूतों व सोहना के कायस्थों ने स्वतंत्रता सेनानियों के विरूद्ध अंग्रेजों का साथ दिया। इन अंग्रेज समर्थकों ने

अफसरों को सूचना दी कि मेव रायसीना पर आक्रमण कर सकते हैं। सूचना के आधार पर दिल्ली के सहायक कलेक्टर क्लेफोर्ड ने रायसीना की ओर कूच किया। क्योंकि क्लेफोर्ड की बहन को मेवों ने निर्वस्त्र करके तोपगाड़ी के पहिये से बांधकर, चाँदनी चौक पर घसीटा था और शहजादे की उपस्थिति में उसे मार डाला था, इसलिए वह बदले की आग में पगलाया हुआ था। उसने अपने प्रतिशोध की खातिर तथा बदले की आग को पूरा करने के लिए गुड़गाँव से सोहना तक रास्ते में आने वाले गाँवों को आग लगवाकर नष्ट कर दिया। विलियम क्लेफोर्ड के शब्दों में ''मैनें हर उस व्यक्ति को मौत के घाट उतार दिया जो रास्ते में मेरे सामने आया, यहाँ तक कि बूढ़े, बच्चे व औरतों को भी।''[9]

रायसीना में फिरोज खाँ मेवाती के नेतृत्व में मेवों ने जबरदस्त मुकाबला किया। इस लड़ाई का परिणाम बड़ा ही आश्चर्यजनक रहा। लड़ाई में विलियम क्लेफोर्ड, उसके दो अफसर तथा 60 सैनिक मारे गये। कुछ अंग्रेजों को मेवों ने पकड़ कर उनकों बैलों की तरह 'गहाटे' में जोड़ दिया और नंगे पैरों से ''काँटेदार बाड़ की गहाई'' करवाई। लड़ाई में मारे गये अंग्रेजों की खोपड़ियों को गाँव की थड़ी (चौपाल) की सीढ़ियों के नीचे दबा दिया। इस खबर के बाद कैप्टन डब्ल्यू फोर्ड ने, आस-पास के अंग्रेज समर्थकों तथा एक बड़े फौजी दस्ते को साथ लेकर रायसीना गाँव पर हमला किया। लड़ाई में काफी मेव शहीद हुए। गाँव पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। फौज ने रायसीना गाँव तथा आस-पास के गाँवों को आग लगाकर नष्ट कर दिया।[10]

अंग्रेजी शासन की पुर्नस्थापना के बाद इन सभी विद्रोही गाँवों को कठोर सजाएं दी गईं। रायसीना और उसके आस-पास के गाँवों-नून्हैड़ा, बाईकी, सांपकी नंगली, हरियाहेड़ा, हिरमथला, मुहम्मदपुर आदि की जमीनें बजरिया एक्ट-25, 1857-58 के जब्त करके भौंडसी के राजपूतों व सोहना के कायस्थों को दे दी गईं। अनेक क्रांतिकारियों को गिफ्रतार करके फाँसी की सजा दी गई।[11]

ब्रिगेडियर जनरल शॉवर्स के आदेश पर धारूहेड़ा व तावडू के बीच के सभी गाँवों को आग लगाकर नष्ट कर दिया और लोगों को बड़ी निर्दयता के साथ गोलियों से भून डाला। आमने-सामने बहादुरी से लड़ते हुए मेवों ने तावडू के निकट अंग्रेजी फौज का मुकाबला किया। लड़ाई में कई अंग्रेज मारे गये। जनरल शॉवर्स ने मेवात के अनुभव के सम्बन्ध में लिखा था कि- ''जब से मैंने गुड़गाँव जिले में प्रवेश किया, मैं दुश्मनों के देश में था, मैनें जहाँ भी ठहराव किया और अपनी प्रत्येक यात्रा के दौरान मुझे घुड़सवार दुश्मनों के आक्रमण का खतरा रहता। मुझे हर उस गाँव-देहात में आक्रमण का सामना करना पड़ा जहाँ से मैं गुजरा। हमें दुश्मनों से लगातार चौकन्ना रहना पड़ता था। यह बात समझी जा सकती है कि जब्त किये गये माल की सुरक्षा दूसरे दर्जे पर थी क्योंकि पहले दर्जे पर अपने जीवन की सुरक्षा थी।''[12]

ब्रिटिश शासन की पुर्नस्थापना के बाद खैरूल्लाह नाम के खानजादे की शिकायत एवं गवाही पर अंग्रेजों ने शाहपुर नंगली, अड़बर और नूँह के 52 आदमियों को फाँसी दी। यहाँ के गाँवों पर 3500 रूपये का जुर्माना तथा नूँह, नल्हड़, डून्डाहैड़ा आदि गाँवों की जमीनें (बजरिया एक्ट-25, 1857-58) जब्त कर लीं।[13]

नवम्बर के तीसरे सप्ताह में कैप्टन डरमण्ड के नेतृत्व में अंग्रेजी फौज ने रूपड़ाका पर हमला कर दिया। लगभग 3500 से अधिक मेव हथियारों सहित मुकाबले के लिए उठ खड़े हुए। जबरदस्त लड़ाई हुई जिसमें 400 मेव शहीद हुए। हथीन कैम्प से अंग्रेज अफसर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि ''मुझे आशा है जो उद्देश्य हमले का था वह प्राप्त कर लिया है। मेवों के गाँवों व उनकी सम्पत्ति को भी तबाह कर दिया है। हमारे कुछ दोस्त जाट गाँव हैं, जिन्होंने हमें दुश्मन के हमलों से बचाया। अब हम आजाद हैं और अपने सुरक्षित क्षेत्र में लौट आये हैं।''[14]

सदरूद्दीन तथा मेव स्वतंत्रता सेनानियों की महू में होने की सूचना पाकर 29 नवम्बर, 1857 को अंग्रेजी फौज ने महू पर आक्रमण कर दिया। मेवाती अपनी स्वतंत्रता की अंतिम लड़ाई लड़ने को तैयार थे। केप्टन रैमज़े ने गोरखा रेजीमेंट की कमान संभाली। मेव सुरक्षात्मक युद्ध नीति के साथ दोपहर तक लड़ते रहे परंतु दोपहर बाद अंग्रेजों ने तोपों से गोली-बारी करके महू को नष्ट कर दिया और गाँव पर अधिकार कर लिया। इस लड़ाई में 28 मेव शहीद हुए।[15]

मेवातियों के इस अंतिम विद्रोह को कुचलने के बाद फौज की वापसी से पहले अंग्रेज अफसरों ने मेवों को सबक सिखाने का निर्णय लिया। फौज ने उन सभी गाँवों को आग के हवाले कर दिया जिन्होंने मुश्किल परिस्थितियों में उनका साथ नहीं दिया या फिर उनके विरुद्ध विद्रोह किया था। शाहपुर, बाईखेड़ा, खेड़ला, चित्तौड़ा, नहारिका, गूजर नंगला, खेड़ी, बहरीपुर आदि गाँवों को फौज ने जला दिया। लौटते समय पिनगवां के आस-पास के गाँवों को भी बर्वाद कर दिया क्योंकि इन गाँवों ने स्वतंत्रता सेनानी सदरूद्दीन की

सहायता की थी तथा ब्रिटिश सरकार को मालगुजारी देने से इंकार कर दिया था। खेड़ी, देवला, शिकरावा, घागस, जलालपुर, झाड़सा, खेड़ी परगना नूँह आदि गाँवों की जमीनें, लम्बरदारी, चौधराहटें (बजरिया एक्ट-25, 1857-58) जब्त कर लीं।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रियासत अलवर व भरतपुर के मेवों ने ब्रिटिश शासन का विरोध किया और स्वतंत्रता सेनानियों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की थी। भरतपुर के मुसलमान तथा पूरबिया सैनिकों ने युद्ध में भाग लिया। 5 जुलाई, 1857 को भरतपुर का पोलिटिक्ल एजेंट कैप्टन रॉबर्ट मौरिसन अपनी जान बचाकर आगरा भाग गया। अलवर महाराज बन्ने सिंह ने मेव क्रांतिकारियों पर नियंत्रण स्थापित करने और अंग्रेज सरकार की सहायता करने के लिए नौगावां में कैम्प लगाया हुआ था।[16] महाराज अलवर को दिल्ली से भेजी गई डाक मेवों ने लूट ली थी तथा अंग्रेज सरकार व अलवर रियासत के बीच के सम्पर्क को खत्म कर दिया। अगस्त के प्रथम सप्ताह में अलवर महाराज ने 1200 सैनिकों की एक टुकड़ी अंग्रेजों की सहायता के लिए मथुरा व आगरा को रवाना की। दोहा के मेवों ने हमला करके उसे तबाह कर दिया और पकड़े गये अंग्रेजों को काँटों की बाड़ पर चलाया। शांति स्थापित हो जाने पर दोहा गाँव के मेवों की जमीने जब्त कर ली गई जो उन्हें अभी तक नहीं मिल सकी हैं।[17]

1857 के स्वतंत्रता संग्राम का मेवों ने मेवात के अलावा देश के अन्य भागों- मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि क्षेत्रों में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया और बहादुरी से लड़े थे। मालवा में 1 जुलाई, 1857 को सआदत खाँ मेवाती ने क्रांति का नेतृत्व किया। 20 अगस्त, 1857 को मन्दसौर में चाँद खाँ, समद खाँ, रिसालदार काले खाँ, मदार खाँ आदि मेवों ने शहजादा खुर्रम खाँ की ताजपोशी करके शहर में घोड़े पर बैठाकर सवारी निकाली। रतलाम में लाल खाँ मेवाती ने क्रांति की मशाल जलाई। उत्तर प्रदेश में भी मेवों ने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और ब्रिटिश शासन के विरूद्ध लड़ाईयाँ लड़ी थी। इलाहाबाद के मेवों ने पंचायत करके क्रांति में भाग लेने का निर्णय किया। अलीगढ़, पीलीभीत, मेरठ, मथुरा आदि क्षेत्रों में मेवों ने देश के लिए आजादी की जंग में अंग्रेजों से मुकाबले किये। क्रांति की असफलता के बाद ब्रिटिश सरकार ने इलाहाबाद के मेवों पर दण्डात्मक कार्यवाही करते हुए शहर के आस-पास के मेवों के 12 गाँवों को बर्बाद कर दिया और बहुत से लोगों को तोपों से उड़ा दिया।[18]

1857 के स्वतंत्रता आंदोलन के असफल हो जाने पर भारत में ब्रिटिश शासन पुनः स्थापित हो गया। ब्रिटिश सत्ता का विरोध करने के कारण मेवात में दमनात्मक कार्यवाही तथा दण्डात्मक नीति अपनाई गई। सत्ता का विरोध करने व राजद्रोह के आरोपों में दिसम्बर 1857 से अप्रैल 1858 के बीच सैकड़ों मेवों को फाँसी दी गई, सैकड़ों को लम्बी-लम्बी कैद की सजाएँ दी गईं। मेव लम्बरदारों व चौधरियों की लम्बरदारी व चौधराहटें जब्त कर ली गईं। किसानों की जमीने जब्त करके अंग्रेज समर्थकों को दे दी गई। मेव शक्ति को हमेशा के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से मेवात को कई भागों में बांट दिया ताकि वे फिर कभी चुनौती न बन सकें।[19]

मेवों की वीरता तथा उनके द्वारा अंग्रेज सरकार के समक्ष उत्पन्न की गई चुनौतियों के कारण उस समय के गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने कहा था-''मेव कौम ने मुसलमान बादशाहों को भी तंग किया था, और हमें तो बहुत ही अधिक परेशान किया।''[20] 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में मेव समुदाय की भूमिका सैनिक शक्ति के साथ-साथ एक राजनैतिक शक्ति के रूप में प्रकट होती है। यह राजनीतिक शक्ति का यह स्वरूप मेवाती किसानों, मेवाती सैनिकों तथा मेवाती लम्बरदार व चौधरियों के ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ लामबंदी के रूप में स्पष्ट परिलक्षित होता है। मेवों ने सम्राट बहादुर शाह जफर को दिल्ली में सैनिक व आर्थिक सहायता दी, इसके पर्याप्त दस्तावेज हैं। दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्र के अलावा मध्यभारत में मन्दसौर, नीमच, व ग्वालियर तथा राजस्थान में अलवर व भरतपुर रियासतों में मेवों की क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी उन्हें राजनैतिक शक्ति के रूप में स्थापित करती है।[21]

1857 के स्वतंत्रता संग्राम का मेव समुदाय के आर्थिक विकास पर प्रभाव : प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता तथा ब्रिटिश शासन की पुर्नस्थापना के बाद अंग्रेजों ने मेव समुदाय के प्रति दमनकारी दंडात्मक नीति अपनाई। क्योंकि मेवों ने आंदोलन के दौरान उन्हें कठिन चुनौती दी थी और ब्रिटिश सरकार के बहुत से अंग्रेज सैनिकों व अधिकारियों को मार दिया था, उनको माल गुजारी देने से इंकार कर दिया और सम्राट बहादुर शाह को सैनिक व आर्थिक सहायता दी। इन सभी कारणों से ब्रिटिश शासन ने मेवात के विरूद्ध सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक तीनों ही स्तरों पर प्रहार किये। मेव समुदाय पर आंदोलन की

असफलता के मुख्य रुप से निम्नलिखित आर्थिक प्रभाव पड़े-

1. मेवों को आर्थिक विकास से दूर रखने की नीति के अंतर्गत अंग्रेजों ने मेवात क्षेत्र में न तो उद्योगों की स्थापना की और न ही औद्योगीकरण को प्रेरित करने व बढ़ावा देने के लिए आवश्यक आधारभूत ढांचे का विकास किया। मेवात में किसी भी प्रकार के उद्योगों अथवा कारखानों की स्थापना न होने से मेव लोग बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप रोज़गार के नये अवसरों से वंचित रह गये।

   जानबूझकर उद्योगों की स्थापना न करने अथवा औद्योगीकरण के अनुकूल सुविधाओं का विकास न करने के कारण मेवात क्षेत्र में व्यापारिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को किसी प्रकार का प्रशासकीय प्रोत्साहन अथवा बढ़ावा नहीं मिला जिसके परिणामस्वरूप शहरीकरण भी नहीं हुआ। इन सबके प्रभाव से मेवात में श्रम का कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में रूपांतरण न हो सका और सम्पूर्ण श्रम कृषि एवं सहायक गतिविधि के रूप में पशुपालन कार्य में ही संलग्न रहा जिसके कारण नव प्रवर्तन और तकनीकी प्रगति से नव सृजित रोज़गार के अवसरों के लाभों से वंचित रह गया। लोगों की आमदनी के स्तर व रोजगार में सुधार न होने के कारण यह क्षेत्र और यहाँ के निवासी आर्थिक विकास में पिछड़ गये।

2. अंग्रेज सरकार ने मेवात क्षेत्र को रेलवे सुविधाओं से जानबूझकर वंचित रखा। उस दौर में देश के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापारिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों का विकास करने तथा प्रोत्साहित करने के लिए यातायात, परिवहन एवं संचार के आधारभूत ढांचे के रूप में रेलवे सुविधाओं का विस्तार बहुत तीव्र गति से किया जा रहा था। जिन क्षेत्रों में रेलवे का विकास हुआ वहाँ पर औद्योगीकरण हुआ और साथ ही व्यापार व व्यवसाय के अनुकूल ढांचागत सुविधाओं के विकास के फलस्वरूप लोगों को रोज़गार मिला और उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ। परंतु मेव लोगों के निवास क्षेत्र- मेवात में ब्रिटिश सरकार द्वारा रेलवे की सुविधा का विकास नहीं किया गया, बावजूद इसके कि मेवात क्षेत्र देश की राजधानी दिल्ली का सीमावर्ती भू-भाग है। यातायात व परिवहन सुविधाओं के पर्याप्त विकास न होने के कारण बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप श्रम की गतिशीलता संभव न हो सकी परिणामस्वरूप लोगों को बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों का लाभ न मिल सका।

3. बहुत से मेवों की जमीनें एक्ट-25, 1857-58 के अंतर्गत जब्त कर ली गईं जिन्हें ब्रिटिश समर्थक अन्य जातियों के लोगों को दे दिया। जमीन जब्ती का स्पष्ट अभिप्राय है कि किसान जो पहले भूमि का स्वामी था, बाद में कृषि मजदूर बन गया। इससे मेवों की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

4. ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने, उसमें सम्मिलित होने अथवा उसको समर्थन देने के कारण मेव लम्बरदारों व चौधरियों की लम्बदारी व चौधराहटें जब्त कर लीं या खत्म कर दी गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि मेवों की प्रशासन में भागीदारी घट गई क्योंकि उस समय में ये प्रशासनिक पद थे। शासन में भागीदारी घट जाने से काफी हद तक मेव समुदाय की प्रगतिशीलता का मार्ग अवरुद्ध हुआ फलस्वरूप मेवात में आर्थिक विकास को भी अपूर्णीय क्षति हुई।[22]

5. प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर अंग्रेजों ने मेवात में विकास कार्य नहीं करवाए। मेव किसानों को कृषि सुविधाओं से वंचित रखा और सिंचाई, रोज़गार आदि की व्यवस्थाओं के प्रति उपेक्षा भाव दिखाया। शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा जैसी मूलभूत सेवाओं से मेवात को जान बूझकर दूर रखा।[23]

6. आंदोलन में मेव सैनिकों ने खुलकर अंग्रेजों से लड़ाईयाँ लड़ी थीं इसलिए योजनाबद्ध अघोषित नीति के अंतर्गत सेना व पुलिस की सेवा में मेवों पर रोक लगा दी गई। इस हतोत्साहित करने वाली नीति के कारण मेव समुदाय के लोगों के सरकारी नौकरियों में रोज़गार पाने के अवसर खत्म हो गये हो गये और इसके कारण प्रशासन में उनकी भागीदारी घट गई साथ ही प्रगतिशील विचारों के द्वार भी बंद हो गये।[24]

7. मेवों को शिक्षा से वंचित रखने की नीति के अंतर्गत मेवों को केन्द्र में रखकर, मेवात में कोई शैक्षणिक संस्थान नहीं खोले गये और अंग्रेजों के शत्रुतापूर्ण प्रशासनिक व्यवहार ने आधुनिक शिक्षा को जान-बूझकर मेव समुदाय की पहुँच से दूर कर दिया गया।

8. मेवों को अपराधी कौम बता दिया गया जिससे उनकी भावी पीढ़ियों के मनोबल को तोड़ा जा सके। मेवातियों के मनोबल व प्रतिरोध की संगठित शक्ति को तोड़कर

मेवात को अलग-अलग प्रांतों के अधीन कर दिया।

निष्कर्षः उपर्युक्त विवरण की विवेचना के उपरांत हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि भारत के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की असफलता के मेव क़ौम के आर्थिक विकास पर दूरगामी व स्थायी प्रभाव पड़े हैं। देश की राजधानी दिल्ली का निकटवर्ती-मेवात क्षेत्र और यहाँ के लोग क्रांतिकारियों की गतिविधियों से न केवल अवगत थे अपितु उनमें सक्रिय रूप से सम्मिलित रहे थे इसलिए आंदोलन को कुचलने के बाद ब्रिटिशर्स ने उनके विरुद्ध उठने वाली चुनौतियों को स्थायी रूप से समाप्त करने के उद्देश्य से इस आंदोलन से जुड़े समुदाय व जातियों की भावी पीढ़ियों के मनोबल को समाप्त करना विशेष रूप से आवश्यक समझा। अंग्रेज़ सरकार की इस नीति के कारण जानबूझकर मेवात क्षेत्र को शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, रोज़गार, सिंचाई व कृषि विकास तथा अन्य आधारभूत सुविधाओं के विकास से न केवल दूर रखा अपितु मेवात और मेव समुदाय के विकास की संभावनाओं को ही कुचल देने वाली नीतियों को अपनाया। इन सबका परिणाम यह रहा कि भारत की राजधानी- दिल्ली के समीपवर्ती भू-भाग होने के बावजूद मेवात और यहाँ रहने वाला प्रमुख जातीय समूह 'मेव' शैक्षणिक, सामाजिक,राजनीतिक व आर्थिक विकास के क्षेत्र में हाशिए पर धकेल दिया गया; इसलिए आज भी आर्थिक प्रगति एवं विकास के लाभों से वंचित है। मेव लोगों की शासन-सत्ता में भागीदारी व प्रतिनिधित्व को नीतिगत तरीके से हमेशा के लिए समाप्त कर दिया गया परिणामस्वरूप विकास को गति प्रदान करने वाली 'मेव और मेवात' केन्द्रित नीतियों के निर्माण को सुनिश्चित करने वाले दबाव समूह अभी तक नहीं बन सके हैं। अतः कहा जा सकता है कि भारत के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की असफलता ने मेव क़ौम के आर्थिक विकास को व्यापक अर्थों में नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

संदर्भ

1. Yadav, K.C., 'Haryana: Itihas Evam Sanskriti', Manohar Publisher, Delhi, Vol.-2, 1982
2. शकूर, मौलाना अब्दुल, 'तारीख़ मेव क्षत्रिय', (अनुवादः हकीम अजमल ख़ाँ, 1974), दारुल किताब, पटौदी हाऊस, दरियागंज दिल्ली, 1994
3. Mayaram, Shail, 'Resisting Regimes: Myth, Memory and the Shaping of a Muslim Identity', Oxford University Press, New Delhi, 1997
4. बालौत, मुंशी ख़ाँ एवं पी. एस.सहारिया (सं.) 'मेवात का इतिहास और संस्कृति', मेवाती साहित्य अकादमी संस्थान, अलवर, 2015
5. मेव, सिद्दीक अहमद, 'मेवात एक खोज', दोहा तालीम समिति, दोहा, गुड़गाँवा, द्वितीय संस्करण, 2019
6. Yadav, K.C., op. cit., p. 128
7. शकूर, मौलाना अब्दुल, पूर्वोक्त, पृ. 461
8. Mayaram, Shail, 'Against History Against State-Counter Perspectives from the Margins', Permanent Black, Oxford Apartment, New Delhi, 2004, p. 195
9. मेव, सिद्दीक अहमद, पूर्वोक्त, पृ.366
10. बालौत, मुंशी ख़ाँ एवं पी. एस.सहारिया (सं.), पूर्वोक्त, पृ. 81-82
11. मेव, सिद्दीक अहमद, पूर्वोक्त, पृ.366
12. मेव, सिद्दीक अहमद, पूर्वोक्त, पृ.358
13. शकूर, मौलाना अब्दुल, पूर्वोक्त, पृ.558-59.
14. मेव, सिद्दीक अहमद, पूर्वोक्त, पृ.372
15. Ahmed, Aijaz. 'Mewat: A Retospective', Sahitya Sansthan Gaziabad, U.P., 2013, pp. 166
16. मखदूम, शेख़ मौहम्मद 'अरजंग तिजारा', 1878, (अनुवादः अनिल जोशी), आर.आर. प्रकाशन, सिविल लाइन, अलवर, 1989, पृ. 37
17. मेव, सिद्दीक अहमद, पूर्वोक्त, पृ.354.
18. Yadav, K.C., 'The Revolt of 1857 in Haryana', Manohar, Delhi, 1977, pp. 57-58
19. शकूर, मौलाना अब्दुल, पूर्वोक्त, पृ. 540
20. शकूर, मौलाना अब्दुल, पूर्वोक्त, पृ. 455
21. Mayaram, Shail, op. cit., pp. 189-90
22. मेव, सिद्दीक अहमद, पूर्वोक्त, पृ. 383
23. बालौत, मुंशी ख़ाँ एवं पी. एस. सहारिया,पूर्वोक्त, पृ. 94
24. खान, वाहिद, 'मेवात क्षेत्र का आर्थिक विकास-एक विश्लेषण', पीएच.डी. शोध प्रबंध, अर्थशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2008, पृ. 55

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

विभाजनकारी भारतीय राजनीति में ब्रिटिश कालीन जनगणना 1871-2011

❑ डॉ. प्रदीप कुमार

सूचक शब्दः जनगणना, डाटा, वर्गीकरण, विश्लेषण।

एक निश्चित समयांतराल में जनसंख्या की अधिकारिक गणना ''जनगणना'' कहलाती है। यह किसी भी देश के विविध सामाजिक, धार्मिक, पक्षों से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करने को सबसे महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रक्रिया है। इसके माध्यम से एकत्रित सूचनाओं का वर्गीकरण, विश्लेषण एवं प्रस्तुतिकरण किया जाता है। इससे प्राप्त होने वाली सूचनाओं (डाटा) का उपयोग सरकारी व गैर-सरकारी, प्रशासनिक नीति निर्धारण में, शोध-प्रबन्धों को पूरा करने में तथा आर्थिक-सामाजिक विकास सम्बन्धी विभिन्न योजनाएँ बनाने में किया जाता है। साथ ही सभी विद्वान शोधार्थी, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, विज्ञानशास्त्री एवं सांख्यिकी अध्ययनकर्ता इसे महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक अध्ययनों में जनसंख्या को एक आधार के रूप में देखा जाता है। मानव पृथ्वी के संसाधनों का उत्पादन एवं उपयोग करता है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि एक देश में कितने लोग निवास करते हैं, वे कहाँ एवं कैसे रहते हैं, उनकी जनसंख्या में वृद्धि क्यों हो रही है तथा उनकी कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं। भारत में सबसे पहले 1872 में जनगणना करायी गई। प्रारम्भ में पंचवर्षीय जनगणनाएँ की जाती थीं, परन्तु 1881 में पहली बार एक सम्पूर्ण जनगणना करायी गई थी, उसी समय से प्रत्येक दस वर्ष के अन्तराल पर जनगणना की प्रक्रिया निरन्तर प्रारम्भ हो गई। ब्रिटिश कालीन जनगणना देश विभाजन (1947) तथा भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन (1956) एवं अनुसूचित जाति, जनजाति (1935) का आधार बनी थी। बाद में इसी आधार पर 1989-90 में मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू की गई थीं। आधुनिक भारत में इसका प्रारंभ अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए किया। ब्रिटिश अधिकारियों ने इसका उपयोग उभरते भारतीय राष्ट्रवाद को दबाने एवं समाज में स्थापित भिन्नताओं को उभारकर सामाजिक विभाजन करने में किया। नई-नई सामाजिक पहचान बनाकर आपसी संघर्ष खड़ा कर एक दूसरे में विद्वेष की भावना का बीज बो-कर 'फूट डालो राज करो' की नीति को लागू किया। इतना ही नहीं साम्प्रदायिक आधार पर सामाजिक विभाजन कर देश का ही विभाजन करवा डाला। यह सब उन्होंने भारत पर लम्बे समय तक साम्राज्यीय नियंत्रण स्थापित करने के लिए किया। जनगणना भारत के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मुद्दों के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्रोत है।

प्रारंभ से ही किसी देश या भूखंड के निवासियों के बारे में जानकारी राज्य प्रशासन के लिए आवश्यक मानी जाती रही है। प्राचीन भारतीय चिंतक 'कौटिल्य' और रोमन इतिहासकार प्लूटामी ने अपने-अपने ग्रन्थों में इस सन्दर्भ में विस्तार से उल्लेख किया है। भारत विश्व के कुछ गिने-चुने देशों में हैं, जहाँ जनगणना का लम्बा इतिहास रहा है। सम्राट अशोक से लेकर हर्षवर्धन के समय तक किसी न किसी रूप में जनगणना की प्रक्रिया चलती रही, लेकिन विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमणों से जब यह विशाल साम्राज्य बिखर गया, तब जनगणना की परम्परा विलुप्त हो गयी। मुगलकालीन आईन-ए-अकबरी में जनगणना संबंधी रिकार्ड रखने का प्रावधान मिलता है।[1] आधुनिक जनगणना अट्ठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में प्रारम्भ हुई जिसका उद्देश्य औद्योगिक क्रान्ति से उपजी सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु दूरगामी राष्ट्रीय नीतियाँ निर्धारित करना एवं ग्रामीण इलाकों से आकर शहरों में बस रही आबादी को स्वास्थ्य, शिक्षा एवं रोजगार उपलब्ध कराने की परियोजनाएं बनाना था। औपनिवेशिक काल के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में सर्वप्रथम जनगणना 1871-72 में कराई गई थी। अंग्रेज शासकों ने भारत में जनगणना का उपयोग सामाजिक विकास की परियोजनाओं हेतु कम किया, परन्तु भारतीय राजनीति पर अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए अधिक किया। इस जनगणना का एक उद्देश्य यह भी था, कि अंग्रेज यह जानना चाहते थे कि किस तरह की जनता पर शासन कर रहे हैं। अंग्रेजों को जनगणना की पद्वति और तौर-तरीकों का अनुभव प्राप्त हो चुका था, अतः उन्होंने भारत के बारे में सूक्ष्मतम जानकारी प्राप्त करना प्रारंभ किया।।

जनगणना का उद्देश्य : जनगणना किसी भी देश की जनसंख्या के विविध पक्षों सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र करने, वर्गीकरण-विश्लेषण करके उसके प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया है। देश का सम्पूर्ण जनसांख्यिकीय स्वरूप प्रस्तुत करने का इससे बड़ा और कोई माध्यम नहीं है। सभी विद्वान, शोधार्थी अर्थशास्त्री समाजशास्त्री, विज्ञान शास्त्री एवं सांख्यिकी अध्ययनकर्त्ता इसे महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं। यह भारत की 19वीं एवं बीसवीं शताब्दी के सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मुद्दों के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्रोत है।[2] 1947 में साम्प्रदायिक आधार पर

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य) देहली विश्वविद्यालय, (देहली)

देश विभाजन का मुख्य आधार जनगणना ही थी। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन (1956) एवं अनुसूचित जाति-जनजातियों को पहचानने (1935) का कार्य जनगणना ने ही किया था। बाद में मंडल आयोग (1990) की आरक्षण से सम्बन्धित सिफारिशें लागू करने का आधार बनी थी। जाति आधारित जनगणना करा कर उन्होंने समाज में आपसी विद्वेष की भावना का बीज बोकर जातीय ऊँच-नीच का क्रम (सामाजिक उच्चता का सिद्धान्त) तय किया।[3] आधुनिक भारत में इसका प्रारंभ अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए किया। जनगणना से प्राप्त सूचनाओं का उपयोग जहाँ एक ओर उन्होंने प्रशासनिक नीति निर्धारण में किया[4] वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान उभरते भारतीय राष्ट्रवाद को दबाने एवं समाज में स्थापित भिन्नताओं को उभारकर सामाजिक विभाजन करने में किया। उन्होंने नई-नई सामाजिक श्रेणी बनायीं, उन्हें साम्राज्यी दृष्टिकोण से परिभाषित और जनगणना रिपोर्ट के माध्यम से प्रस्तुत किया। इससे नई-नई सामाजिक पहचान बनने लगी। इसके पीछे उनका मूल उद्देश्य 'फूट डालो राज करो' की नीति को लागू करना और साम्प्रदायिक आधार पर सामाजिक विभाजन करना था; जिससे वे लम्बे समय तक भारत पर नियन्त्रण स्थापित कर सके। ब्रिटिश प्रशासनिक नीति में विभाजनकारी राजनीति के तत्व विद्यमान थे, जिसे जनगणना के माध्यम से उन्होंने लागू किया।

भारत में जनगणना का इतिहास : प्राचीन काल से ही न केवल भारत अपितु विश्व के अनेक देशों में जनसंख्या की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाते रहे हैं। उपलब्ध स्रोतों से ज्ञात होता है कि रोमन साम्राज्य के बनने से पूर्व जनसंख्या की गणना से संबंधित अनेक सर्वेक्षण कराए गए थे। ईसा से 3000 वर्ष पूर्व प्राचीन बेबीलोनिया, चीन एवं इजिप्ट में इसी तरह के सर्वेक्षण किए गए थे। ईसा पूर्व प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी में रोम ने अपने मजिस्ट्रेटों को जनसंख्या रजिस्टर तैयार करने का आदेश दिया था, जिसका उद्देश्य कर संग्रह तथा सेना में भर्ती करने के लिए वयस्क व्यक्तियों की सूची तैयार करना था। ईसाइयों के प्राचीन धर्म ग्रंथ ओल्ड टेस्टामेंट में भी जनसंख्या के आंकड़ों का उल्लेख मिलता है। ईसा से 15 वर्ष पूर्व इजराइल में लड़ाकू व्यक्तियों की पहचान करने के लिए जनसंख्या की गणना की गई थी रोमन साम्राज्य के पतन तथा सामंतवादी व्यवस्था के उदय के पश्चात जनसंख्या की गणना की परंपरा धूमिल हो गई। 9 वी शताब्दी के प्रारंभ से पुनः इस प्रकार के सर्वेक्षण कराए जाने लगे। 12 वीं शताब्दी के अंत तथा तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में चंगेज खान ने अपने प्रभुत्व वाले क्षेत्रों की गणना कराई थी। इसका उद्देश्य कर लगाना था। चौथी शताब्दी में चीन में इस प्रकार की गणना की योजना बनाई गई थी। सन 1449 ईस्वी में जर्मनी के न्यूरेमबर्ग शहर के रहने वाले लोगों की गणना की गई थी जिसमें सभी आयु वर्ग के लोगों को सम्मिलित किया गया था। 15 वीं एवं 16 वीं शताब्दी में स्विजरलैंड के कुछ प्रांतों एवं कुछ नगर पालिकाओं में वहां के निवासियों की गणना का उल्लेख मिलता है। सन 1576 ईस्वी में स्पेन के प्रभुत्व वाले उत्तरी अमेरिका में किंग फिलिप्स द्वितीय ने जनगणना कराई थी, जिसकी रिपोर्ट आज भी टेक्सास विश्वविद्यालय में उपलब्ध है।

कुछ प्रमाण इस बात के भी मिलते हैं कि प्राचीन पेरूवियन ने सेना में भर्ती करने के उद्देश्य से मानवों की गणना के लिए रजिस्टर तैयार किया था जिसकी सूचना वे इंका को देते थे, कुछ समय पश्चात जब कोलंबस ने पेरू पर कब्जा किया था तब इंका के शासकों ने सांख्यिकी सूचनाएं प्राप्त करने के लिए एक संगठन का निर्माण किया था। वर्जिनियां जो उत्तरी अमेरिका की एक कॉलोनी थी इसमें सन 1624 से 1625 में प्रथम जनगणना कराई गई थी। द्वितीय जनगणना 1635 में कराई गई। भारत में सर्वप्रथम मोरलैंड ने ईसवी सन 1600 में जनसंख्या का आकलन प्रस्तुत किया था।[5] उपर्युक्त सर्वेक्षण मानवों की गणना से संबंधित प्रयास मात्र थे जिन्होंने आने वाले समय में जनगणना पद्धति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विश्व के कुछ प्रमुख देशों में जनगणना इस प्रकार हुई थीः- ब्रिटेन-1801, रशिया-1810, नार्वे-1815, ऑस्ट्रिया-1818, ग्रीस-1836, बेल्जियम-1846, फ्रांस-1836, इटली-1866 तथा रूस में 1897 में जनगणना कराई गई थी। अमेरिका में नियमित जनगणना 1790 को प्रारंभ हुई थी।

आधुनिक भारत में इस कार्य का विकास ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा राजस्व वसूली के लिए किए गए सर्वेक्षणों के परिणामस्वरुप हुआ। इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य राजस्व संग्रह करना, कर निर्धारित करना, सेना योग्य युवकों की सूची तैयार करना तथा नौकरी एवं व्यापार में लगी जनसंख्या का अनुमान लगाना था।[6] इसके अतिरिक्त

कंपनी के पुनर्गठन के पश्चात उसके निर्देशकों के लिए यह आवश्यक था कि वे अपने भारतीय उपनिवेश के निवासियों के संबंध में विस्तार से जांच पड़ताल कर लें। बात सन् 1885 की है, भारत से लौटे एक अंग्रेज प्रशासक ने लन्दन की एक सभा में गर्वोक्ति की, 'ब्रिटिश शासन ने भारत में पहली बार प्रत्येक आदमी को पहचाना है, प्रत्येक खेत को नापा है, प्रत्येक पेड़ पर निशान लगाया है, प्रत्येक पालतू जानवर को गिना है।' उसे यह गर्वोक्ति करने का अधिकार था। ब्रिटिश शासन ने ही पहली बार 1871 में दस वर्षीय देशव्यापी जनगणना की प्रक्रिया का श्रीगणेश किया था। किन्तु इसके लिए उन्होंने 1801 से लगभग 70 वर्ष तक अनेक छुटपुट स्थानीय प्रयोग किए। कुछ प्रान्तों में पहले उन्होंने तीन-तीन वर्ष में जनगणना की, फिर पांच-पांच वर्ष में। सन् 1856 में लन्दन में 'कोर्ट आफ डायरेक्टर्स' ने दस वर्षीय जनगणना का निर्णय लिया और 1861 में पहली देशव्यापी जनगणना करने का आदेश भेजा[7] किन्तु 1857 की जनक्रान्ति के कारण वह आदेश क्रियान्वित नहीं हो पाया।[8] क्रान्ति के तूफान के शान्त हो जाने पर यद्यपि 1864-65 में पुनः दस वर्षीय जनगणना की योजना को पुनर्जीवित किया गया, किन्तु वर्ष 1871 को दस वर्षीय जनगणना का प्रारम्भिक वर्ष घोषित किया गया, यद्यपि उस वर्ष एक साथ सब जगह जनगणना नहीं हुई थी, मध्य प्रान्त और बरार प्रान्त[9] में 1868 में, पंजाब प्रान्त[10] में 1868 में तथा अवध प्रान्त[11] में 1869 में जनगणना हुई थी[12] जबकि उत्तर-पश्चिमी प्रान्त अर्थात् पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 1865 में जनगणना हुई और बंगाल प्रान्त में 1872 में हो पायी।[13] पर अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग समय पर हुए-इन जनगणना प्रयासों को 1871 में पहली दस वर्षीय जनगणना का अंग मान लिया गया।[14] वस्तुतः एक साथ देशव्यापी जनगणना का सूत्रपात 1881 में 14 फरवरी को ही हुआ था।

जनगणना का स्वरूप : सुदूर पश्चिम से आए अंग्रेज शासकों के लिए भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश का शासन चलाने के लिए भारतीय यथार्थ को उसकी पूर्णता में जानना सरल नहीं था। इस यथार्थ को जानने के लिए एवं प्रशासनिक नियंत्रण तथा भारतीय जनता पर सामाजिक व आर्थिक अधिपत्य बनाए रखने के उद्देश्य से ही उन्होंने क्रमशः अपनी जनगणना नीति का विकास किया। जनगणना से प्राप्त जानकारी का उपयोग जहाँ उन्होंने अपनी प्रशासकीय नीति-निर्माण में किया, वहीं अपनी 'फूट डालो, राज करो' की साम्राज्यवादी नीति के क्रियान्वयन के लिए भी किया। उदाहरणार्थ उन्होंने धर्म और जाति के आधार पर वर्गीकरण को जनगणना का मुख्य आधार बनाया। हिन्दू शब्द को इस्लाम और ईसाई मजहबों के समकक्ष मजहब वाचक श्रेणी में रखा और फिर सिखों, जैनियों, आर्यसमाजियों, निम्न जातियों, गिरिजनों एवं वनवासी जनजातियों को क्रमशः हिन्दू श्रेणी से अलग करके 'हिन्दू समाज' की सीमाओं को उत्तरोत्तर संकुचित किया। जनगणना के आंकड़ों का उपयोग विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक ऊंच-नीच व आर्थिक प्रतिस्पर्धा व कटुता उत्पन्न करने के लिए किया। 1901 की जनगणना में पहली बार 'सामाजिक उच्चता' का सिद्धान्त अपनाकर विभिन्न जातियों के बीच ऊंच-नीच की स्पर्धा आरम्भ की। इसी स्पर्धा ने अनेक जाति महासभाओं को जन्म दिया। प्रत्येक महासभा अपनी जाति की उच्चता का दावा करने लगी। किन्तु जब 1935 के संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण का सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ। विधान मंडलों और नौकरियों में इन वर्गों के लिए आरक्षण की सुविधा देने के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की प्रान्तानुसार सूचियां तैयार की गयीं। इन सूचियों को खुला छोड़ा गया ताकि उन्हें आवश्यकतानुसार घटाया, बढ़ाया जा सके। अब आरक्षण की सुविधा पाने के लोभ में ऊंचे वर्ण से निचले वर्ण में गिने जाने की होड़ शुरू हो गयी। ऐसी अनेक जातियों के नाम गिनाए जा सकते हैं जो किसी प्रान्त या राज्य में वैश्य या क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत गिने जाते हैं तो किसी दूसरे प्रान्त में अनुसूचित जातियों की सूची में सम्मिलित हो गए हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान जाति संस्था को लेकर ब्रिटिश कूटनीति और भारतीय राष्ट्रवाद के बीच एक जबर्दस्त कशमकश चल रही थी। स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व इतिहास द्वारा प्रदत्त जाति और जनपद चेतनाओं का उन्नयन अखिल भारतीय राष्ट्रीय चेतना के धरातल पर करने के लिए प्रयत्नशील था तो वहीं ब्रिटिश कूटनीति स्वतंत्रता आन्दोलन को कमजोर करने के लिए जाति और जनपद चेतनाओं को परस्पर प्रतिस्पर्धी और कटुतापूर्ण बनाने की दिशा में पूरा जोर लगा रही थी। भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश कूटनीति के बीच इस कशमकश में से आरक्षण नीति का जन्म हुआ और किस प्रकार यह नीति जाति-चेतना को गहरा व स्थायी बनाने में सफल हुई है, यह स्वाधीन भारत की 75 वर्ष लम्बी यात्रा के बाद हम

अपनी आंखों से देख रहे हैं।

हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व ने 1951 में जातिविहीन समाज के निर्माण का सपना आंखों में संजोकर स्वाधीन भारत की पहली जनगणना के फार्म में से जाति का कालम निकाल दिया था शायद यह सोचकर कि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी अर्थात् जाति का कालम हटा देने मात्र से हम जाति नाम की बला से छुट्टी पा जाएंगे। उस समय केवल अनुसूचित जाति व जनजाति का कालम रखा गया, क्योंकि आरक्षण की सुविधा पाने के लिए यह जानकारी आवश्यक थी। किन्तु इस कालम को भी केवल दस वर्ष के लिए आपद धर्म के रूप में रखा गया था, यह सोचकर कि दस वर्ष बाद आरक्षण नीति की आवश्यकता ही नहीं रहेगी, अतः यह कालम भी हट जाएगा। पर पचहत्तर साल बीत जाने पर भी यह कालम न केवल वहीं का वहीं है, बल्कि उसको हटाने की बात करना भी आज एक गम्भीर राजनीतिक अपराध बन गया है। यहाँ तक कि विभिन्न राजनीतिक दलों एव जातीय संस्थाओं के द्वारा 2021 की जनगणना में जाति के आधार पर गणना कराने की मांग की जा रही है। यहां तक कि बिहार ने सरकार जातीय जनगणना करायी है। इतना ही नहीं आरक्षण नीति का क्षेत्र लगातार व्यापक हो रहा है। 1980 में मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण की सिफारिश कर दी जिन्हें 1990 में वी.पी. सिंह ने अपने प्रधानमंत्री पद को बचाने के लिए लागू कर दिया। अब प्रत्येक जाति इस पंक्ति में सम्मिलित होने के लिए व्याकुल है। फलस्वरूप समूची राजनीति और सार्वजनिक जीवन अब जाति के इर्द-गिर्द घूम रहा है। प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी जाति का नामपट्ट अपने माथे पर लगा रखा है। इतिहास की कैसी विडम्बना है कि जिस जाति संस्था का जन्म सामाजिक व्यवस्था में से हुआ था, वह सामाजिक धरातल पर तो उत्तरोत्तर शिथिल होती जा रही है किन्तु जिस राजनीतिक प्रक्रिया ने सामाजिक भेद की इस दीवार को ढहाने का दावा किया वही राजनीतिक प्रक्रिया इसे अमरत्व प्रदान कर रही है और सामाजिक विभाजन का कारण बन रही है।

धर्म एवं जाति को हथियार बनाया : फूट डालो राज करो की नीति को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए उन्होंने धर्म और जाति को मुख्य हथियार बनाया प्रशासन संबंधी नीतियों में अंग्रेजों का दृष्टिकोण अट्ठारह सौ सत्तावन के पश्चात और अधिक प्रतिक्रियावादी हो गया भारतीयों को महत्वपूर्ण पदों पर पहुंचने से रोकने के लिए प्रतियोगिता परीक्षा में आयु सीमा कम की गई शस्त्र कानून तथा प्रेस एक्ट पास किया गया। उन्होंने जातिवाद क्षेत्रवाद तथा सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया एक प्रांत के निवासियों को दूसरे प्रांत के निवासियों से एक जाति के खिलाफ दूसरी जाति को एक समूह के खिलाफ दूसरे समूह को सबसे अधिक मुसलमानों के खिलाफ हिंदुओं को खड़ा करके बांटो और राज करो की नीति को बढ़ावा दिया 1857 के विद्रोह में हिंदू और मुसलमानों की जो एकता देखने को मिली उसमें विदेशी शासक दरार डाल चुके थे। यह उभरते राष्ट्रवादी आंदोलन को कमजोर बनाने के लिए इस एकता को तोड़ने पर आमादा थे। विद्रोह के पश्चात उन्होंने मुसलमानों का दमन करना बड़े पैमाने पर उनकी जमीन जायदाद जप्त करना आरंभ कर दिया हिंदुओं को अपना तरफदार घोषित किया। अट्ठारह सौ सत्तावन के बाद यह नीति उलट दी गई और उच्च तथा मध्यवर्गीय मुसलमानों को राष्ट्रवादी आंदोलन के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की गई। डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर ने अपनी पुस्तक 'इंडियन मुसलमान' (1870) में मुसलमानों का समर्थन करते हुए मुसलमानों की विशिष्ट आवश्यकता पर बल दिया और उन्हें एक रूप समुदाय की संज्ञा दी। वायसराय लॉर्ड डफरिन ने 1888 में मुसलमानों को पांच करोड़ लोगों का राष्ट्र कहा जिसके धार्मिक एवं सामाजिक रीति रिवाज समान थे। वायसराय लॉर्ड एलगिन को लिखे गए एक पत्र में 'वूड' ने लिखा है कि हमने एक भाग को दूसरे के खिलाफ खड़ा करके अपनी शक्ति को बनाए रखा है हमें यही नीति अपनाए रखनी चाहिए। शिक्षित भारतीय सरकारी सेवा पर निर्भर थे उनके सामने दूसरी उपाय नहीं के बराबर थे इस कारण उनके बीच सरकारी पदों की प्राप्ति के लिए प्रतियोगिता आरंभ होगी सरकार ने प्रतियोगिता का लाभ उठाकर प्रांतवाद और सांप्रदायिक विद्वेष भड़काया उसने वफादारी के बदले सांप्रदायिक आधार पर सरकारी कृपा का आश्वासन दिया और इस प्रकार शिक्षित मुसलमानों को शिक्षित हिंदुओं के खिलाफ खड़ा किया। इस पृष्ठभूमि में भारतीय जनसंख्या का वर्गीकरण जाति एवं धर्म, भाषा, शिक्षा आदि के आधार पर किया गया इसके माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जिसका उपयोग फूट डालो राज करो की नीति को सफलतापूर्वक लागू करने में किया। जाति समुदाय एवं धर्म के आधार पर किए गए वर्गीकरण से

प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण एवं प्रकाशन से सामाजिक अंतर्द्वंद को बढ़ावा दिया गया। आधुनिक जनगणना पद्धति से प्रत्येक वर्गीकृत श्रेणी को परिभाषित करना जनगणना प्रक्रिया का अनिवार्य अंग होता है। जनगणना अधिकारियों द्वारा दी गई परिभाषाएं साम्राज्यवादी दृष्टिकोण पर आधारित थीं जो भारतीय सामाजिक ढांचे को परिभाषित करने के लिए उपयुक्त नहीं थीं इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार ने पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कराए गए सामाजिक अध्ययन और सर्वेक्षणों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर परिभाषाएं निर्मित कीं। अल्फ्रेड लायल ने अपने एशियाटिक अध्ययनों में जिस तरह हिंदू धर्म को परिभाषित किया है उसी आधार पर जनगणना में हिंदू धर्म को परिभाषित किया गया। 1893 में एच एच रिजले को जातियों के सर्वेक्षण के लिए सबसे पहले बंगाल प्रांत में नियुक्त किया 1899 में इस सर्वेक्षण की रिपोर्ट प्रकाशित हुई उससे प्राप्त तथ्यों के आधार पर 1901 की जनगणना में जातियों का वर्गीकरण किया गया और सामाजिक उच्चता का सिद्धांत (Social Presidance) लागू किया गया।[15] इस सिद्धांत के आधार पर वर्गीकरण ने समाज में एक जाति से दूसरे जाति में ऊंच-नीच की भावना का बीजारोपण किया अनेकों जातीय महासभा का गठन होना शुरू हो गया। हर जाति अपने आप को दूसरी जाति से ऊपर उठ कर देखने लगी अनेकों निम्न जातियों ने उच्च जातियों में अपने आपको गिनना कराना शुरू किया।[16] जनगणना अधिकारियों ने प्रारंभ में केवल हिंदू और मुसलमान को वर्गीकरण का आधार बनाया बाद में उन्होंने जैन, बौद्ध एवं ईसाइयों को भी सम्मिलित कर लिया। यहां पर महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रारंभिक जनगणना में बौद्ध एवं जैन, यह सभी हिंदू धर्म के अंतर्गत गिने जाते रहे परंतु बाद में इन्हें हिंदू धर्म से अलग गिनना शुरू किया गया। आदिवासी समुदाय जो कि सभी जनगणनाओं में हिंदू धर्म की श्रेणी में गिना जाता था, जनगणना अधिकारियों ने जनसंख्या गणकों को निर्देशित किया की आदिवासियों को अलग धर्म की श्रेणी में रखा जाए। आज जिस तरह झारखंड में 2021 की जनगणना के लिए वहां के आदिवासियों को निर्देशित किया जा रहा है कि वह हिंदू धर्म में अपनी गणना ना कराएं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन राव भागवत ने इसकी आलोचना भी की है परंतु राजनीति इस कदर अपना वर्चस्व दिखा रही है की सनातन हिंदू धर्म की महत्ता का उसे कोई अनुमान नहीं है। 1881 की जनगणना के पश्चात जनगणना अधिकारियों ने अनेक संप्रदायों को जिनमें आर्यसमाजी, कबीर पंथी आदि को हिंदू धर्म से अलग कर नया धर्म बना कर उनकी गणना प्रारंभ की। कालांतर में इन सभी धर्मों को मुख्य धर्मों की श्रेणी में श्रेणीबद्ध किया गया। धार्मिक आधार पर जनसंख्या का वर्गीकरण केवल धर्म तक ही सीमित नहीं रहा अपितु इनसे संबंधित संप्रदायों के आधार पर भी जनसंख्या का वर्गीकरण किया गया जिसे 1881 की जनगणना से पूर्णता लागू कर दिया गया कुछ धर्मों के स्वरूप को लगातार तोड़ा मरोड़ा गया और जनगणना रिपोर्ट के माध्यम से उनके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत ना करके जनगणना अधिकारियों द्वारा दी गई बनावटी परिभाषा में बांधकर प्रस्तुत किया गया इससे समाज में धर्म को लेकर नई नई अवधारणाएं विकसित हुईं और बुद्धिजीवी वर्ग में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई। हिंदू धर्म के सनातन एवं शाश्वत स्वरूप को ध्वस्त करने का प्रयास जनगणना के प्रारंभ से ही किया जाता रहा इसका पहला साक्ष्य पंजाब में दिखाई देता है। पंजाब की प्रथम जनगणना (1855) अट्ठारह सौ पचपन में कराई गई जिसमें सिखों को हिंदू की परिभाषा में डाला गया परंतु पंजाब की दूसरी जनगणना 1868 में कराई गई जिसमें सिक्खों को हिंदुओं से अलग कर दिया गया।[17] इस कारण पंजाब में हिंदुओं की संख्या घटती गई।[18] इसी तरह 1869 मैं अवध की जनगणना में जैन एवं बौद्ध को हिंदू धर्म के अंतर्गत गिना गया था परंतु 1871 की जनगणना में इन्हें हिंदू धर्म से अलग कर दिया गया। धार्मिक आधार पर जनसंख्या के वर्गीकरण में आदिवासी नाम से एक अलग श्रेणी बनाई गई इस श्रेणी में वे सभी आते थे जिनकी मान्यताएं प्रकृति के साथ जुड़ी हुई थीं इस आदिवासी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ए.सी. लायल ने 1866 मैं केंद्रीय प्रांत की जनगणना में किया। इन सभी लोगों को भारतवर्ष का स्थानीय निवासी कहा गया है शेष को बाहर से आए हुए बताया गया। जनगणना में इस सिद्धांत का प्रचलन होने के बाद इतिहास लेखन में भी इसी सिद्धांत का प्रयोग किया गया जिससे यह धारणा बलवती हुई कि भारतवर्ष केवल आदिवासियों का ही मूल देश है शेष जन यहां बाहर से आए हैं। यद्यपि जनगणना अधिकारियों ने आदिवासी नाम से एक अलग धर्म बना कर उन्हें इनके मूल धर्म से अलग करने की कोशिश की परंतु इस समुदाय के अधिकांश लोगों ने अपने आप को हिंदू धर्म में ही गिनवाया था।

जातीय जनगणना : जाति सदैव से भारतीय समाज की

एक महत्वपूर्ण व्यवस्था रही है संपूर्ण समाज का ताना-बाना इसके चारों तरफ घूमता रहता है। इतने प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी जिसने भारत में आर्थिक एवं धार्मिक ढांचे को सुदृढ़ता प्रदान की। जाति व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका को अंग्रेज जनगणना अधिकारी अच्छी तरह से समझ चुके थे इसलिए इस व्यवस्था से संबंधित विस्तृत सूचनाएं एकत्र करना उनके लिए परम आवश्यक था। यद्यपि भारतीयों की सभी जातियों के संबंध में उनकी पहचान करना अत्याधिक कठिन कार्य करना था प्लोडन कमेटी (1877) ने भी जाति के आधार पर सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए मना किया था तो भी उन्होंने प्रशासनिक शक्ति का उपयोग करके सूचना एकत्र की इन सूचनाओं का उपयोग फूट डालो राज करो की नीति के लिए किया।

जनगणना का संगठनात्मक ढांचा : जनगणना की संपूर्ण प्रक्रिया को व्यवस्थित एवं नियंत्रित करने के लिए संगठनात्मक ढांचा विकसित किया गया जिसका उद्देश्य जनगणना संबंधी नीति को सफलतापूर्वक लागू करना था। इस कार्य में लगे हुए सभी अधिकारी ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशिक्षित एवं विश्वसनीय कर्मचारी थे। जनगणना का कार्य प्रारंभ होने से पूर्व इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता था जिससे किसी भी प्रकार की त्रुटि न हो और प्राप्त सूचनाओं का वर्गीकरण कर उन्हें साम्राज्य की सेवा में प्रस्तुत किया जाता था। कर्मचारियों का चयन करते समय उनकी योग्यता एवं साम्राज्य के प्रति निष्ठा का विशेष ध्यान रखा जाता था। अंग्रेजों ने इस कार्य में अपने योग्य से योग्य अधिकारियों को लगाया जिससे यह कार्य निर्विघ्न संपन्न कराया जा सके। गांव से लेकर जिलों तक कर्मचारियों की पूरी चेन काम करती थी। संगठनात्मक ढांचे के बल पर ही यह प्रक्रिया 1871 से 1941 तक अनवरत जारी रही।[19]

जनगणनाकर्मियों के अनुभव : देश के विभिन्न भागों में पृथकतावादी शक्तियां जनगणना को प्रभावित करने की कोशिश में लगी हैं। मेघालय के पूर्वी खासी पहाड़ी क्षेत्र में एक प्रतिबंधित संस्था ने जनगणना के बहिष्कार की घोषणा कर दी है जिसके कारण वहां जनगणना कार्य ठप हो गया है। इसी प्रकार जिस तमिलनाडु में पहले द्रविड पहचान का आग्रह था वहां अब द्रविड आन्दोलन जातियों में बिखर गया है और प्रत्येक जाति अपनी अलग गणना कराने के लिए जोर लगा रही है। सरकार के सामने समस्या है कि साढ़े छह लाख ग्रामों और 5500 शहरों में बिखरी एक अरब 40 करोड़ को पार कर चुकी विशाल जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन की पूरी जानकारी केवल 20 दिन में कैसे इकट्ठी की जाए। इस महत कार्य को पूरा करने के लिए 25 लाख से अधिक कार्यकर्ता कहाँ से जुटाए जाएँ। ये कार्यकर्ता तरह-तरह की कठिनाइयाँ अनुभव कर रहे हैं। धनी लोग उनसे बात करना अपना अपमान समझते हैं तो महिलाएं पुरुषों की अनुपस्थिति में उनके लिए दरवाजा नहीं खोलतीं। भ्रष्टाचारी लोग अपनी आर्थिक स्थिति का खुलासा नहीं करना चाहते। मकान मालिक लोग अपने किरायेदारों की बात छिपाना चाहते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के कड़वे अनुभवों से दैनिक समाचार पत्र भरे होते हैं।[20] कभी समाचार आता है कि 50 हजार हजयात्रियों की जनगणना नहीं हो पाएगी, क्योंकि वे इस पूरे कालखण्ड में देश से बाहर रहेंगे, लेकिन इस कालखण्ड में भारत में रह रहे विदेशियों की गणना हो जाएगी। यह सब हमारी आंखों के सामने घट रहा है इसलिए जनगणना के आंकड़ों की शुद्धता और पूर्णता के प्रति हमारा विश्वास हिलने लगा है। यह स्थिति पहली बार पैदा नहीं हुई है। ब्रिटिश काल में भी विद्यमान थी। उस समय भी राजनीतिक आंदोलनों ने जनगणना को प्रभावित किया था। किन्तु पता नहीं क्यों ब्रिटिश काल के जनगणना आंकड़ों को हमारे शोध संस्थान, विश्वविद्यालय और सरकारी नीति निर्माता ब्रह्मसत्य मान कर चल रहे हैं। आरक्षण नीति ने जातिवाद को और सुदृढ़ किया, जनगणना फार्म में जाति के कालम को वापस लाने की मांग जोर पकड़ती जा रही है, जातिवाद ने समाज को जड़-मूल तक विभाजित कर दिया है और यह सामाजिक विखण्डन राजनीतिक बिखराव के रूप में सामने आ रहा है। धार्मिक अल्पसंख्यकवाद इस राजनीतिक बिखराव का पूरा लाभ उठाने की कोशिश कर रहा है। 1935 के संविधान तक आरक्षण नीति के जन्म के इतिहास का जिन्हें थोड़ा भी ज्ञान है वे जानते हैं कि डा. अम्बेडकर आदि सभी दलित जाति-नेताओं का यह स्पष्ट कहना था कि आरक्षण नीति हिन्दू समाज का अंग मानी जाने वाली जातियों तक सीमित है। इसका ईसाई एवं इस्लाम आदि धर्मों से कोई सम्बंध नहीं है। क्या वर्तमान जनगणना के अनुभवों के आलोक में ब्रिटिशकालीन जनगणना नीति और आंकड़ों का गहरा अध्ययन आवश्यक नहीं है?[21]

यहां अनायास ही गांधीजी का स्मरण हो आता है। जाति व्यवस्था में व्याप्त ऊंच-नीच और अस्पृश्यता की व्याधि के प्रति गांधी और ब्रिटिश कूटनीति में मौलिक अन्तर यह था कि गांधीजी इस व्याधि का उपचार सामाजिक धरातल पर ढूंढना चाहते थे जबकि अंग्रेज शासक इस समस्या को राजनीति के अखाड़े में खींच लाने की कोशिश कर रहे थे। डा. अम्बेडकर को ब्रिटिश नीति ठीक लगी इसलिए उन्होंने उसका समर्थन किया। गांधी और ब्रिटिश सरकार के बीच कशमकश की परिणति 1932 के पूनापैक्ट में आरक्षण नीति के जन्म में हुई। यह समझौता एक प्रकार से इस कूटनीतिक युद्ध में गांधी की पराजय और ब्रिटिश शासकों की विजय कहा जा सकता है। किन्तु स्वाधीन भारत के 75 वर्ष लम्बे अनुभव के आलोक में कहना होगा कि गांधी की समाज दृष्टि सही सिद्ध हुई है और ब्रिटिश शासकों की राजनीतिक दृष्टि गलत निकली है। सोलहवीं शताब्दी से ही ईसाई चर्चों ने भारत में अपने मतान्तरण प्रयासों का मुख्य आधार हिन्दू समाज में व्याप्त ऊंच-नीच के भेद, अस्पृश्यता की बुराई और गरीबी को बनाया था। सामाजिक समता, छुआछूत से मुक्ति एवं आर्थिक सहायता का प्रलोभन दिखाकर ही चर्च ने विशाल संख्या में निचली जातियों एवं गरीब हिन्दुओं को ईसाई मत में मतान्तरित किया था। बाद में उन्होंने वनवासी और गिरिजनों को अपनी मतान्तरण नीति का शिकार बनाया। उन पर अपनी शक्ति केन्द्रित की। इस मतान्तरण के पीछे आध्यात्मिक भूख के बजाय पेट की भूख और अज्ञान काम कर रहा था। अतः 1935 में जब अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था हुई तो चर्च को बहुत परेशानी हुई। उन्हें यह आरक्षण अपने मतान्तरण की योजनाओं पर कुठाराघात लगा।[22] उन्होंने ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया कि आरक्षण नीति का लाभ मतान्तरित दलित ईसाइयों को उपलब्ध कराया जाए किन्तु ब्रिटिश सरकार में चर्च की यह मांग स्वीकार करने का साहस नहीं हुआ। चर्च की इस मांग को ठुकराते हुए भारत सरकार (अनुसूचित जाति) आदेश 1936 पैरा 3 में स्पष्ट शब्दों में कहा गया, 'कोई भी भारतीय ईसाई अनुसूचित जाति का अंग नहीं माना जाएगा।' किन्तु अनेक छोटे-छोटे दलों में राजनीतिक बिखराव का परिणाम है कि चर्च का नेतृत्व मतान्तरित ईसाइयों को सामाजिक समता और आर्थिक सुरक्षा देने के अपने वादों को पूरा न कर पाने पर लज्जित होने के बजाय बेशर्मी से मांग कर रहा है कि 2001 की जनगणना प्रपत्र के कालम आठ में अनुसूचित जाति को केवल हिन्दू, बौद्ध व सिख तक सीमित न रखा जाए जबकि हिन्दू की संवैधानिक व्याख्या के अन्तर्गत बौद्ध व सिख आते हैं। जो लोग संविधान की पवित्रता की दुहाई देकर संविधान समीक्षा का विरोध कर रहे हैं, वे यहां क्यों चुप हैं? इसमें ईसाई दलितों को भी सम्मिलित किया जाए ताकि वे भी आरक्षण नीति का लाभ उठा सकें। चर्च प्रेरित-पोषित अखिल भारतीय क्रिश्चियन काउंसिल जैसी संस्थाएं जिन्होंने पिछले तीन वर्षों में हिन्दू समाज को लांछित करने के लिए ईसाई संस्थानों पर हमलों के झूठे प्रचार का बवंडर खड़ा किया था, अब जनगणना कार्य में बाधा डाल रही हैं और प्रश्नावली के प्रश्न 8 में परिवर्तन का दबाव डाल रही हैं। हिन्दुत्व विरोध में अंधी कम्युनिस्ट पार्टियां चर्चों के समर्थन में बयानबाजी करें, यह तो समझ में आता है क्योंकि उनकी दृष्टि केरल और तमिलनाडु के विधानसभा चुनावों में चर्चों का समर्थन पाने से आगे जा ही नहीं सकती। किन्तु यह पढ़कर आश्चर्य हुआ कि स्वयं को अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधि बताने वाली सुश्री मायावती ने भी चर्च के समर्थन में वक्तव्य जारी कर दिया। क्या वे नहीं समझतीं कि चर्च का अन्तिम लक्ष्य अनुसूचित जातियों का मतान्तरण करके उनका जनाधार समाप्त करना है।

इधर चर्च मतान्तरण के बाद भी 300-400 साल से दलित श्रेणी में पड़े हुए ईसाइयों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए व्याकुल है तो मुस्लिम पृथकतावाद इस जनगणना का लाभ अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करने के लिए करना चाहता है। इसका पहला लक्षण जम्मू-कश्मीर राज्य में दिखायी दिया। इस राज्य में जनगणना का कार्य दिसम्बर, 2000 में किया गया था। तब मुस्लिम पृथकतावादियों ने उसके बहिष्कार की घोषणा कर दी। जनगणना में भाग लेने वाले कर्मचारियों और अन्य कार्यकर्ताओं को धमकाया गया। यद्यपि वहां की सरकार यह दावा कर रही है कि उसने इन धमकियों के बावजूद जनगणना कार्य पूरा कर लिया है किन्तु जम्मू-कश्मीर सरकार की कमजोर स्थिति से परिचित कोई भी व्यक्ति सहसा इन दावों पर भरोसा नहीं कर सकता। एक समाचार के अनुसार गुजरात में मुस्लिम संस्थाओं ने फतवा जारी किया है कि सभी गुजराती मुसलमान अपनी मातृभाषा गुजराती के बजाय उर्दू लिखाएं। स्पष्ट ही, जो मुसलमान परिवार वहां 400-500 साल से रह रहे हैं, उनका उर्दू से कुछ भी

लेना-देना नहीं है वे उर्दू पढ़ भी नहीं सकते। इसीलिए एक मुस्लिम अखबार 'आमीन' ने उर्दू के पक्ष में अपील गुजराती भाषा में प्रकाशित की है। गुजरात में मुसलमानों को उर्दू को मातृभाषा लिखाने को कहा जा रहा है तो असम में घुसपैठ विरोधी कानून से बचने के लिए बंगला-भाषी मुस्लिम घुसपैठियों को आदेश दिया जा रहा है कि वे अपनी मातृभाषा बंगला के बजाय असमी लिखाएं। उधर बोडो और सभी जनजातियों के लोगों को स्वयं को गैरअसमी लिखाने के लिए भड़काया जा रहा है। इन पृथकतावादी आन्दोलनों के कारण असमी लोग अपने ही क्षेत्र में अल्पसंख्यक बनने का खतरा देख रहे हैं। 1971 की जनगणना में असमी जनसंख्या 60.89 प्रतिशत थी तो 1991 की गणना में वह 57.29 प्रतिशत रह गई जबकि बंगला भाषियों की संख्या 1971 की 4 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 21.51 प्रतिशत हो गयी।

धार्मिक आधार पर डेमोग्राफिक परिवर्तन चिन्ता का विषय : अभी हाल में ही धार्मिक जनसंख्या के अनुपात के कुछ आंकड़े इस तरह आ जाने की चर्चा हुई कि राजनीति में जन और मत दोनों को पर्याय की तरह इस्तेमाल करने वाले व्यक्तियों, दलों और खेमों में बेचैनी की लहर दौड़ गयी। भारत के जनगणना आयुक्त ने 2011 की जनगणना के धर्म आधारित आँकड़े जारी कर दिये हैं। इनके अनुसार हिन्दुओं की जनसंख्या कुल आबादी के 80.5 प्रतिशत से घटकर 79.80 प्रतिशत रह गई है। ऐसा पहली बार हो रहा है कि हिन्दू 80 प्रतिशत से नीचे आये हैं। यह ध्यान रहे कि अन्य भारतीय पंथो-सिख 2.30 प्रतिशत, बौद्ध 0.70 प्रतिशत और जैन 0.37 प्रतिशत के साथ मिलकर उसका प्रतिशत बढ़कर 83.17 प्रतिशत हो जाता है। 2001 में यह प्रतिशत 84.05 था। उधर मुस्लिम आबादी जो 2001 में कुल आबादी का 13.40 प्रतिशत थी। बढ़कर 14.23 प्रतिशत हो गई है। हिन्दुओं की 1991-2001 के बीच की बृद्धि दर 19.92 प्रतिशत थी, जो घटकर 2001-2011 में 16.76 प्रतिशत हो गई है। मुस्लिमों की वृद्धि दर भी 1991 से 2001 के बीच 29.52 प्रतिशत थी, जो अब (2001-2011) में घटकर 24.60 प्रतिशत रह गई। किन्तु जैसे 1991 से 2001 के बीच मुस्लिम आबादी हिन्दुओं की अपेक्षा डेढ़ गुना गति से बढ़ी है उसी प्रकार 2001 से 2011 के बीच भी उसकी दर हिन्दुओं की अपेक्षा डेढ़ गुना बनी हुई है। यदि हम पीछे दृष्टि डालें तो 1981-1991 की बीच मुस्लिम आबादी करीब 34 प्रतिशत बढ़े तो हिन्दू 23 प्रतिशत के लगभग। यानी उस दशक में भी मुसलमानों की बढ़ोतरी हिन्दुओं के मुकाबले डेढ़ गुना थी। मुस्लिम समाज की आबादी की घटती वृद्धि दर के बावजूद हिन्दुओं की अपेक्षा डेढ़ गुना अधिक रफ्तार बनाये हुए है, जो देश के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय मुसलमानों की दस साला वृद्धि जहां 24.60 प्रतिशत रही वहीं पाकिस्तान के मुसलमानों की आवादी वृद्धि दर 20 प्रतिशत और बंगलादेश की मात्र 14 प्रतिशत है। वास्तव में यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारतीय मुसलमान विश्व के 57 मुस्लिम देशों में सऊदी अरब को छोड़कर बाकी के 56 देशों में सबसे तीव्र गति से बढ़ने वाला समुदाय है। इस ओर देश के बुद्धिजीवी वर्ग तथा सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं का ध्यान जाना अति आवश्यक है क्योंकि किसी समुदाय वर्ग से संबन्धित विकास की योजनायें बनाते समय जनसंख्या के आँकड़ों को सामने रखना महत्वपूर्ण होता है। दुनियाँ के कुछ प्रमुख मुस्लिम देशों पर नजर डालें तो ईरान और मलेशिया में दशकीय वृद्धि दर 20 प्रतिशत, इंडोनेशिया में 17 प्रतिशत, अल्जीरिया में 14 प्रतिशत, तुर्की में 13 प्रतिशत और टयूनीशिया में कुल 10 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि कई मुस्लिम देशों की आबादी भारत के हिन्दुओं से भी कम गति से बढ़ी है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो रहा है कि यदि मुस्लिम समाज अपना शैक्षणिक, सामाजिक व आर्थिक स्तर को ऊंचा उठा कर देश की मुख्य धारा में आकर देश के विकास में अपना योगदान देना चाहता है उसे सर्वप्रथम अपनी बढ़ती आबादी को नियन्त्रित करने के लिए एक मुहिम चलानी पड़ेगी जिसे मुस्लिम समाज को खुद अपने अन्दर से खड़ा करना होगा।[23]

यदि हम भारत की धार्मिक आबादी के बदलते परिदृष्य की पृष्ठभूमि को देखते हैं तो भी एक भयावह तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत होती है। भारतीय जनसंख्या के बदलते धार्मिक स्वरूप का भारत के ताजा इतिहास पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है और यह अभी भी पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैले झगड़ों के महत्वपूर्ण कारणों में से एक है। संयोगवश जब से भारत में जनगणना प्रारम्भ हुई थी तभी से पंथों के अनुसार आंकड़े संग्रह किये जाते रहे हैं। इसलिए विभिन्न क्षेत्रों की पंथानुसार जनसंख्या में 1881 से आये बदलावों का स्पष्ट चित्र प्राप्त किया जा सकता है। जनगणना आँकड़ों में पूरी जनसंख्या को 9 पंथों में बांटा

गया है। हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध, जनजातीय, मुस्लिम, ईसाई, फारसी और यहूदी। इन नौ पंथ समूहों में से पांच हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध और जनजातीय मिलकर एक भिन्न परिवार बनता है। अधिक सत्यता के साथ कहें तो कहा जा सकता है कि इन पांचों का मूल एक ही है और इनके मूलभूत सिद्धान्तों और व्यवहार में काफी हद तक समानता है। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से ये पांचों भारतीय मूल के हैं। बौद्धों को छोड़कर शेष चार पंथों के अनुयायी मुख्यतः भारत में पाये जाते हैं। बौद्ध भारत के पड़ोसी क्षेत्र में फैले हुए हैं, जिसकी संस्कृति और सभ्यता भारत से मिलती जुलती है। दूसरी ओर मुस्लिम, ईसाई, पारसी और यहूदी पंथ बाहर से भारत आये। इस मूलभूत अन्तर को ध्यान में रखते हुए पहले पांच पंथों को भारतीय मूल के पंथ और शेष चार पंथों को अन्य पंथों की श्रेणी में रखा गया है।

1881 की पहली विस्तृत जनगणना के समय भारतीय मूल के पंथानुयायियों की संख्या मूल जनसंख्या का 79 प्रतिशत थी। जिसमें 95 प्रतिशत हिन्दू थे। शेष 21 प्रतिशत जनसंख्या विदेशी पंथों की थी जिसमें 96 प्रतिशत मुसलमान थे। भारतीय जनसंख्या की यह पांथिक बहुलवादिता और हिन्दू-मुसलमान में इसका बंटना भारतीय इतिहास तथा राजनीतिक परिदृश्य में घटे ताजा घटनाक्रमों का जनसंख्यात्मक प्रभाव था। 1881 में मुस्लिमों की जनसंख्या का विशाल अनुपात जो मुगल शासन काल के शिखर के समय की अनुमानित जनसंख्या अनुपात से भी कहीं अधिक है। इसी प्रकार का दूसरा तथ्य अन्य मतावलंबियों विशेषकर मुस्लिम और ईसाईयों के अनुपात में 1881 से 1941 के बीच हो रही निरन्तर वृद्धि है। इन 75 वर्षों में भारत में शेष मतावलंबियों की जनसंख्या का अनुपात 20.72 प्रतिशत से बढ़कर 26.22 प्रतिशत होगा। जिसमें मुस्लिमों का अनुपात 19.97 से बढ़कर 24.28 प्रतिशत हो गया और ईसाईयों का 0.71 से बढ़कर 1.91 प्रतिशत। भारतीय मूल के पंथानुयायियों का अनुपात 1881 में 78.96 से घटकर 1941 में 73.67 प्रतिशत हो गया।[24] भारतीय मूल के पंथों में हिन्दुओं में 0.61 प्रतिशत की दर से, जैनियों जिनमें मुख्य धारा से अलग होने की भावना न्यूनतम थी, में 0.28 की दर से वृद्धि हुई। सिखों में 1.89 और बौद्धों में 1.70 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई। जनजातियों में 0.52 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। अन्य पंथों में ईसाई सबसे अधिक दर से प्रतिवर्ष 2.41 प्रतिशत, मुसलमान 1.07 प्रतिशत की दर से बढ़े। मुसलमानों की वृद्धि दर हिन्दुओं से 3-4 गुणा अधिक थी। यहूदियों की संख्या 1.02 प्रतिशत की दर से बढ़ते हुए लगभग दो गुनी हो गई। देश विभाजन के कारण से 1951 के दौरान भारतीय मूल के पंथानुयायियों के अनुपात में 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि मुस्लिमों के अनुपात में उतने की ही कमी आई। परन्तु भारत वर्ष की जनसंख्या में भारतीय मूल के पंथानुयायियों का घटता प्रतिशत गम्भीर चिन्ता का विषय है। यह ह्रास न केवल निरन्तर हैं बल्कि विभाजन के बाद और बढ़ ही रहा है।[25]

निष्कर्ष : इस प्रकार 1881-1941 के साठ वर्षों में भारतीय मूल के पंथानुयायियों का अनुपात 79.32 से घटकर 73.81 प्रतिशत हो गया अर्थात इसमें 5.5 प्रतिशत की कमी आई और विभाजन के बाद के चालीस वर्षों में (1951-91) में यह अनुपात 73.81 से घटकर 68.03 प्रतिशत हो गया, अर्थात इसमें पुनः 5.06 प्रतिशत की कमी आई। भारतवर्ष में भारतीय मूल के पंथानुयायियों की संख्या में लम्बे समय से हो रहा यह हास हम सभी की चिन्ता का विषय है। इंडियन एक्सप्रेस अखबार ने 2011 की जनगणना के धार्मिक आंकड़ों के प्रकाशन पर अपनी टिप्पणी की है कि यदि मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि दर यही रही तो 2050 में भारत में हिन्दू पंथानुयायी अल्पसंख्यक होंगे और मुस्लिम बहुसंख्यक होंगे।

वर्तमान समय सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग है ऐसी स्थिति में किसी भी विषय की सांख्यिकीय जानकारी होना अतिआवश्यक है। संपूर्ण विश्व की सूचनाएं इंटरनेट के माध्यम से विश्व भर में आदान प्रदान की जाती हैं जिनसे प्राप्त आंकड़ों का उपयोग बुद्धिजीवी वर्ग अपने लेखन को तथ्यात्मक रूप प्रदान करने हेतु करते हैं। आधुनिक भारतीय इतिहास तथा विभिन्न सामाजिक विषयों के शोध प्रबंध को पूरा करने के लिए जनगणना से प्राप्त सूचनाएं एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इस स्थिति में जनगणना का महत्व और भी बढ़ जाता है। हमारे राष्ट्रीय नेता गोविंद बल्लभ पंत ने जनगणना रिपोर्ट के महत्व को व्यक्त करते हुए कहा था कि आजकल कोई भी कार्य चाहे वह प्रशासनिक, आर्थिक या सामाजिक हो, बिना जनगणना रिपोर्ट के नहीं किया जा सकता। यहां तक कि छोटी से छोटी सामाजिक-आर्थिक समस्या के विश्लेषण एवं समाधान के लिए जनगणना रिपोर्ट का सहारा लेना

पड़ता है। आज शिक्षा और ज्ञान के प्रसार की आवश्यकता है जिससे संपूर्ण समाज जातिवादी मानसिकता से ऊपर उठ सके और आगामी सभी जनगणना में ज्ञान के स्तर के अनुसार आंकड़ों का एकत्रीकरण सुनिश्चित किया जाना चाहिए। भारतीय जनगणना का आधार सामाजिक और आर्थिक उत्थान है। अंग्रेजों की विभाजन और स्वहित पर आधारित मानसिकता वाली जनगणना पद्धति से शीघ्र अति शीघ्र मुक्ति स्वतंत्र भारत की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. Sivastava, S.C., "Indian Census in perspective" Centenary Monograph No 1. New Delhi : Oflioe of the Registrar general of India, 1972, p. 32.
2. Barrier N.G.1 'The Census in British India: New Perspectives' New Delhi, Manohar, p.1
3. Cohn, Bernard S-1990- "The Census, Social Structure and Objectification in South Asia" An Anthropologist among the Historians and Other Essays, Delhi, Oxford University Press, 2001, Page 230.
4. Sivastava, S.C., op.cit., p. 32.
5. Ibid. p. 8
6. Cohn, Bernard op.cit., p 231
7. Statistical No. 6, Financial Department, 3rd June, 1846
8. Singh Chander Pal, Pradeep Kumar 'Jourmal Indian Research', Vol.2- No 4. October-December, 2014
9. Report on the Census of Central Provinces, 1865
10. Report on the Census of Punjab, 1868.
11. Report on the Census of NWP 1869.
12. Cohn, Bernard S, op.cit., p.231.
13. Report on the Census of Bengal Presidency 1872.
14. Cochin Census Report, 1875.
15. Report on the Census of NWP 1901, p. 16.
16. Ibid. p. 216.
17. Home Public, 14th August, 1869 NO. 196-A
18. Report on the Census of Punjab, 1855.
19. Maheshwari, S.R. The Census Administration under the Raj and After, New Delhi, 1996, p. 105.
20. अग्रवाल देवेन्द्र स्वरूप, 'पाचजन्य', 4 मार्च, दिल्ली, 2001
21. वही
22. वही
23. वही, 1-15 फरवरी, 2019, पृ. 40-41
24. Joshi A.P., M.D. Srinivas, and J.K. Bajaj, 'Religious Demography of India', Centre for Policy Studies, 2003.
24. Ibid.,

Other References:

1. Report on the Census of British India, 1881.
2. Report on the Census of British India, 1891, Home Public, December 1891, No. 1681-1696
3. Report on the Census of Central Provinces, 1865-
4. Imperial census report, 1881
5. Imperial census report, 1911
6. Imperial census report, 1921
7. Imperial census report, 1931
8. Census reports on Punjab, 1911

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

मध्यकालीन अर्थव्यवस्था में बंजारा समुदाय का योगदान : एक अध्ययन

❑ डॉ. अमिता शुक्ला
❖ डॉ. मनीषा मिश्रा

सूचक शब्दः बंजारा, टांडा, नायक, लमण, धादी।

बंजारा समुदाय शहरी एवं ग्रामीण संस्कृति से भिन्न थे। इसे बंजारा-टांडा संस्कृति के रुप में शहरी और ग्रामीण संस्कृति से भिन्न तृतीय संस्कृति माना जा सकता है। प्राचीन काल से ही बंजारों के द्वारा पूरे देश में बैलों पर सामान लादकर वस्तुओं की आपूर्ति की जाती रही। उनके द्वारा ही सेना को युद्ध क्षेत्र तक सामग्री पहुंचाया जाना सम्भव हो सका। इनके द्वारा सभी वर्गों, वस्तुओं की आपूर्ति हेतु तथा आयात निर्यात को सम्भव करने हेतु हरसम्भव प्रयत्न किए गए। अनेकों कठिनाइयों के बाद भी बंजारा समुदाय द्वारा अपनी सेवाओं भिन्न भिन्न शासकों तथा क्षेत्रों में प्रत्येक काल में प्रदान की गईं। प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत मध्यकाल में बंजारा समुदाय के आर्थिक महत्व उनकी संस्कृति, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं सम्बंधित क्षेत्र आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस कार्य हेतु साहित्यिक स्रोतों की सहायता ली गई है जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत सम्मिलित हैं।

व्यापार तथा वाणिज्य में वृद्धि किसी साम्राज्य की सम्पन्नता तथा नगरीकरण की प्रक्रिया के आगे बढ़ने का प्रमाण है। आवागमन के साधनों की सुगमता और उपलब्धता, आंतरिक तथा वाह्य व्यापार को संचालित करने का प्रमुख आधार है। पूर्व मध्यकाल से लेकर दिल्ली सल्तनत तथा मुग़लकाल में स्थल मार्ग से व्यापार के अन्तर्गत वस्तुओं को लाने और ले जाने हेतु एक विशेष समुदाय के द्वारा बैलगाड़ी तथा अन्य पशुओं के प्रयोग के विवरण प्राप्त होते हैं। यह समुदाय बंजारा एवं अन्य नामों से जाना जाता है जिसका मध्यकाल में छोटी और लंबी दूरी के व्यापार में महत्वपूर्ण योगदान था।

बंजारा मानवों का एक ऐसा समुदाय है जो निरंतर भ्रमणशील रहता है। वर्तमान में बंजारा कई प्रान्तों में निवास करते हैं जिनमें महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश में बंजारा समुदाय की संख्या अधिक है। प्रस्तुत शोध पत्र मध्यकालीन अर्थव्यवस्था में बंजारा समुदाय की भूमिका विशेषकर मालढुलाई व्यापार में इस समुदाय के योगदान को प्रकाश में लाने का एक प्रयास है।

प्रस्तुत शोधपत्र में बंजारों की उत्पत्ति एवं विकास की ऐतिहासिक गवेषणा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। मूलतः बंजारा समुदाय को मालवाहक समुदाय के रूप में जाना जाता है। विभिन्न शासकों के काल में नगरों में माल और अनाज की उपलब्धता के बने रहने के पीछे इस बंजारा समुदाय की सक्रिय भूमिका थी। कृषकों से अनाज के रूप में राजस्व वसूले जाने के बाद बंजारों के द्वारा ही अनाज शहरी गोदामों और बाज़ारों तक लाया जाता था। निर्यात की वस्तुओं को भी सुदूर देशों तक बंजारों द्वारा ही ले जाया जाता था।

प्रस्तुत शोधपत्र में मालवाहक के रूप में बंजारों की भूमिका, वाह्य व्यापार एवं आतंरिक व्यापार में बंजारों के महत्व, उनके द्वारा आयात एवं निर्यात की व्यापारिक सामग्रियाँ तथा शासकों द्वारा उन्हें प्राप्त संरक्षण और पारिश्रमिक का अध्ययन सम्मिलित है, साथ ही साथ बंजारों के सांस्कृतिक पहलुओं को भी प्रकाश में लाने का प्रयास किया जाएगा।

इस शोधपत्र हेतु आर्थिक इतिहास से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकों, शोधकार्यों और ऑनलाइन उपलब्ध शोध सामग्री का प्रयोग यथासम्भव किया गया है। तथ्यों की प्राप्ति एवं विश्लेषण हेतु गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों ही शोध प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार यह शोध पत्र बंजारा समुदाय के अस्तित्व को आर्थिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का एक प्रयत्न है।

बंजारा शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं, एक मत के अनुसार बंजारा शब्द प्राकृत, हिंदी और

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)
❖ पूर्व शोध अध्येत्री इतिहास विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

राजस्थानी शब्दों बाना/बन अथवा वाना/वन से बना है जिसका अर्थ वन है एवं चर जिसका अर्थ गतिमान है; से लिया गया है।[1] एक मत यह है कि बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द वाणिज्य अथवा वाणिज्यकर से हुई है जिसका अर्थ है व्यापारी।[2] भोजपुरी लोक संस्कृति में प्रवास करके किसी वस्तु के व्यापार को बनिजरवा कहते हैं, 'बनिजरवा' को भोजपुरी लोक परंपरा ने सवदागर, वैयपारी, बनजरवा इत्यादि नामों से संबोधित किया गया है। किन्तु यह बनिजरवा शब्द उन व्यापारियों के लिए प्रयुक्त है जो स्वयं व्यापार करते थे किन्तु उनके परिवार स्थाई घरों में रहते थे, ये उन व्यापारियों के लिए प्रयोग नहीं किया गया है जो समस्त परिवार के साथ चलने वाले भ्रमणशील समूह थे और जो मध्यकाल में सैन्य अभियानों के लिए खाद्य सामग्रियां ढोने का काम करते थे।[3]

बंजारा की शाब्दिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक अन्य विचार यह है कि यह वाणिज्य के अपभ्रंश बनिज जिसका अर्थ है व्यापारी[4] और फ़ारसी के 'जारा' जिसका अर्थ है जारी अथवा गतिमान[5] से मिलकर बना है।

इसके अतिरिक्त बंजारों के सम्बोधन हेतु विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनमें बंजारा, बनजारा (वाणिज्यकर-बानिज्जार-बनजार; बन+जार=बनजार=वन का राजा), वनजारे, बनजारी, ब्रिंजारी, बृजवासी (बृज प्रान्त के निवासी), लमान(लवण से लमन-लभान-लभनी, अर्थात नमक का व्यापार करने वाला), लमानी अथवा लंभानी, लमाना अथवा लम्बादा(लम्बाडा या लम्बादा शब्द दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित है।), लम्बाडी, लबन अथवा लबाना, लभान,लभानी, लभाना अथवा लोभाना, लदेनिया (लादने वाला), सुगाली (पशु पालन करने वाला), गवार, गोरिया (गवार या गोरिया अथवा गवारिया पंजाबी भाषा से प्रभावित जाति; गोर शब्द पंजाबी भाषा से आया है। गोर से ही गोर बंजारा बना।), गवरिया (गवारिया-गमालिया-गौरा; राजस्थानी भाषा से प्रभावित जाति), गमालिया, गवरा, कागिया (कामिया-कांगशिया- फानाडा; कागि=कंगी; कागिशिया=कंगी का व्यापार करने वाले), कांगिशिया, फानाडा, शिरकीबंद (शिरकीबंद- शिरकीवाला, शिरकी एक प्रकार का घास जिससे चटाई बुनते हैं), शिरकीवाला (चटाई बुनने वाला पंजाब, हरियाणा और दिल्ली प्रदेश के रहने वाले।), शिंगाडे आदि प्रचलन में हैं।

इन शब्दों में स्रोत शब्द लवण है। इस शब्द की आरंभिक ध्वनि (ल) सभी शब्दों में सुरक्षित है। मध्य वर्ग की ध्वनि (व) का विकास (म) या (भ) में हुआ है। अन्य ध्वनि (ण) का विकास (न) में होना स्वाभाविक है। यद्यपि राजस्थानी बोलियों में ण ध्वनि सुरक्षित रखती है, तथापि राजस्थान की कुछ प्रवृति मिलती है।[6]

बंजारा के सम्बोधन, अर्थ और सम्बंधित स्थान को निम्नांकित तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है

प्रचलित शब्द	सम्भावित अर्थ	स्थान
बंजारा	गतिमान, भ्रमणशील व्यापारी	उत्तर भारत, राजस्थान
बनजारा	वणिज्यकर, वन का राजा	राजस्थान तथा उत्तर भारत
बृजवासी	बृज प्रान्त के निवासी	मथुरा और समीप का क्षेत्र
लमान	लवण या नमक का व्यापारी	राजस्थान
लमानी, लंभानी	नमक का व्यापारी	राजस्थान
लमाना अथवा लंबादा	लवण का व्यापारी	दक्षिण भारत, मुख्यतः आन्ध्र प्रदेश
लदेनिया	लादने वाला	उत्तर भारत
सुगाली	पशुपालन करने वाला	आन्ध्र प्रदेश
गवार, गोरिया	पंजाबी शब्द गोर से बना है।	पंजाब
कांगिशिया	कंगी का व्यापार करने वाला	उत्तर पश्चिम भारत का क्षेत्र
शिरकीबंद	शिरकीवाला (शिरकी-एक प्रकार की चटाई बुनने की घास)	हरियाणा, पंजाब, दिल्ली

स्रोत- रिपोर्ट ऑफ दि ऑल इण्डिया बंजारा स्टडी टीम, 210 हिन्द राजस्थान बिल्डिंग, दादर, बम्बई-14, पृ.9

प्राचीन काल से ही बंजारा समूह के उल्लेख प्राप्त होने लगते हैं। अति प्राचीन काल से ही बैलगाड़ी का प्रयोग कृषि उत्पादों को ढोने और व्यापारिक वस्तुओं को दूरस्थ भागों तक भेजने में होता था। जातक कथाओं में भी कारवां व्यापार का सन्दर्भ और बैलगाड़ी का उल्लेख प्राप्त होता है।[7] इसी प्रकार ललितविस्तर में भी उल्लिखित है कि सुजात और कीर्ति नामक दो बैल, वपुष और मल्लिक नामक दो व्यापारियों का माल दक्षिण भारत से उत्तर भारत में ढोते थे।[8] इसी प्रकार के संकेत सी. वी. वैद्य द्वारा भी दिए गए हैं कि महाभारत काल में गोमियों को अनाज एवं व्यापारिक वस्तुएं ढोने हेतु नियुक्त किया जाता था, अर्थात ऐसे लोगों का भी अस्तित्व था जो बड़ी संख्या में बैल रखते थे। इन्हें व्यापार में विशिष्टीकरण प्राप्त था और जब व्यापारियों को आवश्यकता होती तब वे इन्हें माल पहुँचाने का ठेका दे दिया करते थे।[9] तिलकमंजरी में भी द्वीपान्तरों से व्यापार करने वाले धनाढ्य व्यापारियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[10]

बंजारों के समूह कारवां का प्रमुख सार्थवाह होता था जो लंबी दूरी के व्यापार में सामान ले जाते थे और बैलगाड़ियों का प्रयोग करते थे। ये मार्ग में विश्राम के समय बैलों को जंगल में छोड़ देते थे जिससे वे चारा चर सकें। अतः बैलों के खानपान और बैलगाड़ी का रखरखाव आसान होने के कारण भी बंजारा समूहों द्वारा सामान्यतः बैलगाड़ियों का प्रयोग किया जाता था।

इस सम्बध में ज़ियाउद्दीन बरनी के विवरणों में बंजारों हेतु कारवानिस शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है। अलाउद्दीन खिल्जी के पूरे काल में बंजारे व्यापारिक गतिविधियों में देखे जा सकते हैं। यद्यपि ये एक घुमक्कड़ की स्थिति में ही रहे किन्तु उनके द्वारा विविध प्रकार के अनाज और अन्य सामग्री उत्पादकों से खरीदी गईं तथा बैलगाड़ियों पर लादकर ख़िल्जीकालीन बाज़ारों में बेची गईं। प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन ख़िल्जी की मूल्य नियन्त्रण नीति से बंजारा समुदाय को वस्तुएं खरीदने और निर्धारित मूल्य पर बेचने में सुगमता हुई। मध्यकाल में विषेशकर मुग़लकाल तक आते-आते बंजारों की भूमिका मुख्य रूप से अनाज व्यापारी के रूप में बन चुकी थी। इस काल में बंजारों का व्यापारिक आदान प्रदान मध्य अफ्रीका, तिब्बत, इटली, खैबर, अफग़ानिस्तान, चीन, अरब देश तथा अमेरिका के साथ थे। इस काल में ये व्यापारिक आदान प्रदान की दृष्टि से 1850 के दशक तक भारत तथा विश्व के मध्य एक सेतु की भूमिका निभा रहे थे।[11]

के. एम. अशरफ़ के अनुसार प्राचीन अनाज व्यापारी मध्यकाल के राजपूताना में बंजारा के रूप में जाने गए, इनके पास लगभग एक हजार तक बैल होते थे, कुछ बड़े कारवानों में 40 हजार तक बैल भी होते थे।[12] बदायूंनी के अनुसार ये बिहार के पूर्वी सीमा से सिंध तक तथा उत्तर में आगरा से बुरहानपुर तक व्यापारिक सामग्रियों का निर्यात करते थे।[13] मध्यकाल में मुग़ल फ़ौजों को सामग्री पहुंचाने का कार्य बंजारों के ही जिम्मे था।[14] सत्रहवीं शताब्दी तक आते-आते मुग़ल अभियानों में सेना के मालवाहक के रूप में बंजारे दक्षिण तक पहुंच गए। दक्षिण में ये 5 भिन्न समूहों में देखे जा सकते हैं यथा - राठौड़, चौहान, मोला, वादाती तथा तूरी।

कर्नल ब्रिग्स द्वारा प्रदत्त विवरण के अनुसार औरंगज़ेब द्वारा बीजापुर तथा गोलकुंडा के अभियान के समय बंजारों के एक बड़े समूह को सेना के लिए अनाज पहुंचाने हेतु नियुक्त किया गया था।[15] औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात दक्षिण के शासकों के साथ राजनीतिक वर्चस्व के निरन्तर संघर्ष में बंजारों को युद्धक्षेत्रों में भी अनाज, धातु इत्यादि पहुंचाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार बंजारे ना केवल आर्थिक क्षेत्र में बल्कि सैन्य क्षेत्र में भी अपनी भूमिका निभा रहे थे।[16]

मक्का के व्यापारी मुख्य रूप से बंजारा जाति के रूप में जाने जाते थे। ये पूरे देश में घूम-घूमकर व्यापार करते थे और लम्बी दूरियां तय करते थे। ये शिविर बनाकर रुकते थे और मजबूत तथा सशस्त्र होते थे ये कभी घरों में नहीं रहते थे। व्यापारी भी सुरक्षा हेतु इन पर आश्रित रहते थे। इनके कार्य की उपयोगिता के कारण ये समस्त राज्य में भ्रमण करने का अधिकार रखते थे।[17] ध्यातव्य है कि मुग़लकाल में राजमार्ग पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहे जिससे आतंरिक व्यापार अधिक सुगमतापूर्वक होने लगा। चूंकि बंजारे लंबी दूरी के व्यापारी थे इसलिए उनका महत्व आतंरिक व्यापार में अत्यधिक बढ़ गया। उदाहरणार्थ खिल्जी काल में अनाजमंडी बंजारों की वज़ह से ही चलती थी, जिसमें बंजारे ही मुख्य आपूर्तिकर्ता की भूमिका में थे।

बंजारा समूह की मुगलकालीन अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की उपलब्धता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका थी। ये मुख्यतः नमक एवं अनाज पहुँचाने का कार्य करते थे। इनके पास 10-15 से 20,000 तक बैल होते थे। ये स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि बंजारों द्वाराकार्य

में लगाए गए बैलों की कुल संख्या लगभग 9 मिलियन रही होगी। इसी प्रकार पूरे मुग़लकाल में पहुंचाई गई वस्तुओं की कुल टन में मात्रा लगभग 281 मिलियन मीट्रिक टन थी।[18]

बैलगाड़ियों पर लादकर सामान ले जाने की व्यवस्था मुग़लकाल में बड़े स्तर पर प्रयोग की गई। इस व्यवस्था को निज़ाम, मराठे, राजपूत तथा ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा भी अनाज, शस्त्र, और अन्य वस्तुओं को एक से दूसरे स्थान पर पहुँचाने हेतु प्रयोग किया गया। इनके समूहों में हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही सम्मिलित रहते थे।[19]

रेलवे व्यवस्था के आगमन से पूर्व तक बंजारों द्वारा ही वस्तुओं को आवश्यकतानुसार पूर्ति हेतु पहुँचाने का कार्य किया गया और इसके बाद भी ये इस कार्य से जुड़े रहे।[20] उल्लेखनीय है कि मुग़ल शहरों ने व्यापारियों को आकर्षित किया जिनमें बंजारा प्रमुख थे, क्योंकि बंजारों का अस्तित्व अधिशेष उत्पादन का भी परिचायक था। बंजारों के द्वारा ही सांभर झील का नमक पूर्वी भागों तक पहुंचाया जाता था।[21] सांभर झील के नमक व्यापार में हजार से अधिक व्यक्ति कार्यरत थे और 01 लाख के लगभग बैल इस कार्य में प्रयोग होते थे और यह व्यापार लगभग पूरी तरह बंजारा समुदाय के द्वारा संचालित हो रहा था इनमें से कुछ कारवां इतने विशाल थे जिनमें 40000 तक बैल हुआ करते थे।[22] अबुल फज़्ल द्वारा भी बंजारों द्वारा बिहार तक नमक पहुँचाने का वर्णन किया गया है।[23] यद्यपि पटना एवं बिहार तक पहुंचाई जाने वाली सामग्रियों के विषय में कम जानकारी प्राप्त होती है तथापि इसमें संदेह नहीं है कि आसपास के क्षेत्रों में सभी आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कर दी जाती थी।

लम्बी दूरी के व्यापार में पटना तक पहुंचाई गई वस्तुओं में नमक था जो भूमि और जलमार्ग दोनों ही मार्गों से पहुंचाया जाता था। गेहूं तथा चावल भी इस क्षेत्र में बंजारों द्वारा पहुँचाया जाता था।[24] कुछ कारवां और बंजारा समूह स्वयं भी व्यापार करते थे। दक्कन के तटीय क्षेत्रों के शासक वाह्य व्यापारियों को अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकार और करों में छूट प्रदान करते थे।[25]

कुछ बंजारे स्वयं व्यापारी नहीं थे, किन्तु बड़ी संख्या में सामान पहुँचाने के कार्य में संलग्न थे तथा अन्य व्यापारियों से जुड़े हुए थे। ये अपनी प्रवासी प्रवृत्ति तथा बड़ी मात्रा में रथों और घोड़ों की उपलब्धता और मार्गों के गूढ़ ज्ञान के कारण व्यापार में पूर्णतः सक्षम थे। राजपूताना के भाटों द्वारा गुजरात तथा राजपूताना के कठिन मार्गों में कारवां को मार्ग दिखाने का कार्य किया जाता था।[26] इसके साथ ही साथ बंजारों द्वारा अकाल के समय में भी प्रभावित क्षेत्रों में अनाज की आपूर्ति का कार्य किया जाता था। ब्रिटिश भारत में 1770 ई0 के जनवरी-फरवरी माह में पटना एवं आस पास के क्षेत्रों में अकाल के समय 500 मन अनाज नावों में शहर में भेजा गया। इसी प्रकार लगभग एक माह बाद बंजारों द्वारा लगभग 500 बैलगाड़ी अनाज पहुँचाया गया।[27] बैलगाड़ियां एक बार में लगभग 60 दिन यात्रा करती थीं। प्रत्येक बैलगाड़ी पर एक रूपए प्रतिदिन का शुल्क प्राप्त होता था। सूरत से आगरा के 45 दिन की यात्रा में 40 से 45 रू. व्यय होते थे।

बंजारा समूहों की भिन्न संस्कृति को विदेशी यात्रियों एवं तत्कालीन इतिहासकारों द्वारा भी उनके लेखन में पर्याप्त स्थान दिया गया है। इस सम्बन्ध में बदायूँनी, पीटर मंडी एवं टेवर्नियर के विवरण प्रमुख स्थान रखते हैं।

टेवर्नियर के अनुसार बंजारा समूह अलग-अलग अनाज अथवा वस्तुओं के आधार पर बंटे हुए थे जिनमें चावल, नमक, मक्का, गेहूं मुख्य वस्तुओं के बंजारे थे। वे बंजारे जो नमक का व्यापार करते थे वे केवल नमक ही ढोते थे, चावल के बंजारे केवल चावल एवं इसी प्रकार अन्य समूह वस्तुओं को ढोते और व्यापार करते थे। ये अपने व्यापारिक उत्पाद का एक प्रतीक अपने माथे पर लगाते थे जिससे ये अलग से पहचाने जा सकते थे। यथा वे जो गेहूँ का व्यापार करते थे वे अपने माथे पर लाल गोंद से एक धागे में गेहूँ के दाने चिपका कर लटकाते थे, जो उनकी नाक तक आता था। इसी प्रकार चावल चिपका ले जाने वाले बंजारे पीले धागे पर चावल चिपका कर लगाते थे। दाल ले जाने वाले बंजारे धूसिया (ग्रे) रंग के धागे से दाल अपने माथे से लटकाते थे। नमक ले जाने वाले बंजारे एक पोटली में नमक अपने गले में पहनते थे।[28]

इसी प्रकार वस्त्र एवं धार्मिक परम्पराओं से सम्बंधित भिन्न परम्पराएं दृष्टिगत होती हैं। सभी बंजारे अपने गले में एक चांदी की छोटी डिब्बी अथवा लाकेट पहनते थे जिसमें उनके पुजारी द्वारा दिया हुआ एक लेख लिखा होता था। इस लाकेट को वे अपने बैल और जानवरों को भी बांधते थे। बंजारे अपने पशुओं से संतान के समान प्रेम करते थे।[29] बंजारा स्त्रियाँ अपने शरीर पर अंगूर के रस तथा प्राकृतिक रंगों से पुष्प के सामान आकृतियाँ बनाती थीं, तथा पुरुष रंगीन पगड़ी पहनते थे। बंजारों के वस्त्र

सम्बन्धी अध्ययन से दृष्टिगत होता है कि मथुरा में बंजारों की स्त्रियां घेरेदार रंगीन घाघरे को पहनती थीं। विवाहित महिला के सिर पर छः इंच लम्बी खैर की लकड़ी रहती थी, उस पर रंगीन ओढ़नी होती थी, यह पहनावा दूर से देखने पर एक घेरे के समान होता था। विधवा स्त्री के लिए लकड़ी का प्रयोग वर्जित था।[30] इनकी वेशभूषा रंगों से भरी तथा आकर्षक होती थी। स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी सशस्त्र (तीर कमान, तलवार, भाला) रहते थे।

बंजारा संस्कृति समृद्ध तथा विविधता से परिपूर्ण थी। पूरे देश में बंजारा समुदाय के लोग जन्म, विवाह, मत्यु से सम्बन्धित अवसरों पर विभिन्न रीतिरिवाज़ों का अनुसरण करते थे और इस विषय में वे अपनी प्राचीन प्रथाओं का पालन करते थे। बंजारों के रीतिरिवाज़ों में किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन नहीं हुए। ये एक प्रकार से हिन्दू समाज का अभिन्न अंग थे और हिन्दू देवी देवताओं की पूजा करते थे। बंजारों के अपने कुलदेवी तथा कुलदेवता भी होते थे जिसमें बालाजी, तुलजादेवी, बानाशंकरी, मारम्मा, तथा हुलियम्मा प्रमुख थे। वे अपने परिवार, पुजारी, पशु और धार्मिक प्रतीक भी लेकर यात्रा करते थे। इनके प्रमुख त्यौहार होली, गौरी, दशहरा आदि थे जिन्हें ये उत्साह के साथ मनाते थे। साथ ही साथ इन त्यौहारों पर बंजारा स्त्रियां आस पास के गाँवों में जाकर नृत्य करतीं तथा गाती थीं जिससे धनोपार्जन हो सके।

बंजारा समाज के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनमें परम्परागत रूप से नेतृत्वकर्ता होते थे। नायक टांडा के प्रमुख होते थे और सभी महत्वपूर्ण विषय विचार-विमर्श हेतु नायक के समक्ष लाए जाते थे जिसके बिना कोई रीति रिवाज़ पूर्ण नहीं किये जाते थे। इसके अतिरिक्त लम्बानी नामक बंजारा समूह में भी कुछ निम्न वर्ग भी दृष्टिगत होते हैं जैसे- धादी, धालिया, सनर, नावी, जोगी, मारू और रोहिदास आदि। ये अछूत श्रेणी के समूह थे जो लम्बानी समाज में विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करते थे। इनमें धादी गायक होता था जो वीर रस के गीत गाता था, इसकी विवाहों में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। इसी प्रकार धालिया ड्रम बजाने वाला होता था।

बंजारा पूर्णतः घुमक्कड़ जीवन जीते थे। बंजारा व्यापार के लिए प्रातः चलने से पूर्व एक विशेष रिवाज़ का पालन करते थे स्त्रियाँ टेण्ट मोड़ती थीं, और पुरुष पशुओं पर सामान लादते थे, इसी समय उनके पुजारी 6 से 7 फुट ऊंचे स्टैंड पर एक मूर्ति को रखते थे जिसकी सभी बंजारे स्त्री पुरुष आकर पूजा करते थे। इसके बाद वह मूर्ति पुजारी द्वारा एक निर्धारित बैल के ऊपर रख दी जाती थी।[31]

इस प्रकार बंजारा समूह जो कि अपनी जनजातीय सांस्कृतिक विशेषताओं से युक्त था, अपने समूह जिसे टांडा नाम से जाना जाता था (घुमन्तू व्यापारिक समूह); में रहना पसंद करते थे जिससे उनके व्यापार एवं यातायात से सम्बंधित कौशल का निरंतर विकास होता रहा। यह लोग अपनी सुरक्षा हेतु सशस्त्र होकर व्यापारिक यात्रा पर जाया करते थे ताकि आत्मरक्षा कर सकें। अपनी वस्तुओं को सुरक्षा हेतु बड़े-बड़े त्रिपाल (टेण्ट रुपी कपड़े) से ढक कर रखते थे।[32] इस बंजारा समूह ने भारत में सैन्य वर्ग की रसद तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के साथ साथ ही व्यापारी वर्ग की आवश्यकताओं को भी सुगम बनाया। कुछ लोग जो बंजारा प्रजाति के थे उन्होंने रोज़गार के लिए निर्माण कार्य, अन्य उत्पादन सम्बंधी कार्य, मज़दूरी आदि कार्यों को भी किया।[33]

अतः बंजारा समुदाय के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ये न केवल एक भ्रमणकारी व्यापारिक समूह थे बल्कि उनका तत्कालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था में तृतीयक क्षेत्र में विशिष्ट योगदान था। उनके द्वारा प्रदत्त सेवाएँ अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण थीं। उनके द्वारा वस्तुओं का व्यापारिक आवागमन अन्य साधनों की अपेक्षा सस्ता था, साथ ही साथ वे व्यापारिक मार्गों से भली प्रकार से अवगत भी थे जिससे सम्पूर्ण मध्यकाल में वस्तुओं की उपलब्धता बनाए रखना संभव हो सका। इसके अतिरिक्त वे सैन्य सामग्री पहुंचाने का भी कार्य करते थे। अतः अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण पहलू 'मांग तथा पूर्ति' दोनों ही स्तरों पर इस समूह की उल्लेखनीय भूमिका दृष्टिगत होती है, बंजारा समूह मुग़लकालीन अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण भाग थे, जिनके द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मुग़लकालीन व्यापार एवं वाणिज्य उन्नति को प्राप्त हो सका। साथ ही साथ अप्रत्यक्ष रूप से सुदूर स्थित क्षेत्रों को सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से जोड़े रखने का कार्य इनके द्वारा किया गया।

बंजारों का विभिन्न शासक वंशों के साथ सम्पर्क ने उनकी सामाजिक आर्थिक गतिशीलता में सहायता की तथा दक्षिण भारत में उनके स्थान परिवर्तन को सम्भव किया। ब्रिटिश काल में बंजारों की आत्मनिर्भरता तथा व्यापारिक एकाधिकार को पूंजीवादी नीतियों से हानि पहुंची। स्वतंत्रता

के पश्चात संघ तथा राज्य सरकारों द्वारा संवैधानिक प्रावधान और नए पहल प्रारम्भ किए गए जिससे बंजारों की स्थिति को प्रजातांत्रिक रूप से उन्नत किया जा सके साथ ही साथ उनकी स्थिति में भी परिवर्तन संभव हो सके। यद्यपि ये समुदाय वर्तमान में निर्धनता, अशिक्षा, कुपोषण, मौसमी बेरोज़गारी इत्यादि चुनौतियों का सामना कर रहा है तथापि वे आज भी स्वयं को समाज से जोड़े रखकर भूमंडलीकरण तथा प्रजातांत्रिक युग में बड़े परिवर्तनों हेतु कटिबद्ध हैं।

सन्दर्भ

1. Banjara Samaj, 'History of Banjara Samaj' (vishnu211986- blogspot2012/03); Report of the all India Banjara study team, 210hind Rajasthan Building, Dadar Bombay-14, p. 9
2. Elliot, H.M., 'Memoirs on the History, Folklor and Distribution of the Races of North Western Provinces of India', London 1867, Vol. 1, p. 54 to 57
3. Wardi, Robert Gabriel., 'North Indian Banjaras : There Evolution as Transporters, Journal of south Asian Studies, New Series, Volume 2, No. 1&2, March-September 1979, pp. 1-18, Eyon J. Ker on the Moov: Circulating Labour in the Pre-colonial India, I.R.S.H. 2006, 51 Suppliment, pp. 85-109
4. Abdul-Kadir- Ibn Muluk Shah(Al-badaoni)., 'Muntakhab-ut-Tawarikh', Trans. Jeorge. S.A. Rainking, Vol-2 Atlantic Publisher, New Delhi, p. 240
5. फरहंगे आमिरा (अरबी, फारसी, तुर्की शब्दकोश), मुहम्मद अब्दुल्ला खां खेश्गी, एतिक़ाद पब्लिशिंग हाउस सूईवालान, देहली, 1980, पृ. 153
6. Report of the all India Banjara study team, 210hind Rajasthan Building, Dadar Bombay-14, Pg. 9; Dr. Suresh lal, B., A Historical Study of Origin and Migration of Banjara Tribe in Telangana state, International Journal of Current research, vol.8, issue, 10, oct 2016, pp. 40261-40267
7. पाण्डेय संजय कुमार, 'प्राचीन भारत में व्यापारिक मार्ग', कला एवं धर्म शोध संस्थान, वाराणसी, 2013 पृ. 180
8. वही
9. वही
10. गुप्ता पुष्प धनपालकृत 'तिलकमंजरी' (एक सांस्कृतिक अध्ययन), पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर- इंदौर, 1988, पृ. 225
11. Barani Ziyauddin., 'Tarikh-e-Firojshahi', ed. Sayyed Ahmed Khan, Culcutta, Bibliothica India, pp. 305-307.
12. Ashraf , K.M., 'Life and Condition of the People of Hindustan', Gyan Publishing House, New Delhi, p. 151
13. Abdul-Kadir- Ibn Muluk Shah(Al-badaoni)., 'Muntakhab-ut-Tawarikh', Trans. Jeorge. S.A. Rainking, Vol-2 Atlantic Publisher, New Delhi, p. 240
14. Col.Tod. James., 'Letters on Marathas', Indian Office Tracts. 1798, p. 67
15. Supra Brigs, John., 'Account of the Origin, History and Manners of Men Called Bnajaras', Transaction of the Literary Society of Bombay. Vol. 1, London, pp. 170-197
16. Ibid.
17. Abdul-Kadir- Ibn Muluk Shah(Al-badaoni)., op. cit. p.240
18. Moosavi, Shireen., 'The Economy., of the Mughal Empire 1595', A Statistical Study, Oxford University Press, New Delhi, 2015, pp. 430-422
19. Mundy, Peter., 'The Travels of Peter Mundy in Europe And Asia 1608-1667', Vol. 2; Travels in Asia 1628-1634, Hakluyt Society, London, p. 95; Chitnis, K.N., A Socio Economic history of Medieval India, p. 45; Merchant Communities of Pre-colonial India, Rise of Merchant Empires, ed. James toosy 1990, pp. 376-377
20. Naqvi, Hamida Khatoon., 'Urban centers and Industries in Upper India', Asia Publishing House, Delhi, 1988, p. 95
21. Ibid., p. 242
22. Col.Tod. James., 'Annals and Antiquities of Rajasthan', Popular Edition, London, 1914, p. 484
23. Allami, Abul-fazl., 'Ain-e-Akbari', Trans. H. Blochman, Low Prioce Publication, Delhi, 2001, Part-3, p. 586
24. Ibid., p. 586
25. Naqvi, Hamida Khatoon., 'Urban Centers and Industries in Upper India', Asia Publishing House, Delhi, 1988, p. 95
26. Ibid., p. 95
27. Ibid., p. 95
28. Travernier, Jean Beptiste., 'Travels Imn India', By V. Ball, Second edition, ed. William crook, Vol. 1, Oxford University Press, 1925, pp. 33, 34; Eraily, Abraham., The Mughal worls, Penguin books, 2007, p. 389
29. Ibdi., pp. 33, 34
30. Eyon, J. Ker. 'On the Move : Circulating Labour in the Pre-Colonial India', I.R.S.H. 2006, 51 Suppliment, pp. 85-109
31. Ibid. pp. 85&109
32. Jadhav, Ramesh Dheeraj., 'Role of Banjaras Community in Trade and Trasportation in Medieval India', Mukt Shabd Journal, Vol. XI, Issue, June/2020, p. 5866
33. Ibid, p. 5867

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

वर्तमान भारतीय परिदृश्य में स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचारों की प्रासंगिकता

❑ डॉ0 प्रकाश लखेड़ा
❖ सुश्री रेखा मौनी

सूचक शब्दः आध्यात्मिकता, पुनरूत्थान, संस्कृति, राष्ट्रवाद।

स्वामी विवेकानन्द का प्रादुर्भाव उस समय हुआ था, जब भारत परतंत्रता की बेडियों में जकड़ा हुआ था और अपनी अस्मिता तथा पहचान को भूल बैठा था। देश में चारों तरफ नैराश्य की कालिमा बिखरी हुई थी और आशा की कोई किरण नहीं दिख रही थी। ऐसे समय में विवेकानन्द ने सोए हुए समाज को जागृत करने का कार्य किया था। सन् 1897 में मद्रास की साहित्य समिति में युवाओं को संबोधित करते हुए स्वामी जी ने कहा था,- ''जगत में बड़ी-बड़ी जातियां हो चुकी हैं। हम भी महान विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की गाथा को महान सम्राट अशोक ने धर्म और आध्यात्मिकता की ही विजयगाथा बताया है और अब समय आ गया है भारत फिर से विश्व पर विजय प्राप्त करे। यही मेरे जीवन का स्वप्न है और इससे कम कोई लक्ष्य या आदर्श नहीं चलेगा, उठो भारत......... तुम अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा विश्व पर विजय प्राप्त करो'' ।[2]

आज भारत यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र है, किन्तु वैचारिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वह अभी भी पाश्चात्य अपसंस्कृति के पराधीन है और इसका परिणाम यह हुआ है कि सर्वत्र भ्रष्टाचार, अनाचार और सदाचार का बोलबाला है। सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी आँख खोल देती है कि पूरे सरकारी और प्रशासन के तंत्र में भ्रष्टाचार का घुन लग गया है, जो धीरे-धीरे देश को खोखला कर रहा है। इस संदर्भ में सौ वर्ष पहले स्वामीजी ने 'वर्तमान भारत' नामक लेख में लिखा था- ''भारत की सारी समस्याओं और राष्ट्रीय संकट के मूल में चरित्र का अभाव है। जब तक व्यक्ति के चरित्र का निर्माण नहीं होगा और स्वभाव में आत्मविश्वास नहीं उत्पन्न होगा तब तक देश का पुनर्निर्माण नहीं होगा।'' साथ ही स्वामीजी ने यह भी कहा, ''जब तक हर भारतवासी अपनी मातृभूमि से प्रेम नहीं करेगा, तब तक भारत प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता।''[3] यह स्वामी जी का भारत के प्रति अगाध प्रेम तथा उनके राष्ट्रवादी विचार का परिचायक था। उनका राष्ट्रवाद आध्यात्मिक था। वे आध्यात्म के द्वारा ही भारत को विश्वगुरू बनाना चाहते थे। इस कारण उनके अनुसार भारत की जो समस्याएँ हैं वे आध्यात्मिक ही हैं। भारत अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ही वर्तमान सभी समस्याओं से

> मानव-इतिहास में बड़ी-बड़ी संस्कृतियाँ उत्पन्न हुईं, पर भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्टता रही है, और वह यह कि उसके हजारों वर्ष के इतिहास में अतीत के साथ उसका सम्बन्ध आज तक अटूट बना हुआ है। जैसे गंगा हिमालय की गोद से निकलकर निरन्तर सागर की ओर बहती जाती है उसी प्रकार भारतीय संस्कृति और सभ्यता हजारों वर्षो से अटूट चली आ रही है। विश्व में और भी संस्कृतियाँ थीं - मिश्र की, यूनान की, दक्षिण अमेरिका की, लेकिन वे सब काल के गर्त में जाने कहॉ लुप्त हो गयीं और आज उनका मात्र कुछ - कुछ निशान ही कहीं-कहीं मिलता है। वे संस्कृतियाँ आज जीवित नहीं है। एकमात्र भारतीय संस्कृति ही ऐसी है जो जीवित है। यद्यपि भारतवर्ष ने भी बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलीं बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव देखे। यदि अन्य कोई देश होता, तो उसका नामो-निशान मिट जाता तो, भारतीय संस्कृति के अन्दर ऐसा कौन-सा मंत्र है, जिसने उसे लोकजयी बना रखा है? इसका एकमात्र कारण यह है कि हमारे देश पर जब भी संकट आता है, जब भी हमारी संस्कृति खतरे में पड़ती है, तब इस पवित्र भूमि पर ऐसे महान स्त्री-पुरूष उत्पन्न होते हैं, जो अपनी साधना के बल से, अपनी कठोर तपस्या और सिद्धि से उस बुझती हुई ज्वाला को फिर से प्रज्जवलित करते हैं और इस प्रकार भारतीय संस्कृति का पुनरूत्थान साधित करते हैं। यदि भारतवर्ष का इतिहास देखें, तो पाएँगे कि प्रारम्भ से, वैदिक काल से लेकर आज तक- चाहे वह उपनिषदों का काल रहा हो या महाकाव्यों का, भगवान बुद्ध का या भगवान महावीर का अथवा दक्षिण भारत में होने वाले शंकर, मध्व, रामानुज आदि महान् आचार्यो का या फिर मध्ययुग में होनेवाले सन्तों का- इन सभी युगों में देश के हर भाषाभाषी क्षेत्र में इस प्रकार के महापुरूष उत्पन्न हुए हैं। कईयों को हम अवतार मानते हैं, तो कईयों को ऋषि और कइयों को मुनि। इन्हीं महापुरूषों की तपस्या के कारण भारतवर्ष की संस्कृति निर्बाध रूप से बहती चली आ रही है।[1]

❑ शोध निर्देशक, स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लोहाघाट (उत्तराखण्ड)
❖ शोध अध्येत्री, स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लोहाघाट (उत्तराखण्ड)

मुक्ति पा सकता है तथा अपना राष्ट्रीय जागरण कर सकता है। वर्तमान भारत की समस्याओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इन समस्याओं का अगर कहीं समाधान है तो वह स्वामी विवेकानन्द के विचारों में ही है। जो उनकी वर्तमान भारत में प्रासंगिकता को और भी बढ़ा देता है।

शोधपत्र का उद्वेश्य

1 वर्तमान भारत की बाहृय व आंतरिक समस्याओं से अवगत कराना।

2 भारत की इन समस्याओं के समाधान के उपाय स्वामी जी के राष्ट्रवादी विचारों में देखना।

3 स्वामीजी के इन विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

शोधपत्र की प्रविधि : प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्वति पर आधारित है। अतः यह शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोत पर आधारित है। इसके अध्ययन के लिये पुस्तकों के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों व इन्टरनेट का सहारा लिया गया है।

शोधपत्र की अध्ययन सीमा : प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान भारतीय परिदृश्य में स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचारों की प्रासंगिकता के अध्ययन तक सीमित है।

साहित्य समीक्षा :

मोहन सिंह मनराल द्वारा लिखित यह पुस्तक 'उत्तराखण्ड में स्वामी विवेकानन्द'[4], में स्वामी विवेकानन्द की उत्तराखण्ड यात्राओं का वर्णन किया गया है, जिसमें ऋषिकेश, नैनीताल, कौसानी, अल्मोड़ा, मायावती में उनके आगमन तथा उनके द्वारा दिये गये संदेशों का वर्णन किया गया है।

मेजर परशुराम गुप्त की पुस्तक 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद'[5] में उन्होने स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचारों पर प्रकाश डाला है जो वर्तमान युवावर्ग को राष्ट्रवाद का संदेश देती है।

देविका रंगाचार्य की पुस्तक 'द कम्प्लीट वर्क ऑफ स्वामी विवेकानन्द'[6], स्वामी विवेकानन्द के समस्त विचारों एवं क्रियाओं को प्रदर्शित करती है। इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द के समस्त विचारों का व्यापक रूप से वर्णन किया गया है।

शंकर द्वारा लिखित पुस्तक 'विवेकानन्द की आत्मकथा'[7], विवेकानन्द के पत्रों उनकी स्वयं लिखित रचनाओं पर आधारित है। इसमें लेखक ने विवेकानन्द की सम्पूर्ण जीवनी को दर्शाया है तथा इस बात का उल्लेख भी किया है कि विदेशों में आध्यात्म के प्रचार-प्रसार द्वारा किस तरह उन्होंने दीन-हीन और गुलाम भारत को विश्वगुरू के सिंहासन पर विराजमान किया जिससे भारतीय जनता में आत्मविश्वास की भावना जागृत हुई।

सनजीत ने अपने शोध पत्र 'स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता'[8] में स्वामी विवेकानन्द के सामाजिक विचारों के साथ उनके वेदान्त सम्बंधी विचारों, मानवकल्याण, राष्ट्रभक्ति, गरीबी तथा युवाओं संबंधी विचारों की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता का अध्ययन किया है।

एम.आई. राजस्वी की पुस्तक 'विश्वगुरू विवेकानन्द'[9], में लेखक ने स्वामीजी के आदर्श जीवन चरित्र के साथ उनके जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डाला है। उनके वेदान्त के उपदेशों ने भारत और यूरोप को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान के अद्‌भुत प्रकाश से चकाचौंध कर दिया जिस कारण सम्पूर्ण विश्व ने उन्हें विश्वगुरू के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया।

प्रकाश लखेड़ा ने अपने शोध पत्र 'स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में व्यवहारिक वेदान्त : भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में'[10], में यह दर्शाने का प्रयास किया है कि किस तरह स्वामी विवेकानन्द का भारत प्रेम और उनका व्यावहारिक वेदान्त वर्तमान भारतीय राष्ट्रवाद के लिए बहुत ही प्रासंगिक हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द हिन्दू सनातन परम्परा के ऐसे सन्यासी थे जिन्होंने अपने वेदान्त के आध यात्मिक ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण विश्व को तृप्त कर दिया था।

स्वामी विवेकानन्द जी के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की प्रासंगिकता को हम इन सन्दर्भो में समझने का प्रयत्न करते हैं-

वर्तमान भारत की बाहृय समस्याओं के संदर्भ में स्वामीजी की प्रासंगिकता : वर्तमान भारत में बाह्य समस्याओं के नाम पर अनेक खतरे मंडरा रहे हैं, जैसे व्यापार अंसतुलन, आतंकवाद, आक्रमण का डर, वैश्विक महामारी, नग्न भौतिकवाद आदि। ऐसे संकट के समय में हमें स्वामी जी के विचार और भी प्रासंगिक जान पड़ते हैं क्योंकि आज भारत की इन समस्याओं को जब हम देखते हैं तो हमें स्वामीजी के विचारों में ही इनका समाधान दिखाई देता है। ये समस्याएँ हैं-

आतंकवाद - वर्तमान समय में आतंकवाद भारत की सबसे बड़ी समस्या है, जिसने भारतीय शासन व्यवस्था को जर्जर कर दिया है। आतंकवाद ने भारत की आर्थिक,

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को प्रभावित किया है। भारत के कश्मीर, नागालैण्ड, पंजाब, असम, बिहार आदि विशेष रूप से आतंक से प्रभावित रहे हैं। भारत में हाल ही में कुछ बड़े आतंकी हमले हुए जैसे 14 फरवरी 2019 जम्मू से कश्मीर जा रहे काफिले पर पुलवामा के पास हमला हुआ जिसमें 44 जवान शहीद हुए। इसी प्रकार 2007, हैदराबाद में, 2006 में मुंबई में, 2005 अक्टूबर दिल्ली में आतंकी हमले हुए।

आज दुनिया घृणा, हिंसा, संघर्ष और आतंकवाद से मुक्ति चाहती है। इसके लिए भारतीय जीवन दर्शन एक उम्मीद देता है विशेषकर विवेकानन्द का दर्शन, आतंकवाद का समाधान बलपूर्वक नहीं बल्कि संवाद से करने की राह दिखाता है। विवेकानन्द के अनुसार- ''सभी मनुष्यों में ईश्वर है वे सभी ईश्वर के प्रतिनिधि हैं मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।''[11] अगर हम इस रूप में मनुष्य को देखें तो आतंकवाद को बड़ी सरलता से समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि हमें विवेकानन्द के विचारों तथा आदर्शो को प्रत्येक व्यक्ति तक किसी न किसी रूप में पहुँचाना होगा जिससे वे सद्मार्ग पर आ सकें। इसके लिए विवेकानन्द के विचार लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं।

भारत का बढ़ता विदेशी व्यापार घाटा - भारत के विश्व के भौगोलिक प्रदेशों और बड़े व्यापारिक समूहों के साथ व्यापारिक संबंध हैं जिसमें पश्चिमी यूरोप, पूर्वी यूरोप, पूर्ववर्ती सोवियत संघ (रूस) और बाल्टिक राज्य, एशिया, ओसीनिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका और लैटिन अमेरिका आते हैं। 1950-51 में भारत का कुल विदेशी व्यापार (आयात एवं निर्यात) रू0 1214 करोड़ था। तब से यह समय-समय पर मंदी के साथ लगातार वृद्धि करने का साक्षी है।

वित्त वर्ष 2017-18 में भारत ने लगभग 238 देशों और शासनाधिकृत क्षेत्रों के साथ कुल 768 अरब डॉलर का व्यापार (303 अरब डॉलर निर्यात और 465 अरब डॉलर आयात) किया। इस अवधि में भारत का व्यापार घाटा 162 अरब डॉलर रहा। इनमें से 130 देशों के साथ भारत का ट्रेड सरप्लस था। जबकि करीब 88 देशों के साथ ट्रेड डेफिसिट (व्यापार घाटा) रहा।[12]

स्वामी विवेकानन्द देश में औद्योगिक विकास के पक्षधर थे। वे चाहते थे कि पश्चिमी देशों से विज्ञान और प्रौद्योगिकी को सीखकर देश की तरक्की की जाए। स्वामी विवेकानन्द जब शिकागो धर्म संसद में हिस्सा लेने अमेरिका जा रहे थे तो जहाज में उनके साथ जमशेदजी टाटा भी थे। जमशेदजी टाटा भारत में स्टील प्लांट लगाना चाहते थे और इस सिलसिले में अमेरिका जा रहे थे। इस दौरान इन दोनों महान व्यक्तित्वों के बीच देश की आर्थिक नीतियों पर चर्चा हुई। स्वामी विवेकानन्द ने टाटा से कहा, वे जापान से आयात करके भारत में क्यों बेचते हैं। भारत में क्यों नहीं बनाते। इससे देश का पैसा बाहर नहीं जाएगा और साथ ही देश में कामगारों को भी रोजगार मिलेगा। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें भारत में ही नए उद्योग लगाने की सलाह दी। स्वामी जी मानते थे कि पश्चिमी तकनीक को सीखकर ही भारत का उत्थान हो सकता हैं। **उन्होंने** कोलकाता में अपने एक भाषण में कहा था, आपके पास एक सुई बनाने की क्षमता भी नहीं है और आप ब्रिटिश की आलोचना करने का दुश्साहस करते हैं। मूर्खो, उनके पैरों के पास बैठो और उनसे कला और उद्योग सीखो, निश्चित रूप से वे प्रैक्टिकल साइंस और भौतिक स्थिति में सुधार लाने में सहायक होंगे। लेनदेन के इस सिलसिले में वे जापन का उदाहरण देते थे और कहते थे, 'उन्होंने (जापान) यूरोपियंस से सबकुछ लिया, लेकिन वे जापानी बने रहे। इसी तरह तुम्हें भी यूरोप से लेना है, लेकिन यूरोपियंस नहीं बनना है।' साथ ही वे मशीनों के सीमित इस्तेमाल के ही पक्षधर थे वे कहते थे- ''आज हमें जरूरत है वेदान्तयुक्त पाश्चात्य विज्ञान की।''[13] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वामी जी के इन विचारों को आत्मसात करके वर्तमान भारत की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है तथा देश में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की Make in India की नीति के द्वारा स्वनिर्मित उद्योगों को अधिक विकसित कर भारत के आयात को कम किया जा सकता है तथा निर्यात को बढ़ाया जा सकता है जिससे देश की GDP बढ़ेगी।

वैश्विक महामारी - वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व कोरोना वायरस की वैश्विक महामारी झेल रहा है। इससे हमारा देश अछूता नहीं हैं। इस वायरस के संक्रमण की तेजी को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने कोरोना वायरस को महामारी घोषित कर दिया। कोरोना वायरस चीन से 30 जनवरी 2020 को भारत में फैलने की पुष्टि हुई थी। कोरोना वायरस बहुत ही सूक्ष्म लेकिन प्रभावी वायरस है। WHO के अनुसार बुखार, खांसी, सांस लेने

में तकलीफ इसके मुख्य लक्षण हैं। इस प्रकोप को एक दर्जन से अधिक राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में महामारी घोषित किया गया है।

महामारी और संक्रमणों के इस काल में हमें 1898 को बंगाल में आई प्लेग महामारी की याद आती है। साथ ही उस समय बंगाल के महान योद्धा स्वामी विवेकानन्द की, जिनके द्वारा उस समय की गई लोगों की सेवा और उनके द्वारा लोगों को जिस तरह जागरूक किया गया वो आज के इस महामारी के दौरान हमारे लिए प्रासंगिक बना हुआ है। उनका 122 वर्ष पुराना 'प्लेग मैनिफेस्टो' हमारे लिए बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है।

'प्लेग मैनिफेस्टो' में विवेकानन्द कहते हैं- 'भय से मुक्त रहें क्योंकि भय सबसे बड़ा पाप है। मन को हमेशा प्रसन्न रखो, मृत्यु तो अपरिहार्य है, उससे भय कैसा। कायरों को मृत्यु का भय सदैव द्रवित करता है, उन्होंने इस डर को दूर करने का आग्रह किया और कहा, 'आओ, हम इस झूठे भय को छोड़ दें और भगवान की असीम करूणा पर विश्वास रखें। अपनी कमर कस लें और सेवा कार्य के क्षेत्र में प्रवेश करें। हमें शुद्ध और स्वच्छ जीवन जीना चाहिए। रोग, महामारी का डर, आदि ईश्वर की कृपा से विलुप्त हो जाएगा।[14]

स्वामी विवेकानन्द ने आगे कहा था- घर और इसके परिसर, कमरे, कपड़े, बिस्तर, जाली आदि को हमेशा स्वच्छ बनाए रखें। बासी, खराब भोजन न करें, इसके बजाय ताजा और पौष्टिक भोजन लें। कमजोर शरीर में बीमारी की आशंका अधिक होती है। महामारी की अवधि के दौराना, क्रोध से और वासना से दूर रहें- भले ही आप गृहस्थ हों। उन्होंने अफवाहों से न घबराने तथा उसकी ओर ध्यान न देने को कहा।

इस प्रकार हमें आज के वर्तमान परिवेश में जहाँ 'कोरोना वायरस' के बारे में डर, भय और अफवाह फैलाई जा रही है उससे बचना चाहिए और स्वामी विवेकानन्द के इस संदेश और भगिनी निवेदता के कार्य को ध्यान में रखते हुए सावधानियाँ बरतनी चाहिए। विवेकानन्द के विचारों से उनका मार्गदर्शन हमें सदैव मिलता रहता है चाहे वह जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो।

बाह्य आक्रमण का डर - भारत को बाह्य आक्रमण का खतरा किसी और से नहीं बल्कि अपने पड़ोसी देशों से है। भारत का अपने पड़ोसी देश चीन, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश के साथ सीमा विवाद है। यह बात सही है कि पड़ोसी खुशहाल और तरक्की पसंद हो तो उससे खतरे की आधी चिन्ता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। भारत के मामले में स्थितियाँ थोड़ी अलग हैं। बीच-बीच में सीमा संबंधी अनेक विवाद फिर से युद्ध के हालात पैदा करते रहते हैं। भारत चीन का अनेक मुददों पर विरोध करता है क्योंकि वह एशिया की सर्वोच्च शक्ति बनना चाहता है। इस तरह सीमा पर पड़ोसियों की आक्रमकता हमें तैयारी के लिए बाध्य करती रहती है।

भारत -पाक विवाद : कश्मीर के अलावा भारत-पाकिस्तान के बीच कई और मुद्दे हैं जिन्हें लेकर अभी भी विवाद बना हुआ है। ये कुछ प्रमुख विवाद हैं जिनकी वजह से आज भी दोनों रिश्तों में खटास है- सियाचीन विवाद, सिंधु जल समझौता, सर क्रीक विवाद, आतंकवाद।

भारत - चीन विवाद : भारत और चीन के मध्य होने वाले इस विवाद के निम्न कारण भी हैं- तिब्बत, अक्साई चिन रोड, विवादित सीमा, अरूणांचल, ब्रह्मपुत्र, हिंद महासागर, पीओके, साउथ चाइना सी।

भारत - बांग्लादेश विवाद : बांग्लादेश की स्वतंत्रता के बाद से भारत तीन मुद्दों पर चिंतित है। बांग्लादेश की आंतरिक स्थिरता चीन के साथ सामरिक संबंध और भारत के जनजातीय विद्रोहियों के साथ देश की कथित भागीदारी, इसी तरह भारत बांग्लादेश के बीच विवाद के निम्न कारण भी हैं- सीमा विवाद, जल विवाद, अवैध प्रवासन, सुरक्षा संबंधी चिंताए।[15]

अतः भारत की बाह्य सुरक्षा पर विचार करते समय देश के नीति-निर्माता अपने दिमाग में अपने छोटे पड़ोसियों के आर्थिक पिछड़ेपन और राजनैतिक अस्थिरता, पाकिस्तान के भारत के साथ लगातार शत्रुतापूर्ण संबंधों को रखते हैं। उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि छोटे देशों की कमजोरी से उत्पन्न खतरों की और बड़े देशों के इरादों से पैदा खतरों की प्रकृति भिन्न होती है। चीन और पाकिस्तान भिन्न है और उनके लिए भिन्न प्रतिक्रिया की आवश्यकता है। इसी तरह अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिए स्वामी विवेकानन्द के शिकागो धर्म महासभा में विश्वशान्ति के लिये दिये गये ये विचार भी हमारे लिए प्रेरणा का काम करते हैं- ''साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और इनसे उत्पन्न भयंकर धर्म-विषयक उन्मत्तता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुके हैं। इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गयी, इन्होंने अनेक बार मानव रक्त से धरणी को सींचा, सभ्यता नष्ट कर डाली तथा समस्त जातियों को

हताश कर डाला। यदि यह सब न होता, तो मानव समाज आज की अवस्था से कई अधिक उन्नत हो गया होता पर अब उनका भी समय आ गया है, और मैं पूर्ण आशा करता हूं कि जो घंटे आज सुबह इस सभा के सम्मान के लिये बजाये गये हैं वे समस्त कट्टरताओं तलवार या लेखनी के बल पर किये जाने वाले समस्त अत्याचारों तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं के लिये मृत्यु-नाद ही सिद्ध होंगे''।[16] इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द अपने विचारों में हमेशा वैश्विक शान्ति और विश्वबन्धुता की बात करते थे। उनके इन्हीं विचारों का अनुसरण कर हम वर्तमान में वैश्विक शान्ति में उत्पन्न चुनौतियों का सामना कर सकते हैं।

वर्तमान भारत की आन्तरिक समस्याओं के सन्दर्भ में स्वामीजी की प्रासंगिकता : यह भारत का परम सौभाग्य था कि उसके इतिहास के ऐसे संकटपूर्ण काल में उत्तम नेतृत्व एवं पथ-प्रदर्शन के लिए यहाँ ऐसे शक्तिशाली और महान सन्त उत्पन्न हुए जिन्होंने इस देश की समस्याओं को दूर करने का हर संभव प्रयास किया तथा अपना समस्त जीवन इसी कार्य में समर्पित कर दिया। जिनका हृदय अपने देश की समस्याओं को देख द्रवित हो उठता था, ऐसे महान संत थे स्वामी विवेकानन्द। यदि आज के वर्तमान दौर में स्वामी विवेकानन्द पुनः इस धरा पर अवतरित होते तो उन्हें नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता। उनके समय में तो घर के संस्कारों को बाहर दूर तक फैलाना था, और आज पहले घर में घुस चुके कुसंस्कार को हटाना होगा। आज जरूरत है विवेकानन्द जी के विचारों को पहले खुद पर अमल करने की फिर लोगों तक पहुँचाने की। वर्तमान भारत की समस्याएँ तथा उनके सन्दर्भ में स्वामी जी के विचार इस प्रकार है-

जाति प्रथा : जातिप्रथा भारत में प्राचीन समय से ही विद्यमान थी, जो आज भी उतनी ही प्रबल है। आज हमें जातीयता के विरूद्ध अनेक नारे सुनाई देते हैं। जगह-जगह भावात्मक एकता के सम्मेलन किए जाते हैं और निरर्थक चर्चाएँ की जाती हैं। एक प्रचलित कहावत है- 'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की'। हमारे देश की ठीक यही स्थिति है। हम नहीं जानते कि हमें क्या करना है और हमारा साध्य क्या है? अतः हमारे सारे उपाय निष्फल हो रहे हैं। स्वामी जी ने हमारी वर्तमान स्थिति के कारणों को बड़ी स्पष्ट विवेचना की है। वे भारत की प्राचीन वर्ण व्यवस्था के विरोधी थे। उनके अनुसार आधुनिक युग में वर्ण व्यवस्था सामाजिक अत्याचारों को प्रोत्साहन देने वाली है। इस वर्ण व जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को खोखला कर दिया है।

वे आगे कहते हैं- ''समाज में भिन्न-भिन्न अभिरूचियों के लोग रहते हैं, इसलिए जाति-भेद उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सभी एक ही कार्य को समान कौशल से नहीं कर सकते हैं। यदि कोई समाज के नियमन की कला में पारंगत होता है, तो दूसरा जूते बनाने की कला में दक्ष होता है, किन्तु इसी आधार पर हम एक को दूसरे से श्रेष्ठ नहीं कह सकते, क्योंकि एक-दूसरे की कला एक-दूसरे के लिए दुःसाध्य है जातिभेद तो हमेशा रहेंगे। उन्हें तुम कभी नष्ट नहीं कर सकते। जहाँ मनुष्य समाज में रहेगा, वहाँ जातिभेद आवश्यक रूप से होगा। फिर भी, किसी विशेष जाति को किसी भी कारण से दूसरी जाति की अपेक्षा विशेष अधिकार नहीं मिलना चाहिए। हमें विशेषाधिकार के पागलपन को बिल्कुल निकाल देना होगा। प्रत्येक व्यक्ति में एक परमेश्वर व्याप्त है, भले ही वह कोयला बेचे या वेदान्त के तत्वों का ज्ञाता हो, हमें इसी बात को प्रसारित करने की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है।''[17] हमें विवेकानन्द के इन्हीं विचारों को अपनाने की जरूरत है जिससे समाज में जातिप्रथा को कम किया जा सकता है।

साम्प्रदायिकता : साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस संकीर्ण मनोवृत्ति है, जो धर्म और संप्रदाय के नाम पर पूरे समाज तथा राष्ट्र के व्यापक हितों के विरूद्ध व्यक्ति को केवल अपने व्यक्तिगत धर्म व संप्रदाय के हितों को प्रोत्साहित करने और उन्हें संरक्षण देने की भावना को महत्व देती है। साम्प्रदायिकता की भावना अपने धर्म के प्रति अंध-भक्ति तथा दूसरे धर्म और उसके अनुयायियों के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न करती है। विवेकानन्द जी ने इस साम्प्रदायिकता का विरोध किया एवं साम्प्रदायिक सद्भाव पर बल दिया। वे कहते थे जब तक हम लोग एक-दूसरे के साथ सद्भाव नहीं सीखते, तब तक कोई भी सभ्यता सिर नहीं उठा सकती, और इस पारस्परिक सद्भाव की पहली सीढ़ी है- एक दूसरे के धार्मिक विश्वास के प्रति सहानुभूति प्रकट करना।

27 सितम्बर, 1893 को धर्ममहासभा के अन्तिम दिन मानो गौर के शिखर पर खड़े होकर उन्होंने कहा- ''इस धर्म महासभा ने यदि जगत को कुछ दिखाया है तो वह यही कि पवित्रता, शुद्धता और दयाशीलता किसी विशेष

सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं है तथा प्रत्येक धर्म में महान और सदचरित्र नर-नारियों का जन्म हुआ है। इस प्रमाण के होते हुए भी यदि कोई स्वप्न देखे कि अन्य सभी धर्म लुप्त हो जाएँगे और एकमात्र उसी का धर्म बचा रहेगा तो मुझे उस पर दया आती है, मैं उसके लिए बहुत दुःखी होता हूँ। मैं यह स्पष्ट कहता हूँ कि शीघ्र ही हम देखेंगे कि सारे प्रतिरोधों के बावजूद हर धर्म की पताका पर लिखा होगा-युद्ध नहीं-सहायता, विनाश नहीं-ग्रहण, मतभेद और कलह नहीं मिलन और शान्ति।''[18]

शिकागो संबोधन की यह प्रमुख बात आज के आक्रामक हिन्दू तथा मुसलमानों व साम्प्रदायिकता की राजनीति को सिरे से रद्द करती है। कितने बड़े आश्चर्य की बात है, स्वामी विवेकानन्द ने यह भाषण आज से 129 साल पहले दिया था, लेकिन आज भी दुनिया के अनेक हिस्से उसी महा-व्याधि से पीड़ित हैं जिसकी उस महान् भारतीय स्वामी ने तब चर्चा की थी। अतः ऐसे समय में आज भी उनके विचार हमारे लिए प्रासंगिक बने हुए हैं।

गरीबी : गरीबी बहुत सी-आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है इसलिए गरीबी की समस्या को हल करने के लिए स्वयं गरीबी की संकल्पना से परे जाना होगा। यह जानना काफी नहीं कि कितने लोग गरीब हैं। बल्कि यह जानना महत्वपूर्ण है कि गरीब लोग कितने गरीब हैं। गरीबों को केवल सस्ती शिक्षा, सस्ता अनाज और सस्ती दवाईयां, सस्ता आवास दे देने मात्र से उनकी गरीबी दूर नहीं होगी। गरीबों के जीवन स्तर को जिन्दा रहने लायक स्तर से ऊपर उठाना होगा।

स्वामी विवेकानन्द जी एक ऐसे महापुरूष थे जिनका मन भारत के गरीबों के लिए रोता था। उनके हृदय में गरीबों के लिए असीम दयाभाव था। वे इनके उत्थान के लिए निरन्तर प्रयासरत थे। उन्होंने घोषणा की थी-''दुखियों के दर्द का अनुभव करो और सहायता की याचना करो-वह आएगी है और उसे आना ही होगा।''[19] क्योंकि स्वामी जी का विश्वास था कि ईश्वर भी गरीबों के लिए पीड़ा का अनुभव करता है, फिर भी समाज ने उनकी कितनी उपेक्षा की है। वे गरज उठे थे, ''स्मरण रहे, राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है। शूद्र ही धन के सच्चे उत्पाद है। फिर भी उनकी सदैव से उपेक्षा की जाती रही है और कल्पनातीत काल से चले आए इस अत्याचार और शोषण के फलस्वरूप ये शूद्र पशुवत् हो गए हैं तथा ऊपर उठने की प्रेरणा भी खो बैठे हैं। उनके परिश्रम के फल का बेहद शोषण और दुरूपयोग हुआ है। ये लोग अभी तक मानव बुद्धि द्वारा परिचालित यंत्र की तरह एक ही भाव से काम करते आए हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सारा निचोड़ लेते रहे हैं।''[20]

विवेकानन्द जी की इन दो बातों से साफ है कि वे इस बड़ी समस्या का समाधान गरीबों को लेकर हमारे दृष्टिकोण में बदलाव के रूप में दे रहे हैं। आज का एक बड़ा व बुद्धिजीवी वर्ग मानता है कि आज अगर देश के नीति निर्धारक गरीबों को लेकर सिर्फ अपना दृष्टिकोण बदल लें तो फिर जो नीतियाँ बनेंगी, वे असल अर्थों में गरीबपरस्त होगी। यही कारण है कि उनके ये विचार वर्तमान परिस्थिति में भी प्रासंगिक हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था : स्वामी विवेकानन्द वर्तमान शिक्षा प्रणाली को उपयुक्त नहीं समझते थे। उनका आक्षेप था कि वर्तमान शिक्षा ऐसी है जो मनुष्य और उसके चरित्र का निर्माण नहीं करती। शिक्षा का अर्थ केवल इतना ही नहीं होता कि अपने दिमाग में सब तरह की जानकारी भरकर उसे वाटरलू का युद्ध क्षेत्र बना दिया जाए। शिक्षा का लक्ष्य तो जीवन का निर्माण है, चरित्र का निर्माण है, मानव का निर्माण हैं। वर्तमान शिक्षा इन लक्ष्यों की पूर्ति में सहयोगी नहीं है। उन्होंने वर्तमान शिक्षा को अभावात्मक बताया जहाँ छात्रों में अपनी संस्कृति के बारे में सीखने को कुछ नहीं मिलता। जहाँ उनको जीवन के वास्तविक मूल्यों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। जहाँ शिक्षार्थी में श्रद्धा का अभाव पनपता है। केवल पुस्तकालय को दिमाग में भर लेने से तो यह अधिक अच्छा है कि किन्हीं भी पाँच अच्छी बातों को लेकर अपने जीवन का निर्माण किया जाए।

स्वामी जी के शिक्षा दर्शन का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन का निर्माण करना है। अतः स्वामी जी के अनुसार-''वही शिक्षा, शिक्षा है जो मानव का निर्माण करके उसे फल सिद्धि के लिए सक्षम बनाये''।[21] इसके साथ ही स्वामी विवेकानन्द जी ने पाश्चात्य देशों की उन्नति का प्रमुख कारण तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा को माना हैं वे भारत की प्रचलित शिक्षा प्रणाली को बदलकर उसके स्थान पर जीविकोपार्जन प्रदान करने वाली शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे, उनके अनुसार वर्तमान शिक्षा व्यवस्था लोगों को नौकरीपरक व बेरोजगार बना रही है। अतः उन्हें पाश्चात्य विज्ञान अर्थात् व्यवसायिक, तकनीकी, औद्योगिक तथा यांत्रिक शिक्षा दी जानी चाहिए। इससे भारतवासी आत्मनिर्भर बनेंगे तथा विश्व के विकसित देशों

की भॉति अपना विकास कर सकेंगे।

वर्तमान शिक्षा की समस्याओं के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन से सार्थक समाधान निकलकर सामने आते हैं। उनके चिन्तन में शिक्षा के सनातन मूल्य एवं व्यवाहारिक आदर्श मौजूद हैं इस तरह स्वामी जी के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षण प्रक्रियाओं में शिक्षा जगत् की वर्तमान समस्याओं का समग्र समाधान प्राप्त होता है। यही कारण है कि भारत सरकार की नई शिक्षा नीति 2020 पूरी तरह से स्वामी जी की शिक्षा दर्शन पर आधारित है।

महिलाओं की उपेक्षा : नारी शक्ति के बिना इस संसार में मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता है क्योंकि बिना नारी शक्ति उसकी दशा बिना इन्जन वाली गाड़ी जैसी होती है। नारी शक्ति की आगुवाई व निर्देशन में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति हुयी और नारी शक्ति की ही देखरेख में ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना शुरू की। नारी शक्ति को अगर इस सृष्टि का मूल कहा जायेगा तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यही कारण है कि नारी को शक्ति व देवी स्वरूपा माना जाता है, कहा भी गया है कि- ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।''[22] मतलब जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ पर देवताओं का वास होता है। इन सबके बावजूद समय के साथ-साथ नारी को अनेक प्रकार के अत्याचारों का सामना करना पड़ा है, कभी सती प्रथा, बालविवाह, असमानता आदि। आज हम भले ही विकसित होकर चाँद पर पहुँच गये हों लेकिन नारी आज भी विकास की मुख्यधारा में पूर्ण रूपेण सम्मिलित नहीं हो सकी है। एक तरफ आज जहॉ नारी अंतरिक्ष की यात्रा कर हर स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है वहीं कुछ देशों में आज भी औरतों को गुलाम बनाकर रखा जा रहा है। आतंकवादी व नक्सलवादी इनका शोषण कर इन्हें खिलौना व अपनी ढाल बनाये हुये हैं।

स्वामी जी स्त्री और पुरूषों में कोई भेदभाव नहीं करते थे। विवेकानन्द जी चाहते थे कि स्त्रियों और पुरूषों के साथ एक जैसा व्यवहार होना चाहिए। उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल दिया तथा उनका मत था कि स्त्रियों को पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। स्त्री शिक्षा के विषय में विवेकानन्द के मन में कुछ सुनिश्चित विचार थे। उन्होंने एकबार कहा था- ''हमारी नारियों को धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृह कार्य, भोजन बनाना, सिलाई, स्वास्थ्य आदि सब विषयों की मोटी-मोटी बातें सिखलाना उचित है।[23]

इस प्रकार स्वामी जी नरियों की शिक्षा और समानता के सच्चे समर्थक थे। वे उन्हें पुरूषों के समान अधिकार देने की बात करते थे, साथ ही उन्होंने आधुनिक नारियों को, जो प्रगति के नाम पर रूपान्तरण पर चल पड़ी हैं को सचेत करते हुए कहा था कि वे प्राचीन आदर्शो के आधार पर ही अपनी उन्नति एवं प्रगति करें और साथ ही नागरिक कार्यो के क्षेत्र में भी अपने प्रभाव का विस्तार करें, वे अपना आदर्श 'सीता' को रखे। इससे उनका पारिवारिक जीवन सुखी होगा, नागरिक जीवन सहायक होगा और आध्यात्मिक जीवन समृद्ध होगा। अतः आज जरूरत है तो समाज के सभी लोगों को साथ में महिलाओं को भी कि वे स्वामी जी के इन विचारों को अपने में आत्मसात करें तभी हम अपनी उन्नति कर सकेंगे।

भौतिकवाद और अंधविश्वास : आज जब हम अपनी युवा पीढ़ी को देखते हैं तो ऐसा लगता है मानों उन पर पश्चिमी सभ्यता का रंग पूरी तरह से चढ़ गया है। ये लोग अंग्रेजी भाषा बोलने व अपने पहनावे में पूरी तरह विदेशी हो रहे हैं। ये अपनी सम्भ्यता व संस्कृति को भूल रहे हैं। जो आने वाले खतरे का संकेत भी है। ऐसे लोग त्रिशंकु के समान दोनों संस्कृतियों के बीच झूलते हुए दोनों से वही अंश ग्रहण करना चाहते थे, जिससे उनका स्वार्थ सिद्ध हो। यह वर्ग किसी भी पक्ष के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को नहीं निभाना चाहता था। ऐसे लोगों का घोर तिरस्कार करते हुए स्वामी जी कहते हैं, ''आज ऐसे भी लोग हैं, जो पाश्चात्य ज्ञान की प्याली पीकर अपने को सर्वज्ञ समझने लगे हैं। उनके लिए समस्त हिन्दू विचारधारा निरा कूड़ा-कर्कट हैं। भारतीय दर्शन बालसुलभ वाचालता है और धर्म मूढ़ों का अंधविश्वास है।[24]

स्वामी जी कहते हैं, ''चमत्कार और अंधविश्वास को सदैव दुर्बलता, पतन एवं मृत्यु का ही लक्षण मानना चाहिए। अतः इनसे बचो। इस तरह स्वामीजी भौतिकवाद व अंधविश्वास के कट्र विरोधी थे। इसका मतलब यह नहीं कि वे आधुनिकता के विरोधी थे। वे तो आधुनिकता के समर्थक थे वे कहते थे - ''कूपमंडूक मत बनो, विदेशों में जाओं उनसे अच्छी बातों को ग्रहण करों पर अपनी सभ्यता व संस्कृति को मत भूलो''।[25]

इस प्रकार स्वामी जी के इन विचारों को अपनाकर हम नवभारत का निर्माण कर सकते हैं। उनके विचारों की प्रासंगिकता यहीं है कि वे समय के साथ और भी महत्वपूर्ण होते गये।

वर्तमान युवाओं के सन्दर्भ में स्वामीजी की प्रासंगिकताः

भारत और दुनिया के युवाओं को प्रभावित करने वाले महापुरूषों में स्वामी विवेकानन्द एक बड़ा नाम है। उनके शिकागों में 1893 में दिए गए भाषण ने उन्हें भारतीय दर्शन और आध्यात्म का अग्रदूत बना दिया। तब से आज तक उनके विचार युवाओं को प्रभावित कर रहे हैं। आज के दौर में जब युवा नई समस्याओं का सामना कर रहे हैं, नए लक्ष्य तय कर रहे हैं और अपने लिए एक बेहतर भविष्य की आकांक्षा रख रहे हैं तो स्वामी विवेकानन्द के विचार और भी प्रासंगिक हो जाते हैं।

स्वामी जी का मानना था कि अधिकतर युवा सफल और अर्थपूर्ण जीवन तो जीना चाहते हैं लेकिन अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए वे शारीरिक रूप से तैयार नहीं होते। इसलिए स्वामी जी ने युवाओं से अपील की कि वे निर्भय बने और अपने आपको शारीरिक रूप से स्वस्थ बनाएँ। स्वामीजी कहते थे कि– ''किसी भी तरीके का भय न करो। निर्भय बनो। सारी शक्ति तुम्हारे अन्दर ही है। कभी भी मत सोचो कि तुम कमजोर हो। उठो, जागो और तब तक ना रूको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।''[26] वे हमेशा मानसिक रूप से मजबूत होने की बात भी कहते थे। गीता पाठ के साथ-साथ फुटबॉल खेलने को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने साफ कहा कि शक्ति ही जीवन है, कमजोरी ही मृत्यु है और कोई भौतिक जीवन का सुख नहीं ले सकता अगर ताकतवर नहीं है तो। इसलिए सबसे पहले स्वयं को शारीरिक व मानसकि रूप से मजबूत बनाओ।

आज का युवा जब लक्ष्यविहीन हो रहा है और भौतिक सुख के पीछे भागते हुए मानसिक तनाव और थकान झेल रहा है उसके लिए स्वामी विवेकानन्द द्वारा सुझाये गये ये आध्यात्मिक मार्ग बहुत कारगर हैं। उन्होंने युवाओं को आध्यात्मिक बनने की बात कही जिससे उन्हें सिर्फ अपने लक्ष्य पाने में आसानी ना हो बल्कि वे जीवन में महानतम लक्ष्य बना सकें।

निष्कर्ष : आज जब भारत असुरक्षा, बाह्य आक्रमण, आतंकवाद, वैश्विक महामारी, जातिवाद, गरीबी तथा शिक्षा व साम्प्रदायिकता आदि अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है, समूची पीढ़ी दिग्भ्रमित हो रही है, ऐसे समय में हमें स्वामी विवेकानन्द के विचारों को पढ़ना पड़ेगा क्योंकि उनके विचार तत्कालीन भारतीय समाज के लिए ही नहीं बल्कि वर्तमान भारत के लिए भी प्रासंगिक हैं। स्वामी विवेकानन्द ने अपने विचारों द्वारा मनुष्य को जगाने का काम किया था। वे मनुष्य को आध्यात्मिक बनाना चाहते थे जिससे वह अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सकें। विवेकानन्द तत्कालीन देश और समाज की विसंगतियों और विषमताओं से परिचित थे, उन्होंने भविष्य के भारत की संभावित खतरनाक अवधारणाओं को अपनी दूर दृष्टि से देखा था। तभी तो उन्होंने कहा था कि हमारी मातृभूमि को धार्मिक एकता की आवश्यकता है जिसकी वर्तमान भारत को सबसे अधिक जरूरत है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द एक युग नायक है, भारतीय पुर्नजागरण के प्रमुख सितारे हैं। स्वामीजी विश्व शान्ति के संदेशवाहक, युवाओं के प्रेरणा स्त्रोत, कर्म चिंतक, वेदान्त सम्प्रदाय के तत्वज्ञानी, आध्यात्मवाद, महान सृजनात्मक विभूति समाजवाद के सूत्रधार दैवीय व्यक्तित्व व बहुमुखी, प्रतिभा के धनी कहे जा सकते हैं। उन्होंने धार्मिक आडम्बरों, जातिगत भेदभाव, छुआछूत स्त्रियों से सम्बन्धित भेदभावों का प्रबल विरोध किया था। वह सच्चे अर्थो में एक समाज सुधारक, धार्मिक सन्त, देशभक्त व भारतीय राष्ट्रवाद के लिए देवदूत थे। एक पत्रिका में स्वामी विवेकानन्द पर विशेषांक निकला था इसमें छपे अपने लेख में तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने लिखा था– ''हमारे जीवन में स्वामी विवेकानन्द एक ऐसे तारे के रूप में हैं जो ज्ञान और उम्मीदों से भरा हैं। उन्होंने यह साबित किया है कि बगैर देह के भी वे हर जगह लोगों को हर समय प्रेरित करते रहेंगे।''[27]

सन्दर्भ

1. वर्मा विश्वनाथ प्रसाद, 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1971, पृ.585।
2. विवेकानन्द साहित्य (पंचम खण्ड), अद्वैत आश्रम कोलकाता 2014, पृ.170।
3. विवेकानन्द स्वामी, 'वर्तमान भारत', रामकृष्णमठ, 1999, पृ. 63।
4. मनराल मोहन सिंह, 'उत्तराखण्ड में स्वामी विवेकानन्द', अल्मोड़ा किताब घर 2010।
5. गुप्त परशुराम, 'विवेकानन्द और राष्ट्रवाद', प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 2013।
6. रंगाचार्य देविका, 'द कम्पलीट वर्क ऑफ स्वामी विवेकानन्द', पेंगुइन बुक्स लि0, 2015।
7. शंकर, 'विवेकानन्द की आत्मकथा', प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2017
8. संजीत, 'स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता', कावा इंटरनेशन जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, 2018
9. राजस्वी, एम.आई., 'विश्वगुरू विवेकानन्द', प्रकाश बुक्स, नई दिल्ली, 2019
10. लखेड़ा प्रकाश, 'स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में व्यवहारिक वेदान्त', भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में, 'भारतीय संस्कृति के विवध आयाम', कुमुद पब्लिकेशन, दिल्ली, 2022
11. विदेहात्मानन्द स्वामी, 'स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान', अद्वैत आश्रम कोलकत्ता, 2002, पृ. 193।
12. https://ww.drishtvas.com
13. विवेकानन्द स्वामी, 'मेरा भारत अमर भारत', रामकृष्णमठ, धन्तोली, नागपुर 2009, पृ. 33
14. Atmaprana Prakrajika, 'Sister Nivedita', Sister Nivedita Girls School, 1961, pp. 74-76
15. फड़िया, 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति', साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2012, पृ. 275
16. विवेकानन्द स्वामी, 'शिकागो वकृत्ता', रामकृष्णमठ, धन्तोली, नागपुर 2012, पृ. 09
17. विदेहात्मानन्द, पूर्वोक्त, पृ.126
18. अपूर्वानन्द स्वामी, 'स्वामी विवेकानन्द संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश', रामकृष्णमठ, धन्तोली, नागपुर, 1985, पृ. 51
19. 'विवेकानन्द साहित्य (प्रथम खण्ड)', स्वामी विवेकानन्द का पत्र, 20 अगस्त 1893 ई0 को अपने भारतीय मित्र को लिखा गया, पृ.405
20. विदेहात्मानन्द, पूर्वोक्त, पृ. 159
21. विवेकानन्द स्वामी, 'हमारी शिक्षा', रामकृष्णमठ नागपुर, 2001, पृ. 75
22. मनुस्मृति, 3.56
23. विवेकानन्द स्वामी, 'भारतीय नारी', श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 2001, पृ. 33।
24. विदेहात्मानन्द, पूर्वोक्त, पृ.182
25. 'विवेकानन्द साहित्य (प्रथम खण्ड)', स्वामी विवेकानन्द का पत्र, 10 जुलाई 1893 ई0 को आलासिंगा को लिखा गया, पृ. 399
26. विवेकानन्द स्वामी, 'युवकों के प्रति', रामकृष्ठ मठ, नागपुर, 1998, पृ.85
27. https://hindi.webdunia.com>swami...

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

मनरेगा योजना का ग्रामीण विकास के संदर्भ में मूल्यांकन

❑ देवादास बंजारे
❖ प्रोफेसर मनीषा महापात्र

सूचक शब्दः हितग्राहीमूलक कार्य, आजीविका, ग्रामीण विकास, नवाचार, मनरेगा 2.0।

मनरेगा ने ग्रामीण परिवारों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया है। मनरेगा ने ग्रामीण समाज में भुखमरी, कुपोषण, स्वास्थ्य, आवास से सम्बंधित चुनौतियों को कम किया है। जीवनयापन के लिए शहरों की ओर हो रहे पलायन को कम किया है। पंचायती राज की भूमिकाओं को प्रबल बनाने एवं स्थानीय निकायों के निर्णय द्वारा स्थाई एवं उपयोगी संपत्तियों का निर्माण हुआ है। श्रमिकों के हितों को सुरक्षा मिली है। आज ग्रामीण समाज ने समतामूलक एवं विकेन्द्रीकृत सामाजिक व्यवस्था का रूप ले लिया है और ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराने में अहम योगदान दिया है।[1] सामाजिक न्याय के सपनों को पूरा करने के लिए मनरेगा कार्यक्रम में व्यापक बदलाव लाया गया जिसे मनरेगा 2.0 के रूप में देखा गया है। प्राथमिकता के आधार पर कामों को सूचीबद्ध किया गया है एवं पिछले कुछ वर्षों के दौरान इस योजना में कृषि, हितग्राहीमूलक कार्यों, जल संरक्षण, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, सिंचाई एवं इससे जुड़ी गतिविधियों को मजबूत बनाने वाली परियोजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रोजगार सृजन के साथ साथ बहु-फसलों और उत्पादकता में सुधार हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों की आमदनी बढ़ी है। परिवारों की आजीविका पहले से ज्यादा सुरक्षित हुई है।[2] प्रस्तुत अध्ययन में हितग्राहीमूलक कार्यों के आधार पर हितग्राहियों के जीवन एवं ग्राम में हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है एवं ग्रामीण विकास के संदर्भ में योजना की प्रासंगिकता का मूल्यांकन किया गया है।

योजना का मुख्य उद्देश्य समावेशी विकास, सामाजिक संरक्षण व आजीविका सुरक्षा है। यह ग्रामीण भारत में समावेशी विकास को सुनिश्चित कराने का सशक्त माध्यम है।[3] ग्रामीणों के जीवन स्तर और गुणवत्ता में सुधार के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना के रूप में जाना जाता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत प्रमुख योजना में से एक महत्वपूर्ण योजना है जिसने ग्रामीण समाज में निरंतर रोजगार के अवसर बढ़ाने के साथ ही सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने का कार्य किया है।[4] जब पूरे भारत में कोरोना संकट के मध्य रिवर्स प्रवास की समस्या थी, उस समय भी ग्रामीण समाज में श्रमिकों के दबाव और बढ़ी, नकारात्मक आर्थिक परिस्थितियों में भी मनरेगा योजना प्रभावशाली रही और लोगों के लिये इस कठिन समय में जादू से कम नहीं थी।[5]

मनरेगा का प्रारंभ वर्ष 2006 में हुआ था। आज संपूर्ण भारत में करीब सभी जिलों में इस योजना का कार्यान्वयन हो रहा है।[6] ग्रामीण समाज में प्रत्येक परिवार को कानूनी रूप से 100 दिन रोजगार उपलब्ध कराने का उपबंध किया गया है।[7] खास बात यह है कि जनजातीय इलाकों में 100 दिन रोजगार के अतिरिक्त 50 दिन रोजगार एवं वनाधिकार पट्टाधारियों के लिए अतिरिक्त 50 दिन रोजगार का प्रदान किये जाने का विशेष प्रावधान है। वस्तुतः विशेष रूप से अविकसित और आदिवासी क्षेत्रों में सहायक बना है।[8] सभी रोजगारमूलक कार्यों में 33 प्रतिशत महिलाओं एवं संवेदनशील समूह को प्राथमिकता क्रम में योजना का लाभ देने का विशेष उल्लेख है।[9] परिवार के किसी वयस्क सदस्य द्वारा काम की मांग के 15 दिवस के अंदर कार्य प्रदान किया जाना है, अन्यथा बेरोजगारी भत्ता की पात्रता होगी। मजदूरी का भुगतान कार्य समाप्ति के 15 दिवस के अंदर किया जाना है एवं विलंब भुगतान के लिए अतिरिक्त क्षतिपूर्ति राशि प्रदान करने का व्यवस्था है।[10] मजदूरी का भुगतान, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (डी. बी.टी) के माध्यम से कार्यान्वयन किया जा रहा, ताकि वित्तीय समावेशन को प्रभावी बनाया जा सके।[11] योजना में मजदूर एवं सामग्री से सम्बंधित कार्यो का अनुपात 60:40 रखा गया है, ताकि अधिक से अधिक रोजगार-परक कार्यों का कार्यान्वयन हो सके एवं पैसा सीधा अंतिम छोर के व्यक्ति

❑ शोध अध्येता, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय-रायपुर (छत्तीसगढ़)
❖ प्रोफेसर, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय-रायपुर (छत्तीसगढ़)

तक पहुंच सके।[12]

मनरेगा के प्रारंभिक वर्षों में योजना केवल सार्वजनिक कार्य तक ही सीमित थी, आज इस योजना में व्यापक बदलाव किया गया है। सार्वजनिक कार्यों के साथ-साथ हितग्राहीमूलक कार्यों एवं निजी कार्य को विशेष प्राथमिकता एवं स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप प्रदान करने का उपबंध किया गया है जिसमें अधिकतर कार्य हितग्राहीमूलक एवं कृषि से संबंधित कार्य हैं जिसमें हितग्राहियों के लिये निजी कार्य एवं कृषि संबंधित परंपरागत कार्य को सम्मिलित किया गया है।[13] महिलाओं को योजना में विशेष प्राथमिकता देते हुए विभिन्न कार्यों का लाभ दिया जा रहा है जिससे समाज के अंदर भेदभाव में कमी आई है। रोजगार प्राप्ति की संभावनाओं में भी वृद्धि हुई है। महिलाओं को समय पर कार्य मिल जाने एवं रोजगार प्राप्ति से वे आत्मनिर्भर व स्वावलंबी हुई हैं। इस प्रकार योजना द्वारा महिलाओं के सशक्तीकरण के रूप में एक सार्थक पहल की गयी है।[14]

मनरेगा 2.0 के अंतर्गत हितग्राहीमूलक कार्य एवं निजी कार्यों को विशेष प्राथमिकता दी जा रही है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निरंतर सुधार होगा एवं श्रमिकों की आय में वृद्धि होगी। सरकार ने मनरेगा के अंतर्गत 250 कार्यों की अनुमति दी है, इसमें 164 काम सीधे कृषि से सम्बंधित कार्यकलापों से जुड़े हुए हैं। पंचायतों का अपनी स्थानीय आवश्यकताओं एवं विशेष प्राथमिकताओं के अनुसार कार्य कराने की सूची में नवीन उपबंध किया गया है जिससे ग्रामीण समाज का निरंतर विकास हो एवं योजना से निर्मित स्थाई एवं टिकाऊ परिसंपत्तियों का लाभ हितग्राहियों को मिल सके।[15] ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर को अधिक से अधिक बढ़ाने का कार्य किया है। श्रमिकों की कार्य दशाएं सुधारने में कार्य किया है। सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने के महत्वपूर्ण कार्य किया है।[16] जल संरक्षण, सूखारोधी उपाय, वृक्षारोपण और लघु सिंचाई, बागवानी, भूमि सुधार, बाढ़ नियंत्रण, बारामासी सड़कें, पंचायत भवन का निर्माण, खेल मैदान, फेसिंग परियोजना, स्वच्छता सुविधाएं इत्यादि कार्यो का कार्यान्वयन मुख्यतः सम्मिलित है।[17] इन परिसंपत्तियों के निर्माण कार्यो की जियो-ट्रैकिंग के माध्यम से निगरानी की जा रही है, ताकि गुणवत्तापूर्ण परिसंपत्तियों का निर्माण हो सके।[18]

विभिन्न संस्थागत परिवर्तनों के बाद भी जैसे-अनुत्पादक कार्यों की समस्या, प्रशासनिक जटिलता की समस्या, व्यर्थ के कामों से छुटकारा पाने की चुनौतियां, सामूहिक सौदेबाजी की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, घटिया और अस्थाई परिसंपत्तियों का निर्माण इत्यादि परिघटनाएं देखी जा सकती हैं।[19] पंचायतों में अल्प प्राथमिकता वाले कामों का चुनाव होता है जिसमें ग्रामसभा का समर्थन का प्रायः अभाव पाया जाता है। मनरेगा के सफल क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा भ्रष्टाचार है।[20]

साहित्य समीक्षाः- सुमित अग्रवाल एवं एम. माधुरी देवी[21] ने अपने शोध पत्र में छत्तीसगढ़ राज्य में महिला सशक्तीकरण की दिशा में योजना की भूमिकाओं का अध्ययन किया है। आपने ग्रामीण महिलाओं पर योजना के सकारात्मक प्रभावों का केस स्टडी किया है। आपने अपने अध्ययन में पाया कि महिलाओं का सशक्तीकरण कम हुआ है परंतु सामाजिक-आर्थिक रूप से सशक्त हुई हैं। लिंग तटस्थ उपाय जैसे कार्यान्वयन से महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है। आपने सुझाव दिया है कि कार्यस्थल सुविधाएं, समय पर मजदूरी का भुगतान, शिकायत निवारण प्रणाली तथा अधिक से अधिक लाभार्थी को प्रोत्साहित करने की जरूरत है।[21]

मफ्रुरजा सुल्ताना एवं के. एस. श्रीनिवास राव[22] ने अपने शोध पत्र में पश्चिम बंगाल राज्य में सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण से योजना का अवलोकन किया है। आपके अध्ययन का उद्देश्य मनरेगा के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक विकास और महिला सशक्तीकरण पर आधारित है। विशेष रूप से पश्चिम बंगाल में महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण पर योजना के प्रभावों का विश्लेषण करना है। आपने पाया है कि पश्चिम बंगाल राज्य के अधिकांश ग्राम पंचायतों में सफलतापूर्वक लागू किया जा रहा है। महिला श्रमिक, इस योजना की प्रमुख सहभागी हैं। आय या उपभोग में कुछ सुधार हुआ है। आपने सुझाव दिए है कि भविष्य में ग्रामीण विकास और महिला सशक्तीकरण पर मनरेगा की एक बड़ी भूमिका और प्रभाव देखा जा सकता है, इसलिए महिलाओं की प्राथमिकता सुनिश्चित की जानी चाहिए।[22]

डी. एस. खरे, ए. के. त्रिपाठी, ए. रॉय, एस. एम. फिरोज, आर. सारावनान एवं एन. यू. सिंह[23] ने अपने शोध पत्र में मनरेगा योजना के द्वारा मेघालय राज्य में रोजगार और आय सृजन में हुए बदलाव की व्याख्या की है। आपने ग्रामीण परिवारों की आजीविका सुधार के अनुरूप कार्यक्रम के प्रभावों का अध्ययन किया है। आपने अध्ययन मेघालय के पूर्वी खासी हिल्स जिले में किया है। प्राथमिक डेटा का संग्रहण पूर्व-संरचित साक्षात्कार अनुसूची

के माध्यम से किया है। मल्टीस्टेज रैंडम सैंपलिंग विधि के माध्यम से कुल 90 उत्तरदाताओं का चयन किया है। आपने अपने अध्ययन में पाया है कि मनरेगा में काम करने के बाद लाभार्थियों के भोजन और गैर-खाद्य पदार्थों पर औसत मासिक खर्च में वृद्धि हुई है। मनरेगा के कार्यान्वयन के बाद लाभार्थियों की आय में वृद्धि हुई है। इस प्रकार सामाजिक-आर्थिक विकास का नया मार्ग प्रशस्त हुआ है।[23]

दिव्या गुप्ता[24] ने अपने शोध कार्य में जम्मू संभाग में ग्रामीण श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर मनरेगा के प्रभावों का सामाजिक-कानूनी दृष्टि से अध्ययन किया है। आपके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य क्रियान्वयन एजेंसी की भूमिकायें और उनके कर्तव्यों, जम्मू संभाग में योजना के प्रभावों, लिंग संबंधित समस्याओं एवं महिला सशक्तीकरण की दिशा में किये गए कार्यों का अध्ययन करना है। आपने जम्मू संभाग के 10 जिलों में से 4 जिलों का चयन कर 4 ब्लॉक में 4 हल्का पंचायत का चयन कर कुल 64 पंचायतों के कुल 800 उत्तरदाताओं/मनरेगा लाभार्थी, 64 सरपंच, 16 ग्राम विकास अधिकारी का चयन दैव निर्दशन विधि से किया है। आपने अपने अध्ययन में पाया कि योजना से गरीबों एवं वंचित लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि हुआ है। आपने सुझाव दिया है कि पारदर्शिता एवं नियमित सामाजिक अंकेक्षण द्वारा योजना को उपयोगी बनाया जा सकता है। मजदूरी की राशि एवं दिनों की संख्या में भी वृद्धि करने की जरूरत है, ताकि योजना महत्वपूर्ण हो सके।

वी. ए. चाउदप्पा एवं बसावराज एस बन्नी[25] ने अपने शोध पत्र में बल्लारी जिला कल्याण, कर्नाटक क्षेत्र का अध्ययन किया है। आपके शोध का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के साथ साथ उनके आजीविका का साधन का अध्ययन करना है। आपने बल्लारी जिले के कुडलीगी और संदूर तालुकों में रहने वाले प्रत्येक तालुक से 100 लाभार्थियों/उत्तरदाताओं का चयन दैव निर्दशन विधि से किया गया है। अध्ययन के लिए एक संरचित प्रश्नावली तैयार की गई थी। आपने अपने अध्ययन में पाया कि कार्यक्रम ने ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक अर्थव्यवस्था में सुधार लाने में बहुत अच्छा काम किया है। आपने सुझाव दिया है कि कार्यक्रम को अधिक पारदर्शी और जिम्मेदार प्रणाली की आवश्यकता है। कार्यक्रम की संरचना में संशोधन करने व लक्ष्योन्मुख बनाने की आवश्यकता है।[25]

महेंद्र सिंह यादव[26] ने अपने अध्ययन में बताया है कि जनजातीय क्षेत्रों में लोगों की जागरूकता का स्तर संतोषजनक नहीं है और इसके परिणामस्वरूप योजना का समुचित लाभ जनजातीय समुदाय को नहीं मिल पा रहा है।

उद्देश्यः-

1. हितग्राहीमूलक कार्यों के आधार पर हितग्राहियों के जीवन एवं ग्राम में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
2. हितग्राहियों एवं ग्रामीण विकास के संदर्भ में योजना की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
3. योजनान्तर्गत सार्वजनिक कार्य के साथ-साथ हितग्राहीमूलक कार्यों के कार्यान्वयन या प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करना।

शोध प्रविधिः-

शोध क्षेत्र : प्रस्तुत शोध में छत्तीसगढ़ राज्य के बालोद जिला के ग्राम-नलकसा, विकासखंड-डौंडी के पंजीकृत मनरेगा हितग्राहियों का अध्ययन किया गया है।

डौंडी विकासखंड- एक परिचय

मनरेगा ऑनलाइन पोर्टल के अनुसार डौंडी विकासखंड में करीब कुल 0.20 लाख पंजीकृत परिवार हैं। इन परिवारों में लगभग कुल 0.55 लाख पंजीकृत सदस्य हैं। वित्तीय वर्ष 2020-2021 में करीब 0.19 लाख परिवारों के लगभग 0.40 लाख व्यक्तियों ने कार्य की मांग की है। करीब 0.21 लाख महिलाओं को क्रियान्वयन एजेंसी द्वारा रोजगार प्रदान किया गया है। वित्तीय वर्ष 2020-2021 में पंजीकृत 544 दिव्यांग व्यक्तियों में से 252 दिव्यांग व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया गया है। विकासखंड में कुल श्रमिक परिवारों की संख्या में से 904 अल्पसंख्यक, 20 आरएसबीवाई लाभार्थी, 835 एफआरए लाभार्थी, 3 एएबीवाई लाभार्थी, 881 छोटा किसान, 4 सीमांत किसान हैं जबकि एलआर एवं आईएवाई लाभार्थी की संख्या शून्य रही है। वित्तीय वर्ष 2020-2021 में करीब 91.47 प्रतिशत कार्यान्वयन एजेंसी एवं 8.53 प्रतिशत अन्य कार्यान्वयन एजेंसी द्वारा कार्यो का निष्पादन किया गया है। क्रियान्वयन एजेंसी के अलावा अन्य जैसे डब्ल्यू आर विभाग, आरडी विभाग, कार्य विभाग, वन विभाग, कृषि विभाग, मत्स्य पालन विभाग और ए. आर. विभाग, मृदा संरक्षण विभाग, रेशम उत्पादन विभाग, बागवानी विभाग, स्वयं सहायता समूह (एसएचजी)/ग्राम संगठन आदि ने

अभिसरण के कार्यो के रूप् में सहभागिता की है।[27]

नलकसा ग्राम- एक परिचय

नलकसा एक आदिवासी एवं वनों से घिरा ग्राम है। नलकसा ग्राम विकासखंड मुख्यालय से 12 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। नलकसा ग्राम का भौगोलिक क्षेत्रफल 1356.23 हेक्टयर एवं आबादी करीब 1200 है। ऑनलाइन मनरेगा पोर्टल में प्रदर्शित जानकारी अनुसार ग्राम में मनरेगा योजना अंतर्गत पंजीकृत परिवारों की संख्या 232 एवं पंजीकृत परिवारों में कुल 719 व्यक्ति मनरेगा योजना के अंतर्गत पंजीकृत हैं। ग्राम में अनुसूचित जनजातीय महिलाओं की जनसंख्या सर्वाधिक है एवं मनरेगा योजना के अंतर्गत कार्यरत मजदूरों के रूप में महिलाओं की सहभागिता भी सर्वाधिक है। छत्तीसगढ़ शासन द्वारा ग्राम के श्रमिकों को आजीविका के विकास के लिए वनाधिकार पट्टा प्रदान किया गया है। ग्राम में ग्रामीण समुदाय द्वारा मुख्यतः मनरेगा कार्य के अलावा पशु पालन का कार्य भी किया जाता है और कुछ जनजातीय समुदाय द्वारा बांस से निर्मित दैनिक उपयोग की सामग्री बनायी जाती है। ग्राम पहाड़ों से घिरा है एवं ग्राम के समीप जंगल में फल, कंद एवं वानस्पतिक पौधे पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, जिसका उपयोग ग्रामीणों द्वारा औषधि के रूप किया जाता है। ग्राम के नजदीक गोइरडीह डैम है जो आसपास के क्षेत्रों के पानी का प्रमुख स्त्रोत है एवं इस पानी को भिलाई स्टील सयंत्र को भी प्रदान किया जाता है। ग्राम लौह अयस्क खनिज के लिए जाना जाता है। खनन का कार्य राष्ट्रीय खनिज विकास निगम द्वारा किया जा रहा है। खनन के अवशेष जो कि वर्षा के दिनों में बहकर कृषको के जमींन में जाकर एकत्रित हो जाते हैं जिसे स्थानीय भाषा में लाल-पानी कहा जाता है। लाल पानी कृषकों की फसलों को हानि पहुंचाता है एवं भूमि की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है।

उत्तरदाताओं का चयनः- मनरेगा योजना का ग्रामीण विकास के संदर्भ में मूल्यांकन करने हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के बालोद जिला अंतर्गत डौंडी विकासखंड के नलकसा ग्राम का चयन किया गया है। यह शोध वर्णनात्मक शोध प्रारूप पर आधारित है। मनरेगा अंतर्गत नलकसा ग्राम में 232 पंजीकृत परिवारों में 719 सदस्य हैं। प्रस्तुत अध्ययन में ग्राम के पंजीकृत 719 मनरेगा हितग्राहियों में से 72 हितग्राहियों का निदर्श के रूप में दैव निदर्शन प्रणाली के लाटरी पद्धति द्वारा किया गया है लेकिन निदर्श की इकाईयों के चुनाव में इस बात का यशेष्ट रूप से ध्यान रखा गया कि यह प्रतिनिधित्वपूर्ण हो।

तथ्य संकलन की प्रविधिः- यह शोध प्राथमिक एवं द्वितीयक आकड़ों पर आधारित है। प्राथमिक आंकड़े प्राप्त करने के लिए उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया गया है एवं अवलोकन विधि का भी उपयोग किया गया है। योजनान्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों-अधिकारियों का साक्षात्कार लिया गया है तथा द्वैतीयक आंकड़ों के रूप में स्थानीय सरकारी आंकड़ों का भी आकलन किया गया है।

तालिका क्रमांक-01

उत्तरदाताओं को प्राप्त हितग्राहीमूलक कार्य

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉं	54	75
नहीं	18	25
योग	72	100

उत्तरदाताओं को प्राप्त हितग्राहीमूलक कार्य संबंधित विवरण तालिका से स्पष्ट होता है कि 75 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि ग्राम में हितग्राहियों को हितग्राहीमूलक कार्य का लाभ मिला है एवं 25 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि हितग्राहीमूलक कार्य का लाभ नहीं मिला है। इसी तरह मनरेगा समीक्षा-2 के रिपोर्ट अनुसार हितग्राहीमूलक कार्य सम्बंधित अध्ययन में पता चलता है कि 85 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि मनरेगा परिसंपत्तियों के निर्माण के बाद अपनी भूमि की गुणवत्ता में सुधार हुआ है।[28] अतः यह विदित होता है कि अधिकांशतः हितग्राहियों को हितग्राहीमूलक कार्यो का लाभ मिला है।

तालिका क्रमांक-02

उत्तरदाताओं के सामाजिक स्थिति में सुधार

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉं	50	69
नहीं	22	31
योग	72	100

उत्तरदाताओं की सामाजिक स्थिति में सुधार संबंधित विवरण तालिका से स्पष्ट होता है कि 69 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि ग्राम में पंजीकृत मनरेगा परिवारों के हितग्राहियों की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है एवं 31 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि उनकी सामाजिक स्थिति पर कुछ खास असर नहीं हुआ है। इसी तरह सनी कुमार सुमन ने अपने अध्ययन में

पाया कि 54.33 प्रतिशत उत्तरदाताओ ने बताया कि मनरेगा से ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है।[29] यह स्थिति दर्शाती है कि अधिकतर हितग्राहियों के सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है।

तालिका क्रमांक-03

उत्तरदाताओ की आर्थिक स्थिति में सुधार

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	47	65
नहीं	25	35
योग	72	100

उत्तरदाताओ की आर्थिक स्थिति में सुधार संबंधित विवरण तालिका से स्पष्ट होता है 65 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि मनरेगा योजनान्तर्गत ग्राम में पंजीकृत हितग्राहियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है एवं 35 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि आर्थिक स्थिति सुधार नहीं हुआ है। अपितु सनी कुमार सुमन ने अपने अध्ययन में पाया कि 46.67 प्रतिशत परिवार की आर्थिक स्थिति यथावत है।[30] अतः यह स्पष्ट होता है कि ग्राम में अधिकांशतः हितग्राहियों की आर्थिक संवृद्धि हुई है।

तालिका क्रमांक-04

हितग्राहियों के लिये आजीविका साधन का निर्माण

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	49	68
नहीं	23	32
योग	72	100

मनरेगा से निर्मित आजीविका का साधन संबंधित विवरण तालिका से स्पष्ट होता है कि 68 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि आजीविका के साधन निर्मित हुआ है एवं 32 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि आजीविका का साधन निर्मित नहीं हुआ है। उक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि हितग्राहियों के जीवनयापन के स्तर में संवृद्धि हुई है। जबकि दूसरी ओर गरीबी की आजीविका में उसके आपसी रिश्तों का भी योगदान होता है, सामूहिक रिश्ते मनरेगा कानून बन जाने के बाद धीरे-धीरे समाप्त हो रहे है।[31] इसी तरह महेंद्र सिंह यादव ने अपने अध्ययन में पाया कि 76 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि मनरेगा परिवार की आजीविका के लिए महत्वपूर्ण नहीं है।[32]

तालिका क्रमांक-05

निर्मित परिसम्पत्तियों के उपयोग का विवरण

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	47	65
नहीं	25	35
योग	72	100

पंचायतों में अल्प प्राथमिकता वाले कामों का चुनाव होता है एवं जिसमे ग्रामसभा की समर्थन का प्रायः अभाव पाया जाता है।[33] मनरेगा से निर्मित परिसम्पत्तियों के उपयोग संबंधी विवरण तालिका से स्पष्ट होता है कि 65 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि ग्राम में मनरेगा से निर्मित परिसम्पत्तियों का उपयोग हितग्राहियों/ग्रामवासियों द्वारा किया जा रहा है एवं 35 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि परिसम्पत्तियों का उपयोग नहीं किया जा रहा है। उक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अधिकतर हितग्राहियों द्वारा मनरेगा से निर्मित परिसंपत्तियों का उपयोग किया जा रहा है।

तालिका क्रमांक-06

शहरी पलायन में कमी का विवरण

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	50	69
नहीं	22	31
योग	72	100

शहरी पलायन में कमी सम्बन्धी विवरण तालिका से स्पष्ट होता है कि 69 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि शहर की ओर होने वाले पलायन में कमी हुई है। अतः उपरोक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ग्राम-शहर पलायन में कमी के लिए मनरेगा का योगदान महत्वपूर्ण है। दूसरी ओर महेंद्र सिंह यादव ने अपने अध्ययन में पाया कि 79 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि मनरेगा के पश्चात पलायन की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया है।[34]

तालिका क्रमांक-07

नवीन प्रावधानों का प्रचार-प्रसार

उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	47	65
नहीं	25	35
योग	72	100

मनरेगा योजना के प्रति जागरूकता में कमी के कारण इस योजना का वास्तविक लाभ आज गाँवो में उन लोगों को नहीं मिल पा रहा है जिन्हें की मिलना चाहिए था।[35]

नवीन प्रावधानों के प्रचार-प्रसार से संबंधित विवरण तालिका से स्पष्ट होता है कि 65 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि क्रियान्वयन एजेंसी द्वारा नवीन प्रावधानों का प्रचार-प्रसार किया जाता है, जबकि 35 प्रतिशत हितग्राहियों का मानना है कि नवीन प्रावधानों का प्रचार-प्रसार नहीं किया जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि क्रियान्वयन एजेंसी द्वारा योजना से संबंधित नवाचारों का प्रचार-प्रसार किया जाता है, जबकि दूसरी ओर सनी कुमार सुमन ने अपने अध्ययन में पाया कि 58.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं को मनरेगा के बारे में आधी-अधूरी जानकारी है।[36]

निष्कर्षः- प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः हम कह सकते है कि पंजीकृत परिवारों के हितग्राहियों को हितग्राहीमूलक कार्य का लाभ मिला है एवं उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है। ग्राम में हितग्राहियों के आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है एवं उनके लिए आजीविका के साधन निर्मित हुए हैं। हितग्राहियों द्वारा मनरेगा से निर्मित परिसम्पत्तियों का उपयोग किया जा रहा है तथा शहर की ओर होने वाले पलायन में कमी आयी है। ग्राम पंचायत/क्रियान्वयन एजेंसी द्वारा योजना से सम्बंधित नवीन प्रावधानों का प्रचार-प्रसार किया जाता है, जिसका लाभ ग्रामीण समुदाय को मिल रहा है। इस प्रकार व्यापक रूप से देखा जाये तो मनरेगा योजना ग्रामीण विकास की दिशा में मील का पत्थर साबित हुई है। ग्राम, ग्रामीण भारत के आधारभूत ढांचे हैं जिसमे ग्रामीणों के कल्याण, आजीविका, महिला सशक्तीकरण और सामाजिक सुरक्षा समेत कई पहलू सम्मिलित हैं। ग्रामीण भारत के विकास के लिए मनरेगा रोजगार की कानूनी गारंटी, स्थाई परिसंपत्तियों का निर्माण और कोरोना संकट में भी बेहद मददगार रही है। योजना द्वारा हितग्राहियों के उत्पाद-उत्पादता में सुधार के साथ ही आय में वृद्धि हुई है। मनरेगा ने आमदनी बढ़ाने एवं बुनियादी संसाधन उपलब्ध कराने के उपाय के रूप अहम् भूमिका निभायी है।

सुझावः- हितग्राहियों को हितग्राहीमूलक कार्य का लाभ दिया गया है, किन्तु एक परिवार में हितग्राहीमूलक कार्य की सीमितता/वित्तीय बाध्यता को समाप्त करके आवश्यकतानुसार सभी हितग्राहियों को लाभ देना चाहिए। सार्वजनिक कार्यों के साथ-साथ हितग्राहीमूलक कार्यों के संपादन से अवश्य ही सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है, फिर भी संस्थागत सुधार की आवश्यकता है। सभी हितग्राहियों को स्थानीय आवश्यकतानुसार हितग्राहीमूलक कार्य का लाभ दिया जाना चाहिए। हितग्राहियों के लिए आजीविका के साधन निर्मित हुए हैं, फिर भी दीर्घकालीन आजीविका के लिए विशेष नवीन प्रावधान होना चाहिए। परिसंपत्तियों के निर्माण हेतु विशेष प्रबंध एवं उपबंध किया जाना चाहिए है, ताकि गुणवत्तापूर्ण परिसंपत्तियों के निर्माण एवं परस्पर उपयोग संभव हो सके। क्रिन्यान्वयन एजेंसी को योजना संबंधित नवाचार एवं प्रयोजनों को मुनादी कराकर समय-समय पर प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. सिंह नरेन्द्रपाल, 'सतत ग्रामीण विकास का माध्यम मनरेगा', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-64, मासिक अंक-11, सितम्बर 2018, पृ. 46-47
2. तोमर नरेन्द्र सिंह, 'बेहतर हुआ है ग्रामीण रोजगार का परिदृश्य', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-66, मासिक अंक-6, अप्रैल 2020, पृ. 8
3. तोमर नरेन्द्र सिंह, पूर्वोवक्त, पृ. 7-8
4. पाठक संतोष, 'सामाजिक सुरक्षा से ग्रामीण समृद्धि', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-56, मासिक अंक-5, मार्च 2021, पृ. 39
5. सिंह अरविन्द कुमार, 'मनरेगा से गाँवो का कायाकल्प', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-67, मासिक अंक-9, जुलाई 2021, पृ. 31, 33
6. जोशी प्रमोद, 'बजट में ग्रामीण अवसंरचना पर जोर', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-66, मासिक अंक-5, मार्च 2020, पृ. 11
7. कथूरिया तनु, 'बदलती ग्रामीण संरचना का रोजगार और विकास पर प्रभाव', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-66, मासिक अंक-6, अप्रैल 2020, पृ. 42
8. सिंह, अरविन्द कुमार, पूर्वोवक्त, पृ. 34
9. समद्दर, संयुक्ता, एवं दत्त, पंखुड़ी, 'नारी शक्ति से सशक्त बनेगा भारत', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली वर्ष-67, मासिक अंक-7, मई 2021, पृ. 25
10. कथूरिया, तनु, पूर्वोवक्त, पृ. 42
11. सिंह सतीश, 'वित्तीय समावेशन से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आएगी मजबूती', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-66, मासिक अंक-5, मार्च 2020, पृ. 21
12. सिंह अरविन्द कुमार, पूर्वोवक्त, पृ. 33
13. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम-2005, वार्षिक मास्टर परिपत्र 2021-22, ग्रामीण विकास विभाग,

भारत सरकार, पृ. 201-224
14. समद्दर संयुक्ता एवं दत्त, पंखुड़ी, पूर्वोवक्त, पृ. 25
15. सिंह अरविन्द कुमार, पूर्वोवक्त, पृ. 32-33
16. त्रिपाठी के. के, एवं सिंगला, एस. के, 'कोविड-19 के बाद ग्रामीण रोजगार में मनरेगा की भूमिका', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-66, मासिक अंक-9, जुलाई 2020, पृ. 18
17. त्रिपाठी, के. के, 'पंचायत योजना के माध्यम से नए भारत का निर्माण', कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, वर्ष-67, मासिक अंक-3, जनवरी 2021, पृ. 48
18. तोमर नरेन्द्र सिंह, पूर्वोवक्त, पृ. 9-10
19. सिंह नरेन्द्रपाल, पूर्वोवक्त, पृ. 47-48
20. सुमन, सनी कुमार, 'मनरेगा कार्यक्रमः उपलब्धियां एवं बाधाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकजीः चिंतन परम्परा, वर्ष-19, अंक-2, जुलाई-दिसम्बर 2017, पृ. 65
21. Agrawal, Sumeet, and Devi, M. Madhuri 'Empowerment of Women through Mgnrega with Reference to Chhattisgarh', Indian Journal of Applied Research, ISSN: 2249-555X, Vol.-5, Issue-9, Sept-2015, pp. 657-659
22. Sultana, Mafruza, and Rao, Dr. K.S. Srinivasa 'Socio-economic Development Through The Indian Government Scheme-Mgnrega: A Review On West Bengal State, Research Article', International Journal of Advanced Research, Sept. 2016, ISSN: 2320-5407, Int- J- Adv- Res- 4(9), pp. 167-183
23. Khare, D. S., A.K. Tripathi, A. Roy, S.M. Feroze, R. Saravanan, and N.U. Singh, 'MGNREGA: A Paradigm Shift in Employment and Income Generation in Meghalaya', ISSN: 0970-6429, Indian Journal of Hill Farming, June 2017, Vol. 30, Issue 1, pp. 110-115, http://epubs-icar-org-in
24. Gupta, Divya 'Impact of Mgnrega on Social-Economic Conditions of Rural Workers: A Social Legal Study in Jammu Division', Research Thesis, Jammu: university of Jammu, pp. 31-35
25. Chowdappa, V.A., and Benni, S. Basavaraj, 'Impact of Mgnrega on Rural Livelihoods of Ballari District, Epra', International Journal of Economic and Business Review- Peer Reviewed Journal, Vol.7, Issue-12, Dec 2019, e-ISSN : 2347-9671| p- ISSN : 2349 - 0187, pp. 24-28
26. यादव, महेंद्र सिंह 'मनरेगा के माध्यम से मध्य प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों का विकास, राधाकमल मुकजीः चिंतन परम्परा, वर्ष-22, अंक-1, जनवरी-जून 2020, पृ. 60
27- Mahatma Gandhi National Rural Employment Gurantee Act (mnregaweb2.nic.in)
28- Mgnrega Sameeksha II, An Anthropology of Research Studies, 2012-14, New Delhi: UNPD, India, 2015, p. 45
29. सुमन, सनी कुमार, पूर्वोवक्त, जुलाई-दिसम्बर 2017, पृ. 63
30. सुमन, सनी कुमार, 'मनरेगा कार्यक्रम और जातीय पृष्ठभूमिः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुकर्जीः चिंतन परम्परा, वर्ष-16, अंक-1, जनवरी-जून 2014, पृ. 115
31. सिंह विक्रम, 'भारत के ग्रामीण विकास में मनरेगा का योगदान एवं चुनौतिया', राधाकमल मुकर्जीः चिंतन परम्परा, वर्ष-16, अंक-4, जनवरी-जून 2014, पृ. 169
32. यादव महेंद्र सिंह, पूर्वोवक्त, पृ. 59
33. सुमन सनी कुमार, पूर्वोवक्त, पृ. 65
34. यादव महेंद्र सिंह, पूर्वोवक्त, पृ. 60
35. सिंह विक्रम, पूर्वोक्त, पृ. 169
36. सुमन सनी कुमार, पूर्वोवक्त, पृ. 112-113

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

डिजिटल अशाब्दिक संचार- संचार की नई संस्कृति

❑ डा.रचना गंगवार

सूचक शब्दः संचार, अमौखिक संचार, इमोटिकॉन्स, इमोजी, डिजिटल, भाषा, पारस्परिक संचार, ग्रुप संचार, पिक्टोग्राम्स।

संचार मानव जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है जो हमें स्वयं तथा समाज से जोड़ता है। संचार सामाजिक जीवन की गतिविधियों से जोड़ने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज तकनीक हमारे संचार के वातावरण तथा तौर-तरीकों को पूरी तरह से बदल रही है। तकनीक हमें संचार के लिए एक अलग मंच प्रदान कर रही हैं जैसे फोन कॉल, इंस्टेंट मैसेजिंग, मेल, चैट, ब्लॉग, सोशल मीडिया साइट्स आदि के माध्यम से बातचीत करना या लोगों से जुड़े रहना। सोशल मीडिया अपने डिजिटल पिक्टोग्राम आधारित अमौखिक संचार की सहायता से बातचीत के लिए बहुत आकर्षक माध्यम बन गया है। डिजिटल पिक्टोग्राम अमौखिक संचार के लिए इलेक्ट्रॉनिक रूप से मध्यस्थता वाले ग्राफिक्स शब्द को संदर्भित करता है जो अक्सर स्मार्ट फोन और सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के संचार पैटर्न के माध्यम से हम आकर्षक डिजिटल चित्रलेखों के साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं। आजकल लोग अपनी लाइफ में बहुत व्यस्त हो गए हैं, समयाभाव के कारण वे अपने आस पास के लोगों से ज्यादा बात नहीं कर पा रहे हैं। डिजिटल चित्रलेख उन्हें दूसरों के प्रति अपने भाव और भावनाओं को व्यक्त करने में मदद करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार डिजिटल अमौखिक संचार पारस्परिक और समूह संचार के वातावरण को बदल रहा है? क्या इस बदलते हुए संचार ने एक नई तरह की संचार संस्कृति को जन्म दिया है? अध्ययन में उपयोग की जाने वाली पद्धति वर्णनात्मक और मात्रात्मक विश्लेषण है जो विभिन्न सोशल मीडिया पर आधारित है जहां अक्सर संचार के लिए डिजिटल पिक्टोग्राम का उपयोग किया जाता है। अध्ययन के उद्देश्य को ज्ञात करने के लिए प्राथमिक आँकड़ों के साथ-साथ द्वितीयक आंकड़ों का भी प्रयोग किया गया है।

संचार मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। अपने विचारों और भावों को व्यक्त करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो सतत चलती आ रही है। बहुत से शोधों तथा अन्वेषणों ने संचार की गति को बढ़ाने तथा लोगों के बीच की दूरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संचार में जब भाषा की चर्चा होती है तो मुख्यतः दो प्रकार के संचार की व्याख्या की जाती है एक शाब्दिक संचार दूसरा अशाब्दिक संचार। यहाँ हम अशाब्दिक संचार पर चर्चा करेंगे। अशाब्दिक संचार बहुत से प्रतीकों जैसे ध्वनि, इशारों, हाव-भाव और छवियों आदि के उपयोग को संदर्भित करता है जो विचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। संचार की प्रक्रिया में अशाब्दिक संचार का अपना अर्थ एवं महत्व है। ''संचार स्वयं के साथ, दूसरों के साथ और हमारे बाहरी और आंतरिक वातावरण के साथ संवाद है। जीवित रहने और सतत आगे बढ़ते रहने के लिए संचार आवश्यक और महत्वपूर्ण मानवीय गतिविधि है। पशु, पक्षी, कीड़े, पेड़ और पौधे सभी संचार करते हैं। संचार एक सामाजिक प्रक्रिया है जो हमें आपस में जोड़े रखती है।[1] अशाब्दिक संचार हमारे जीवन का एक हिस्सा है और लंबे समय से अध्ययन किए गए संचार सिद्धांत का क्षेत्र भी रहा है। 1970 में जूलियस फास्ट की पुस्तक के प्रकाशन के बाद से लोकप्रिय संस्कृति में अशाब्दिक संचार को बॉडी लैंग्वेज के रूप में संदर्भित किया गया है''।[2] कन्नप[3] के अनुसार, बोले गए या लिखित शब्द को छोड़कर लगभग सभी मानव संचार अशाब्दिक संचार में सम्मिलित हैं। अशाब्दिक संचार में संचार के दो तरीके हैं एक है शारीरिक भाषा और दूसरा प्रौद्योगिकी आधारित डिजिटल इमोजी। एक प्रौद्योगिकी आधारित डिजिटल इमोजी अशाब्दिक संचार का दूसरा जीवन या नया वातावरण है। इसके आधार पर पारस्परिक या समूह संचार में प्रौद्योगिकी के माध्यम से संचार प्रक्रिया का निर्वहन किया जाता है। पारस्परिक संचार ऐसी प्रक्रियाएं हैं जिनमें ट्रांसमिशन और रिसेप्शन डिजिटल संचार के माध्यम से एक साथ होते हैं और स्रोत और संचार प्राप्तकर्ता एक दूसरे को लगातार प्रभावित करते हैं।[4] यह शोध पत्र सोशल मीडिया पर डिजिटल इमोजी के माध्यम से टेक्स्ट-आधारित इंटरपर्सनल और ग्रुप कम्युनिकेशन पर केंद्रित है जोकि इन दिनों सोशल मीडिया पर अक्सर संचार के लिए उपयोग होता है। यह हमें टेक्स्ट-आधारित डिजिटल अशाब्दिक संचार के लिए फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम,

❑ सहायक प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

हाइक, ब्लॉग, लिंक्ड इन, लिकर आदि जैसे विभिन्न मंच प्रदान करता है।

डिजिटल संचार आधारित पारस्परिक संचार भी कई तरह के होते हैं जैसे लैंडलाइन फोन या सेल फोन पर बात करना, ई-मेल पर बात करना, इंस्टेंट मैसेजिंग, टेक्स्ट मैसेजिंग या सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर और यहां तक कि फेस-टू-फेस पारस्परिक संचार लेकिन यहां शोधकर्ता डिजिटल अशाब्दिक संचार के विषय में चर्चा कर रहा है जिसका तात्पर्य है कि इंटरैक्टिव संचार के लिए शब्द कंप्यूटर-मध्यस्थ-ग्राफिक्स में अभिव्यक्ति आधारित डिजिटल संचार के बारे में। कंप्यूटर-मध्यस्थता- ग्राफिक्स वे चित्रलेख हैं जिनका उपयोग हम टेक्स्ट मैसेजिंग में एक दूसरे के साथ संवाद करने के लिए करते हैं। इस प्रकार के चित्रलेख जैसे इमोटिकॉन्स, इमोजी या कोई अन्य संकेत, प्रतीक हमें दूसरों के प्रति अपनी भावनाओं और मनोभावों को व्यक्त करने में मदद करते हैं। इस प्रकार के संचार में शब्दों को विभिन्न प्रकार की भावनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि ''एक तस्वीर एक हजार शब्दों के बराबर होती है'', यदि कोई शब्दों के स्थान पर एक चित्रलेख भेजता है, तो रिसीवर को उनकी वास्तविक भावना महसूस होती है।

प्यू इंटरनेट और अमेरिकन लाइफ प्रोजेक्ट रिपोर्ट के अनुसार संचार अक्सर टेक्स्ट द्वारा होता है। एक तिहाई से अधिक युवा लोगों ने टेक्स्ट मैसेजिंग को अपने फोकल संचार उद्देश्य के रूप में उपयोग किया। टेक्स्ट कम्युनिकेशन के उद्देश्य से लोग अक्सर स्मार्ट फोन और विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइटों का उपयोग करते हैं। लेकिन यहां शोधकर्ता केवल कंप्यूटर-मध्यस्थ-ग्राफिक्स संचार पर ध्यान केंद्रित करता है। इसके द्वारा हम विचार, खुशी, निराशा, राय, समाचार, स्थिति, प्रोत्साहन, ज्ञान आदि को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त कर सकते हैं। ये डिजिटल टेक्स्ट ग्राफिक्स इमोटिकॉन्स और इमोजी हैं। एक इमोटिकॉन चेहरे की अभिव्यक्ति के संकेत की तरह है जो हमें अपनी मनोदशा और भावनाओं को व्यक्त करने में मदद करता है। ''यह पाठक का ध्यान आकर्षित करने में मदद करता है, और संदेश की समझ को बढ़ाता है और सुधारता है। दूसरी ओर इमोजी आधुनिक संचार तकनीकों के साथ विकसित किए गए हैं जो अधिक अभिव्यंजक संदेशों की सुविधा प्रदान करते हैं''।[5]

इमोटिकॉन्स इमोशन आइकन्स के लिए संक्षिप्त विवरण हैं। इमोटिकॉन्स आमने-सामने संचार में उपस्थित भावनात्मक और व्यक्तित्व की बारीकियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए टेक्स्ट का उपयोग करने के तरीके हैं। उदाहरण के लिए, लोग स्माइली का उपयोग यह दिखाने के लिए करते हैं कि वे खुश हैं या मुस्कुरा रहे हैं। इमोटिकॉन्स आमने-सामने संचार में प्रचलित अशाब्दिक व्यवहारों और संकेतों के शाब्दिक प्रतिनिधित्व के रूप में प्रभावी, कुशल, प्रत्यक्ष और पारदर्शी तरीके से इरादे और भावना की स्पष्टता व्यक्त करने के लिए डिजाइन किये गये। आमने-सामने की बातचीत में, अशाब्दिक व्यवहार हमारे आशय के बारे में बहुत कुछ बताता है जैसे चेहरे के भाव, सिर और कंधे की स्थिति, हाथ का उपयोग- जानकारी व्यक्त कर सकते हैं, बातचीत को नियंत्रित कर सकते हैं, और भावनाओं और अंतरंगता को व्यक्त कर सकते हैं। ऑनलाइन संचार में, इमोटिकॉन्स का उपयोग ''अशाब्दिक प्रतिनिधि'' के रूप में सेवा करके उसी चीज को प्राप्त करने में मदद के लिए किया जा सकता है। आम सहमति यह है कि भावों को भावनाओं के आशाब्दिक दावे के रूप में उपयोग किया जाता है, इस प्रश्न का उत्तर दिए बिना कि क्या ये भावनाएं सार्वभौमिक रूप से समझी जाती हैं।[6]

साहित्य समीक्षा : प्लंब एमडी[7] ने ''त्वरित संदेश में अशाब्दिक संचार'' पर एक शोध किया। उसके अनुसार, प्रौद्योगिकियां संचार के लिए विभिन्न प्रकार के मंच प्रदान करती हैं। प्लंब ने कहा कि आमने-सामने के संचार को कंप्यूटर-मध्यस्थ संचार द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है और यह हमारे वैश्विक समाज को प्रभावित करता है। इस अध्ययन ने कई विशेष मुद्दों का विश्लेषण किया जो कंप्यूटर-मध्यस्थ संचार को दुनिया भर में ले जाने पर उत्पन्न होंगे। यह अध्ययन कंप्यूटर-मध्यस्थता-संचार में विद्यमान अशाब्दिक संकेतों की कमी की भी जांच करता है और कैसे यह अनुपस्थिति पार्टियों के बीच संचार और संदेश की समझ को प्रभावित कर सकती है। यह अध्ययन मूल रूप से भावनात्मक संकेतों के महत्व पर केंद्रित था और कैसे कंप्यूटर-मध्यस्थ-संचार और आमने-सामने उनके साथ अलग-अलग तरीके से व्यवहार करते हैं और इन संकेतों का उपयोग करने में संचार का एक रूप अधिक प्रभावी या कम प्रभावी कैसे होता है।

टैनेनबॉम[8] ने ''आभासी दुनिया में अशाब्दिक संचार पर एक अध्ययनः अभिव्यंजक पात्रों को समझना और डिजाइन करना'' नामक पुस्तक में इस बात पर चर्चा की है कि

कैसे नेटवर्क-मध्यस्थ आभासी वातावरण ने मानव संचार में स्थान कि दूरी को कम करते हुए नई संभावनाएं खोलीं हैं और जिसे ''आभासी दुनिया'' कहा गया जो आभासी वातावरण में कई समुदायों से एक समय में एक साथ संवाद कर सकती है। उन्होंने विश्लेषण किया कि इंटरएक्टर्स की दुनिया एक अवतार के रूप में सन्निहित हैः एक डिजिटल कठपुतली या प्रतिनिधित्व जिसके माध्यम से उपयोगकर्ता वातावरण पर अपनी इच्छा थोपता है। यह एक आभासी अवतार है जो आज विद्यमान और आभासी दुनिया को दिलचस्प बनाता है। आभासी दुनिया एक सेकंड लाइफ की तरह है, अब डिफंक्ट डॉट कॉम, एक्टिव वर्ल्ड, ट्रैवलर और हैबो होटल अपने उपयोगकर्ता को संचार सुविधाओं के साथ एक ग्राफिकल वातावरण या आभासी दुनिया के होने की अनुभूति देता है।[9]

पारस्परिक संचार कौशल केवल सामान्य ज्ञान नहीं हैं, न ही वे रहस्यमय गुण हैं। पारस्परिक संचार अनुशासन संचार कौशल में सुधार के लिए रणनीतियों की पहचान करने में मदद करता है। वे पारस्परिक संचार को वैज्ञानिक शोध के एक विषय के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसकी आपके दैनिक जीवन में बहुत प्रासंगिकता है। अनुसंधान को सुलभ बनाने में, वे दिखाते हैं कि संचार विद्वान उन महत्वपूर्ण प्रश्नों से निपटते हैं जिनकी वास्तविक जीवन में प्रासंगिकता है, और वे पारस्परिक संचार के बारे में मिथकों को दूर करते हैं।[10]

इमोटिकॉन्स टेक्स्ट-आधारित संचार में शरीर की भाषा का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीकों के तार हैं और इमोटिकॉन्स को प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण में अप्राकृतिक भाषा के रूप में माना जाता है। टेक्स्ट-आधारित संचार के 40 साल के लंबे इतिहास में, इमोटिकॉन्स ने टेक्स्ट-आधारित संदेशों के समर्थन के एक आवश्यक साधन का दर्जा प्राप्त कर लिया है।[11]

डुरांटे के अनुसार, रोजमर्रा के संचार के अति-मध्यस्थ संचार होने के बावजूद, डिजिटल संचार, विशेष रूप से मोबाइल-मध्यस्थ संचार (एम.एम.सी.) के क्षेत्र में शोध की कमी है। हालांकि कंप्यूटर-मध्यस्थ संचार (सीएमसी) के बारे में शोध किया गया है, विशेष रूप से ईमेल संचार और त्वरित संदेश (आईएम) की जांच करने वाले अध्ययन, मोबाइल वार्तालाप वर्तमान शोधकर्ताओं से अपेक्षाकृत अछूते रहते हैं। उन्होंने अपने अध्ययन में मोबाइल-मध्यस्थ संचार और टेक्स्ट मैसेजिंग वार्तालापों के लिए अशाब्दिक तत्वों की कोडिंग को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया है।[12]

उद्देश्य

1. पारस्परिक तथा समूह संचार में डिजिटल अशाब्दिक संचार इमोटिकॉन्स तथा इमोजी के बढ़ते उपयोग के कारणों का अध्ययन करना।
2. डिजिटल अशाब्दिक संचार के वातावरण में विकसित होती संचार की नई संस्कृति का अध्ययन करना।

शोध पद्धिति : प्रस्तुत अध्ययन ने पारस्परिक और समूह संचार में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के डिजिटल ग्राफिक संदेश व्यवहार की जांच की है। इस प्रकार के व्यवहार की जांच के लिए सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप आदि और स्मार्टफोन को अध्ययन के लिए लिया गया है। शोधकर्ता ने अपने उद्देश्यों का पता लगाने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक स्रोत का उपयोग किया है। डेटा संग्रह के लिए द्वितीयक स्रोत पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं और शोधपत्रों का उपयोग किया गया है और प्राथमिक स्रोत के लिए प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। अध्ययन का नमूना क्षेत्र बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय है। उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों में से उद्देश्यपरक निदर्शन तकनीक द्वारा 100 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। छात्र तथा छात्राओं की समान संख्या का ध्यान रखा गया है ताकि दोनों का प्रतिनिधित्व हो सके। डेटा संग्रह उपकरणों के लिए क्लोज-एंडेड प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। प्रश्नावली पुरुष और महिला के बीच समान रूप से वितरित की गई थी। पारस्परिक और समूह संचार में सोशल मीडिया उपयोगकर्ता के डिजिटल गैर-मौखिक संदेश व्यवहार को जानने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन के लिए मात्रात्मक उपागम का प्रयोग किया गया है।

आकड़ों का सारणीयन एवं विवेचना

तालिका संख्या 1

सोशल मीडिया पर डिजिटल आशाब्दिक संचार के उपयोग के प्रकार

उपयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
औपचारिक	18	18
अनौपचारिक	39	39
दोनों	43	43
योग	100	100

तालिका 1 दर्शाती है कि 100 उत्तरदाताओं में से 39

प्रतिशत उत्तरदाता अनौपचारिक संदेश भेजने के लिए इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग करते हैं वहीं 18 प्रतिशत उत्तरदाता औपचारिक संदेश भेजने के लिए इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग करते हैं। 43 प्रतिशत उत्तरदाता दोनों प्रकार के संदेश भेजने के लिए इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग करते हैं।

तालिका संख्या 2

प्रतिदिन संदेश भेजते समय डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग

डिजिटल संचार का उपयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
0–25	10	10
26–50	32	32
51–75	41	41
76–100	27	27
योग	100	100

तालिका संख्या 2 के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 41प्रतिशत उत्तरदाता 51 से 75 प्रतिशत इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संदेश भेजने में करते है। वही 32 प्रतिशत 26 से 50 प्रतिशत , 27 प्रतिशत उत्तरदाता 76 से 100 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत 25 प्रतिशत तक इमोटिकॉन्स और इमोजी का उपयोग करते हैं।

तालिका संख्या 3

प्रतिदिन डिजिटल अशाब्दिक संचार के साथ प्राप्त संदेश

प्रतिदिन प्राप्त संदेश	आवृत्ति	प्रतिशत
0–25	17	17
26–50	35	35
51–75	36	36
76–100	12	12
योग	100	100

तालिका संख्या 3 के अनुसार 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं को 51 से 75 प्रतिशत ऐसे संदेश प्राप्त होते हैं जिन्हें इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग होता है। 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं को 26 से 50 प्रतिशत, 17 प्रतिशत उत्तरदाताओं को 25 प्रतिशत तक तथा 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं को 76 51 से 100 प्रतिशत इमोटिकॉन्स तथा इमोजी के उपयोग वाले संदेश प्राप्त होते हैं।

तालिका संख्या 4

डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग संचार को आकर्षक बनाता है ?

आकर्षक बनाता है	आवृत्ति	प्रतिशत
हमेशा	38	38
कभी–कभी	25	25
अक्सर	32	32
कभी नहीं	05	05
योग	100	100

तालिका संख्या 4 के अनुसार 38 प्रतिशत उत्तरदाता ये मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार को हमेशा आकर्षक बनाता है। 32 प्रतिशत मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग अक्सर आकर्षक बना देता है। 25 प्रतिशत मानते हैं कि कभी कभी ही इनका उपयोग संदेश को आकर्षक बनाता है जबकि 5 प्रतिशत मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी के उपयोग संदेशों को आकर्षक कभी नहीं बनाते हैं।

तालिका संख्या 5

डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग करने से समय की बचत होती है ?

समय की बचत	आवृत्ति	प्रतिशत
हमेशा	31	31
कभी–कभी	19	31
अक्सर	47	47
कभी नहीं	03	03
योग	100	100

तालिका संख्या 5 के अनुसार 47 प्रतिशत उत्तरदाता ये मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग अक्सर हमारा समय बचाता है, 31 प्रतिशत मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग हमेशा ही समय की बचत करता है। 19 प्रतिशत मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग कभी–कभी ही समय बचाता है तथा 3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को पूरी तरह नकारते हैं।

तालिका संख्या 6

डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग संचार को रुचिकर एवं मनोरंजक बनाता है

रूचिकर एवं मनोरंजक बनाता है	आवृत्ति	प्रतिशत
हमेशा	38	38
कभी–कभी	25	25

अक्सर	32	32
कभी नहीं	05	05
योग	100	100

तालिका सं 6 के अनुसार 38 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार को हमेशा रुचिकर तथा मनोरंजक बनाता है। वहीं 32 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार को अक्सर रुचिकर तथा मनोरंजक बनाता है। 25 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार को कभी-कभी ही रुचिकर तथा मनोरंजक बनाता है। 5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को पूरी तरह से नकारते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार को रुचिकर तथा मनोरंजक बनाता है।

तालिका संख्या 7

डिजिटल अशाब्दिक संचार के उपयोग ने संचार सुगम बना दिया है

सुगम बनाया है	आवृत्ति	प्रतिशत
हमेशा	35	35
कभी-कभी	20	20
अक्सर	38	38
कभी नहीं	07	07
योग	100	100

तालिका संख्या 7 के अनुसार 38 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी के उपयोग से संचार प्रक्रिया अक्सर सुगम बनती है। 35 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार प्रकिया को हमेशा सुगम बनाता है। 20 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग संचार प्रक्रिया को कभी-कभी ही सुगम बनाता है तथा 7 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य को पूरी तरह से नकारते हैं।

तालिका संख्या 8

क्या डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग आज कल चलन में है

चलन में है	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	95	95
नहीं	05	05
योग	100	100

तालिका संख्या 8 के अनुसार 95 प्रतिशत उत्तरदाता ये मानते हैं कि डिजिटल अशाब्दिक संचार (इमोटिकॉन तथा इमोजी) का उपयोग आज कल चलन में है। मात्र 5 प्रतिशत उत्तरदाता इससे इनकार करते हैं ।

तालिका संख्या 9

डिजिटल अशाब्दिक संचार का चलन में होना इसके उपयोग को और अधिक बढ़ाता है

उपयोग को बढ़ाता है	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	91	91
नहीं	09	09
योग	100	100

तालिका संख्या 9 के अनुसार 91 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लगता है कि डिजिटल आशाब्दिक संचार का चलन में होना इसके उपयोग को और अधिक बढ़ाता है, जबकि 9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से इनकार करते हैं।

तालिका संख्या 10

डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग वर्तमान डिजिटल संचार संस्कृति का हिस्सा बन गया है

संचार संस्कृति का हिस्सा	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	84	84
नहीं	16	16
योग	100	100

तालिका सं 10 के अनुसार 84 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग वर्तमान डिजिटल संचार संस्कृति का हिस्सा बन गया है, वहीं 16 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसा नही मानते हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संचार के क्षेत्र में डिजिटल संचार ने नए आयाम जोड़ दिए हैं। डिजिटल संचार में इमोटिकॉन्स और इमोजी का उपयोग लगातार बढ़ रहा है। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संदेश भेजने की भाषा में इमोटिकॉन्स तथा इमोजी के उपयोग ने एक नई संस्कृति को जन्म दिया है। संदेश संचार की यह संस्कृति आज की पीढ़ी की सबसे लोकप्रिय संस्कृति है। ऐसा माना जाता था कि इमोटिकॉन्स और इमोजी का उपयोग अनौपचारिक संचार के लिए होता रहा है, किन्तु आँकड़े बताते हैं कि आज के दौर में इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग अनौपचारिक संचार के साथ-साथ औपचारिक संचार में भी होने लगा है। आँकड़े इस ओर भी इशारा करते हैं कि अधिकतर उत्तरदाता संदेश भेजने में डिजिटल अशाब्दिक संचार का उपयोग कर रहे हैं। प्रतिदिन प्राप्त होने वाले संदेशों में आधे से अधिक संदेश इमोटिकॉन्स

तथा इमोजी के उपयोग के साथ होते हैं जिनसे यह प्रदर्शित होता है कि वर्तमान संचार के दौर में इमोटिकॉन्स तथा इमोजी ने अपना स्थान बना लिया है जिसका मुख्य कारण इसका सरल उपयोग हैं। प्रभावी संचार के लिए आवश्यक है कि संदेश सरल हो, आकर्षक हो, मनोरंजक हो तथा कम समय में अधिक संदेश भेजे व प्राप्त किये जा सकें। प्राप्त आँकड़े यह दर्शाते हैं कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी का उपयोग समय की बचत करता है, संचार को आकर्षक, रुचिकर, मनोरंजक तथा सुगम बनाता है। संचार प्रक्रिया में प्रेषक यह अपेक्षा करता है कि उसका संदेश आकर्षक हो, आसानी से प्राप्तकर्ता की समझ में आए तथा उसे रुचिकर लगे। इमोटोकॉन्स तथा इमोजी के उपयोग ने डिजिटल संचार में नई तरह के प्रतिमान स्थापित किये हैं। अतः प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इमोटिकॉन्स तथा इमोजी के उपयोग ने एक संचार के क्षेत्र में अमौखिक संचार की एक नई संस्कृति को प्रचलित किया है।

सीमाएँ : प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने केवल डिजिटल अशाब्दिक संचार के विश्लेषण के लिए सोशल मीडिया पर ध्यान केंद्रित किया है। डिजिटल अशाब्दिक संचार के संदर्भ में, शोधकर्ता ने पारस्परिक और समूह संचार के लिए इमोटिकॉन्स और इमोजी के उपयोग पर अध्ययन किया है। इस अध्ययन के लिए, शोधकर्ता ने डिजिटल अशाब्दिक संचार में केवल इमोटिकॉन्स तथा इमोजी को लिया है, सभी चित्रलेख का नहीं।

सन्दर्भ

1. Narula, U. 'Communication Models'. University of Massachusetts, Amherst, USA, 2006, pp. 2-3.
2. Matsumoto,D., Frank, M. G., & Hwang, H.S., 'Nonverbal Communication: Science and Applications'. Sage Publications, 2012, p. 4.
3. Knapp, M.L., 'Nonverbal Communication in Human Interaction', New York: Holt, Rinehart, and Winston, 1972, p. 18
4. Gamble,T.K., and Gamble, M.W. 'Interpersonal Communication: Building connection Together', Sage Publications, Inc, 2014 p.2.
5. Kralj Novak, P., Smailovic, J., Sluban, B., and Mozetic, I., 'Sentiment of Emojis', PLoSONE10 (12): e0144296.doi: 10.1371/journal.pone.0144296, 2015
6. Kelly, C., 'A Linguistic Study of the Understanding of Emoticons and Emojis in Text Messages', Halmstad University, 2015
7. Plumb, M. D., 'Nonverbal Communication in Instant Messaging', A Capstone Project Submitted to Southern Utah University, 2013, p. 63
8. Tanenbaum, J., El-Nasr, M. S. & Nixon, M., 'Nonverbal Communication in Virtual Worlds: Understanding and Designing Expressive Characters', 2014 p- 106.
9. Walther, J.B., 'Nonverbal Dynamics in Computer-Mediated Communication', the Sage Handbook of Nonverbal Communication, California, 2006 p. 461.
10. Solomon, D. and Theiss, J., 'Interpersonal Communication: Putting Theory into Practice' Routledge Publicaton, 2013, p. 4.
11. Stark, L., and Crawford, K., 'The Conservatism of Emoji: Work, Affect, and Communication', Sage Publication, 2015, p. 36
12. Durante, C. B., 'Adapting Nonverbal Coding Theory to Mobile Mediated Communication: An Analysis of Emoji and Other Digital Nonverbals', Liberty University, 2016, p. 9

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

स्कूली शिक्षा में बहुभाषा एवं स्थानीय भाषाएं : उत्तराखंड में विद्यालयी शिक्षा का एक विश्लेषण

❑ डॉ उषा पाठक

सूचक शब्दः बहुभाषा, बहुभाषीय शिक्षा, बुनियादी ज्ञान, उत्तराखंड की विविध भाषाएं एवं बोलियां, गढ़वाली और कुमाऊंनी भाषाएँ।

शिक्षा का जुड़ाव विकास से माना जाता है, परन्तु पिछले कुछ वर्षों में विद्यार्थियों के स्कूल छोड़ने की दर तेजी से बढ़ी है। इसमें कोरोना की बीमारी एक मुख्य कारण मानी जा रही है। परन्तु यह स्थिति मात्र 2020 से नहीं उससे पूर्व से देखी जा रही है, और भारत जैसे भाषायी विविधता वाले देश में, एक भाषा में शिक्षा का संचालन होना भी इसके प्रमुख कारणों में से एक है। बुनियादी कक्षाओं में बहुभाषा को महत्व देकर इस स्थिति से बचा जा सकता है। उत्तराखंड, भले ही भारत के छोटे राज्यों में से एक है, परन्तु यहाँ भाषायी विविधता की भरमार है। विगत कुछ समय में एनसीईआरटी ने भी शिक्षा में बहुभाषिकता के महत्व पर ध्यान केंद्रित किया है, तथा नयी शिक्षा नीति -2020 भी मातृभाषा में शिक्षा देने को बढ़ावा देती है। यदि बहुभाषीय विकल्पों का शिक्षा में समावेश करना है तो पहले विद्यार्थियों में पढ़ाई के प्रति रुचि उत्पन्न करनी होगी। उसके लिए ज्ञान के अलावा विद्यार्थियों की दैनिक व्यवहारिक गतिविधियों को समझकर उनकी बोलचाल की भाषाओं के अनुरूप शिक्षण अधिगम साधनों का प्रयोग करना होगा। शिक्षण में यह आवश्यक है कि हम बच्चों की स्वाभाविक क्रियाएं देखकर उन्हें समझने की कोशिश करें, यह देखें कि वह अपनी गतिविधियों द्वारा क्या सीख रहे हैं? यदि बहुभाषीय विकल्पों का शिक्षा में समावेश करना है तो विद्यार्थियों को मात्र एकभाषीय किताब के अतिरिक्त अन्य स्थानीय भाषाओं से पढ़ाना, जानना एवं समझना होगा। इस आलेख का मुख्य उद्देश्य उत्तराखण्ड के गढ़वाल एवं कुमाऊं के पर्वतीय क्षेत्रों में अवस्थित विद्यालयों में किस प्रकार स्थानीय भाषाओं के उचित प्रयोग द्वारा बहुभाषा को बढ़ावा दे सकते हैं, जिससे गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी सतत् विकास के सत्तरह लक्ष्यों में से चतुर्थ लक्ष्य (SDG4) गुणवत्ता शिक्षा से सम्बन्धित है। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने एवं अधिगम उद्देश्यों की सफल प्राप्ति के लिए शिक्षण-अधिगम की जटिल प्रक्रियाओं को सरल एवं बोधगम्य बनाने के लिए विद्यालय शिक्षण कार्य को मातृभाषाओं एवं स्थानीय भाषाओं से जोड़ने की आवश्यकता है। भाषा ही अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। स्कूली शिक्षा में बच्चे अपने मन के भावों को शिक्षकों के साथ बोलकर या लिखकर प्रकट करते हैं। यदि समझ / बोध में भाषा के कारण किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न होता है तो उसका प्रभाव विद्यार्थियों के अधिगम पर जीवन पर्यन्त पड़ता है, अर्थात् सम्बोध एवं अधिगम एक दूसरे के समानुपाती है।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल एवं कुमाऊँ परिक्षेत्र में सांस्कृतिक विविधता के कारण स्कूली शिक्षा पर स्थानीय भाषाओं एवं बोलियों का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि इसका प्रभाव शिक्षा के सभी स्तरों को अनिवार्य रूप से प्रभावित करता है, किन्तु प्राथमिक कक्षाओं में जहां कम आयु वर्ग के बच्चे होते हैं, उन कक्षाओं में स्थानीय भाषाओं का महत्व अधिक हो जाता है, क्योंकि माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में विद्यार्थियों की समझने एवं पढ़ने की क्षमता मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ स्वाभाविक रूप से बढ़ जाती है। इस आयु वर्ग के विद्यार्थियों का ज्ञान एवं अधिगम क्षमता, तर्क एवं विश्लेषण पर आधारित होती है, जबकि पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक एवं विद्यार्थियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान दैनिक क्रियाओं, गतिविधियों, हाव-भाव, भाव भंगिमा और अभिवृत्ति एवं व्यवहार के रूप में परिलक्षित होता है। गढ़वाल-कुमाऊँ क्षेत्र में भी विद्यालयी शिक्षा में स्थानीय भाषाओं जैसे गढ़वाली-कुमाऊँनी के साथ-साथ उन पर्वतीय क्षेत्रों में बोली जाने वाली विविध बोलियों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है जो बहुभाषावाद का पर्याय है। प्रत्येक भाषा में समाज एवं पर्यावरणीय ज्ञान समाहित होता है।[1] जब एक भाषा अपना अस्तित्व खोती है तो उसे बोलने वाले पूरे समुदाय का ज्ञान विलुप्त हो जाता है जो सामाजिक संदर्भ में एक बहुत बड़ा नुकसान है क्योंकि भाषा ही सामूहिक स्मृति एवं ज्ञान को जीवित रखने का सशक्त माध्यम है। यह नुकसान सामाजिक एवं सांस्कृतिक हानि के साथ-साथ आर्थिक हानि भी है। संप्रति सभी तकनीक

❑ एसोशिएट प्रोफेसर शिक्षक-शिक्षा विभाग डी.ए.वी. (पीजी) कॉलेज, देहरादून, (उत्तराखंड)

भाषा पर आधारित होने के कारण भाषा एक आर्थिक पूंजी भी है। पिछले 50 वर्षों में हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा बोलने वालों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है, परंतु स्थानीय बोलियों एवं भाषाओं के विलुप्त होने की दर तेजी से बढ़ी है, जिसका मुख्य कारण शहरीकरण एवं पलायन है।

प्रत्येक राज्य अपनी भाषा के संरक्षण में काफी प्रयासरत् है, वहीं संविधान के अनुसार अनुसूची में केवल 22 भाषाएं हैं। सरकार द्वारा, स्थानीय भाषाओं एवं बोलियों को विलुप्त होने से बचाने के लिए बिना किसी भेदभाव के सुरक्षा देना आवश्यक है और विद्यालयी शिक्षा इस दिशा में सशक्त माध्यम के रूप में अपना योगदान सुनिश्चित कर सकती है।

स्कूली शिक्षा में बहुभाषा का महत्व : शिक्षा का अर्थ है- सीखना एवं सिखाना।[2] यह एक व्यापक तथा जटिल प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य न केवल इतिहास की धरोहर को संभालना है अपितु वर्तमान के पथ को आलोकित करना भी है। शिक्षा सशक्त हो कर सामाजिक विकास में सहायक बन सकती है। वह भौगोलिक परिस्थितियों को समझकर, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शांति रखती है। परन्तु अगर विद्यालयी शिक्षा में विद्यमान बहुआयामों को सही प्रकार से समझा और समझाया न जाए तो वह संस्कृति और सभ्यता पर बड़े प्रश्नचिन्ह लगा सकती है। सामाजिक परिवर्तन का प्रभावशाली माध्यम विद्यालयी प्रणाली में लोकतान्त्रिक प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है। वर्तमान समय में प्रजातान्त्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण के लिए विद्यालयी पुर्नसंरचना व पुनर्गठन की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस अवधारणा का उद्देश्य विद्यालयों में बहुसांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करना है जो विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में योगदान दे। ऐसे विद्यार्थियों की अभिक्षमताऐं न केवल प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अपनी सहभागिता सुनिश्चित करती हैं। भारतीय समाज में व्याप्त विविधता -विभिन्न संस्कृतियों एवं भाषाओं के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में संसाधन के रूप में समावेशित करने के मार्ग पर एक बहुत बड़ी चुनौती भी है। इस चुनौती का सामना करने हेतु विद्यालयी शिक्षण में स्थानीय भाषाओं का प्रयोग एक सशक्त माध्यम है, जिसकी बुनियाद प्रारम्भिक कक्षाओं में ही डाली जानी चाहिए। इस हेतु भाषा की प्रासंगिकता एक अहम योगदान निभाती है।[3] यदि एक विद्यार्थी किसी विषय को अपनी भाषा में समझता है तो वह उसे किसी भी भाषा में लिख-पढ़ सकता है। यदि मूल अवधारणाओं को ठीक प्रकार एवं अपनी भाषाओं में समझाया जाए तो बहुभाषीय शिक्षा के बेहतर परिणाम देखे जा सकते हैं।

बहुभाषावाद दो या दो से अधिक भाषाओं के उपयोग करने की क्षमता को कहते है।[4] इसके अंतर्गत शिक्षार्थियों द्वारा विभिन्न भाषाओं का उपयोग करना, भाषा किस प्रकार काम करती है इसे समझना, आदि सम्मिलित है। यह स्थानीय भाषाओं की रचनात्मकता एवं बहुभाषी स्वरूप को बढ़ाता है।[5] यह शिक्षा का एक ऐसा संसाधन माना जाता है, जिसका उद्देश्य शिक्षण के लिए शिक्षकों से अधिक शिक्षार्थियों की भाषाओं का उपयोग करना है।

भारत जैसे बहुभाषी देश में स्वदेशी भाषाओं, धर्मों और विचारों के भेद के बावजूद समन्वय की एक सांस्कृतिक अंतर्धारा सदैव प्रवाहित होती रही है तथा इसका सीधा प्रभाव शिक्षा क्षेत्र में भी पड़ता है। एक से अधिक भाषा ज्ञान के संज्ञानात्मक और व्यावहारिक लाभ के कई शोध और प्रमाण हैं, और भारत सहित अधिकांश विश्व में बहुभाषी विद्यार्थी एक आदर्श हैं। भारत में हर चार कोस पर वाणी बदल जाती हैं। श्री भारतेन्दु हरिश्चंद्र के कथानुसार-

कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी।
बीस कोस पर पगड़ी बदले, तीस कोस पर धानी।[6]

परन्तु कक्षाओं में आज भी हिंदी अथवा अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले उन विद्यार्थियों के समक्ष यह एक बड़ी समस्या के रूप में उभरती है, क्योंकि कई स्थानों पर विद्यार्थियों की मातृभाषा (बोली, भाषा) और विद्यालय की भाषा समान नहीं होती है, जिसके कारण कई विद्यार्थी शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। जब विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों से आने वाले विद्यार्थी एक स्कूल में मिलते हैं, तो उन्हें विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के बारे में बताया जाए, तो उन्हें विभिन्न संस्कृतियों का न केवल ज्ञान होता है, अपितु यह बहुसांस्कृतिक जागरूकता में भी मदद करता है, जो देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

भाषा वह साधन है जिससे व्यक्ति जीवन में आगे बढ़ता है, यदि स्कूली शिक्षा में एक भाषा का इस्तेमाल किया जाएगा तो एक बहुत बड़ा हिस्सा उससे वंचित रह जाएगा। एक विद्यार्थी यदि स्कूल के प्रथम 5 वर्षों तक अपनी भाषा में शिक्षा ग्रहण करेगा तो उससे विद्यार्थी संख्या बढ़ेगी तथा ड्राप आउट्स की संख्या में बड़ी कमी देखी जाएगी।[7] कोविड महामारी के चलते स्कूल लगभग दो साल बन्द रहे

जिसके कारण साक्षरता व बुनियादी ज्ञान की चुनौती कक्षा 8 तक के बच्चों में देखी जा सकती है।

2026–27 तक शत-प्रतिशत साक्षरता दर लाने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों को अपने स्तर और भाषा से शिक्षा दी जाए। स्कूली शिक्षा, के अंतर्गत आरम्भिक कक्षाओं में गणित, अंकों, भाषा, चित्रों जैसे बुनियादी कौशलों पर जोर दिया जाता है, इसी स्तर पर उन्हें कौशल सिखाना जो उनके जीवन में सीखने-समझने व तर्क करने की क्षमताएं विकसित करता है।

उत्तराखंड की विविध भाषाओं का ऐतिहासिक विवरण : भाषा और बोली में मुख्य अंतर यह है, जहाँ भाषा में मानकता, स्वायत्तता, ऐतिहासिकता और जीवंतता के लक्षण सम्मिलित हैं, वही बोली में मानकता और स्वायत्तता का तत्व आवश्यक रूप से, अनिवार्य नहीं है। परन्तु, साहित्य की दृष्टि से इसका भी मानकीकरण आवश्यक हो जाता है। इसलिए, प्रयोजन के धरातल पर भाषा और बोली में कोई विशेष अन्तर देखने को नहीं मिलता। एक ही भाषा में कई बोलियाँ होती है, परन्तु सभी बोलियों में परस्पर बोधगम्यता बनी रहती है। बोली मुख्य रूप से क्षेत्रीय बोलचाल, लोकसाहित्य तक सीमित होती है।[8]

उत्तराखंड में बोली जाने वाली प्रमुख भाषाएँ, बोलियाँ, कुमाऊंनी और गढ़वाली हैं। इनके अतिरिक्त एक बड़ा भाग जौनसारी भी बोलता है। इन बोलियों में साहित्य और फिल्मों का भी निर्माण किया गया है, जिससे इन्हें भाषा का दर्जा भी प्राप्त है। इसके लेखन में देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है।[9]

कुमाऊं मण्डल के नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ, बागेश्वर, चम्पावंत और उधमसिंह नगर में निवास करने वाले लोगों की स्थानीय भाषा कुमाऊंनी है। गढ़वाल मण्डल के चमोली, रुद्रप्रयाग पौड़ी, टिहरी, उत्तरकाशी, देहरादून, में निवास करने वाले लोग गढ़वाली भाषा बोलते हैं।

भाषा विद्वानों (ग्रियर्सन, सुनीति कुमार चटर्जी तथा डी.डी. शर्मा) के अनुसार कुमाउंनी भाषा का विकास दरद, खस, पैशाची व प्राकृत से हुआ है। यह खड़ी बोली हिन्दी से भी प्रभावित है।

गढ़वाली भाषा की उत्पत्ति 'दरद' या 'खश' से मानी जाती है, जबकि कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति 'शौरसेनी' अपभ्रंश से मानते हैं। मैक्समूलर ने अपनी किताब 'साइंस ऑफ लैंग्वेज' में इसे प्राकृतिक भाषा का एक रूप माना है। हरिराम धस्माना की पुस्तक 'वेदमाला' में गढ़वाली और वैदिक संस्कृत में कई समानताएं पाई गयी हैं।[10]

गढ़वाली तथा कुमाऊंनी भाषाओं की अनेक उपभाषाएँ हैं तथा उच्चारण में अलग-अलग क्षेत्र का प्रभाव देखने को मिलता है। मगर यह दोनों भाषाएँ (गढ़वाली और कुमाऊंनी) संविधान में आठवीं अनुसूची का हिस्सा नहीं हैं और इसकी मांग काफी समय से उठती रही है। हिंदी भाषा से समृद्ध इन भाषाओं में हर प्रकार की गंध के लिए भी अलग शब्द है, यहाँ अनुज और अग्रज जैसे क्लिष्ट शब्दों के स्थान पर भैजी और भुला जैसे आम बोलचाल के शब्दों का इस्तेमाल होता है।

स्थानीय भाषाओं के सन्दर्भ में उत्तराखंड की स्कूली शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य : उत्तराखंड में 1840 में पहला सार्वजनिक स्कूल जो वर्तमान शिक्षा प्रणाली से मेल खाता है, श्रीनगर में शुरू किया गया।[11] और वर्तमान में शिक्षा विभाग के आंकड़ों के अनुसार उत्तराखंड में 12000 प्राइमरी एवं 2000 सेकेंडरी विद्यालय हैं। परन्तु शिक्षा की स्थिति की विद्यालयों में कोई अच्छी तस्वीर नहीं दर्शाती। राष्ट्रीय स्तर पर हुए केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के स्कूली शिक्षा और साक्षरता विभाग के परफॉरमेंस ग्रेडिंग इंडेक्स (पीजीआई) 2020–21 की रिपोर्ट के अनुसार उत्तराखंड को 1000 अंकों में से 719 अंक प्राप्त हुए हैं।[12] इस सूची में उत्तराखंड को 35वां स्थान मिला है, जो यहाँ की स्थिति को दर्शाता है। इसके मुख्य कारण किताबी और आम बोलचाल की भाषा में अंतर, शिक्षा सुविधाओं का न पहुंचना, शिक्षक प्रशिक्षण की कमी है। यदि उत्तराखंड में लोक भाषाओं को किताबी रूप में इस्तेमाल किया जाएगा तो संभवतः उत्तराखंड इस सूची में इतने निचले पायदान पर नहीं होगा।

उत्तराखण्ड के विभिन्न पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों में व्याप्त हिन्दी भाषा के प्रभाव के फलस्वरूप स्थानीय बोलियों की लोक कथाएँ, मुहावरे और लोकोक्तियां भी धीरे- धीरे विलुप्त होती जा रही हैं।[13] इनका प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यों एवं संस्कृति के विकास के लिए संसाधन के रूप में उपयोगी हो सकता है। उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी जिले में आदर्श अपर प्राइमरी स्कूल, गंगाणी, नौ गाँव ब्लॉक के शिक्षकों द्वारा स्थानीय बोली 'रवांल्टी', एक गढ़वाली बोली जो उत्तरकाशी के यमुना घाटी के रंवाई इलाके में बोली जाती है। वहां की लोक कथाएं, मुहावरे और लोकोक्तियां को संरक्षित रखने के लिए स्थानीय

विद्यार्थियों की सहायता से गाँव के बुजुर्गों से बात करके 'रवांल्टी' बोली के लगभग प्रत्येक मुहावरे व लोकोक्तियों को संग्रह करने का कठिन काम किया। इस कार्य का उद्देश्य जहाँ ग्रामीण बच्चों को सम्मिलित करना था, वही पाठ्यपुस्तकों में इस प्रकार से स्थानीय बोली में संरचित मुहावरे व लोकोक्तियों को संग्रहित करना था। प्राइमरी स्कूलों में पढ़ने वाले ज्यादातर बच्चे अपने घर-परिवार में बोली जाने वाली भाषा बोलते हैं। यह भाषा हिन्दी के स्वीकृत मानक खड़ी बोली से अलग होती है। हमारे प्रदेश में बोली जाने वाली ऐसी भाषाओं में कुमाऊँनी, गढ़वाली, जौनसारी, थारू, बोक्सा आदि मुख्य हैं। अक्सर कक्षाओं में हम 'फाइन' लगाकर बच्चों को अंग्रेजी अथवा हिंदी में बोलने के लिए विवश कर सकते हैं, परन्तु वह उनकी मूल अथवा मातृभाषा नहीं है। वह किसी भी विचार को समझने के लिए पहले उसे अपनी भाषा अथवा बोली में रूपांतरित करेंगे तथा उसे समझेंगे। यदि एक ही भाषा का इस्तेमाल किया जाए तो इससे समझने एवं समझाने की क्षमता में वृद्धि होगी।

अक्सर स्कूलों में प्रारंभ से ही बच्चों को मानक भाषा सिखाने पर जोर दिया जाता है, जिससे बच्चे भाषा सीखने से कतराते हैं। बच्चे घर पर बोली जाने वाली भाषा के असर के कारण मानक भाषा के प्रयोग में 'अशुद्धियाँ' करते हैं और 'शुद्धता' पर जोर देने से भाषा सीखने में एक बड़ी रुकावट खड़ी हो जाती है।

उत्तराखंड के विद्यालयों में स्थानीय भाषा - केंद्रित अनुप्रयोग : केस स्टडी

उत्तराखंड के इन केस आधारित विभिन्न अध्ययनों का मुख्य उद्देश्य विद्यालयों में प्रमुख रूप से प्रचलित बोली जाने वाली स्थानीय भाषाओं एवं बोलियों के अनुप्रयोग एवं प्रभाव का अध्ययन करना था। ताकि स्थानीय भाषाओं को शिक्षा में समुचित स्थान देकर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ-साथ उन्हें विलुप्त होने से बचाया जा सके।

1. उत्तराखंड के पौड़ी जिले में 2019 से सरकारी व निजी विद्यालयों में गढ़वाली पाठ्यक्रम की शुरुआत की गयी, जिसे मुख्यमंत्री द्वारा भी सराहा गया। यह मुहिम पौड़ी गढ़वाल के जिलाधिकारी धीरज सिंह गर्ब्याल द्वारा शुरू की गयी है। प्राथमिक कक्षाओं के लिए तैयार किया गया गढ़वाली भाषा का पाठ्यक्रम एनसीईआरटी और एससीईआरटी के मानकों पर खरा है और पुस्तकों की पाठ्य सामग्री उसी से मेल खाती हुई बनाई गयी है।[14] कक्षावार एक से पांच तक पुस्तकों के नाम 'धगुलि', 'हंसुलि', 'छुबकि', 'पैजबी', 'झुमकि' रखे गए हैं। यह पाठ्क्रम पौड़ी के 79 स्कूलों में लागू किया गया है, तथा और भी जिलों में लागू करने की योजना है। गढ़वाली बोली-भाषा को शिक्षा में उपयोग किये जाने, और भाषा की समृद्धि में यह कदम एक अहम कड़ी साबित हो सकता है।
2. उत्तराखंड के एक सुदूर ग्रामीण विद्यालय के शिक्षक, श्री रामलाल के अनुसार, बच्चे जब मातृभाषा में संवाद करते हैं तथा किसी विषय पर चर्चा करते हैं तो वह उसे लम्बे समय तक याद रख पाते हैं। एक दिन लंच के दौरान कक्षा में शांत रहने वाला और संकोची विद्यार्थी, खेल के मैदान में अपने मित्रों को गढ़वाली में एक विज्ञान का टॉपिक पढ़ा रहा था जिसे सब तल्लीनता से सुन रहे थे। अपनी भाषा में बातचीत करते हुए उनका आत्मविश्वास, क्षमता, बुद्धि और सामाजिक गुण कई गुना बढ़ जाते हैं, जिन्हें यदि शिक्षा और कक्षा में उपयोग किया जाए तो बेहतर परिणाम और सक्षम विद्यार्थी भारतीय शिक्षा प्रणाली द्वारा भविष्य में दिए जाएंगे।
3. उत्तराखंड के पिथौरागढ़ और चमोली जिलों के सरकारी स्कूलों में विद्यार्थी अपनी स्थानीय भाषा (कुमाऊंनी एवं गढ़वाली) में भी सुबह की प्रार्थना करते हैं।[15] यह सहभागिता एवं संस्कृति को बढ़ावा देने एवं उसे संरक्षित करने के लिए एक नयी पहल के रूप में सामने आया है। पिथौरागढ़ मंडल के सरकारी जूनियर हाई स्कूल के भुवन चंद्र पांडे और अन्य शिक्षक विद्यार्थियों को गाने तैयार करने और हिंदी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रार्थनाओं को अनुवाद करने में मदद करते हैं।

उपर्युक्त केस अध्ययनों के निष्कर्ष निम्नलिखित बिंदुओं की ओर इंगित करते हैं-

1. विद्यार्थियों में अधिगम को सरल व सुगम बनाने एवं स्थानीय भाषाओं के अनुप्रयोग में रूचि उत्पन्न करने के लिए पाठ्यक्रम एवं पुस्तकों को स्थानीय भाषा में निर्मित, मुदित एवं प्रकाशित किया जाना चाहिए।
2. मातृभाषा में अर्जित ज्ञान के आधार पर जब बच्चे संवाद करते हैं तो उनका सीखना लम्बे समय तक स्थायी होता है तथा विद्यार्थियों के सामाजिक कौशलों एवं क्षमता संवर्धन में सहायक होता है।

3. विद्यालयी दैनिक कार्य-कलापों एवं गतिविधियों को स्थानीय भाषा से जोड़कर सामाजिक सहभागिता एवं संस्कृति के संरक्षण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है

स्कूली शिक्षा में बहुभाषा की चुनौतियां : बहुभाषीय कक्षा, चुनौतियों से अधिक एक समाधान के रूप में विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में योगदान दे सकता है। एक भाषा से सभी विद्यार्थियों में समान परिणाम नहीं देखे जा सकते क्योंकि जो भाषा किसी के लिए आसान होती है वही अन्य लोगों के लिए कठिन हो सकती है। अनुसंधानिक रूप से भी यह स्पष्ट किया गया है कि 2 से 8 वर्ष की आयु में बच्चे भाषा को बहुत जल्दी सीखते हैं और इन वर्षों में बहुभाषिकता का संज्ञानात्मक लाभ होता है। बुनियादी शिक्षा में बच्चों को विभिन्न भाषाओं में ज्ञान देना चाहिए, परन्तु विशेष जोर मातृभाषा में शिक्षा पर देना चाहिए। इसके अंतर्गत भाषाओं को एक मनोरंजक और संवादात्मक शैली में पढ़ने और लिखने के अवसर उपलब्ध किये जाने चाहिए।

अधिकांश शिक्षकों का यह मानना हो सकता है कि अलग-अलग भाषाओं के प्रयोग से बच्चों को उलझन हो सकती है परन्तु, कक्षा में बहुभाषी परिवेश के कारण हर विद्यार्थी अपनी बात रखने में सक्षम एवं सहज अनुभव करता है।

भौगोलिक, सामाजिक एवं वर्तमान भाषाई परिदृश्य में यहाँ कुछ चुनौतियां देखी जा सकती हैं - जैसे क्षेत्रवार भाषा एवं उसे बोलने के तरीके में बदलाव, मैदानी तथा पहाड़ी क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाओं में अंतर, जिसके कारण किसी एक भाषा को मूल मानकर उसकी किताबें और पाठ्यक्रम उपयोग में नहीं लायी जा सकती हैं। इसके लिए आवश्यक है शिक्षक अपनी कक्षा के अनुपात को जाने तथा उसी प्रकार से शिक्षण का कार्य करें।

सेवा नियमावली[16] में मातृभाषानुसार संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन करते हुए शिक्षकों का संवेदीकरण, अभिमुखीकरण, प्रशिक्षण कोर्स तैयार किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण के माध्यम से बहुभाषा को संसाधन के रूप में देखने के विचार को लागू किया जाना जरूरी है। बुनियादी शिक्षा केन्द्रों को साथ जोड़ना (इंटरनेट या विभिन्न माध्यमों से), नियुक्ति की नियमावली में संशोधन, शिक्षण की अनुशंसा को व्यावहारिक धरातल पर उतारना, यह एक बड़ी चुनौती के रूप में अवश्य रहेगा, परन्तु इसके उपयोग से शिक्षण की अनुशंसाओं के अनुरूप कार्य करने से बेहतर परिणाम भी प्राप्त होंगे।

बच्चों को प्राथमिक स्तर की विद्यालयी शिक्षा उनकी मातृभाषा में देना इस ओर एक उपयोगी कदम सिद्ध होगा, इससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सरल एवं सहज हो जाएगी।

स्कूली शिक्षा में बहुभाषा को बढ़ावा देने में शिक्षक एवं पाठ्यक्रम की भूमिका : विद्यार्थी जब पहली बार विद्यालय आता है तो शिक्षक किताबी भाषा में उसे पढाते हैं, जहाँ उसकी 'अपनी भाषा' के लिये कोई जगह नहीं होती। यदि बहुभाषा को अपनाया जाए तो विद्यार्थियों की सीखने की गति तेज होगी। कक्षा में उनके अनुभवों को सुनना, 'अपनी भाषा' में वार्तालाप करवाना, कहानियां-कविताएं कहलवाना कुछ मुख्य गतिविधियां सम्मिलित हैं। मौखिक अभिव्यक्ति को बहुभाषा से संबंधित दैनिक संवाद से जोड़ने के बाद के बाद लिखित कार्य की ओर बढ़े कदम एक सही दिशा की ओर ले जाएंगे, जो इस प्रकार हो सकते हैं :

1. **विद्यालयों में बहुभाषा को बढ़ावा देना :** शिक्षकों को विद्यार्थियों के साथ उनकी भाषाओं में वार्तालाप करना चाहिए। यदि शिक्षक, विद्यार्थियों की भाषा नहीं जानते हैं तो उसे जानने के लिए कक्ष में नियमित गतिविधियाँ आयोजित करवाएं, जिससे शिक्षक और विद्यार्थियों का ज्ञान बढ़े और समझने की क्षमता का विकास हो।
2. **बहुभाषीय कक्षा संचालन :** शिक्षकों को अपने शिक्षण अभ्यास में मातृभाषा का संसाधनों के रूप में उपयोग करना चाहिए। यदि मातृभाषा में पढ़ाया नहीं जा सकता है तो कुछ कठिन कॉनसेप्ट (प्रत्ययों) एवं विषयों को उस भाषा में समझाकर बहुभाषा में वृद्धि करें।
3. **भाषा अनुवाद करना एवं उसे बढ़ावा देना :** इसके अंतर्गत अनुवाद, भिन्न भाषाओं के साथ शब्दात्मक तुलना, आदि सम्मिलित है। उदाहरण स्वरुप- जैसे माँ को गढ़वाली में ब्वे, कुमाऊंनी में इजा, जौनसारी में ईजी कहा जाता है।
4. **शिक्षक प्रशिक्षण में मूल परिवर्तन :** प्रशिक्षण में बहुभाषा का कक्षा में एक संसाधन के रूप में उपयोग किये जाने जैसी मूलभूत विषयों पर चर्चा की जानी चाहिए। व्याकरण, भाषा पद्धतियाँ, विषयों का

आलोचनात्मक पठन, भाषा का सामाजिक-शास्त्रीय पहलू, अभिव्यक्ति, अनुवाद एवं अनुवाद प्रक्रिया का विश्लेषण, इत्यादि महत्वपूर्ण घटक होंगे।

5. **बहुभाषी कक्षा में सतत बदलाव**[17] : कक्षा में शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच में स्थानीय भाषाओं को समावेशित कर सतत संवाद बनाए रखना चाहिए, ताकि कोई विद्यार्थी महत्वपूर्ण ज्ञान से वंचित न रहे।
6. **स्थानीयता का समावेश** : राज्य में बुनियादी स्तर पर बहुभाषीय शिक्षा के विचार को लागू करने के लिए बुनियादी स्तर पर राज्य में उपलब्ध स्थानीय अकादमिक केंद्रों के माध्यम से भाषावार पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री का विकास आवश्यक है, जिसमें स्थानीयता का समावेश हो। कक्षा में गतिविधियों का सं्चालन हो जो स्थानीयता का पाठ्यक्रम में समावेश करे। कहानी आधारित शिक्षण पर जोर दिया जाए, जिससे संस्कृति, कला को समझा जाए और उसे विलुप्त न होने दिया जाए।
7. **सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराना** : विद्यार्थियों के प्रति एक दूसरे के लिए परस्पर सम्मान और मित्रतापूर्ण व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करना। यह ध्यान रखना कि कोई विद्यार्थी किसी भी प्रकार से शिक्षा ग्रहण करने में वंचित न रहे। शिक्षकों का कार्य केवल किताबी ज्ञान देना नहीं या पाठ्यक्रम पूरा करवाना नहीं अपितु विद्यार्थियों की बातों को धैर्यपूर्वक सुनना भी है।
8. **त्रि-भाषा फॉर्मूले में लचीलापन** : किसी भी राज्य पर कोई भाषा थोपी नहीं जानी चाहिए। इस संबंध में उच्चतर गुणवत्ता वाली विज्ञान और गणित में द्विभाषी पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण अधिगम सामग्री को तैयार करने के सभी प्रयास किए जाएं, ताकि विद्यार्थी दोनों विषयों पर सोचने और बोलने के लिए अपने घर की भाषा, हिंदी और अंग्रेजी सब में सक्षम हो सकें।
9. **पाठ्यक्रम एवं शिक्षण पद्धतियों में बदलाव** : राज्य सरकार, शिक्षकों के सहयोग से स्थानीय भाषाओं में पाठ्यक्रम एवं शिक्षण पद्धतियों के विकास में पहल करें जिससे एक ऐसा विद्यार्थी-केंद्रित पाठ्यक्रम एवं शिक्षण पद्धतियाँ विकसित की जा सकें, जो विद्यार्थियों को उनकी क्षमता एवं गति के अनुसार पढ़ने के लिए प्रेरित करे।
10. **शिक्षकों के कारगर प्रयासों के लिए समुचित पुरुस्कार एवं सम्मान** : सर्वप्रथम स्थानीय प्रशासन द्वारा शिक्षकों को स्थानीय भाषाओं के संरक्षण हेतु किए गए उनके प्रयासों के लिए प्रोत्साहित एवं सम्मानित किया जाना चाहिए।
11. **स्थानीय भाषाओं में पुस्तकें अनुवादित कराना:** स्थानीय भाषा पर आधारित विद्यालयी शिक्षा के लिए शिक्षकों को उचित संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए, जिससे वे स्थानीय लोगों की सहायता से स्थानीय भाषा व बोली में पठन-पाठन सामग्री विकसित कर सकें, जिनका वर्तमान में अभाव है।

नई शिक्षा नीति के आलोक में बहुभाषा संबंधी सुझाव एवं संभावनाएं : कक्षा-1 से 5 और कक्षा-6 से 8 के बीच स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दर चिन्ताजनक रूप से बढ़ रही है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, 11 प्रतिशत बच्चे, कक्षा-1 के अन्त तक स्कूल से बाहर हो जाते हैं, तथा लगभग 16 प्रतिशत बच्चे कक्षा- 5 के बाद स्कूल छोड़ देते हैं। प्राथमिक स्कूल से माध्यमिक स्कूल (कक्षा-6) तक पहुँचने वाले बच्चों की दर के राज्यवार आँकड़ों के अनुसार पूरे देश का औसत 83 प्रतिशत है। नयी शिक्षा नीति[18] में दर्शाए आंकड़ों के अनुसार, कक्षा 6-8 के लिए सकल नामांकन अनुपात 90.9 प्रतिशत था, जबकि ग्रेड 9-10 और 11-12 के लिए क्रमशः यह केवल 79.3 प्रतिशत और 56.5 प्रतिशत है। यह एक चिंताजनक आंकड़ा है, और नयी शिक्षा नीति का एक मुख्य उद्देश्य इन विद्यार्थियों को शैक्षिक मोड़ पर वापस लाना है, और 2030 तक माध्यमिक स्तर पर पूर्व स्कूली में 100 प्रतिशत सकल नामांकन प्राप्त करना है। इस स्थिति से उबरने के लिए आवश्यक है कि हम उन सब भाषाओं का कक्षा में उपयोग करें जो बच्चे स्कूल में लाते हैं। जब विद्यार्थी की भाषा को कक्षा की प्रक्रियाओं में जगह दी जाएगी, उसका आत्मसम्मान और भागीदारी का स्तर विचारपूर्ण और सार्थक होगा। इससे आपस में सीखने (पीयर लर्निंग) की सम्भावनाओं और ज्ञान के निर्माण को प्रोत्साहन मिलेगा, जिसमें सभी बच्चे, उनके संरक्षक, समुदाय और शिक्षक बराबरी के भागीदार होंगे। त्रि-भाषीय फॉर्मूले का पहली बार उपयोग 1961 में देखा गया और 1964-66 में प्रख्यात कोठारी कमीशन रिपोर्ट ने इस पर मुहर लगा दी, परन्तु कागजों के जाल में फंसे इस फॉर्मूले को आज तक धरातल तक पहुंचने नहीं दिया गया, जो कि एक बड़ी

समस्या रही है।[19]

आवश्यक है कि बहुभाषायी किताबें अथवा मातृभाषा में विद्यार्थियों को किताबें मिलें। अंग्रेजी में फलों के नाम की किताबें हर जगह उपलब्ध होती हैं परन्तु क्षेत्रीय भाषाओं में उनकी उपलब्धता नहीं होती जिस कारण विद्यार्थी घर में किसी और नाम से जाने वाले फल को भी याद नहीं कर पाता।

नयी शिक्षा नीति-2020 में फाउंडेशन लर्निंग के लिए मातृभाषा को सबसे उचित माध्यम माना गया है। ऐसा इसलिए भी क्योंकि छोटे बच्चे अपनी मातृभाषा में कोई भी चीज तेजी से सीखते और समझते हैं। नयी शिक्षा नीति त्रि-भाषा फॉर्मूले की व्यवस्था को महत्त्व देती है, जहाँ विद्यार्थी को हिन्दी, अंग्रेजी के अतिरिक्त स्थानीय भाषा में भी पढ़ाया जा सके।

बुनियादी स्तर के बच्चों के साथ बहुभाषायी संवाद करना, वर्ण पहचान, ध्वनि पहचान, शब्द पहचान, चित्र पठन, कार्य पुस्तिकाओं पर ध्यान देना, खेलकूद गतिविधियां और आकलन करना मुख्य रूप से सम्मिलित है। इसके अंतर्गत उत्तराखंड (भारत के हर राज्य में) राज्य की विभिन्न लोक भाषाओं में बच्चों को लोककथा, नाट्य संवाद एवं लोकगीत के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करने के अवसर उपलब्ध कराए जाएंगे, इससे न केवल मातृभाषा के प्रति सम्मान की भावना विकसित होगी, अपितु एक-दूसरे की भाषाओं से भी विद्यार्थी परिचित हो पाएंगे। मुख्य दो भाषाओं के अतिरिक्त उत्तराखंड में लगभग 17 मातृभाषाएं चिन्हित हैं, जिसमें जौनसारी, रां, रंवाल्टी, जाड़, थारू, बोक्सा, मार्च्छा, राजी आदि सम्मिलित हैं। इसके अलावा प्रदेश में कई अन्य बोलियां भी बोली जाती हैं, जिन्हें शिक्षा में एकीकृत कर नयी शिक्षा नीति को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

नयी शिक्षा नीति[20] में विद्यार्थियों के लिए सभी स्थानीय और भारतीय भाषाओं में किताबों का अनुवाद सम्मिलित है, जिसे स्कूल, स्थानीय, सार्वजनिक और डिजिटल पुस्तकालयों में बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराया जाएगा। यह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के शब्दकोश में वृद्धि करेगा तथा बहुभाषीय बनाने की ओर एक सकारात्मक कदम होगा। स्कूल पुस्तकालयों की स्थापना से गांवों में और क्षेत्र के लोग भी गैर-विद्यालय समय के दौरान अपने ज्ञान का वर्धन कर सकते हैं।

नयी शिक्षा नीति के अनुसार एक राष्ट्रीय पुस्तक संवर्धन नीति तैयार की जानी चाहिए, जिसमें भाषाओं, स्तरों, और शैलियों की पुस्तकों की उपलब्धता, पहुंच, गुणवत्ता और पाठक सुनिश्चित करने के लिए व्यापक पहल हो।

निष्कर्ष : उत्तराखण्ड की विभिन्न भौगोलिक एवं सामाजिक विषम परिस्थितियों की विविधताएँ, पाठ्यक्रमों के सुचारू क्रियान्वयन में एक महत्वपूर्ण चुनौती भी है। इसके लिए राज्य-संसाधन एवं स्थानीय समुदायों के सहयोग से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के बुनियादी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

विश्व के सबसे घनी आबादी वाले देश रूस, चीन, भारत, अफ्रीका सभी बहुभाषीय हैं। एक बहुभाषी समाज में भाषाई विविधता एक संसाधन के रूप में है तथा यही हर क्षेत्र की पहचान बनाए रखता है। यदि सही प्रकार से विभिन्न भाषाओं में छिपी सम्भावनाओं को पहचाना जाए तो घरेलू भाषाओं के प्रति हीन भावना की समस्या को भी सुलझाया जा सकेगा। यदि कक्षाओं में बहुभाषीय विकल्प का उपयोग किया जाएगा तो विद्यार्थी उसका सृजनात्मक रूप से उपयोग भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चों को अँग्रेजी में शब्दों के बहुवचन बनाने के नियम सिखाने की बजाय शिक्षक बच्चों के लिए ऐसी गतिविधियाँ आयोजित कर सकते हैं जिसमें विभिन्न भाषाओं के अन्तर्गत शब्दों के बहुवचन बनाने की प्रक्रिया की पड़ताल की जा सके।

पिछले कुछ समय में भारत में अँग्रेजी, संस्कृत के स्थान पर शिक्षा की मुख्य भाषा बनकर उभरी है। परन्तु इसका नुकसान विद्यार्थियों की शिक्षा और लगातार बढ़ते ड्रॉप आउट संख्या में देखा जा सकता है। यदि एक भाषा के स्थान पर विद्यार्थी की मातृभाषा में पढ़ा जाए तो उसके दूरगामी परिणाम देखने को मिलेंगे। इसे बढ़ावा देने के लिए भाषा-सम्बन्धी एक नया पाठ्यक्रम तैयार करने के अतिरिक्त, शिक्षकों को उसका प्रशिक्षण दिया जाए तो इसका गहरा प्रभाव पद्धतियों, संसाधन एवं शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम, सभी पर पड़ेगा। बहुभाषा को बढ़ाने में बच्चों के माता-पिता एवं समुदाय - विशिष्ट के सदस्यों को पाठ्यक्रम के संकलन, पाठ्यसूची तथा शिक्षण-संसाधनों के विषय में विचार-विमर्श हेतु आमंत्रित करना एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

उत्तराखण्ड में विद्यमान बहुभाषाएँ, शिक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं, यह वर्तमान तक आ रहे बदलावों में सबसे अधिक प्रभावी कदम के रूप में उभरेगा। जहाँ नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, भारत की विविधता,

विभिन्नता और बुनियादी संख्याज्ञान पर ध्यान देती है, उसी प्रकार मातृभाषा में पाठ्यक्रम और विस्तृत दिशा निर्देश, शिक्षण को सुगम एवं प्रभावी बना सकता है। **विद्यालयों** के दैनिक कार्यकलापों में ऐसी गतिविधियां सम्मिलित हों, जो विद्यार्थियों से उनकी भाषाओं एवं बोलियों को जानने का अवसर प्रदान करें। साथ ही साथ विभिन्न भाषाओं में शब्दात्मक तुलनाओं के माध्यम से बहुभाषा को बढ़ावा दिया जा सकता है।

विद्यार्थियों को बचपन में नयी भाषाओं को पढ़ाने की सही आयु माना गया है, लेकिन यह शिक्षाशास्त्र द्वारा नहीं, बल्कि उपयुक्त बहुभाषी वातावरण देकर किया जा सकता है। यह पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने में भी मदद करेगा।

सन्दर्भ

1. देवी जी 'कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी', 2014 https://hindi.news18.com/news/chhattisgarh/kos-kos-turn-on-the-water-four-miles-speech-on-681196.html
2. वर्मा, ड. प., साव, ह. क., अधिकारी, प., किस्पोट्टा, प., मिश्रा, य., - प्रधान, प. सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संज्ञान एवं अधिगम; 2 ed.). State Education Institute and Training Council, 2018
3. चोम्स्की, न. (n.d.), भाषा हमारे अस्तित्व का मूल. 23-32. (व. रॉस, ए Interviewer, - आ. उपाध्याय, Translator) डिस्कवर.
4. Agnihotri, R. 'Multilinguality, education and harmony'. International Journal of Multilingualism, 11(3), 2014 pp. 364-79.
5. अग्निहोत्री, आर. 'बहुभाषीयताः एक संसाधन. (द. विस्वास, संपा.) डेकन हेरल्ड न्यूज सर्विस, अक्टूबर, 2014, पृ. 63-66
6. निशीथ, राकेश शर्मा, 'विश्व भाषा की ओर हिन्दी के बढ़ते कदम', https://rajbhasha.gov.in>filespdf
7. García, O. 'Bilingual Education in the 21st Century: A Global Perspective'. John Wiley & Sons. 2009, doi:10.1017/S0047404513000304
8. रुवाली, द. के. 'कुमाऊंनी भाषा और संस्कृति लेखक', डी. के. फाइन आर्ट प्रेस, नई दिल्ली, 2012, पृ. 39-41
9. कोटियाल आर, 'गढ़वाली और कुमाऊनी भाषा हैं या बोलियाँ'? Retrieved November 25, 2022, from Baramasa https://www.youtube.com/watch?v=3Tw3yU80hQo
10. https://www.myexamdata.wm/2021/09/languages-diabects-spoken-uttarakhand-bhasa.html.
11. कुमार एस, 'उत्तराखण्ड में वर्तमान शिक्षा प्रणाली का पहला स्कूल 1840 में श्रीनगर में खुला', अप्रैल 2022, Retrieved November 26, 2022 from Kafal Tree https://bit.ly/3P85xCZ
12. PERFORMANCE GRADING INDEX. (2020-21). Retrieved November 25, 2022 from Ministry of Education, Government of India: https://pgi.udiseplus.gov.in/#/home
13. गिरिधर, ए. 'साधारण, लोग असाधारण शिक्षक (भारत के असल नायक)', (ल. म. प्रकाश, Trans.) नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2021, पृ. 186-188
14. सुयाल, एन. (2019, 7 22). उत्तराखंडः आज से पाठ्यक्रम में शामिल हुई गढ़वाली, इस जिले में सबसे पहले शुरू हुई यह पहल. Retrieved November 28, 2022 from Amar Ujala https://www.amarujala.com/dehradun/garhwali-language-book-include-in-uttarakhand-pauri-district-schools
15. Dangwal, A., & Pandey, R. (n.d.). 'Language Across the Curriculum'. R. Lall Publishers and Distributors, pp. 50-51
16. नियमावलियां. (n.d.). Retrieved November 25, 2022 from Official Website of School Education Govt. of Uttarakhand https://bit.ly/3PiWz5N
17. टी. त्यागी, 'सरकारी स्कूलों में कुमाऊंनी और गढ़वाली भाषा में मॉर्निंग प्रेयर'. (2022, July 10). Retrieved November 27, 2022 from Navbharat Times https://navbharattimes.indiatimes.com/state/uttarakhand/dehradun/uttarakhand-governement-schools-start-prayers-in-kumaoni-and-garhwali-languages/articleshow/92780969.cms
18. नेगी एस.एस., 'बुनियादी भाषा व गणित विशेषांक', शैक्षिक प्रवाह (10), (2020, मई-अगस्त), पृ 23-27.
19. National Education Policy (2020). Retrieved November 28, 2022 from Education.gov.in https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
20. त्रि-भाषा सूत्र : महत्त्व और चुनौतियाँ. (2020). Retrieved November 26, 2022 from DrishtI IAS https://bit.ly/3P85Nlr

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महामारी नियंत्रण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

❑ डॉ. नीरजा सिंह

सूचक शब्दः महामारी, गैर सरकारी संगठन, कोरोना।

महामारी के समय में हमारे देश में एक समय ऐसा आया जब प्रधानमंत्री द्वारा देश में लाकडाउन की घोषणा कर दी गई। इस घोषणा के साथ ही लोग अपने घरों में ही बंद हो गए। देश की अधिकांश जनता के लिए यह शब्द बिलकुल नया था। इस नए वायरस को लेकर लोगों के मन में अनेक सवाल, तरह-तरह की भ्रातिंया व अफवाहें पैर पसार रही थीं। ऐसे समय में सरकारी तंत्र के लोगों के अतिरिक्त कोई अगर बाहर निकलकर लोगों की मदद कर रहा था तो वे समाज सेवी संस्थाओं के लोग थे। किंतु इस भूमिका के निवर्हन में अनेकों कठिनाइयां प्रतिदिन समाज कार्य कार्यकर्ताओं के सामने आती हैं जिनकी ओर सामान्य लोगों का ध्यान भी नही जाता।[1] सामान्यतया में स्वयं सेवी संस्थायें अलग अलग क्षेत्रों में विकास कार्यों में योगदान देती हैं लेकिन कोरोना महामारी एक अभूतपूर्व चुनौती के रूप में प्रकट हुई जिससे कि उनकी कार्यप्रणाली में परिवर्तन देखने को मिला। अतः 'महामारी नियंत्रण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिकाः पौड़ी गढवाल जिले के 5 गैर-सरकारी संगठनों से संबंधित सामाजिक कार्य अध्ययन' शोध शीर्षक का चुनाव स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा कोरोना नियंत्रण में किये गए कार्य तथा उनके निष्पादन के समय सामने आयी प्रमुख समस्याओं को केन्द्रित करते हुए निम्न तथ्यों के आधार पर किया गया है- महामारी नियंत्रण हेतु कोरोना जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन व पालन जिले के दूरस्थ क्षेत्रों तक स्वास्थ्य सामग्री व जीवन रक्षक दवाओं की आपूर्ति; अन्य संस्थाओं व सरकारी/निजी तंत्र के साथ सामंजस्य; पूर्व नियोजित वित्तीय मदों का कोरोना के अनुरूप पुनः नियोजन; कोरोना के कारण पूर्व संचालित कार्यों में बाधा; महामारी प्रबंधन में अनुभव का अभाव। समाज के प्रति जिम्मेदारी व कोरोना के डर के मध्य कार्यकर्ताओं में मनोवैज्ञानिक दबाव के बीच उक्त पंच स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा सामना की गयी समस्यायों एवं उनके निराकरण हेतु उपायों का अध्ययन करना रहा है।[2]

विश्व के इतिहास में जब जब मानव जाति के समक्ष कोई भी कठिनाई आयी है तब तब एक दूसरे की मदद को आगे आकर मानव सभ्यता ने सामाजिक सदभाव् की अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रकार का एक कभी ना भूलने वाला हृदय विदारक अनुभव कोरोना नामक बीमारी के रूप में सामने आया। दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति जिसे जीवन की समझ होगी वह अपने जीवन के अंतिम समय तक भी इस शब्द को शायद ही कभी भूल पाए। विश्व के मानचित्र पर शायद ही कोई ऐसा देश होगा जो महामारी की इस विभीषिका से बच पाया हो। जाति, धर्म, रंग-रूप समुदाय के स्तर से आगे बढ़कर जनमानस ने एकता और सहयोग की भावना को अभूतपूर्व ढ़ंग से प्रदर्शित किया। किसी भी देश के आगे बढ़ने के लिए उसके कार्यबल का स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है, किंतु महामारी ने स्वास्थ्य क्षेत्र के ढ़ांचे को ध्वस्त करते हुए दुनिया के विकास के रथ के पहिए को थाम दिया। भारत के उत्तर क्षेत्र में स्थित एक पर्वतीय राज्य है उत्तराखण्ड जिसकी परिस्थितियां भौगोलिक दृष्टिकोण से पहले ही कठिन हैं।[3] वर्ष 2019 के अंत में विश्व के समक्ष कोविड-19 अर्थात् कोरोना के रूप में एक अत्यंत दुश्वार समस्या आ खड़ी हुयी जिसने पूरे विश्व के समूचे घटनाक्रम को बदलकर रख दिया। कोविड-19 एक वायरस से फैलने वाली बीमारी है जो कि अत्यंत तेजी के साथ अपने पैर पसारती है। हमारा देश जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है और हमारे देश में इस तरह की भयावह महामारी से निपटने के लिए उपलब्ध सरकारी संसाधनों की भी एक सीमा है। इसलिए ऐसी विपरीत परिस्थितियों में स्वयं सेवी संस्थाओं/गैर सरकारी संगठनों को स्वयं को सुरक्षित रखने के साथ-साथ समाज की सुरक्षा व आवश्यकता पूर्ति का दोहरा भार उठाना पड़ा। कोरोना के इस दौर ने उत्तराखण्ड के साथ साथ पूरी दुनिया में सामाजिक कार्य तथा समाज सेवा के महत्व को फिर से उजागर कस दिया। जहां एक ओर सारी दुनिया के पहिए थमे हुए थे वहीं दूसरी ओर महामारी की शुरुआत से लेकर अब तक चिकित्सा सेवा व समाजसेवा से जुड़े हुए लोग अपने अनवरत प्रयासों में लगे हुए हैं। अपनी विषम परिस्थितियों के कारण उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा प्राप्त है, अतएव यहां राज्य के कोने कोने तक सरकारी तंत्र की पहुॅच हो पाना अत्यंत दुश्कर है। इसलिए महामारी के मुश्किल क्षणों में स्वयं सेवी संस्थाओं

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजकार्य विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

तथा समाज कार्य कार्यकर्ताओं की भूमिका और भी अहम हो जाती है।

साहित्य समीक्षा : संयुक्त राष्ट्र के अनुसार -स्वैच्छिक संगठन वह है जो अपने स्वायत्तशासी मंडल के द्वारा संचालित होता है, वित्तीय संसाधन जुटाने हेतु मूलतः निजी स्त्रोतों पर निर्भर होता है तथा जन कल्याण हेतु वैतनिक या अवैतनिक कार्मिक रखते हुए सामाजिक कार्यक्रम क्रियान्वयन, जनमत निर्माण, अनुसंधान क्रियायें, विधान निर्माण सहायता तथा सामाजिक विकास में स्वैच्छिक सहयोग प्रदान करता है।

भारतवर्ष में परोपकार की भावना युग-युगान्तरों से सदैव ही जनमानस के हदय में आत्मसात रही है। भारतीय संस्कृति में पौराणिक काल से ही नैतिकता के आधार पर संकटग्रस्त की मदद करने का भरापूरा इतिहास रहा है। मदद की इस परंपरा की मूल भावना हमारे श्लोकों में भी दृष्टिगोचर होती है-

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयं।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीड़नम।।

अर्थात् अठारह पुराणों में महर्षि व्यास ने केवल दो ही बातें कहीं हैं, परोपकार करना पुण्य है और दूसरे को पीड़ा देना ही पाप है। इसलिए यह सद्भाव और मदद की भावना भारतीयों में पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती जा रही है। यही अंतःकरण से निकला परोपकार का भाव गैर सरकारी संगठनों के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है। पुरातन काल में जिस व्यक्ति के पास आर्थिक संपन्नता होती थी वह उपलब्ध संसाधनों जैसे अन्न व धन के माध्यम से वंचित वर्गों की मदद करता था। 19वीं शताब्दी से पूर्व केवल परिवार, नाते-रिश्तेदार, अपनी जाति व समुदाय के लोग ही ज्यादातर जरूरतमंद की मदद किया करते थें।' प्रारंभिक समय में किसी की मदद करना व्यक्ति विशेष का स्वैच्छिक निर्णय होता था। धीरे धीरे इन निर्णयों ने संगठन का स्वरूप ले लिया। 19वीं सदी में स्वैच्छिक सेंवा को एक नया बल मिला जब यूरोपियन तथा कुछ शिक्षित भारतीयों ने अलग अलग क्षेत्रों में कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रारंभ किया। ब्रिटिश शासनकाल के प्रारंभिक दौर में क्रिश्चियन चर्चों ने अस्पताल, डिस्पेंसरी बनवाकर एवं देश के अलग अलग हिस्सों में शैक्षणिक संस्थान खोलकर कल्याणकारी गतिविधियाँ प्रारंभ कीं। इस काम में उन्हें अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों, समृद्ध व्यावसायी वर्ग, व्यापारियों के साथ-साथ अन्य धनाढ्य सदस्यों का भी समर्थन मिला। सन् 1815 में राजा राममोहन राय के द्वारा स्थापित 'आत्मीय सभा' को भारत के स्वैच्छिक संगठनों के इतिहास में प्रारंभिक प्रयास माना जा सकता है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में 'फ्रेंड इन नीड सोसायटी(1858)', प्रार्थना समाज (1864), सत्य शोधन समाज (1873), आर्य समाज(1875), इंडियन नेशनल सोशल कांफ्रेंस (1887) व रामकृष्ण मिशन (1898) ने इस स्वयंसेवा के काम को नई दिशा दी।

वर्तमान समय में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार , गरीबी उन्मूलन, महिला सशक्तिकरण जैसे मानवीय मुद्दों से लेकर विभिन्न तरह के पशु कल्याण तक कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें गैर सरकारी संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका न हो। दिव्यांग व्यक्तियों से लेकर वृद्धजनों की सेवा तक में ये संगठन अग्रणी भूमिका निभाते हैं। ये भूमिका विपरीत परिस्थितियों में और भी ज्यादा हो जाती है। उन्नत प्रोद्यौगिकी और समय के साथ आगे बढ़ती तकनीकों के प्रयोग ने समाज सेवा के पटल को और अधिक विस्तार दिया है। इस तकनीकी उन्नति ने गैर सरकारी संगठनों की पहुँच को दूरस्थ क्षेत्रों में स्थित समाज के अतिंम छोर पर खड़े व्यक्ति तक पहुँचा दिया है। भारतवर्ष में गैर सरकारी संगठन एक व्यापक शब्द है, जिसका तात्पर्य एक ऐसे संगठन से है जो सरकार का अंग न होकर भी समाज में कार्य करता है, यह सरकार द्वारा प्रेरित, नियंत्रित तथा वित्तीय सहायता प्राप्त हो सकता है। वर्ल्ड बैंक ने गैर सरकारी संगठनों को दो प्रकार का बताया है- 1- कार्यकारी गैर सरकारी संगठन 2- नियामक गैर सरकारी संगठन

इनमें से प्रथम का कार्य विकास संबंधी योजनाओं का निर्माण करना तथा उन्हें लागू करवाना है। इन कार्यकारी संगठनों को राष्ट्रीय संगठन, अंर्तराष्ट्रीय संगठन व समुदाय आधारित संगठनों इत्यादि मे बांटा जा सकता हैं। जबकि दूसरे प्रकार के नियामक संगठनों का काम अंर्तराष्ट्रीय स्तर के संगठनों के लिए नीतियों व पद्धतियों को बनाकर उन्हें प्रतिस्थापित करना है। इन संस्थाओं को व्यवस्थित रूप देने के क्रम में कापार्ट (CAPART) की स्थापना सातवीं पंचवर्षीय योजना के शासनादेश द्वारा की गई थी। इसकी स्थापना स्वैच्छिक संस्थाओं तथा सरकार के मध्य उत्प्रेरण व समन्वय करने वाली नोडल एजेंसी के रूप में हुई थी। वर्तमान समय में यह स्वायत्त एजेंसी भारत में ग्राम्य विकास की एक मुख्य धुरी है जो देशभर की

12000 से भी अधिक संस्थाओं का मार्गदर्शन करती है।[5]

कोरोना काल सारी मानव सभ्यता के लिए एक संकट की घड़ी थी। परिवहन के साधनों से लेंकर, घर से बाहर निकलने तक लगी समस्त पाबंदियों ने सारे क्रियाकलापों के रथ को रोक दिया था। ऐसे में सबसें अधिक आवश्यकता सहायता करने वाले हाथों की थी जो कि भूखों तक खाना, मरीजों तक दवा और इलाज तथा दूरस्थ क्षेत्रों तक बुनियादी सुविधाएं पहँचा सकें।इस समय एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जिनकी पहुँच समाज के उस वर्ग तक हो जिसका अभी विकास के मार्ग पर आगे बढ़ना बाकी है,जिनकी दूरस्थ क्षेत्रों तक व्यक्तिगत पैठ हो, लोंगों तक संपर्क साध सके, उनकी समस्याओं का समाधान कर सकें। कोरोना महामारी के इस भयावह दौर में क्षेत्र विशेष की अच्छी जानकारी के कारण व जरूरतमंद लोगों से निकटता के कारण गैर सरकारी संगठन इन राहत कार्यों की धुरी बने। देश में जब मार्च 2020 में पहली बार लाकडाउन लगा था तब देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश के गैर सरकारी संगठनों का आह्वान करते हुए उनसे सरकार की मदद करने को कहा- जिसमें जरूरतमंदों को बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता से लेकर, मास्क व मेडिकल उपकरणों की आपूर्ति तथा सामाजिक दूरी के विषय में जागरूकता कार्यक्रमों से संबंधित सहायता सम्मिलित थी। कोविड-19 के दौरान गैर सरकारी संगठनों द्वारा किए गए अभूतपूर्व सहयोग को देखते हुए इन संगठनों की स्वास्थ्य क्षेत्र में सहयोग के स्तर को बढ़ाने के लिए उच्च स्तरीय संस्तुतियां की गई हैं। इन संस्तुतियों में संगठनों के लिए बेहतर आर्थिक, मेडिकल व्यवस्था तथा लोक कल्याण से जुड़े सरकारी व गैर सरकारी तंत्र के साथ बेहतर तारतम्य सम्मिलित है।

यू0एन0डी0पी0 की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में 22 नवम्बर 1965 को अमेरिका में हुई थी। इसका मुख्यालय अमेरिका के न्यूयार्क शहर में स्थित है। यह संयुक्त राष्ट्र की सबसे बड़ी विकास एजेंसी है जो गरीबी उन्मूलन से लेकर सतत् विकास की दिशा में काम करती है। पौड़ी जिले में यह संस्था भारत सरकार के साथ मिलकर एन.आर.एल.एम योजना के लिए कार्य करती है। इसके अंर्तगत विभिन्न महिला स्वयं सहायता समूहों का निर्माण करके उन्हें आजीविका संवर्धन के लिए प्रोत्साहित करती है। ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने के लिए उन्हे संसाधन उपलब्ध कराने से लेकर सरकारी योजनाओं का लाभ दिलवाने तक का कार्य संस्था द्वारा किया जाता है।

एक बिजनेस लीडर बनने के लिए विप्रो को सफलतापूर्वक बनाने के बाद, अजीम प्रेमजी ने एक सामाजिक कार्य में योगदान करने और देश के सामने आने वाली विभिन्न विकास चुनौतियों का समाधान करने की आवश्यकता अनुभव की। अजीम प्रेमजी फाउंडेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, फरवरी 2000 में पंजीकृत किया गया था। बाद में इसे भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 25 के अधीन 9 मार्च 2001 को अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के रूप में फिर से पंजीकृत किया गया था। यह एक गैर-सरकारी संगठन है जो वर्ष 2000 से ग्रामीण सरकारी स्कूलों में प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली के साथ काम कर रहा है।

प्रणालीगत सुधार प्राप्त करने के लिए शिक्षा के सभी पहलुओं (शिक्षकशिक्षा, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, आदि) पर काम करना आवश्यक है; शिक्षा के सभी स्तरों (प्रारंभिक बचपन, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय, उच्च माध्यमिक और उच्च शिक्षा और विश्वविद्यालयों में अनुसंधान) और सभी हितधारकों (स्कूल, समुदायों और शिक्षाप्रणाली के विभिन्नस्तरों के साथ ब्लॉक से जिले तक) के साथ।

हिमोत्थान संस्था का जन्म देश के सबसे पुराने निजी परोपकारी संगठन सर रतन टाटा ट्रस्ट के माध्यम से मध्य हिमालयी क्षेत्र में गहनता से काम करने की इच्छा से हुआ था। यह ट्रस्ट देश भर में बड़े पैमाने पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करता है, और 2002 में उत्तराखंड में काम शुरू किया था। 2004 में, उत्तराखंड में ट्रस्ट की गतिविधियों को उत्तराखंड सरकार से उचित मान्यता मिली। ट्रस्ट और राज्य सरकार के बीच एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए जिसमें दोनों पक्ष राज्य में ग्रामीण विकास के मुद्दों पर शुरुआती दस साल की अवधि के लिए सहयोग करने के लिए सहमत हुए। समझौते को 2014 में एक और दस वर्षों के लिए नवीनीकृत किया गया था।

2007 में पंजीकृत, हिमोत्थान सोसाइटी पशुधन, कृषि, गैर लकड़ी वन उपज से जुड़े स्थायी उद्यमों को व्यवस्थित और विकसित करके ग्रामीण पर्वतीय समुदायों के बीच काम करती है, और बेहतर शिक्षा, सुरक्षित पानी और स्वच्छता और ऊर्जा तक पहुंच के लिए कार्य करती है। हिमोत्थान के कार्यक्रमों की पहुंच 87,000 से अधिक घरों

तक पहुंच गई है। कोविड-19 महामारी ने दुनिया भर में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आपूर्ति श्रृंखला विभिन्न प्रकार से बाधित किया है। मजबूत सामुदायिक संस्थानों की उपस्थिति व सुस्थापित क्षेत्रीय मूल्य वाले सूक्ष्म उद्यमा मेंने कुछ हद तक इन समुदायों को महामारी के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का सामना करने के लिए सक्षम बनाया है। हिमोत्थान वर्तमान में 87,000 से अधिक परिवारों, 1627 गांव, 45 ब्लॉक और 14 जिलों में अपनी पहुंच बना चुका है। कोरोना महामारी के दौरान हिमोत्थान द्वारा अपने सभी कर्मचारियों को टीकाकरण की अनिवार्यता व उपलब्धता करवाई गयी व साथ ही घर से कार्य करने हेतु प्रेरित किया गया। फील्ड के लोगों को आनलाइन माध्यमों से विभिन्न प्रशिक्षण व जागरूकता देना भी हिमोत्थान का कार्य रहा। हिमोत्थान द्वारा पौड़ी जिले के पौड़ी, दुगड्डा, द्वारीखाल, जयहरीखाल आदि क्षेत्रों में विभिन्न परियोजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है जो कि स्थानीय लोगों के जीवन में सुधार ला रहे हैं।[6]

2009 में स्थापित ''द हंस फाउंडेशन'' एक चैरिटेबल ट्रस्ट है जो कि देशभर की गैर-लाभकारी संस्थानों को वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाता है। अन्य संस्थाओं को सहायता के साथ-साथ यह फाउंडेशन स्वयं भी अनेक प्रकार के जन कल्याणकारी कार्यों को संचालित करता है जिनमें शिक्षा, स्वास्थय, आजीविका तथा निःशक्त जनों की सहायता का क्षेत्र प्रमुख हैं। हंस फाउंडेशन द्वारा अधिकतर योजनाएं ग्रामीण तथा देश के विकास की दौड़ में पीछे छूट गए क्षेत्रों में चलायी जाती हैं। इन योजनाओं का मुख्य केंद्र गरीबी उन्मूलन, आर्थिक असमानता तथा सामाजिक सतत् विकास द्वारा जीवन स्तर को सुधारना है।

लीड्र्स एक गैर सरकारी संस्था है जिसका प्रारंभ मई 2004 में हुआ तथा संस्था का रजिस्ट्रेशन सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट 1860 के अधीन हुआ है। लीड्र्स संस्था का पूरा नाम ''लोक इनवायरमेंट एक्शन फॉर डेवलपमेंट ऑफ इकोलॉजिकल रुरल सोसायटी'' है।

लीड्र्स संस्था द्वारा जयहरीखाल में आशियना राधादेवी वृद्धाश्रम का संचालन किया जा रहा है। वृद्धाश्रम की कोशिश है कि बुजुर्गों के जीवन को सरल एंव सुलभ बनाया जाय। इसी प्रयास में बुजुर्गों को सभी जरुरतमंद सुविधाऐं उपलब्ध करायी जाती है।[7]

प्रस्तुत शोध कार्य में कोरोना महामारी के समय में गैर सरकारी संगठनों द्वारा किए गए कार्यो के विषय में प्रति संगठन पांच व्यक्तियों से संगठन के महामारी नियंत्रण के कार्यों के विषय में जानकारी एकत्र की गई। इस हेतु प्रश्नावली बनाकर कोविड नियंत्रण से संबंधित आंकड़े प्राप्त किए गए।[8]

कोरोना महामारी- कोरोना एक वायरस अर्थात विषाणु जनित रोग है जो एक संक्रामक बीमारी है। 2019 में चीन के वुहान से शुरू हुयी इस बीमारी को कोविड -19 के नाम से पूरी दुनिया जानती है। यह SARS-CoV-2 नामक विषाणु से जनित होती है। यह विषाणु बहुत ही जल्दी हवा में फैलकर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचकर बीमारी को फैलाते हैं। कोरोना के संक्रमण फैलाने की दर इतनी अधिक थी कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे 30 जनवरी 2020 को अंतर्राष्ट्रीय चिंतन का विषय एवं 11मार्च 2020 को वैश्विक महामारी घोषित कर दिया था। जिस तेजी से यह लोगों को अपनी चपेट में ले रही थी उसने सारी दुनिया के चिकित्सा कर्मियों के सामने एक चुनौती खड़ी कर दी जिसका शीघ्र समाधान निकालना अति आवश्यक था। वैज्ञानिकों ने अथक प्रयासों से इसकी जांच के लिए तकनीक निर्माण से लेकर इलाज के लिए वैक्सीन बनाने तक का कार्य को कुशलता से पूरा किया।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध शीर्षक का चुनाव स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा कोरोना नियंत्रण में किये गए कार्य तथा उनके निष्पादन के समय सामने आयी प्रमुख समस्याओं को केन्द्रित करते हुए किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. जिले में स्वयं सेवी संस्थाओं के क्रियाकलापों का अध्ययन करना।
2. क्षेत्र में गैर सरकारी संगठनों की कोरोना महामारी से निपटने में भूमिका का अध्ययन करना ।
3. क्षेत्र में गैर सरकारी संगठनों की कोरोना से पूर्व तथा बाद की कार्यप्रणाली मे अंतर का तुलनात्मक अध्ययन करना ।
4. गैर सरकारी संगठनों की कोरोना काल में भूमिका के बारे में क्षेत्र के लोगों की का अध्ययन करना ।
5. जिले में कोरोना महामारी के आर्थिक-सामाजिक दुष्प्रभावों को दूर करने हेतु गैर सरकारी संगठनों के सुझावों का अध्ययन करना ।

अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत शोध अध्ययन में अध्ययन क्षेत्र उत्तराखण्ड राज्य के पौड़ी गढ़वाल जिले को लिया गया है।उत्तराखण्ड राज्य में कुल 1877 गैर सरकारी संगठनों

का पंजीकरण है जिनमें से 86 पौडी जिले में पंजीकृत हैं। यद्यपि जिले में वास्तव में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों की संख्या पंजीकृत से अधिक है क्योंकि कई संगठन ऐसे भी हैं जिनका पंजीकरण देश के अन्य राज्यों में व विदेशों में है। इनके कार्यक्षेत्र में बदलाव के कारण जिले में इनकी संख्या में उतार चढ़ाव होता रहता है। अध्ययन क्षेत्र में राष्ट्रीय व अंर्तराष्ट्रीय स्तर के कई संगठन वर्तमान में संलग्न हैं, जिनमें से 5 को यादृच्छिक निदर्शन के माध्यम से चुना गया। ये 5 संगठन महामारी के दौरान नियंत्रण से सम्बंधित विभिन्न प्रकार कार्यों में संलग्न थे।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध कार्य में विवरणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है अतः इस शोध कार्य में प्राथमिक व द्वितीयक दोनों स्त्रोतों सें प्राप्त तथ्यों का यथावत् विवरण देकर शोध से संबंधित निष्कर्ष निकाला गया है। समष्टि की वृहद्ता के कारण समष्टि की समस्त इकाइयों का अध्ययन संभव नहीं है अतएव् प्रस्तुत शोध कार्य में यादृच्छिक निदर्शन के माध्यम से विभिन्न चरों का चुनाव किया गया। प्रथम स्तर पर प्रतिनिधि गैर सरकारी संगठनों का चुनाव समसम्भाविक निदर्शन माघ्यम से किया गया है तत्पश्चात द्वितीयक स्तर पर इन 5 गैर सरकारी संगठनों (लीडर्स संस्था, हंस फाउंडेशन, हिमोत्थान सोसायटी, यू.एन.डी.पी. तथा अजीम प्रेम जी फाउंडेशन) में से 20-20 समाज कार्य कार्यकर्ताओं का चयन यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा किया गया।

तालिका संख्या 1

कोविड-19 महामारी नियंत्रण हेतु नए कार्यक्रम

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्तथान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	05	05	05	05	05	25	100
नहीं	00	00	00	00	00	00	00
योग	05	05	05	05	05	25	100

तालिका सं. 1 से ज्ञात होता है कि 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उन्होंने पूर्व नियोजित समाज सेवा कार्यों के अतिरिक्त भी कोरोना नियंत्रण के लिए अलग से नए कार्यक्रमों का संचालन किया।

तालिका संख्या 2

कोविड 19 महामारी नियंत्रण में गैर सरकारी संगठनों का कार्य माध्यम

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
ऑनलाइन	00	01	01	03	03	08	32
ऑफलाइन	04	02	04	01	02	13	52
दोनों	01	02	00	01	00	04	16
योग	05	05	05	05	05	25	100

तालिका 3.2 से स्पष्ट है कि निदर्शित गैर सरकारी संगठनों के 32 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उन्होंने कोरोना महामारी नियंत्रण के दौरान केवल ऑनलाइन काम किया जबकि 52 प्रतिशत ने क्षेत्र में जाकर अर्थात् ऑफलाइन काम किया। शेष 16 प्रतिशत ने आवश्यकतानुार ऑनलाइन व ऑफलाइन दोनों माध्यमों से सहयोग दिया।

तालिका 3 के अनुसार 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने लोगों को नकद हस्तांतरण द्वारा आर्थिक मदद की जबकि 36 प्रतिशत ने आर्थिक सहयोग नही किया। 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अप्रत्यक्ष रूप से जैसे कि मेडिकल/राशन बिलों के भुगतान आदि करके परोक्ष रूप से आर्थिक सहयोग दिया।

तलिका संख्या 3

कोविड 19 के समय लोगों को आर्थिक सहायता

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	04	00	03	01	02	10	40
नहीं	00	04	01	04	00	09	36
अप्रत्यक्ष रूप से	01	01	01	00	03	06	24
योग	05	05	05	05	05	25	100

तलिका सख्या 4

कोविड 19 के समय सहयोग क्षेत्र

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
शिक्षा	00	00	00	00	04	04	16
स्वास्थ्य	00	02	03	04	00	09	36
राहत सामग्री	01	01	00	00	00	02	08
एक से अधिक क्षेत्र	04	02	02	01	01	10	40
योग	05	05	05	05	05	25	100

कोरोना से निपटने के राहत कार्यों में 16 प्रतिशत द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में, 36 प्रतिशत द्वारा स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में तथा 08 प्रतिशत ने राहत सामग्री वितरण का कार्य किया। 40 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे थे जिन्होंने एक से अधिक सेवा क्षेत्रों मे कोरोना नियंत्रण में योगदान दिया।

तलिका संख्या 5

महामारी नियंत्रण के दौरान कोरोना संक्रमण

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	04	02	04	02	01	13	52
नहीं	00	01	00	00	00	01	04
अन्य कारण	01	02	01	03	04	11	44
योग	05	05	05	05	05	25	100

52 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसाार वे सामाजिक सेवा कार्यों में लगे रहने के दौरान ही कोरोना संक्रमित हुए थे जबकि 44 प्रतिशत का मानना है कि वे कोरोना से संकमित तो हुए किंतु उसके कुछ अन्य कारण थे ना कि समाज सेवा। 04 प्रतिशत के अनुसार वे कोरोना से संक्रमित नहीं हुए।

तालिका संख्या 6 के अनुसार 100 प्रतिशत अर्थात सभी उत्तरदाताओं का मानना है कि महामारी ने उनकी कार्यशैली को प्रभावित किया है। मास्क और हैड सैनिटाइजर का प्रयोग जैसे नए अनुभव अब उनके रोजमर्रा की कार्यशैली का हिस्सा बन चुके हैं।

तलिका संख्या 6
कोरोना महामारी के कारण कार्यशैली में परिवर्तन

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	05	05	05	05	05	25	100
नहीं	00	00	00	00	00	00	00
योग	05	05	05	05	05	25	100

तलिका संख्या 7
कोरोना महामारी के नियंत्रण के दौरान समस्याऐं

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	05	05	04	05	03	22	88
नहीं	00	00	01	00	02	03	12
योग	05	05	05	05	05	25	100

88 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि कोरोना महामारी नियंत्रण के दौरान उन्हें विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा जबकि 12 प्रतिशत के अनुसार उनके द्वारा महामारी के समय किया गया कार्य उनके पूर्व के कार्यों की भांति ही था जिससे उन्हें कोरोना के समय काम में समस्याऐं नहीं आईं।

तलिका संख्या 8
कोरोना महामारी का वित्तीय स्रोतों पर प्रभाव

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
स्रोत बढ़ा	02	03	04	02	01	12	48
स्रोत में कमी	02	01	00	02	00	05	20
कोई प्रभाव नहीं	01	01	01	01	04	08	32
योग	05	05	05	05	05	25	100

48 प्रतिशत मतदाताओं के अनुसार कोरोना में उनके वित्तीय स्रोतों में वृद्धि हुई है जबकि 32 प्रतिशत के अनुसार वित्तीय स्रोतों पर कोइ प्रभाव नहीं पड़ा। 20 उत्तरदाताओं को महामारी के समय सामाजिक कामों के लिए धन संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

तालिका संख्या 9
महामारी नियंत्रण में सरकारी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्त्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	00	04	04	05	03	16	64
नहीं	05	01	01	00	02	09	36
योग	05	05	05	05	05	25	100

64 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उन्होंने महामारी नियंत्रण में सरकारी तंत्र के साथ मिलकर कार्यक्रमों का भी संचालन किया जबकि 36 प्रतिशत के अनुसार सामाजिक क्रियाकलापों के समस्त निर्णय केवल उनके संगठन के ही थे।

तालिका संख्या 10

महामारी नियंत्रण में क्षेत्र में कार्य करने हेतु परिवार का सहयोग

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन. डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	01	02	02	01	02	08	32
नहीं	02	01	00	02	01	06	24
आंशिक रूप से	02	02	03	02	02	11	44
योग	05	05	05	05	05	25	100

32 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके परिवार ने कोरोना नियंत्रण के काम में पूरी तरह सहयोग दिया जबकि 24 प्रतिशत के अनुसार उनके परिवार का रवैया सहयोगात्मक नहीं था। 44 प्रतिशत के अनुसार उनके परिवार ने उन्हें आंशिक रूप से सहयोग किया अर्थात् उन्हें क्षेत्र में काम करने तो दिया लेकिन क्षेत्र में जाकर काम करना उन्हें संतोषप्रद नहीं लगा।

तलिका संख्या 11

कोरोना नियंत्रण के समय किए गए सहयोग से समाज में स्वीकार्यता पर प्रभाव

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन.डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	04	05	04	05	05	23	90
नहीं	01	00	01	00	00	02	10
योग	05	05	05	05	05	25	100

90 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार कोरोना के दौरान मुसीबत के समय की गई मदद से गैर सरकारी संगठनों की समाज के मध्य स्वीकार्यता बढ़ी है जबकि 10 प्रतिशत के अनुसार यह स्वीकार्यता कोरोना काल से पूर्व की भांति ही है इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है।

तालिका संख्या 12

कोरोना नियंत्रण प्रयासों के कारण क्षेत्र के युवाओं की समाज कार्य में रूचि

उत्तरदाताओं की राय	गैर सरकारी संगठन का नाम					कुल योग	प्रतिशत
	लीडर्स संस्था	हिमोत्थान सोसायटी	हंस फाउंडेशन	यू.एन. डी.पी	अजीम प्रेमजी फाउंडेशन		
हाँ	01	02	03	01	03	10	40
नहीं	03	03	01	03	01	11	44
आंशिक रूप से	01	00	01	01	01	04	16
योग	05	05	05	05	05	25	100

40 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोरोना के बाद क्षेत्र के युवाओं की समाज कार्य में रूचि के विषय में बताया कि महामारी नियंत्रण के उनके प्रयासों कों देखकर अध्ययन क्षेत्र के युवा इस ओर आकर्षित हुए हैं जबकि 44 प्रतिशत

के हिसाब से क्षेत्र के युवा इस ओर उदासीन है।16 प्रतिशत का मत है कि युवा वर्ग कर रूझान इस ओर आंशिक रूप से ही बढ़ा है।

निष्कर्ष : उक्त शोध से प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि महामारी नियंत्रण हेतु जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन व पालन समय पर और उचित संसाधन के साथ किया जाना चाहिए जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग को आने वाली आपदाओं के प्रति जागरूक किया जा सके। जिले के दूरस्थ क्षेत्रों तक खाद्य सामग्री व जीवन रक्षक दवाओं की आपूर्ति सुचारू एवं आवश्यक रूप से प्रदान की जाने चाहिए। सरकारी तंत्र को इस ओर सदैव तत्पर रहना चाहिए। विभिन निकायों की सहभागिता सुनिश्चित की जनि चाहिए। अन्य संस्थाओं व सरकारी/निजी तंत्र के साथ सामंजस्य बनाया जाना अनिवार्य शर्त है जिससे समय पर संसाधन उपलभ हो सकें।

पूर्व नियोजित वित्तीय मदों का कोरोना के अनुरूप पुनः नियोजन किया जाना चाहिए ताकि आपदा के बाद भी जन मानस को सुविधा उपलभ हो सके। क्योकि कोई भी महामारी या आपदा अपने पीछे अनेक त्रासदिया छोड़ जाती हैं। कोरोना के कारण पूर्व संचालित कार्यों में बाधा नहीं उत्पन्न होनी चाहिए। महामारी प्रबंधन में अनुभव का अभाव देखा गया है अतः प्राथमिक उपचार एवं समाज में व्याप्त मनोवैज्ञानिक दबाव का सामना किया जा सके ताकि लोग किसी भी परिस्थिति में भयभीत न हों। समाज के प्रति जिम्मेदारी व कोरोना के डर के मध्य सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा रणनीतिक हस्तक्षेप का पालन किया जाना चाहिए।

सुझाव

1. क्षेत्र के लोगों में स्वास्थय, स्वच्छता एवं हाइजीन से संबंधित जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाएं। क्षेत्र के लोगों को आम प्रचलित संक्रामक और गैर संक्रामक दोनों बीमारियों के विषस में मूलभूत जानकारियां प्रदान की जाएं।
2. कोरोना के कारण आदतों में आए छोटे छोटे परिवर्तनों जैसे कि बार बार साबुन से हाथ धोना आदि के महत्त्व को लोगों को समझाया जाए जिससे कि वे इन आदतों को जारी रखें व कोरोना ही नही अन्य सर्दी जुकाम जैसी बीमारियों से स्वयं को सुरक्षित रख सकें।
3. अध्ययन क्षेत्र के दूरस्थ क्षेत्रों तक भी मूलभूत सुविधाओं जैसे कि सड़क परिवहन, मोबाइल नेटवर्क इत्यादि को सुदृढ़ बनाया जाए जिससे कि ग्रामीण लोगों तक सरकार अथवा संगठनों की पहुँच आसानी से हो सके।
4. अध्ययन क्षेत्र में आपदा प्रबंधन तंत्र को और अधिक सुदृढ़ किया जाए, क्षेंत्र के निवासियों को भी समस्त आपदाओं से निपटने का प्रशिक्षण दिया जाए जिससे कि भविष्य में किसी भी आपदा की स्थिति में उनका भी मानव संसाधनों के रूप में प्रयोग किया जा सके।
5. सरकार तथा समाज कार्य में लगे लोग अधिक से अधिक अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय महत्त्व के औद्योगिक संस्थानों का ध्यान क्षेत्र की ओर आकर्षित करें जिससे कि वे अपने सी.एस.आर फंड व अन्य संसाधनों का प्रयोग क्षेत्र के विकास के लिए कर सकें।
6. क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे अपने कर्मचारियों को अलग अलग तरह के प्रशिक्षण प्रदान करें जिससे कि उनकी कार्यदक्षता में वृद्धि हो और भविष्य में किसी भी विपरीत परिस्थिति में उन्हें कोरोना काल के जैसे अनुभवहीनता का सामना ना करना पड़े।
7. क्षेत्र में अस्पतालों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तथा ए. एन.एम सेंटरों की संख्या में जनसंख्या के अनुपात में समुचित वृद्धि की जाए।

संदर्भ

1. राजेश टंडन, 'स्वैच्छिक संस्थाओं में संगठनात्मक विकासः अवधारणा', आवश्यकता एवं स्वरूप 1997, पृ. 13
2. भारत की जनगणना 2011, उत्तराखण्ड जिला जनगणना हैण्डबुक, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पृ. 9
3. एशियन डेवलपमेंट बैंक, 'ओवरव्यू ऑफ सिविल सोसायटी इंडिया', 2009, पृ. 34
4. मनोरंजन मोहंती, अनिल कुमार सिंह, 'वोलंटरिज्म एंड गर्वनमेंटः पॉलिसी', प्रोग्राम एंड असिस्टेंस, नई दिल्ली, 2001, पृ. 11
5. सांख्यिकीय पत्रिका वर्ष-2017, अर्थ एवं संख्याधिकारी कार्यालय, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पृ. 44
6. एन.आर.इनामदार 1987 'रोल ऑफ वोलन्टरिज्म इन डेवलपमेंट' IJP, पृ. 16
7. Mohammad Mohseni, Role of Nongovernmental Organizations in Controlling COVID-19, March 2021, Cambridge University Press, p. 69
8. भारत की जनगणना 2011, उत्तराखण्ड जिला जनगणना हैण्डबुक, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पृ. 09

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों की मानव सुरक्षा और सामाजिक जोखिम मूल्यांकन

❑ डॉ. चित्तरंजन सेनापति

सूचक शब्दः मानव सुरक्षा, सामाजिक जोखिम, शिक्षा, गरीबी, सामाजिक बहिष्कार और ग्रामीण कार्यक्रम।

उत्तर प्रदेश में अनुसूचित कोशाम्बि जातियों की सामाजिक सुरक्षा और जोखिम मूल्यांकन का परीक्षण करने के लिए लेखक द्वारा यह कोशाम्बी जिला और प्रयागराज शहर का अध्ययन करने का प्रयास किया है। अध्ययन का उद्देश्य मानव सुरक्षा सिद्धांत के अंतर्गत अनुसूचित जातियों की जांच करना है जो परिस्थितियों, जाति जैसी संस्थानों और प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में, जाति-आधारित सामाजिक प्रतिबंध एवं प्रथाएँ विभिन्न गतिविधियों में उनके जीवन को गंभीर रूप से प्रभावित कर रही हैं। अनुसूचित जातियों के इस अध्ययन द्वारा जाति व्यवस्था को सामाजिक- आर्थिक असुरक्षा के एक एजेंट के रूप में उजागर किया है। अध्ययनों ने माना कि उच्च आर्थिक विकास भारत जैसे देश में जोखिम को कम करने के लिए पर्याप्त नहीं है जहां जाति जैसी संस्थाएं एक महत्वपूर्ण स्थान लेती हैं। राज्य में अनुसूचित जातियाँ अनेक समस्याओं और सामाजिक असुरक्षाओं का सामना करती हैं जिनमें प्रमुख है- अत्याचार, लोकतांत्रिक मानदंडों की कमी, खराब शासन, मानवाधिकारों का उल्लंघन और सामाजिक बहिष्कार आदि। सामाजिक संकेतक, सुशासन, शिष्टाचार, सार्वजनिक शिक्षा का स्तर असमानता को कम करने में सहायक हो सकते हैं। सरकार द्वारा उपयुक्त मानकों पर अनुसूचित जातियों के उत्थान करने का प्रयास किया जाना अति आवश्यक है।

भारतवर्ष में वर्ग समाज की तुलना में जाति व्यवस्था ने अधिक सामाजिक रूप से शासन किया, जों अनुसूचित जातियों के विभिन्न क्षेत्रों में असुरक्षा की भावना को स्थापित करता है। हमारे समाज पर हावी होने वाले दो नियंत्रित पदानुक्रम हैं, एक जाति व्यवस्था जो अनुसूचित जातियों के सामाजिक-आर्थिक जीवन को नियंत्रित करती है और दूसरा-वर्ग व्यवस्था जहां अनुसूचित जाति निम्न स्थिति में है। भारत में जाति-व्यवस्था का प्रभाव वर्ग समाज की तुलना में अधिक शक्तिशाली है। जाति व्यवस्था एक श्रेणीबद्ध पदानुक्रम है जो परिवेश में आज भी दैनिक जीवन में अनुसूचित जातियों के साथ सबसे अधिक भेदभाव करती है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण नीतियों के आगमन से, 1990 के दशक के प्रारंभ में सामाजिक क्षेत्र की लापरवाही, बढ़ते निजीकरण और राज्य की जिम्मेदारी की घटती भूमिका के कारण भेदभाव की यह स्थिति आज भी कायम रही है।

देश में आर्थिक जड़ता से बाहर आने और आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिए वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार का प्रारंभ किया गया। ये सुधार अब भी बिना किसी रुकावट के नवउदारवादी नीति के रूप में सरकारों में परिवर्तन के बावजूद जारी हैं। लेकिन जहाँ एक तरफ सामाजिक क्षेत्र और सामाजिक बुनियादी ढांचा में सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली, और आवास- की स्तिथि अच्छी नही हैं और दूसरी तरफ निवेश कम हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों कों उनकी निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के कारण अपेक्षाकृत अधिक असुरक्षित पाया जाता है। यही कारण है कि हम अपने लोगों को कोविड-19 महामारी के आगमन पर पर्याप्त रूप से सुरक्षित नहीं कर पाये। महामारी के इस समय में भारत में हाशिए पर रहने वाले समूह सबसे अधिक प्रभावित रहे हैं। कोविड-19 महामारी से बहुत पहले, दसवीं पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन में समूहों, क्षेत्रों और क्षेत्रों के बीच विशेष रूप से सामाजिक न्याय से बहिष्कृत और कमजोर वर्गों के सशक्तीकरण के क्षेत्र में परेशान करने वालों की पहचान की है। वर्तमान समय में भी असमानता यहां बढ़ी है।

वर्तमान परिदृश्य में, यह माना जाता है कि एक संस्था के रूप में बाजार, जाति-तटस्थ और सार्वभौमिक होता है। लेकिन सुधार के बाद के वर्षो में विशेष रूप से अनुसूचित जाति को असमानताओं को और गहरा कर दिया है। भारत में

❑ सह प्राध्यापक, गिरि इंस्टिट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, लखनऊ (उ.प्र.)

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अपनी खराब आर्थिक स्थिति के कारण सबसे अधिक प्रभावित हैं। नव-उदारवादी नीति में, जो वर्ग आज भी आर्थिक स्थिति की निचले पायदान पर स्थित हैं, वे दूसरों की तुलना में अधिक प्रभावित होते हैं। इसलिए, समाज की आर्थिक और सामाजिक संरचना के संबंध में अनुसूचित जातियां लगभग दोगुनी प्रभावित होती हैं। मानव सुरक्षा दृष्टिकोण के अनुसार, इन परिस्थितियों में इन समूहों का जीवन और भविष्य और अधिक असुरक्षित है। सामाजिक समर्थन की कमी समकालीन भारतीय समाज में उनके साथ ही जीवन स्तर को अधिक असुरक्षित बनाती है।

उत्तर प्रदेश कुल जनसंख्या के साथ-साथ अनुसूचित जाति की आबादी के मामले में भारत में सबसे अधिक आबादी वाले राज्य होने के कारण यहां सामाजिक-आर्थिक स्थिति निम्न स्तर पर है। उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति की जनसंख्या का प्रतिशत 21.3 प्रतिशत है जो भारत के अन्य राज्यों की तुलना में सबसे अधिक है। यह देखा गया है कि उत्तर प्रदेश में कुल जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 2001 तक लगातार बढ़ रही थी जबकि 2011 से इसमें गिरावट की प्रवृत्ति पायी गई है। पिछले दशक में यूपी की जनसंख्या में यह कमी जनता के सामाजिक-आर्थिक कल्याण में सुधार की दिशा में एक कदम का संकेत है। यद्यपि उत्तर प्रदेश प्राकृतिक संसाधनों और जनशक्ति के मामले में सबसे बड़ा राज्य है, फिर भी यहाँ लगभग सभी विकास के संकेतकों के मापदंड पर निचले स्तर पर बना हुआ है। उत्तर प्रदेश में, निम्न सामाजिक स्तर के साथ-साथ आर्थिक गरीबी बहुत अधिक है, लेकिन खाद्यान्न में पीडीएस के वितरण से लोगों को इस संबंध में थोड़ी राहत मिली है। भौतिक अभाव व, गरीबी के कारण शिक्षा जैसी सार्वजनिक सेवाओं का उपयोग करने में असमर्थता एक गम्भीर चिंता का कारण है।संसाधन के अभाव उत्तर प्रदेश में गरीबी का एक महत्वपूर्ण पहलू हैं, यह मानवीय क्षमताओ, अवसरों, विकल्पों, सामाजिक मूल्यों और बुनियादी जरूरतों तक पहुंच की कमी का एक बड़ा कारण है। इन सभी विशेषताओं के समामेलन ने मानव असुरक्षा को प्रेरित किया है। तुलना दृष्टि से, उत्तर प्रदेश में अन्य जातियों की अपेक्षा में अनुसूचित जाति के लिए मानव असुरक्षा अधिक प्रमुख विषय है।

जब हम विकास के संकेतकों पर विचार करते हैं, तो शिक्षा का स्तर गरीबी को कम करने और मानव सुरक्षा को प्रेरित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक है। ऐतिहासिक तथ्यों से संकेत मिलता है कि उत्तर प्रदेश में साक्षरता दर 1951 में 12.02 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 56.27 प्रतिशत हो गई है और अब यह 2011 की जनगणना के अनुसार 69.72 प्रतिशत है। यहाँ काफी प्रगति हुई है लेकिन अभी भी यह अखिल भारतीय औसत 74.04 प्रतिशत से नीचे है।[1]

हालांकि स्कूलों में नामांकन बढ़ रहे हैं, फिर भी गरीबों के बच्चों के स्कूल जाने की संभावना कम है। चित्र 1 दिखाता है कि, ग्रामीण उत्तर प्रदेश में शिक्षा की पहुँच अभी भी प्राथमिक या जूनियर हाई स्कूल स्तर तक है। कई छात्र सामाजिक आर्थिक कारणों से स्कूल छोड़ देते हैं और किसी अन्य कौशल की कमी या किसी अन्य व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए सामर्थ्य की संभावित कमी के कारण पारंपरिक व्यवसायों में सम्मिलित हो जाते हैं।

चित्र 1 उत्तर प्रदेश में सामान्य और अनुसूचित जातियों के बीच शैक्षिक उपलब्धि

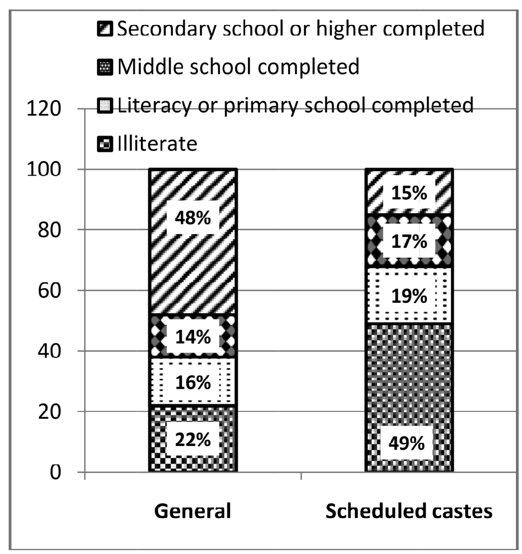

Source:http://www.worldbank.org/en/country/india/brief/india-states-briefs-uttar-pradesh Education attainment 2012 (% adults) Published on May 20, 2016

क्षेत्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि गरीबी, शिक्षा की कमी, आय के निम्न स्तर, वित्तीय बहिष्कार, और बुनियादी सेवाओं तक पहुंच की कमी, सामाजिक बुनियादी ढांचे तक पहुंच की कमी, प्रशिक्षण और कौशल की कमी यह सब पिछड़ेपन के परिणाम और कारण है। पानी,

स्वच्छता, बिजली, और अन्य अप्रभावी गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों तक कम पहुंच आदि भी कुछ अन्य कारण है। ज्यादातर गरीब मजदूर कम वेतन वाले आकस्मिक दैनिक मजदूरी के कामों में लगे रहते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उनके पास बहुत कम संपत्ति और जमीन का अनुपात होता है।

इन सभी कारकों को पृष्ठभूमि में रखते हुए, प्रस्तुत शोध पत्र, उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति की सामाजिक सुरक्षा के संदर्भ में मानव सुरक्षा की अवधारणा, सिद्धांत और प्रयोग का परिचय देता है। शोध पत्र, मूल रूप से सामाजिक भेदभाव, शिक्षा के स्तर में अनुसूचित जाति की सामाजिक जोखिम का मूल्यांकन करने का प्रयास है। इस शोध पत्र का उद्देश्य अनुसूचित जातियों के मामले में सामाजिक जोखिम को मानवीय असुरक्षा के रूप में संदर्भित करना है। वे मौजूदा असुरक्षाओं का सामना कैसे कर रहे है? और कैसे सामाजिक बहिष्कार, मानवाधिकारों के उल्लंघन, उपेक्षित लोकतंत्र और मानव असुरक्षा के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हैं। यह शोध पत्र, सामाजिक गरीबी और असुरक्षा के बीच गठजोड़ को भी चित्रित किया है। यह मानव सुरक्षा मानकों की प्रक्रिया में सामाजिक विकास और स्वतंत्रता के बीच संबंधों को देखता है।

अध्ययन की व्याप्ति और कार्यप्रणाली : यह शोध पत्र, आईसीएसएसआर, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित, उत्तर प्रदेश और ओडिशा में मानव सुरक्षा और जोखिम अथवा भेद्यता विषय[2] पर उत्तर प्रदेश में किए गए एक बड़े अध्ययन का एक भाग है। इस शोध पत्र, में प्रयुक्त आकड़ें कौशाम्बी और प्रयागराज जिले से एकत्र किए गए हैं। कौशाम्बी और प्रयागराज को उत्तरप्रदेश का प्रतिनिधि माना गया है। कुल लिए गये 500 नमूनों में से आधे नमूने मकनपुर (125) और प्रयागराज (125) के शहरी क्षेत्रों से और आधे (250) ग्रामीण क्षेत्रों से लिए गये हैं।

कार्यप्रणाली : इस अध्ययन में शोध पद्धति प्रकृति में खोजपूर्ण, वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक तथा व्यक्तियों और समुदाय द्वारा की जाने वाली विभिन्न असुरक्षाओं का मूल्यांकन करने में प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन के लिए प्रस्तावित संकेतक मानव सुरक्षा के 4 पहलुओं और कमजोर समूहों का अध्ययन करने के लिए 5 अलग-अलग समूहों में व्यवस्थित हैं 1) व्यक्तिगत और शारीरिक सुरक्षा, 2) बुनियादी स्वतंत्रता, 3) आर्थिक सुरक्षा, 4) राजनीतिक सुरक्षा, और 5) सामाजिक सुरक्षा। आकड़ें एकत्र करने के लिए मिश्रित-विधि का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक आंकड़ें संबंधित जिलों और गाँवों पर किए गए अध्ययनों से संबंधित विभिन्न राजकीय स्तर पर सरकारी रिपोर्टों से है। प्राथमिक सर्वेक्षण आंकड़ों के माध्यम से कई संकेतक एकत्र किए गए जबकि अन्य को द्वितीयक आकड़ो सें संकलित किया गया है। क्षेत्र से आंकड़ें एकत्र करते समय लैंगिक समानता का ध्यान रखा गया है। तीन प्राथमिक अनुसंधान तकनीकों का उपयोग करके गांव, समुदाय और घरेलू स्तर पर आंकड़ें एकत्र किए गए। 1) फोकस समूहों के भीतर, विभिन्न विषयों पर चर्चा 2) एथनो-पद्धति - इस तकनीक का उपयोग सामाजिक वास्तविकता और सामाजिक तथ्यों को जानने के लिए किया गया है। यह बातचीत विश्लेषण अक्सर सामाजिक क्रिया के व्यवस्थित निर्माण को समझने में एक सामान्य रुचि से एथनो-पद्धति से जुड़ा होता है जो बातचीत विश्लेषक बातचीत का अध्ययन करने के लिए एक अनुभवजन्य दृष्टिकोण विकसित करते हैं। 3) आगे के विश्लेषण के लिए तथ्य और प्राथमिक आंकड़े को खोजने के लिए निर्मित की गई जांच की अनुसूची द्वारा पूर्वोक्त समूहों पर आकड़े. एकत्र करने के लिए पूछताछ की अनुसूची तैयार की गई। 4) मानचित्रण की पद्धति का उपयोग उत्तर प्रदेश जिले से लक्षित आबादी के भीतर कमजोर समूहों के क्षेत्र का पता लगाने के लिए किया गया। जिले का चयन राज्य के कमजोर वर्गों की जनसांख्यिकी के आधार पर किया गया। भौगोलिक क्षेत्रों में समूहों की एकाग्रता को ध्यान में रखते हुए इन कमजोर समूहों के लिए आकड़े एकत्र किए गए। साक्षात्कार अनुसूची को इस तरह से निर्मित किया गया कि प्रस्तावित मामले में प्रयुक्त मात्रात्मक आंकड़ों को एकत्र किया जा सके।

सिद्धांत और अवधारणाएँ : आर्थिक और सामाजिक नीति ने नवउदारवादी नीति के आगमन सें कल्याणकारी राज्य की भूमिका को कम कर दिया। उत्तर प्रदेश की जनसंख्या अधिक होने के कारण से शिक्षा के निजीकरण होने से राज्य की सामाजिक सेवाओं तक सार्वजनिक पहुंच कम हो गई थी। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में विकास अर्थशास्त्र के क्षेत्र में विलियम पेटी और एडम स्मिथ के लेखन में कल्याणकारी राज्य पर जोर दिया गया था। उस समय उन्होंने व्यापक और समावेशी परिभाषाओं के साथ-साथ मानवीय उपलब्धियों और कल्याण के लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित किया था। स्टीफन जे[3] का तर्क है कि

सबसे गरीब देशों की परिस्थितियों में सुधार के प्रति असंतोष और सबसे गरीब लोगों की दुर्दशा ने 1970 के दशक में आंदोलन को जन्म दिया, जिसमें सभी के लिए न्यूनतम मानक की उपलब्धि पर जोर दिया। हालांकि, हमने भारत में गरीबी की दर को कम किया है, फिर भी हम इसे पूरी तरह से मिटाने और हाशिए पर रहने वालों के बीच न्यूनतम मानकों को प्राप्त करने में अक्षम रहे हैं। गरीबी के कारण मानव असुरक्षा - आय और सामाजिक पूंजी दोनों के संदर्भ में, हाशिए के लोगों के लिए, नव-उदारवादी नीतियों और वर्तमान समय में उनके परिणामों के साथ सम्मिश्रण में वृद्धि हुई है।

वर्तमान लेखों में मानव सुरक्षा और मानव विकास और बुनियादी मानवीय जरूरतों के साथ किसी तरह के बीच गठजोड़ की अवधारणा का प्रयास किया गया है। ह्यूबर्ट[4] का सुझाव है कि मानव सुरक्षा, विकास के बिना या इसके विपरीत प्राप्त नहीं की जाएगी। अमर्त्य सेन[5] के अनुसार, स्वतंत्रता के रूप में विकास का अर्थ है नागरिकों की उन चीजों तक पहुंच और अवसरों में वृद्धि करना जो उनके लिए मूल्यवान हैं और आर्थिक विकास के माध्यम से विकास को मापने की मुख्यधारा की अवधारणा को चुनौती देते हैं। इवांस पी[6] यह स्वीकार करते हैं कि गरीब लोगों की आय में वृद्धि उनकी स्वतंत्रता के विस्तार में योगदान नहीं करती है। हालाँकि, वह यह भी आंकलन करते हैं कि अकेले आय में वृद्धि का देश के गरीबों की मानव सुरक्षा पर सबसे खराब प्रभाव पड़ता है। इसलिए इन गरीबों के लिए विकास से लाभ के लिए आय के पुनर्वितरण का उपाय आवश्यक हैं।[7] गाल्टुंग मानव सुरक्षा के बारे में बुनियादी मानव अधिकारों की पूर्ति के रूप में बात करता है जो बदले में बुनियादी मानव आवश्यकताओं की पूर्ति है।[8] उनके मॉडल में, ये अस्तित्व,कल्याण, स्वतंत्रता और पहचान हैं। चूंकि गरीबी मुख्य हत्यारा है, वह इस बात पर जोर देते हैं कि मानव सुरक्षा केंद्रीय रूप से निर्वाह के आश्वासन से संबंधित है।

हैम्पसन[9] के अनुसार 'सुरक्षा' की अवधारणा को मूल मानवीय मूल्यों के लिए खतरे की अनुपस्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें सबसे बुनियादी मानवीय मूल्य, व्यक्ति की शारीरिक सुरक्षा सम्मिलित है। वह बुनियादी स्वतंत्रता, आर्थिक जरूरतों और हितों की सुरक्षा के लिए अन्य प्रमुख मानवीय मूल्यों की पहचान करता है।[10] इसी तरह, मैरी रॉबिन्सन[11] मानव सुरक्षा के बारे में बात करती है वह शिक्षा को मुख्य रूप से बुनियादी बातों को सुरक्षित करने की क्षमता को संदर्भित करती है। मानव सुरक्षा की अवधारणा 1994 की संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट (यूएनडीपी) से उभरी है जिसमें कहा गया था कि सुरक्षा की अवधारणा राष्ट्र-राज्य पर बहुत संकीर्ण रूप से केंद्रित है जबकि आम लोगों की सुरक्षा संबंधी चिंताओं को उनके दैनिक जीवन में भुला दिया गया था। यूएनडीपी रिपोर्ट मानव सुरक्षा के नए आयाम शीर्षक वाले अध्याय-दो में बताया गया है कि सुरक्षा की एक उचित अपेक्षा के अलावा बुनियादी भौतिक जरूरतों को पूरा किया जाना चाहिए ताकि अस्तित्व को कोई खतरा न हो जो कि अच्छे से स्वतंत्रता है।[12] संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान ने अपनी मार्च 2005 की रिपोर्ट ''इन लार्जर फ्रीडम" में वैचारिक जुड़ाव का विश्लेषण सुंदर तरीके से अभाव से मुक्ति के रूप में किया है (freedom from want) जिसका अर्थ है अत्यधिक गरीबी से मुक्ति। लगभग 1.2 बिलियन से अधिक लोग प्रति दिन 1 अमेरिकी डॉलर से कम पर जीवन यापन करते हैं,साथ ही रोग और बाल मृत्यु दर से संबंधित असुरक्षितता जो दुनिया की लगभग एक-छठी आबादी की सुरक्षा के लिए तत्काल गंभीर खतरों को प्रदर्शित करता है।

''भय से मुक्ति" (freedom from fear) के संदर्भ में उन्होंने कहा कि देश में व्यक्तियों के लिए लोकतांत्रिक परिवर्तन आवश्यक है। सामाजिक दृष्टि से भय से मुक्ति का अर्थ है, मनुष्य को किसी देश में शारीरिक हमले से बचाना है।

''गरिमा से जीने की स्वतंत्रता" (Freedom to live in dignity) का अर्थ है मौलिक मानवाधिकारों की रक्षा करना, जिसमें लोकतांत्रिक भागीदारी का अधिकार, कानून का शासन, धर्म की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और ऐसे समाज में रहना सम्मिलित है जो व्यक्ति की सहिष्णुता के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित हो। सबसे कमजोर लोगों के मानवाधिकारों और उनकी गरिमा की रक्षा करना देश की जिम्मेदारी है। मानव सुरक्षा की अवधारणा मानवाधिकार, लोकतंत्र, अहिंसा, सामाजिक समावेश आदि से जुड़ी है।[13,14]

इसके अलावा, हिंसा से मुक्ति के साथ मानवीय गरिमा की स्थिति "भय से मुक्ति" मानव सुरक्षा के दूसरे प्रमुख तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी शुरूआत के बाद से, कई अकादमिक विषयों ने मानव सुरक्षा की उपयोगी

परिभाषाओं में योगदान दिया है। मानव सुरक्षा की यह आशाजनक अवधारणा अभी भी समकालीन सुरक्षा वास्तविकताओं को जानने के लिए सार्थक रही है। हालाँकि भारत में, प्राचीन शास्त्रों और बौद्ध ग्रंथों में निहित शांति और मानवीय मूल्यों के इस विचार को पाया जाता है। अम्बेडकर का दर्शन मानव सुरक्षा के विचार का एक पूरक है। आधुनिक समय में मानव सुरक्षा के क्षेत्र में अग्रणी विचारकों में से एक प्रख्यात अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक हुये जिन्होंने मानव सुरक्षा के सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुये एक नया सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य पेश किया। यूएनडीपी की मानव विकास रिपोर्ट (1994) में इस अवधारणा के अन्तर्गत 7 श्रेणियां को निम्नानुसार तैयार किया गया 1) आर्थिक 2) खाद्य 3) स्वास्थ्य सुरक्षा 4) पर्यावरण सुरक्षा 5) व्यक्तिगत 6) सामुदायिक और 7) राजनीतिक सुरक्षाऐं।[15]

मानव सुरक्षा आयोग की (2003) की रिपोर्ट, 'ह्यूमन सिक्योरिटी नाउ', मानव सुरक्षा को सभी मानव जीवन के महत्वपूर्ण कोर की सुरक्षा के साथ जोड़ती है जो मानव स्वतंत्रता और मानव पूणत को बढ़ाती है।[16] आयोग आगे तर्क देता है कि मानव सुरक्षा का अर्थ है मौलिक स्वतंत्रता की रक्षा करना - स्वतंत्रता जो जीवन का सार है। इसका अर्थ है लोगों को गंभीर और व्यापक खतरों और स्थितियों से बचाना। इसका अर्थ है उन प्रक्रियाओं का उपयोग करना जो लोगों की ताकत और आकांक्षाओं पर आधारित हों। इसका अर्थ है राजनीतिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, आर्थिक सैन्य और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं का निर्माण करना जो लोगों को एक साथ अस्तित्व, आजीविका और सम्मान के निर्माण को गति प्रदान करते हैं।[17]

परिणामस्वरुप मानव सुरक्षा की प्रगति तात्कालिक और अधिक ठोस परिणामों को जन्म देती है जो खतरों के पीछे के मूल कारणों को व्यापक रूप से संबोधित करती हैं। सरकारों द्वारा और लोगों की वास्तविक जरूरतों, कमजोरियों और क्षमताओं के आधार पर प्राथमिकताओं की पहचान की जाये। उत्तर प्रदेश की विकास नीतियों और राष्ट्रीय नीतियों के संयोजन से राज्य में मानव सुरक्षा के समर्थन में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही को सशक्त करने में मदद मिलती है।

मानव सुरक्षा की व्यापक समझ का उद्देश्य उन समस्त खतरों की व्यापक श्रेणी को सम्मिलित करना है जो राज्य में कमजोर लोगों के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं जैसे गैर-भौतिक पहलुओं को भी प्रभावित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप मानव सुरक्षा, विकास और मानवाधिकारों के बीच अंतर्संबंधों को स्वीकार करती है और इन्हें मानव सुरक्षा के निर्माण खंड के रूप में भी मानती है। इसलिए यह वास्तव में उप-राष्ट्रीय और राष्ट्रीय आंतरिक सुरक्षा को प्रेरित करता है।

सामाजिक बहिष्करण- अभाव और मानव सुरक्षा कमजोर लोगों द्वारा जिन असुरक्षाओं का सामना किया जाता है वे सभी जटिल और बहुमुखी प्रकृति की होती हैं। असुरक्षा का एक पहलू कई असुरक्षा की ओर ले जाता है। यह व्यक्तिगत सुरक्षा से संबंधित अन्य अवधारणाओं से संबंधित है। मानव सुरक्षा भौतिक और गैर-भौतिकवादी सामाजिक प्रकृति वाले व्यक्तियों की भलाई की स्थिति के बारे में बात करती है।

मानव सुरक्षा व्यक्तियों और समुदायों की असुरक्षितता के विरुद्ध एक रणनीति है। भारतीय समाज में यह अच्छी तरह से स्थापित तथ्य है कि अनुसूचित जाति के व्यक्ति सामाजिक और बहुआयामी पहलुओं में सबसे कमजोर हैं। भारतीय समाज में अस्पृश्यता के कारण अनुसूचित जाति ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से वंचित हैं। उत्तर प्रदेश राज्य में अनुसूचित जाति के प्रमुख असुरक्षा कें खतरों को अत्याचार, लोकतांत्रिक मानदंडों की कमी, खराब शासनप्रणाली, मानवाधिकारों के उल्लंघन और सामाजिक बहिष्कार से प्रमुख रूप से प्रभावित हैं। अनुसूचित जाति समुदाय पिछले अन्याय और वर्तमान में न्याय से वंचित होने से पीड़ित रहता है। यद्यपि राज्य सरकार द्वारा रोजगार, सामाजिक न्याय और जीवन में उनकी असुरक्षा की रक्षा के लिए आरक्षण नीति जैसे संवैधानिक सुरक्षा उपाय किये गये हैं फिर भी वे विकास वितरण के प्रतिकूल हाशिये पर बने हुए हैं। अब छोटे सरकारी रोजगार और अनुसूचित जाति घटक योजना में धन की कमी ने उन्हें विकास पथ से और हाशिये पर डाल दिया है। विकास की प्रतिकूल प्रणाली ने असुरक्षा का निर्णायक प्रभाव पैदा किया है।

सामाजिक बहिष्कार भेदभाव का एक रूप है जो विभिन्न तरीकों से मानव सुरक्षा को सीधे प्रभावित करता है। यह तब होता है जब लोगों को एक निश्चित सामाजिक वर्ग, श्रेणी या समूह से संबंधित होने के आधार पर उनके समुदाय के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भाग लेने से पूर्ण या आंशिक रूप से बाहर रखा जाता है। भारत में, सामाजिक बहिष्कार; जाति, धर्म, लिंग और

विकलांगता सहित पहचान के आधार पर होता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि हमारे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कल्याण सभी दृढ़ता से जुड़े हुए हैं। इस परस्पर निर्भरता के कारण हम दूसरे को सुधारने के लिए एक पहलू की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

सामाजिक बहिष्कार की तीन विशिष्ट विशेषताएं हैं-

1 इसमें सामाजिक रूप से परिभाषित वर्गीकरण सम्मिलित है संबद्ध सांस्कृतिक धारणाओं, मूल्यों और मानदंडों के साथ जो सामाजिक संपर्क को आकार देते हैं।

2 यह पूर्व-परिभाषित सांस्कृतिक और सामाजिक संबंधों में अंतर्निहित है।

3 यह बहिष्कृत लोगों के अधिकारों को सीमित करता है और उन्हें सम्मानजनक जीवन स्तर प्राप्त करने और बनाए रखने के लिए आवश्यक अवसरों से वंचित करता है।

सामाजिक बहिष्कार का सामाजिक रूप से बहिष्कृत समुदायों की गरीबी की स्थिति पर एक निर्विवाद प्रभाव पड़ता है। जो लोग सामाजिक रूप से बहिष्कृत समूहों से संबंधित हैं उन्हें इन संसाधनों तक पहुंच प्राप्त करने में विशेष भेदभाव का सामना करना पड़ता है। यह उत्तर प्रदेश के गांवों में किये गये सर्वेक्षण के दौरान यह स्पष्ट होता है कि आज भी कौशांबी गांवों में पानी पंप अनुसूचित जातियों के लिए सुलभ नहीं है । इसके अलावा, गांवों में अनुसूचित जाति के लोगों के पास श्मशान भूमि नहीं है। मृत्यु की स्थिति में उन्हें गंगा नदी के पास अंतिम संस्कार करने की भी अनुमति नहीं है। आसपास के गांव की बंजर भूमि पर प्रभुत्वशाली जातियों का अवैध कब्जा रहता है। सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के अनुसार सरकारी अधिकारी आम तौर पर कह रहे हैं कि वे अनुसूचित जाति के लोगों के संपर्क में हैं लेकिन व्यवहार में, वे गरीब दलितों के आस-पास के गांवों की बंजर भूमि पर कब्जा करने और कब्जा करने में प्रमुख लोगों का समर्थन करते हैं। यह एक सामान्य घटना है कि सामाजिक बहिष्करण लोगों को विकास के लाभों से दूर रखता है, उन्हें अवसरों, विकल्पों और उनके अधिकारों का दावा करने की आवाज से वंचित करता है, यह सामाजिक और अल्प गरीबी दोनों के अधिक स्तर का कारण बनता है। प्रोफेसर अमर्त्य सेन[18] के अनुसार, इसे सक्रिय और निष्क्रिय बहिष्करण कहा जाता है। सरकार की जानबूझकर नीति के माध्यम से बहिष्करण को बढ़ावा देने वाला सक्रिय या किसी अन्य द्वारा पूर्ण-एजेंट-कुछ लोगों को वंचित करने के लिए कुछ अवसरों का और निष्क्रिय बहिष्कार और अभाव जो एक सामाजिक प्रक्रिया के माध्यम से हस्तक्षेप करता है और जिसमें बहिष्कृत करने का कोई जानबूझकर प्रयास नहीं किया जाता है लेकिन फिर भी परिस्थितियों के एक सेट से बहिष्करण होता है।

अनुसूचित जातियों के बहिष्कार का अर्थ भारत में आर्थिक, नागरिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिकारों में उनकी भागीदारी की विफलता है। उनके बहिष्करण और प्रतिकूल स्थिति के कारण विकास के अवसरों की कमी होती है, उन्हें अपने मानवाधिकारों का प्रयोग करना मुश्किल लगता है और इसलिए एक आरामदायक जीवन जीना मुश्किल होता है। वंचित समूहों के सदस्यों को भूमि, अच्छे आवास, शिक्षा और रोजगार से वंचित करने के रूप में प्रणालीगत हिंसा का सामना करना पड़ता है। इन समूहों के खिलाफ संरचनात्मक भेदभाव शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और सांस्कृतिक दुर्व्यवहार के रूप में होता है, जो स्पष्ट रूप से सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था से वैधता प्राप्त करता है। उत्तर प्रदेश के क्षेत्र अध्ययन ने इन विचारों की पुष्टि की है, जहां उन्हें शिक्षा और रोजगार जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रखा गया है। सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों और मध्यान्ह भोजन तक पहुंच प्रतिबंधित है और उत्तर प्रदेश में इन लोगों के लिए पूजा स्थल अभी भी दुर्गम हैं। भेदभावपूर्ण या अपमानजनक व्यवहार का लंबा अनुभव अक्सर बहिष्कृत लोगों की ओर से एक असुरक्षित वातावरण पैदा करता है कि वे समावेश के लिए प्रयास करना बंद कर देते हैं। उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति, जिनकी कुल जनसंख्या का 21 प्रतिशत से अधिक है, एक ऐसे समुदाय के रूप में खड़े हैं, जिनके मानवाधिकारों का उल्लंघन जातिगत भेदभाव की सामाजिक बुराइयों के कारण हुआ है। वे बहिष्कार के विशेष रूपों का अनुभव करते हैं जो अन्य समूहों के खिलाफ अभ्यास नहीं करते हैं - उदाहरण के लिए, पीने के पानी के स्रोतों को साझा करने या सामूहिक धार्मिक पूजा, सामाजिक समारोहों और त्योहारों में भाग लेने से प्रतिबंधित हैं। साथ ही अस्पृश्यता में अधीनस्थ भूमिका में जबरन समावेशन भी सम्मिलित हो सकता है जैसे कि किसी धार्मिक आयोजन में ढोल बजाने

के लिए मजबूर किया जाना। स्वयं अपमान और अधीनता के सार्वजनिक रूप से दिखाई देने वाले कृत्यों का प्रदर्शन अस्पृश्यता के अभ्यास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। तथाकथित अछूत को सदियों से सामूहिक रूप से कई नामों से जाना जाता रहा है। ये सभी अपमानजनक हैं वास्तव में उनमें से कई आज भी दुर्व्यवहार के रूप में उपयोग किए जाते हैं हालांकि उनका उपयोग अब एक आपराधिक अपराध है। महात्मा गांधी ने 1930 के दशक में जाति के नाम से लगाए जाने वाले सेंसरियस आरोप का मुकाबला करने के लिए हरिजन (शाब्दिक रूप से-भगवान की संतान) शब्द को लोकप्रिय बनाया। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए कई प्रावधान किए गये। इन सभी संवैधानिक प्रावधानों के अलावा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने के लिए कई कठोर कानून भी बनाए गए। जो कि निम्न लिखित हैं :-

1 नागरिक अधिकारों का संरक्षण अस्पृश्यता विरोधी अधिनियम 1955।
2 बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम 1976।
3 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989।
4 मैला ढोने वालों का रोजगार और शुष्क शौचालयों का निर्माण (निषेध अधिनियमद्ध 1993।
5 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम संशोधन विधेयक 2013)। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम 1989) में संशोधन करने का प्रयास करता है।

लेकिन निष्कर्षो में देखा गया है कि उत्तर प्रदेश में फील्डवर्क के साक्ष्य से इन सभी प्रावधानों को ठीक से लागू नहीं किया गया है। उत्तर प्रदेश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा लगभग 4.1करोड़ या यूपी की आबादी का 21.3 प्रतिशत मानव असुरक्षा से पीड़ित है। उनके पास बहुत खराब क्रय शक्ति है, अपर्याप्त आवास की स्थिति है जिनके पास कोई अन्य उत्पादक संसाधन नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वे अधिकार भूमिहीन, गरीब, खेतिहर मजदूर के रूप में हैं जो पीढ़ियों से अमीर जमींदारों से जुड़े हुए हैं या सभी प्रकार के उपलब्ध काम करने वाले गरीब आकस्मिक मजदूर हैं। शहर में वे शहरी गरीब हैं जो कई कार्य स्थलों पर मजदूर के रूप में कार्यरत हैं जैसे, विक्रेता छोटे सेवा प्रदाता, घरेलू मदद आदि बिना किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा के मलिन बस्तियों और अन्य अस्थायी आश्रयों में रहते हैं।

शिक्षा और असुरक्षितता : शिक्षा को दुनिया के हर बच्चे का मूल अधिकार माना जाता है और भारत के अधिकांश हिस्सों में हाशिए के समूह आज भी शिक्षा से वंचित है। जबकि 83वें संविधान संशोधन में शिक्षा को सभी भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है, विभिन्न जातियों के बीच असमानताएं बनी हुई हैं। हम छोटे बच्चों को सड़क किनारे रेस्तरां-ढाबों और चाय की दुकानों, में घरेलू कामगारों, निर्माण सहायकों, सफाईकर्मियों और अन्य सहायकों के रूप में काम करते हुए देखते हैं। शहरी घरों में घरेलू कामगार के रूप में काम करने वाले छोटे बच्चों को देखकर हमें कोई आश्चर्य नहीं होता। हम इस तथ्य के बारे में नहीं सोचते हैं कि आखिरकार, वे भी भारत का भविष्य हैं जिन्हें जिस उम्र में पढ़ना -लिखना चाहिए ऐसे कार्यो को करना पड़ रहा है। दुख की बात है कि भारत दुनिया में सबसे ज्यादा बाल मजदूरों का घर है। बच्चे मानव समाज का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। नागरिक अधिकारों की संवैधानिक गारंटी होने के बावजूद बच्चों को जाति, धर्म और जातीयता के आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। कई सामाजिक संकेतकों में अनुसूचित जाति के बच्चे वंचित रहते हैं। 2000 के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुमान बताते हैं कि अनुसूचित जाति ग्रामीण आबादी का 20 प्रतिशत, है जिसका 38 प्रतिशत हिस्सा गरीब था। **वर्ष** 2002 में एक संवैधानिक संशोधन पारित किया गया जिसमें 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया था। यद्यपि प्राथमिक विद्यालय में नामांकन और उपस्थिति में वृद्धि हुई है परन्तु शिक्षा की गुणवत्ता अभी भी एक प्रमुख चिंता का विषय बन हुआ हुई है। शिक्षा को अधिक प्रासंगिक बनाने या अवलोकन द्वारा सीखने और सीखने को प्रोत्साहित करने पर बहुत कम जोर दिया जाता है। गतिविधि आधारित और बाल- केंद्रित शिक्षा सीखने की व्यवस्था अभी भी बहुत अपर्याप्त है। ऐसी कई स्थितियाँ हैं जहाँ बच्चे कागजी लेख पर पाँच साल की प्राथमिक शिक्षा से गुजरते हैं और बमुश्किल साक्षर होते हैं, जिससे स्कूली शिक्षा के प्रति सामुदायिक उदासीनता पैदा होती है। शिक्षा

की खराब गुणवत्ता प्राथमिक विद्यालय में छात्रों की आदर्श शिक्षा की दर के रूप से निरंतर निम्न स्तरों में परिलक्षित होती है।

उत्तर प्रदेश और भारत में अनुसूचित जातियों की तुलनात्मक साक्षरता दर दर्शाती है कि अनुसूचित जाति के बच्चे प्राथमिक शिक्षा स्तर से आगे नही बढ़ते हैं। यह अनुसूचित जातियों और शेष आबादी के बीच साक्षरता के अंतर में परिलक्षित होता है। अनुसूचित जाति से संबंधित 66.07 प्रतिशत राष्ट्रीय औसत 72.98 प्रतिशत की तुलना में पढ़ और लिख सकते हैं।

चित्र-1 में उत्तर प्रदेश में सामान्य और अनुसूचित जातियों के बीच शैक्षिक प्राप्ति में काफी अंतर पाया जाता है। सामाजिक-आर्थिक न्याय के लिए राष्ट्रीय दलित आंदोलनों के अध्ययन से पता चलता है कि अनुसूचित जाति के बच्चों को स्कूलों में अक्सर उच्च जाति के शिक्षकों और विद्यार्थियों के हाथों भेदभाव का सामना करना पड़ता है। भेदभाव में अन्य बच्चों से अलग बैठने के लिए मजबूर होना, शौचालय साफ करना और स्कूल की किताबें और वर्दी नहीं देना सम्मिलित है। नेशनल कैंपेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स नई दिल्ली के एक अध्ययन किया गया जिसमें निम्न राज्यों में से आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश सम्मिलित किया जिस में राज्यों में भेदभाव और यौन शोषण की चौंकाने वाली तस्वीर सामने आई है।[19] राष्ट्रीय दलित मानवाधिकार अभियान (एनसीडीएचआर) के क्षेत्रीय दौरों के दौरान पाया गया कि एससी और एसटी छात्रों को शौचालय और कक्षाओं को साफ करने के लिए मजबूर किया जाता है। जबकि अन्य छात्रों को ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है। यहां तक कि एससी और एसटी छात्र सें शिक्षकों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले शौचालयों को साफ करवाया जाता हैं। अध्ययन के अनुसार तथाकथित उच्च जाति के छात्र एससी से दोस्ती नहीं करते हैं। इसके अलावा, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के छात्र अलग बैठते हैं और अंत में भोजन प्राप्त करते हैं। छात्रों के ये हाशिए के समूह कक्षा के अंतिम बेंच पर बैठते हैं। उत्तर प्रदेश समेत आठ राज्यों में किए गए इस अध्ययन में व्यवस्थित तरीके से स्कूली शिक्षा में भेदभाव की तस्वीरें नहीं हैं, बल्कि ये अचानक हुई घटनाएं हैं। यह अध्ययन इस बात की जांच करने के लिए किया गया था कि क्या हाशिए के समूहों में आने वाले छात्रों के साथ उचित व्यवहार किया जाता है ?

क्षेत्र सर्वेक्षण से निष्कर्ष : उत्तर प्रदेश के कौशांबी जिले का हमारा अध्ययन अन्य जातियों की तुलना में अनुसूचित जातियों की असुरक्षितता में कुछ स्पष्ट अंतर दिखाता है। उदाहरण के लिए, जब उनसे जाति के आधार पर धमकी, दुर्व्यवहार या अपमान के बारे में पूछा गया तो उत्तरदाताओं ने अपनी पुष्टि की और उनमें से 13 प्रतिशत ने कौशांबी में पुलिस को इसकी सूचना दी। गाली-गलौज और अपमान को जाति रेखा पर सबसे अधिक बार होने वाले भेदभाव के रूप में देखा गया। कौशांबी में दुर्व्यवहार का प्रतिशत इतना अधिक दर्ज किया गया कि इससे 96.80 प्रतिशत लोग सहमत थे। उनमें से कुछ ने बताया कि भविष्य में उनके परिवारों को होने वाली समस्याओं के डर के कारण उन्हें पुलिस को सूचित नहीं किया। कई मामलों में ये लोग पुलिस थानों में जाने से डरते थे क्योंकि वे अशिक्षित थे और किसी भी तरह के कागजी काम और भविष्य की किसी कठिनाइयों में सम्मिलित नहीं होना चाहते थे। कुछ उत्तरदाताओं ने कहा कि उन्हें अपनी नौकरी या दैनिक मजदूरी रोजगार को खोने का डर है जो वे उच्च जातियों के लोगों की भूमि पर काम करके कमा रहे थे। दूसरी ओर, ग्राम पंचायतों के व्यवहार ने भी एक विपरीत दृष्टिकोण दिखाया जिसपर जब उनसे पूछा गया कि क्या ग्राम पंचायत ने उनके द्वारा की गई किसी भी शिकायत पर कोई कार्यवाही हुई या नही इसके की है। उत्तर में 91.3 प्रतिशत ने कहा कि कार्यवाही की गई। लेकिन जब उनसे यह पूछा गया कि क्या वे ग्राम पंचायत तटस्थ हैं, लगभग 91.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे तटस्थ नहीं थे। अतः शोध में ग्राम प्रधान का व्यवहार ज्यादा पक्षपाती नजर आया। यह पूछे जाने पर कि क्या प्रधान दबंग जातियों के पक्षधर हैं इस सन्दर्भ में कौशांबी में 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पक्षपात स्वीकार किया।

अपराध रिपोर्ट ब्यूरो, सेनापति[20] के वर्तमान आंकड़े अनुसूचित जातियों के विरूद्ध होने वाली घटनाओं और अपराध की दर पर राज्यवार आंकड़ों से पता चलता है कि अपराधों की संख्या के मामले में वर्ष 2012 की स्थिति में अपराध लगातार कम नहीं हो रहे हैं। प्रति लाख 6203 है जो कि ओर यहां तक कि 1989 के अत्याचार अधिनियम के लाभ होने के बाद भी जो अपराध प्रतिलाख 6122 था 1999 में एक दशक के बाद प्रतिलाभ 6202

है जो ओर भी बदतर स्थिति में है। जैसा कि आंकड़े बताते हैं कि अनुसूचित जातियों के सामाजिक समावेश का कार्य केवल इसके खिलाफ कार्रवाई करने पर ही निहित नहीं हो सकता। बहुत बड़ी संख्या में अनुसूचित जाति की आबादी गांवों और सामाजिक व्यवस्था में रहती है। वे अत्याचार के शिकार हैं। उनकी स्थिति को बदला जाना चाहिए ताकि वे उच्च्व जाति समुदायों के लिए अधिक स्वीकार्य हो सकें।

निष्कर्ष : क्षेत्र में किए गए सर्वेक्षण के अनुभव ने पुष्टि की है कि उत्तर प्रदेश में वर्ग समाज की तुलना में जाति व्यवस्था का प्रभाव अधिक प्रमुख है। जाति व्यवस्था एक श्रेणीबद्ध स्तरीकरण है जो अनुसूचित जातियों के साथ सबसे अधिक भेदभाव करती है। अनुसूचित जाति आय और सामाजिक स्थिति दोनों ही मानदंडों में सबसे नीचे है। उन पदानुक्रमों के नीचे उनका अस्तित्व उन्हें कमजोर बनाने के लिए एक कारण है और उन्हें एक समुदाय के सदस्य के रूप में सामाजिक भागीदारी से बाहर कर रखता है। इसलिए कहा गया यह समुदाय समाज में असुरक्षा में रहता है।

मानव सुरक्षा दृष्टिकोण की भाषा में इन समूहों का जीवन और भविष्य अनिश्चित और असुरक्षित है। भौतिकवादी और गैर-भौतिकवादी अपर्याप्तता समकालीन समाज में उनके जीवन को और अधिक असुरक्षित बना दिया है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था की भाषा में बाजार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जबकि राज्य विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों के लिए राज्य की नीतियों को लागू करने में असमर्थ रहा है। दूसरी ओर, मानव सुरक्षा व्यक्ति के जीवन और समाज में उनकी सक्रिय भागीदारी को सुरक्षित करने के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत राज्य के हस्तक्षेप और सुशासन की मांग करती है। अनुसूचित जाति ज्यादातर भौतिक आधार पर भेदभाव उनके विरूद्ध मौखिक दुर्व्यवहार और विशेष रूप से उनसे संबंधित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के खराब कार्यान्वयन के मामले में प्रभावित होती है।

अनुसूचित जाति समुदाय पिछले अन्याय और वर्तमान में न्याय से वंचित होने से भी पीड़ित है। यद्यपि संवैधानिक सुरक्षा है फिर भी वे विकासात्मक वितरण के हाशिये पर बने हुए हैं। ग्रामीण कार्यक्रमों का उचित कार्यान्वयन और इसकी मजबूत निगरानी उनके उत्थान की कुंजी है। ऊपरी स्तर पर उनके उत्थान के लिए विभिन्न विकास नीतियां बनाई जाती हैं। राजनीतिक संबद्धता के बिना गरीब से गरीब व्यक्ति के लिए लागू होना चाहिए।

अपनी अध्ययन अवधि के दौरान हमने पाया गया है कि उत्तर प्रदेश ने विकास के कई संकेतकों पर अपनी स्थिति को नीचा दिखाया है। इसलिए उत्तर प्रदेश में हाशिए पर पड़े लोगों की मांग को पूरा करने के लिए सार्वजनिक शिक्षा क्षेत्र को जीवंत किया जाना चाहिए। सामाजिक न्याय के साथ सरकारों की एक अनुकूल नीति लोगों को 'जीने' और अच्छी तरह से जीने के साथ-साथ यथासंभव सुनिश्चित करती है। जब तक उनके प्रति दृष्टिकोण में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन नहीं होगा, तब तक मानव सुरक्षा के स्तर में कुछ भी उपयोगी नहीं हो सकता है। एक बड़ी हाशिए की आबादी वाले उत्तर प्रदेश में राय बनाने वालों मीडिया, सीएसओ और शिक्षाविदों के समर्थन की जरूरत है ताकि मुद्दों के समर्थन में राज्य की राजनीतिक और प्रशासनिक इच्छा को प्रभावित किया जा सके।

इसके अलावा, मौजूदा सुरक्षात्मक कानूनों और विकास कार्यक्रमों को लागू करने के साथ-साथ राज्य को विभिन्न सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए नए सामाजिक कानून की आवश्यकता है जो कि दूरगामी सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए मौजूदा सुरक्षात्मक कानूनों के अंतर्गत सम्मिलित हैं। सरकार द्वारा पूर्वोक्त मानकों में उनका उत्थान करने का प्रयास किया जाना चाहिए। मानव सुरक्षा के लिए, एक मानवीय दुनिया जहां लोग गरीबी और निराशा से मुक्त सुरक्षा और सम्मान में रह सकते हैं, अभी भी कई लोगों के लिए एक सपना है। ऐसी दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानवीय क्षमता को पूरी तरह से विकसित करने के समान अवसर के साथ भय से मुक्ति और अभाव से मुक्ति की गारंटी दी जाएगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मानव सुरक्षा का निर्माण आवश्यक है। एक अधिक बिस्तृत आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक ढांचा आवश्यक है, लेकिन इसे समाजे के सभी वर्गों के बुनियादी मानवाधिकारों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए अनुसूचित जातियों में हाशिए के समूहों को विकास प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना चाहिए ताकि उन्हें व्यापक खतरों और असुरक्षा से बचाया जा सके।

सन्दर्भ

1. Government of India (2011), Census of India.
2. भेद्यताः शारीरिक या भावनात्मक रूप से हमला या नुकसान होने की संभावना के संपर्क में आने की गुणवत्ता या स्थिति।
3. Stephen, J. Del Rosso, (1995), "The Insecure State: Reflections on 'the State' and 'Security' in a Changing World," Daedalus 124(2): p.p 175-207.
4. Hubert, D. (2004), "An Idea that Works in Practice", Security Dialogue, 25(3), 2004, pp. 351-2.
5. Sen, Amartya (1999) Development as Freedom. New York: Alfred A. Knopf: p. 366
6. Evans, P., (2002) "Collective Capabilities, Culture, and Amartya Sen's Development as Freedom" Studies in Comparative International Development, 37:2, pp 54-60.
7. Selwyn, B. (2011) "Liberty Limited? A Sympathetic re-engagement with Amartya Sen's Development as freedom", Economic and Political weekly, 46: 37, Sep 10, https://www.epw.in/journal/2011/37/special-articles/liberty-limited-sympathetic-re-engagement-amartya-sens-development?destination=node/125594.
8. Galtung, J. (1980), "The true worlds: a transnational perspective", Free Press, New York, USA, 1980, p.120.
9. Hampson, F.O. et.al. (2001), "Madness in the Multitude: Human Security and World Disorder", Oxford University Press, ed. 1st, 2001.
10. Hampson, F.O. et.al. (2001), "Madness in the Multitude: Human Security and World Disorder", Oxford University Press, ed. 1st, 2001, p.5
11. Robinson, M. (2006), "A Voice for Human Rights", University of Pennsylvania Press (August 1, 2007), p. 174.
12. UNDP (1994) Human Development Report -1994 New York Oxford Oxford University Press, pp. 22-46.
13. Alkire, Sabina (2003) "A Conceptual Framework for Human Security" working paper 2, Centre for Research on Inequality, Human Security and Ethnicity, CRISE, Queen Elizabeth House, University of Oxford, p.6
14. Benedek, W, Minna Nikolova and Gerd Oberleitner, (2002) Human Security and Human Rights Education Pilot Study, July 2002, p.22.
15. UNDP (1994) Human Development Report -1994 New York Oxford Oxford University Press, p.24
16. Commission on Human Security 2003, Human Security Now, Network, ISBN 0-9741108-0-9, p.4.
17. Commission on human Security (2003), Human Security Now, Network, ISBN 0-9741108-0-9, p.4.
18. Sen, A. (2000), "Social Exclusion: Concept, Application and Scrutiny, Social Development Papers No. 1", Asian Development Bank: Manila, Philippines, p.15.
19. NCDHR (2017), National Dalit Movement for Justice (NCDHR), "Dalit kids face bias in schools too: Study" economictimes.indiatimes.com August 10, https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/dalit-kids-face-bias-in-schools-too-study/articleshow/59995031.cms, access on 2019-12-20.
20. Senapati, C. 2017, Socio-economic Data-base for Excluded Groups in India, Sardar Patel Institute of Economic and Social Research (ICSSR) part-III (table no 1 to 16).

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

जल जीवन मिशन (हर घर जल) : सामाजिक, आर्थिक उन्नयन की दिशा में एक कदम

❑ सुश्री मोनिका अवस्थी
❖ डॉ. कोमल मित्तल

सूचक शब्दः हर घर जल, जल जीवन मिशन , सतत विकास लक्ष्य, जल संकट, भूजल, पेयजल।

सितंबर 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक में इसके 193 सदस्यों ने 2030 तक एक समृद्ध, खुशहाल और अधिक समावेशी विश्व की परिकल्पना करते हुए बुनियादी सेवाओं तक सभी की पहुंच को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से 17 सतत विकास लक्ष्यों को स्वीकार किया। 1 जनवरी 2016 से 2030 तक विश्व के करोडों नागरिक व सरकारें मिलकर इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में प्रयासरत रहेगी। भारत की भूमिका विश्व की 18 प्रतिशत जनसंख्या के साथ 139 करोड नागरिकों के लिए इन लक्ष्यों की प्राप्ति में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन लक्ष्यों में लक्ष्य नंबर 6 स्वच्छ जल एवं स्वच्छता से संबंधित हैं, जो 6.1 से 6.6 तक 6 उपलक्ष्यों में विभाजित है। लक्ष्य 6.1 का उद्देश्य 2030 तक सभी के लिए सुरक्षित, किफायती पेयजल सर्वत्र समान रूप से सुलभ कराना है।[1] भारत सरकार के द्वारा 25 दिसंबर 2019 को इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जल जीवन मिशन की शुरुवात की गई है। जिसका उद्देश्य भारत की 65.07 प्रतिशत ग्रामीण आबादी (विश्व बैंक 2020) को नल से स्वच्छ जल आपूर्ति सुनिश्चित कर ग्रामीण जीवन में परिवर्तन लाना है। इस शोध पत्र में भारत में जल की उपलब्धता की स्थिति, गंभीर होता भूजल संकट, इस संकट निपटने के लिए अगस्त 2019 से प्रारम्भ केन्द्र सरकार के अति महत्वाकांक्षी कार्यक्रम जल जीवन मिशन के अंतर्गत हर घर जल कार्यक्रम की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संस्कृति में जीवन के लिए पंच तत्व क्रमशः जल, आकाश, भूमि, वायु, अग्नि को आधार माना गया है। इनमें से एक प्रमुख तत्व जल विकास, प्रवाह, निरन्तरता का प्रतीक है। जल के कारण ही लगभग प्राचीन सभी सभ्यताएं नदियों के किनारे विकसित हुई। नदियों के तटों पर ही बडे- बडे सांस्कृतिक, औद्योगिक व व्यापारिक नगरों का विकास हुआ। परंतु विकास की अंधी दौड में अति उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के चलते पिछले लगभग 200 वर्षों से अमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन आज अपने चरम पर है। आज दुनिया की आधी आबादी पीने के लिए स्वच्छ पानी को तरस रही है। वैश्विक रिपोर्ट (WRF Water Risk Filter Report 2018)[2] के अनुसार दुनिया के 400 गंभीर जल संकट वाले शहरों में भारत का चेन्नई प्रथम और कोलकाता दूसरे स्थान पर है तथा विश्व के 20 गंभीर जल संकट से जूझ रहे शहरों में चार शहर भारत के हैं जिनमें चेन्नई व कोलकाता के अलावा मुंबई और दिल्ली शहर हैं। अगर अभी भी हम नहीं समझे तो भविष्य में पानी की एक-एक बूंद के लिए तरस जाएंगे।

वैश्विक स्तर पर बढते जल संकट के कारण 1993 से लगातार प्रतिवर्ष एक विशेष थीम के साथ 22 मार्च को विश्व जल दिवस मनाया जाता है। जो विश्व में 2.2 अरब. स्वच्छ पानी के अभाव में रह रहे लोगों के प्रति विश्व का ध्यान आकर्षित कर जल के महत्व के बारे में बताता है। वर्ष 2022 की थीम है- 'भूजल' जिसके माध्यम से गहराते वैश्विक भूजल संकट की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट कर इसे बचाने के सभी संभव उपायों को अपनाने हेतु प्रयास किया जायेगा।

भारत में प्रतिवर्ष कम से कम 4 से 6 महीने पानी की गंभीर कमी का सामना करने वाले लोगों की संख्या 1.8 से 2.9 बिलियन है। आधे अरब लोगों को वर्षभर पानी की गंभीर कमी का सामना करना पड़ता।[3]

प्रस्तुत शोध पत्र के प्रथम भाग में भारत में जल की मांग तथा आपूर्ति पर गुणात्मक तथा परिमाणात्मक प्रकाश डाला गया है, तत्पश्चात् द्वितीय भाग समावेशी विकास में बाधक भूजल संकट की प्रकृति, तीव्रता, भारत में भूजल संकट के कारणों, दुष्प्रभावों से अवगत कराता है। शोध पत्र का अगला भाग ग्रामीण तथा शहरी विकास में जल की भूमिका और जल उपलब्धता हेतु किये गये प्रयासों में मिशन मोड में देशव्यापी संचालित योजना 'हर घर जल' की आवश्यकता, लक्ष्य, क्रियान्वयन, प्रगति, चुनौतियों

❑ शोध अध्येत्री, सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय कानपुर एवं असिस्टेंट प्रोफेसर, ए.पी.सेन मेमोरियल गर्ल्स डिग्री कॉलेज, लखनऊ(उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बरेली कालेज, बरेली, (उ.प्र.)बरेली

के साथ-साथ महिला सशक्तीकरण और शिक्षा से जुड़े पहलुओं की समीक्षा करता है।

भारत में जलापूर्ति तथा मांग- विश्व में सर्वाधिक जल संकट वाले क्षेत्र दक्षिण और पूर्वी एशियाई क्षेत्र है। संपूर्ण भारतीय महाद्वीप जल संकट वाले क्षेत्र के अंतर्गत आता है। भारत के पास विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 2.4 प्रतिशत भूभाग ही है, जबकि विश्व की कुल 17.7 प्रतिशत जनसंख्या भारत में रहती है परिणाम स्वरूप भारत में प्राकृतिक संसाधनों पर जनसंख्या का बहुत अधिक दबाव है। भारत के पास कुल वैश्विक जल संसाधनों का मात्र 4 प्रतिशत ही है, जबकि वैश्विक स्तर पर कुल भूमिगत जल दोहन में 25 प्रतिशत हिस्सेदारी अकेले भारत की है। जून 2018 में नीति आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत वर्तमान में, इतिहास में सर्वाधिक गंभीर जल संकट का सामना कर रहा है। भारत की कुल 45 प्रतिशत जनसंख्या साफ पेयजल से वंचित है। 2030 तक 40 प्रतिशत जनसंख्या की पहुंच पेयजल तक नहीं होगी और 2050 तक भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत तक गंभीर जल संकट के कारण खो देगा।[4]

भारत एक विशेष रूप से कठिन चुनौती का सामना कर रहा है क्योंकि जल संकट लाखों लोगों के जीवन और आजीविका के लिए खतरा है। लगभग 600 मिलियन भारतीय- लगभग आधी आबादी अत्यधिक पानी की कमी की स्थिति का सामना करती है, जिसमें हर साल लगभग 200,000 सुरक्षित पानी की अपर्याप्त पहुंच से मर जाते हैं। 2030 तक देश में पानी की मांग उपलब्ध आपूर्ति से दोगुनी होने की संभावना है। तेजी से विकास, बढ़ती जनसंख्या और असमान वितरण के परिणामस्वरूप, पानी की मांग आपूर्ति से कहीं अधिक है (यूनिसेफ और अन्य 2013)। भारत की 1.3 बिलियन की आबादी में से लगभग 163 मिलियन लोगों को अपने घर के पास साफ पानी की सुविधा नहीं है।[5]

भारत में कुल जल खपत का 85 प्रतिशत खेती में, 10 प्रतिशत उद्योग और 5 प्रतिशत घरेलू क्षेत्र में उपयोग होता है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार 2030 तक भारत में पानी की मांग आपूर्ति का दोगुना हो जाने की उम्मीद है। भारत में 1999 में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 6000 घन लीटर थी। जनसंख्या बढने से यह दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। वर्ष 2000 में घटकर 2300 घन लीटर रह गई और वर्ष 2025 तक यह 1600 घन लीटर रह जाने की आशंका है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले 20 सालों में भारत में करीब तीन लाख किसानों को सूखे के कारण आत्महत्या करनी पड़ी है।[6]

भारत के शहरी क्षेत्रों में शहरी मंत्रालय के आकलन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 130 लीटर पानी की आवश्यकता है परंतु अनेक देशों में किए गए अध्ययन यह बताते हैं कि स्वस्थ जीवन शैली जीने के लिए प्रतिदिन प्रयोग के लिए जल की यह मात्रा बहुत अधिक है। सामान्य रूप से 75 लीटर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति की जल उपलब्धता पर्याप्त है। हमारे भोजन के लिए उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक भोजन पहुंचाने की प्रक्रिया में हजारों लीटर पानी खर्च हो जाता है। वॉटर फुटप्रिंट नेटवर्क के एक अध्ययन के अनुसार खाद्य पदार्थों के 1 किलोग्राम उत्पादन पर वैश्विक स्तर पर पानी की खपत पर विचार करें तो यह आंकड़े आम आदमी के लिए चौंकाने वाले हैं।

तालिका 1

वैश्विक स्तर पर प्रति किलोग्राम उत्पादन में होने वाले पानी की खपत

खाद्य पदार्थ	पानी की खपत
गोवंश मास	15,415
सूखा मेवा	9,063
सुअर का मांस	5,988
अंडा	3,265
अनाज	1,64
दूध	1,020
फल	962
सब्जियां	322

स्रोत : वॉटर फुटप्रिंट नेटवर्क रिपोर्ट[7]

भूजल संकटः समाजिक, आर्थिक विकास की राह में संरचनात्मक बाधा- दुनिया के अनेक शहर भूजल समाप्ति की स्थिति में पहुंच चुके हैं। तुर्की का इस्तांबुल, चीन का चेंगदू, बैंकॉक, तेहरान, जकार्ता, लॉस एंजेल्स, काहिरा, बीजिंग और पेरिस ऐसे दुनिया के अन्य बडे शहर हैं जो गंभीर जल संकट से जूझ रहे हैं। यह रिपोर्ट इस बात की ओर संकेत करती हैं कि चाहे विकासशील देश हो अथवा विकसित देश, दुनिया के लगभग सभी देश भीषण जल संकट का सामना कर रहे हैं।[8] सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सभी शहर नदियों के किनारे बसे हुए हैं। जहां आबादी बहुत अधिक है। औद्योगीकरण, शहरी दबाव

और तीव्र विकास की चाहत के कारण नदियों के जल का अविवेकपूर्ण प्रयोग इस समस्या का प्रमुख कारण है।

आजादी के समय भारत की जनसंख्या 36 करोड़ थी। इसके मुकाबले 2021 में भारत की जनसंख्या बढ़ कर 138 करोड़ (विश्व बैंक डेटा 2020) हो गई है[9] अर्थात जनसंख्या 1947 की तुलना में बढ़कर 3.8 गुना हो गई है। परंतु जल संसाधन उसी मात्रा में उपलब्ध है और इस कारण भूमिगत जल पर लगातार निर्भरता बढती जा रही है। परिणाम स्वरूप भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन और दोहन के कारण जल स्तर में सतत रूप से गिरावट जारी है। भारत के दिल्ली राज्य में भूमिगत जल 2 मीटर प्रति वर्ष के स्तर से घट रहा है। दिल्ली का 15 प्रतिशत क्षेत्र क्रिटिकल जोन में है। इसी तरह बेंगलुरु में भी पिछले दो दशक में 10 से 12 मीटर तक भूजल के स्तर में गिरावट दर्ज की गई है। देश के लगभग 55 प्रतिशत कुएं सूख चुके हैं। पिछले 10 सालों में भूजल का स्तर 54 प्रतिशत तक कम हुआ है।

वर्तमान समय में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों एवं औद्योगिक शहरों के निकट के जल स्रोतों में गंभीर जल प्रदूषण एक बहुत बड़ी समस्या है। लगभग 70 प्रतिशत लोग (केंद्रीय भूजल बोर्ड, 2017) प्रदूषित पानी पीने को विवश हैं। यद्यपि भारत में नदियों का जाल फैला हुआ है परंतु इनके पानी की गुणवत्ता खराब हो चुकी है।

भारत में जल संरक्षण की दिशा में कोई कठोर नीति अभी तक नहीं है। रोजाना लाखों गैलन पानी वितरण हेतु उपयुक्त नेटवर्क ना होने व अन्य कारणों से बर्बाद हो जाता है। भारत में वार्षिक औसत वर्षा 1190 मिलीमीटर है जो विश्व के मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में से एक है। अगर देश में होने वाली कुल वर्षा का केवल 5 प्रतिशत जल ही संरक्षित कर लिया जाए तो 1 वर्ष तक 100 करोड़ लोगों की जल की आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं। वर्षा का लगभग 65 प्रतिशत पानी प्रवाहित होकर समंदर में चला जाता है। रोजाना लगभग 4 लाख लीटर गंदा जल विभिन्न कार्यों में उपभोग के बाद निकलता है परंतु इसमें से केवल 20 प्रतिशत जल ही शोधन कर दोबारा प्रयोग में लाया जाता है। पृथ्वी पर मौजूद ताल, पोखर, तलैया, छोटी नदियां, झीलों पर अस्तित्व का संकट आ गया है जिनकी बड़ी भूमिका भूजल स्तर को रिचार्ज करने में रहती है। भारत में कुल 6,64,369 गांव तथा 4000 छोटे बड़े कस्बे और शहर विद्यमान हैं। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार भारत में कुल 36 लाख जलाशय है जिनमें से 30 प्रतिशत जलाशय समाप्त हो चुके हैं। बचे हुए 70 प्रतिशत जलाशयों में भी 95 प्रतिशत जलाशयों पर अतिक्रमण किया जा चुका है तथा मात्र 5 प्रतिशत जलाशय ही अपने वास्तविक स्वरूप में बचे हुए हैं। कुल मौजूद जलाशयों में भी 50 प्रतिशत सूख चुके हैं तथा 30 प्रतिशत गंदगी से युक्त है, जिनका जल प्रयोग करने लायक नहीं है। जबकि 80 प्रतिशत जलाशय की जल संभरण क्षमता का ह्रास हो चुका है।

2018 में दक्षिण अफ्रीका का केपटाउन शहर पहला ऐसा शहर बन गया था जहां पानी लगभग समाप्त हो चुका है। नीति आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट में 2030 तक भारत के कई शहरों में भूमिगत जल के समाप्त होने की आशंका व्यक्त की है। 2014 से 2017 के बीच एकत्रित आंकड़ों के आधार पर संसद में प्रस्तुत की गई कैग की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में भूमिगत जल के रिचार्ज और डिस्चार्ज में बहुत असंतुलन है। वार्षिक आधार पर रिचार्ज जल का 63 प्रतिशत हिस्सा डिस्चार्ज हो जाता है अर्थात जो पानी जमीन के अंदर 1 वर्ष में रिस कर जाता है उसका 63 प्रतिशत हिस्सा बाहर निकाल लिया जाता है। इसमें भी राज्यवार अंतर अधिक है। 13 राज्यों में तथा 267 जिलों में भूजल की खपत इस औसत से कहीं अधिक है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली जैसे राज्यों में तो यह अंतर खतरनाक रूप से नकारात्मक स्थिति में पहुंच चुका है, जहां भूजल खपत 100 प्रतिशत से भी अधिक होने के कारण जल स्तर में भारी गिरावट आ रही है।

भारत में सर्वप्रथम 1930 में भूजल दोहन के लिए पहला ट्यूबवेल लगाया गया, तब से लेकर आज तक लगातार वर्षों तक ट्यूबवेल एवं पिछले 3 से 4 दशकों में सबमर्सिबल पंप के द्वारा भूजल के अति दोहन के चलते रिचार्ज और डिस्चार्ज में असंतुलन के कारण हजारों वर्षों से सहेजे भूमिगत जल की स्थिति 100 वर्षों में ही इतनी बिगड़ चुकी है कि भूजल स्तर में गिरावट के कारण अनेक नदियां सूख गई हैं क्योंकि किसी भी नदी तंत्र में जल प्रवाह की कमी का एक मुख्य कारण भूजल स्तर का कम होना है। भूजल स्तर के कम होने के कारण नदियों का बेस लो समाप्त हो जाता है और वर्षा के बाद के महीनों में पानी के प्रवाह में कमी के कारण नदियां सूखने लगती हैं।

भारत में अभी तक वर्षा जल संचयन हेतु हाइड्रोलिक

संरचनाओं की स्थापना नहीं की जा सकी, जिसके कारण उन वर्षों के जल को जब वर्षा अधिक होती है संरक्षित कर सूखे या कम वर्षा वाले वर्षों के लिए सुरक्षित रखना संभव नहीं हो सका है। भूजल को गंभीर रूप से प्रभावित करने के लिए हरित क्रांति भी जिम्मेदार हैं। उर्वरक का अधिकतम उपयोग, सिंचाई हेतु पानी का अधिक प्रयोग, बिजली पर दी जाने वाली सब्सिडी, आदि के चलते किसान आवश्यकता से अधिक जल की खपत पर जोर देते बहुत हैं। अमेरिका और चीन संयुक्त रूप से जितने भूजल का उपयोग करते हैं भारत उससे भी अधिक भूजल का दोहन कर विश्व में सर्वाधिक भूजल दोहन वाला देश बन गया है।

सतत् ग्रामीण विकास और जल-भारत एक गांवों का देश है। लगभग 65 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है। गांधी जी का कहना था कि भारत का विकास भारत के गांवों के विकास के बिना संभव नहीं है। सरकार गांवों और ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार करने की दिशा में निरंतर प्रयास कर रही। सबके लिए आवास, हर घर बिजली, शौचालय, धुएं से मुक्ति के लिए उज्ज्वला योजना, वित्तीय समावेशन के लिए जन धन योजना, स्वास्थ्य के लिए आयुष्मान भारत योजना जैसी अनेक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ग्रामीण जनता और गांव के विकास के लिए किया जा रहा है। सतत विकास लक्ष्यों का क्रमांक छः प्रतिशत जल उपलब्धता को समर्पित है।[10] भारत सरकार द्वारा इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु जल जीवन मिशन को 2019 में प्रारम्भ किया गया जिसके अंतर्गत 'हर घर नल से जल' एक अति महत्वाकांक्षी घटक योजना है। ग्रामीण आबादी को घर में शौचालय और शौचालय की सफाई के लिए नल से जल मानव जीवन स्तर में सुधार लाने का क्रमिक विस्तार है। जल ही जीवन है, इस बुनियादी आकांक्षा को पूरा कर गांव के लोगों, विशेष रूप से महिलाओं व बच्चों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लना ही इस योजना का मुख्य उद्देश्य है।

हर घर जल योजना- आजादी के 70 साल बाद भी, लगभग 50 प्रतिशत भारतीय पीने के पानी से वंचित हैं। केंद्र और राज्य स्तर पर अलग-अलग सरकार ने इसके लिए काम किया है किंतु 70 वर्षों में कुल ग्रामीण घरों में केवल 17 प्रतिशत घरों में ही नल से जल पहुंच पाया था। वर्तमान सरकार ने शेष 83 प्रतिशत ग्रामीण घरों में केवल 5 वर्षों में ही नल से जल पहुंचाने का अति महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा। इसके लिए 3.6 लाख करोड़ रुपये का विशाल बजट रखा गया। 15वें वित्त आयोग ने भी पंचायती राज्य संस्थाओं को पीने के पानी और साफ सफाई पर खर्च करने की शर्त के साथ 1.42 लाख करोड़ रुपये का अनुदान दिया है। इस योजना के द्वारा शहरी व ग्रामीण जीवन में अंतर समाप्त कर ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है।[11]

15 अगस्त 2019 को घोषित इस योजना के अंतर्गत 2024 तक कार्यात्मक घरेलू नल कनेक्शन (FHTC) के माध्यम से प्रत्येक ग्रामीण परिवार को (प्रति व्यक्ति 55 लीटर) नल से, निर्धारित गुणवत्ता स्तर का (BIS 10,500) पीने का पानी पर्याप्त मात्रा में नियमित रूप से उपलब्ध कराना जाना है। जल जीवन मिशन 73वें संवैधानिक संशोधन पर आधारित है जिसके अंतर्गत ग्राम पंचायतों को पानी और उससे जुडे हुए मामलों का प्रशासनिक अधिकार दिया गया है। यह जल शक्ति मंत्रालय के अंतर्गत संचालित एक विकेंद्रीकृत कार्यक्रम है।

इस कार्यक्रम के द्वारा वर्तमान जल आपूर्ति व्यवस्था, पानी के कनेक्शन की संख्या व उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि, पानी की गुणवत्ता की निगरानी एवं परीक्षण के साथ-साथ सतत कृषि को बढावा दिया जायेगा। इसके अलावा वर्षा जल संरक्षण, स्थानीय स्तर पर ही जल की कुल मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन, जल का संयुक्त उपयोग, पीने के पानी के स्रोतों में वृद्धि तथा भूमिगत जल की रिचार्जिंग और उपयोग के बाद अवशिष्ट जल के शोधन के द्वारा जल के पुन प्रतिशत उपयोग के लिए ग्राम स्तर पर अवसंरचना का निर्माण भी किया जाना है। इस योजना के क्रियान्वयन में राज्यों के ग्रामीण जल आपूर्ति विभाग की प्रमुख भूमिका है। यह ग्राम पंचायतों और उन में गठित पानी समितियों के माध्यम से 'इन विलेज' गांव के भीतर ही उपलब्ध ग्राम जल संसाधनों के आधार पर जलापूर्ति व्यवस्था की योजना तैयार करने, उसको लागू कराने, योजना का प्रबंधन करने, रखरखाव और संचालन में सहयोग करते हैं। इस योजना के लिए राज्य और केंद्र सरकार द्वारा 50-50 प्रतिशत एवम उत्तर पूर्वी और हिमालय राज्यों में 90 व 10 प्रतिशत के आधार पर फंड की व्यवस्था की जाती है।

महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज का सपना गांव के विकास में ग्रामीण लोगों की भागीदारी से ही सच हो सकता है। जल जीवन मिशन के अंतर्गत जल व स्वच्छता

कार्यक्रम के प्रति ग्रामीणों को जागरूक कर जन भागीदारी प्राप्त करना भी एक प्रमुख लक्ष्य है। हर गांव में पानी की देखरेख और प्रबंधन के लिए 25 से 30 लोगों का एक समूह बनाया जा रहा है। जिसमें कम से कम 5 कुशल कारीगर, प्लंबर, इलेक्ट्रिशियन, पंप ऑपरेटर, राजमिस्त्री आदि को सम्मिलित करना जरूरी है। इस तरह से यह योजना ग्रामीण रोजगार के अवसरों के सृजन में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में इतने बड़े निवेश से आर्थिक गतिविधियों में भी तेजी आ रही है। गांधी जी के जन्म दिवस पर राष्ट्र के नाम संदेश में प्रधानमंत्री मोदी ने सभी से आग्रह किया कि जल जीवन मिशन के अंतर्गत युद्ध स्तर पर कार्य किया जाए ताकि किसी भी गांव को पीने के पानी के लिए टैंकरों और रेलगाड़ियों से पानी मंगाने की जरूरत ना पडे।

मिशन की प्रगति –भारत के 6.03 लाख गांव में से 3 लाख से अधिक गांव में जल एवं स्वच्छता समिति बनाई जा चुकी है। गोवा, तेलंगाना, हरियाणा, दादरा नगर हवेली, दमन और दीव, अंडमान निकोबार, पुडुचेरी राज्यों ने 100 प्रतिशत घरेलू ग्रामीण कनेक्शन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। इस योजना की शुरुआत के समय कुल 19. 31 करोड़ ग्रामीण परिवारों में से केवल 16.75 प्रतिशत अर्थात 3.23 करोड़ परिवारों में ही नल से जल की सप्लाई होती थी। इस योजना के 2 वर्ष पूरे होने पर लगभग 31.21 प्रतिशत अर्थात 7.40 करोड (जल जीवन मिशन डैशबोर्ड, दिसम्बर 2022) नए कनेक्शन दिए जा चुके हैं।[12] परिणाम स्वरूप कुल 54.97 प्रतिशत (10.64 करोड़, 24.03.2022 तक) लोगों को हर घर नल स्कीम से जोड़ा जा चुका है।[13] जिन गांव में बेहतर गुणवत्ता वाला भूमिगत जल उपलब्ध है वहां सिंगल विलेज स्कीम चलाई जा रही है। यदि पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध है, परंतु गुणवत्तापूर्ण नहीं है, तो ऐसे गांव में पानी को शुद्ध करके जलापूर्ति की जा रही है। और ऐसे गांव जहां पानी की कमी है, वहां अन्य स्थानों से पानी लाकर जल शोधन प्लांट लगाकर जल वितरित करने की व्यवस्था की जा रही है। जल जीवन मिशन की खास बात यह है दूषित पानी वाले इलाकों में जहां फ्लोराइड, आर्सेनिक की मात्रा अधिक है, इंसेफलाइटिस से पीडित इलाके, सामाजिक आर्थिक रूप से कमजोर आकांक्षी जिले, सूखे व रेगिस्तानी इलाके, आदर्श सांसद ग्राम योजना के तहत चयनित ग्राम, अनुसूचित जाति–जनजाति बहुलता वाले गांव को प्राथमिकता के आधार पर जल आपूर्ति किए जाने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत में 250 से अधिक ऐसे जिले हैं, जहां वर्ष भर पानी की कमी रहती है। इस योजना के अंतर्गत ऐसे स्थानों को पहचान कर 'कैच द रेन' अभियान के अंतर्गत 6000 करोड की लागत से अटल भूजल योजना के द्वारा बरसात के पानी को जमीन में पहुंचाने की योजना चलाई जा रही है। इसी के साथ ग्रामीण क्षेत्र में घरों से निकलने वाले गंदे पानी को स्रोत पर ही रिसाइकिल कर उसके पुन उपयोग के लिए सुजलाम योजना चलाई जा रही है।

तालिका 2 प्रतिशत
अगस्त 2019 से मार्च 2022 तक नल कनेक्शनों की स्थिति

समय अवधि	कनेक्शन संख्या	परिवर्तन संख्या (प्रतिशत में)
अगस्त 2019	32362838	–
अगस्त 2020	53259369	20896531 (64)
अगस्त 2021	80598627	27349258 (51)
अगस्त 2022	100872552	20273925 (25)

स्रोत प्रतिशत जल जीवन मिशन डैशबोर्ड[14]

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि औसत रूप से जल जीवन मिशन के अंतर्गत प्रतिदिन एक लाख नये नल के कनेक्शन दिए जा रहे हैं। जल जीवन मिशन में अलग–अलग राज्यों व जिलों में 100 प्रतिशत लक्ष्य पूरा करने के लिए अलग–अलग टाइम लाइन तय की गई है। कार्य की प्रगति और कार्य में आने वाली अड़चनों को दूर करने के लिए नियमित आधार पर समीक्षा भी की जाती है। बढ़ती जनसंख्या और जल संसाधनों के स्रोत यथावत रहने के कारण प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता लगातार कम होती चली जा रही है इस उपलब्धता को बनाए रखने के लिए आपूर्ति पक्ष प्रबंधन के साथ-साथ मांग पक्ष का प्रबंधन अधिक आवश्यक है ताकि पानी की आपूर्ति को बढ़ाने के साथ ही उसकी खपत को कम करने पर अधिक जोर दिया जाए।

जल जीवन मिशन और महिला सशक्तीकरण- यह योजना महिला सशक्तीकरण की दिशा में भी एक मील का पत्थर साबित हो रही है क्योंकि ग्रामीण महिलाओं को

पानी के लिए काफी दूर चल कर जाना होता था। ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों में 50 प्रतिशत महिला सदस्यों की अनिवार्य शर्त के चलते गांव में जल प्रबंधन के महत्वपूर्ण कार्य में महिलाएं अपनी सार्थक भूमिका निभा रही हैं। इस योजना से महिलाओं को दूर दूर जाकर पानी लाने के झंझट से छुटकारा मिला है और उनका जीवन आसान हो रहा है। यह योजना उन्हें आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से भी बेहतर है, क्योंकि महिलाएं अपने बचे हुए समय का सदुपयोग अपने घर -परिवार, बच्चों पर कर रहीं हैं एवं अन्य क्षेत्रों में काम करके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो रही हैं। प्रत्येक गांव में 5 प्रशिक्षित महिलाओं का समूह बनाया है जो घर-घर जाकर जल की गुणवत्ता को परखने और उस पर निगरानी रखने का कार्य भी कर रही हैं। भारत में 21 प्रतिशत बीमारियां दूषित जल के कारण होती है, अत इस योजना में जल की शुद्धता पर भी पूरा ध्यान दिया गया है जिससे प्रदूषित जल के कारण जल जनित बीमारियों और संक्रमण से ळोगों को बचाया जा सके और स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च में कमी कर ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार किया जा सके।

जल जीवन मिशन और शिक्षा- सितंबर 2020 में प्रधानमंत्री ने सभी स्कूल और आंगनवाड़ी केंद्रों में नल कनेक्शन उपलब्ध कराने की आवश्यकता पर जोर देते हुए 100 दिन के एक जागरूकता कार्यक्रम का आवाहन किया ताकि हर राज्य में इन केंद्रों पर पीने के लिए, भोजन पकाने के लिए, शौचालय के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध हो सके। वर्तमान में 8.15 लाख (79.2 प्रतिशत) स्कूल और 8.15 लाख (73 प्रतिशत) आंगनबाडी केंद्रों में नल से पानी की सप्लाई हो रही है। कोविड-19 जैसी समस्या के दौरान बार-बार साबुन से हाथ धोने और साफ-सफाई की दृष्टिकोण से भी यह कदम बहुत सराहनीय है। इसी के साथ वर्षा जल संचय की आवश्यकता को समझते हुए 93 हजार से ज्यादा स्कूलों में रेन वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम की व्यवस्था की जा चुकी है। इन सुविधाओं का विद्यार्थियों के नामांकन और उनकी उपस्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

पारदर्शिता और जवाबदेही : पारदर्शिता और जवाबदेही की दृष्टि से भी यह परियोजना बहुत आकर्षक है, क्योंकि इससे पूर्व भी बहुत अच्छी सरकारी योजनाएं बनाई गई थी। परंतु उनके सफल क्रियान्वयन के अभाव में योजनाएं अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल सिद्ध हुई हैं। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए इस पूरी योजना की प्रगति को ऑनलाइन माध्यम से जोड़कर रियल टाइम डाटा प्राप्त किया जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति जल जीवन मिशन के ऑनलाइन डैशबोर्ड पर राज्य, जिला और ग्राम स्तर पर हुई प्रगति की ताजा स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसी क्रम में हर घर जल मिशन डैशबोर्ड से राज्यवार इस योजना की प्रगति की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि गोवा, गुजरात, हरियाणा प्रति व्यक्ति अधिक आय वाले राज्यों की प्रगति उत्तम है वही मणिपुर, लद्दाख, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश जैसे छोटे राज्यों की प्रगति भी सराहनीय है वही पश्चिम बंगाल, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, झारखण्ड जैसे राज्य इस योजना के क्रियान्वयन में अति पिछड़े है।

तालिका 3 प्रतिशत
हर घर जल मिशन की प्रारम्भ तिथि से देशव्यापी अद्यतन प्रगति

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	15 अगस्त 2019 तक शेष घर	30 नवम्बर 2022 तक प्रगति	प्रगति प्रतिशत में
गोवा	63919	63919	100
तेलांगना	3818661	3818661	100
अंडमार निकोबार	33490	33490	100
पुर्दचेरी	21442	21442	100
गुजरात	2657120	2657120	100
हरियाणा	1274951	1274951	100
पंजाब	1747390	1744160	99.87
बिहार	16380858	15667459	95.64
हिमाचल प्रदेश	955467	894899	93.66
मणिपुर	425646	311725	73.24
लद्दाख	41237	28963	70.24
मिजोरम	125827	85711	68.66
अरूणाचल प्रदेश	201508	131746	65.38
उत्तराखण्ड	1363078	891782	65.38
महाराष्ट्र	9742057	5660368	58.1
त्रिपुरा	717443	385414	53.72
नागालैण्ड	363404	191841	52.79
उडिशा	8546583	4505043	52.71
आन्ध्र प्रदेश	6494906	3284355	50.57
तमिलनाडु	10324813	504461	48.86
कर्नाटक	7666553	3467773	45.23

सिक्किम	61535	26688	43.37
मेघालय	625823	267401	42.73
असम	6455589	2596022	43.37
मध्यप्रदेश	10653646	4141187	42.73
जम्मू-कश्मीर	1259724	487863	40.21
छत्तीसगढ	4686575	1379491	38.87
केरल	5401435	1504878	38.73
पश्चिम बंगाल	17889761	4933878	29.43
झारखण्ड	5776384	1255 436	27.86
उत्तर प्रदेश	25921515	5290491	21.73
राजस्थान	9402383	1918492	20.41
लक्षद्वीप	13370	0	20.4
योग	161199249	74053166	0.0

स्रोत प्रतिशत जल जीवन मिशन डैशबोर्ड[15]

जल जीवन मिशन योजना की चुनौतियां- चूकि यह एक मिशन है जिसके अंतर्गत अनेक लक्ष्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित किया जा रहा है, इसीलिए एक बेहतर आधुनिक जल प्रबंधन प्रणाली को निर्धारित समय में पूरा करने में अनेक चुनौतियाँ आना स्वाभाविक है। पहली चुनौती घर-घर पानी पहुंचाने से अघिक कठिन कार्यं घरेलू उपयोग से बर्बाद होने वाले पानी का संकलन और उसका शोधन कर उसे पुनः प्रयोग करने लायक अवस्था में लाना है। विश्व में अनेक ऐसे देश हैं जो उपयोग किए हुए गंदे पानी का ट्रीटमेंट करके उसका प्रयोग घरेलू जलापूर्ति के लिए कर रहे हैं। नामीबिया और सिंगापुर जैसे देशों में यह प्रयोग बहुत सफल है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उपयोग के बाद निकलने वाले जल को शोधित कर उसे पुनः उपयोग में लाया जा सके।

दूसरी बड़ी समस्या पानी की गुणवत्ता से जुडी हुई है। भारत में सामान्य तौर पर पानी की गुणवत्ता को 20 मानकों पर मापा जाता है, जबकि सिंगापुर में 351 और चीन में 110 से अधिक मानकों पर पानी की गुणवत्ता को रखा जाता है। यही कारण है कि भारत में हर व्यक्ति नल से जल की गुणवत्ता पर भरोसा नहीं करता है। भारत में भूजल उपयोग के लिए कठोर कानून की आवश्यकता है। क्योंकि प्रत्येक कार्य चाहे वह सिंचाई हो, उद्योग हो अथवा घरेलू कार्य सभी के लिए पीने वाले साफ पानी का ही प्रयोग किया जाता है। भूजल संकट से निपटने के लिए सरकार, नागरिक समाज, आमजन, स्थानीय प्रशासनिक संस्थाएं, ग्राम प्रधान तथा प्रबुद्ध वर्ग को आगे आकर अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर एक जन आंदोलन खडा करना होगा।

जल संरक्षण की स्थाई विधियों को विकसित करना एक चुनौती है क्योंकि बढ़ती आबादी के चलते 20 - 30 सालों में पानी की मांग आपूर्ति से कहीं अधिक हो जाएगी और ऐसे में एक एक बूंद जल बचाने के लिए अभी से प्रयास करना होगा। लगभग 18 राज्यों में भूमिगत जल में क्लोरीन, आर्सेनिक व अन्य धातुओं से प्रदूषित जल को शुद्ध कर गुणवत्तापूर्ण पानी उपलब्ध कराना एक चुनौती है।

भारत में वर्षा के पैटर्न में अनियमितता तथा विभिन्न स्थानों पर वर्षा की मात्रा में भिन्नता के (केरल और पूर्वोत्तर राज्य बाढ़ से ग्रसित रहते हैं तथा पश्चिमी भारत के गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्य सूखे का सामना करते हैं) कारण संपूर्ण भारत में वर्ष भर पानी की आपूर्ति बनाए रखने के लिए अतिरिक्त संरचनात्मक विकास की आवश्यकता रहेगी। चूकि जल राज्य का विषय है अतः अवसंरचना के निर्माण के लिए केंद्र व राज्य में बेहतर समन्वय की आवश्यकता होगी जबकि भारत में केंद्र और राज्य में भिन्न दलों की सरकारें होने पर विरोधाभास बहुत अधिक होता है।

निष्कर्ष- प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के अनुसार जल व्यक्ति के जीवन को जितना अधिक प्रभावित करता है, उतना शायद कोई अन्य पदार्थ नहीं कर सकता, क्योंकि जल के बिना जीवन नहीं है। जल एक नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधन है, जो वाष्पीकरण और बारिश चक्र के माध्यम से पृथ्वी पर अपनी मात्रा को यथावत रखता है। परंतु खतरा इस बात का है कि बढते औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के चलते दुर्लभ जल संसाधन के अविवेकपूर्ण उपयोग से पीने योग्य साफ जल की उपलब्धता लगातार कम होती चली जा रही है।

पेयजल तक पहुंच और शुद्ध पेयजल की उपलब्धता निम्न वर्ग की आबादी के लिए एक दुरूह कार्य है। पानी की कमी के कारण गांव में लाखों लड़कियां और महिलाएं शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। निःसंदेह ग्रामीण जीवन को आत्मनिर्भर बनाने में और ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में जल के मामले में असमानता को दूर करने में ऐसी योजनाएं मील का पत्थर साबित हो सकती हैं। जल संकट के रूप में जल की मांग-पूर्ति की बढ़ती हुई खाई को पाटने और आवश्यक वस्तुओं तक समान पहुंच के लिए यह योजना

निर्माण के स्तर पर बहुत श्रेष्ठ है और आज से 40-50 वर्ष पहले ही इस तरह की योजना आ जानी चाहिए थी। योजना की प्रगति बताती है कि यह योजना करोड़ों भारतीयों की जल की समस्याओं का निस्तारण करने में सक्षम सिद्ध हो सकती है तथा सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु यह योजना नीति के आधार पर क्षेत्रीय विषमता को दूर करने और सामुदायिक सशक्तीकरण की दृष्टि से आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने की ओर अग्रसर है।

परंतु इसकी सफलता जल स्रोतों के सतत प्रबंधन के साथ-साथ क्षेत्रीय स्तर के मुद्दों को हल करने की क्षमता पर निर्भर है। एक समावेशी भारत के निर्माण के लिए जल जीवन मिशन को जल प्रबंधन व वितरण से संबंधित अवसंरचनाओं का निर्माण आगे 50 वर्षों की जनसंख्या की कृषि, घरेलू, तथा उद्योग की बढ़ती मांग के अनुरूप करना होगा व अगले 50 वर्षों तक लगातार भूमिगत जल के संवर्धन हेतु संपूर्ण समाज एवम सरकार के द्वारा अनवरत प्रयास करना होगा केवल तभी ग्रामीण भारतीयों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में व्यापक सुधारों के द्वारा उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाया जा सकता है।

संदर्भ

1. https://iwaponline.com/washdev/article/11/5/693/82996/Achieving-Sustainable-Development-Goals-in-water
2. Alexis Morgan, WRF Water Risk Filter Report (2018)
3. Hoekstra, M. Mekonnen, 'Four Billion People Facing Severe Water Scarcity', SCIENCE ADVANCES. (2016)
4. https://www.publicationsdivision.nic.in/journals/
5. Chandran, R. 'As Water Shortages Grow, 'Day Zero' Becomes Every Day in India', Reuters. (2018).
6. https://www.reuters.com/article/us-india-water-politics/as-water-shortages-grow-day-zero-becomes-everyday-in-india-idUSKBN1HW1P2
7. Water Footprint Network Report. (2010) retrieved from: https://waterfootprint.org/en/water-footprint/product-water-footprint/water-footprint-crop-and-animal-products/
8. https://waterriskfilter.org/explore/waterriskreports
9. https://data.worldbank.org/indicator/SP.RUR.TOTL.ZS?locations=IN
10. https://in.one.un.org/page/sustainable-development-goals/clean-water-sanitation-sdg-6/
11. Yojana Magazine December 2021 p.23 https://jaljeevanmission.gov.in/publication-report
12. https://jalshakti-ddws.gov.in/sites/default/files/Annual-report-2020-2021-hindi.pdf
13. https://ejalshakti.gov.in/jjmreport/JJMIndia.aspx
14. Ibid.
15. Ibid.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

जनजातियों की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में कणी कंसरी की कार्यात्मक भूमिका

❑ डॉ.अरुण पंडया
❖ सुमीर गामीत

सूचक शब्दः आदिवासी, सांस्कृतिक तत्व, कणी कंसरी, सांस्कृतिक परिसर, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक संरचना।

संस्कृति की अपनी संरचना होती है, जैसे शरीर संरचना की सबसे छोटी इकाई कोशिका होती है। उसी प्रकार संस्कृति की संरचना में सबसे छोटी इकाई को सांस्कृतिक तत्व कहा जाता है। आदिवासी समुदाय कणी कंसरी देवी को अनाज की दैवीय शक्ति मानते हैं। न केवल अन्न की बल्कि कणी कंसरी एक सांस्कृतिक तत्व के रूप में अन्य तत्वों, इकाइयों, भागों के साथ मिलकर छोटे सांस्कृतिक परिसरों का निर्माण करती है। कणी कंसरी इकाइयों के साथ सांस्कृतिक तत्व के रूप में सांस्कृतिक संरचना में एक कार्यात्मक भूमिका निभाती है। इस प्रपत्र में दक्षिण गुजरात के तापी जिले के आदिवासिओं की सांस्कृतिक संरचना को समझने का प्रयास किया गया है। यह लेख मेलिनोवस्की और रैडक्लिफ ब्राउन के संरचनात्मक और कार्यात्मक दृष्टिकोण को संदर्भित करने का प्रयास करता है। प्रस्तुत लेख में, तीन इकाइयों कृषि, गृह एवं गांव को सांस्कृतिक परिसरों के रूप में वर्णित किया गया है। इन तीन सांस्कृतिक परिसरों के विभिन्न तत्वों के साथ ही साथ इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया गया है कि कणी कंसरी की सांस्कृतिक संरचना मे क्या भूमिका है ? सभी तत्व मिलकर सांस्कृतिक संरचना कैसें बनाते हैं? सांस्कृतिक संरचना में विभिन्न तत्वों की क्या भूमिका है? जो समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिन्हें समझने का प्रयास किया गया है।

सांस्कृतिक विविधता की विरासत से समृद्ध भारत देश में भौगोलिक स्थित एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न पाई जाती हैं। भिन्न भिन्न क्षेत्र में भाषा-बोली, तौर-तरीकों, पहनावें, रहन-सहन, रूप-रंग आदि क्षेत्र में विविधता पाई जाती है। औद्योगीकरण के कारण गुजरात को एक आधुनिक और विकसित राज्य माना जाता है। दक्षिण गुजरात में भरूच, नर्मदा, सुरत, वलसाड, नवसारी, डांग और तापी जिलों का समावेश होता हैं। इस क्षेत्र के पश्चिम की ओर समुद्र तट के किनारे बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास हुआ है, जिसके कारण आधुनिक शहरों का उद्भव हुआ है। शहर में रहने वाले लोग तर्क और विज्ञान के पैमाने से किसी भी चीज, विषय, विचार का अनुसरण करते हैं। दूसरी ओर उसी क्षेत्र के पूर्व मे, विपरीत परिस्थिति देखने को मिलती है, जहाँ बड़े-बड़े पहाड़, जंगल हैं। इस क्षेत्र में आदिवासी समुदाय वर्षों से अपना जीवनयापन करता आ रहा है। यहाँ उद्योग, नई तकनीकी या विज्ञान का विकास नहीं हुआ है, जिसके कारण प्राथमिक स्तर पर पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्य, रीति-रिवाज, विभिन्न प्रणालियाँ भी पाई जाती हैं और आज भी यहाँ आदिम संस्कृति की विशेषताएं और लाक्षणिकताएं देखी जा सकती हैं।

गुजरात के दक्षिण भाग में मुख्य रूप से धोडिया, चौधरी, गामीत, कुंकणा, वारली, हलपति, वसावा, भील, काथोडी, कोटवालिया, कोलघा जैसी जनजातियाँ रहती हैं। प्रत्येक समुदाय के अपने निवास क्षेत्र, भाषा-बोली, तौर-तरीकों, भोजन, पहनावें आदि भिन्न हैं, फिर भी कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों, रीति-रिवाजों, प्रथाओं में समानताएं देखने को मिलती हैं जैसे कि, जनजातियाँ साल के विभिन्न मौसमों के अनुसार विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रवृतियां करते हैं। इस क्षेत्र की अधिकांश जनजातियां मानसून आधारित खेती-बाड़ी का काम करती हैं। इसी समय में अधिकांश आर्थिक गतिविधियाँ भी शुरू हो जाती हैं।

प्रस्तुत प्रपत्र में तापी जिले में रहने वाले आदिवासी समुदाय के संदर्भ में कणी कंसरी देवी की एक सांस्कृतिक तत्व के रूप में महत्व को सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से गामित,

❑ सह प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात यूनिवर्सिटी, सूरत (गुजरात)
❖ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात यूनिवर्सिटी, सूरत (गुजरात)

चौधरी, ढोडिया, वसावा, हलपति आदि प्रमुख जनजातियों की जनसंख्या अधिक है। कोंकणी, कथोडी, कोटवालिया जनजातियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। आदिवासी समुदाय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में संस्कृति और उसके तत्व बिंदु के रूप में कणी कंसरी देवी का क्या महत्व है और उसका स्वरूप क्या है? सांस्कृतिक संरचना के विभिन्न वर्गों द्वारा किस प्रकार की कार्यात्मक भूमिका निभाई जाती है? संस्कृति कैसे बनती है? यह कैसे बदलती है? यह हमेशा अध्ययन और रुचि का विषय रहा है। प्रत्येक व्यक्ति उस समाज की संस्कृति में समाजीकृत होता है जिसमें वह रहता है और समाज में रहते हुए अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाएं और व्यवहार करता है।

टायलर[1] संस्कृति को सीखे हुए व्यवहार की समग्रता मानते हैं। संस्कृति शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि संस्कृति एक जटिल संपूर्णता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचरण, कानून, प्रथाएं तथा इसी प्रकार की अन्य क्षमताएं और मानवीय आदतें सम्मिलित हैं जिससे मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अपनी एक स्थिति प्राप्त करता है।

मेलिनोवस्की[2] संस्कृति के निर्माण के लिए आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं का वर्णन करते हैं। वह आगे कहते हैं कि आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ती सात प्रकार से होती हैं। जैसे पोषण के लिए भोजन, जैविक जरूरतों के लिए प्रजनन, सुरक्षा के लिए घर, विकास के लिए प्रशिक्षण, स्वास्थ्य के लिए अस्पताल और मन की शांति के लिए धर्म और जादू।

लिंटन[3] ने एक समाज की संस्कृति को अपने सदस्यों के जीवन जीने का तरीका के रूप में परिभाषित किया, उनके अनुसार संस्कृति विचारों और आदतों का संग्रह है जिसे वे सीखते हैं, साझा करते हैं और पीढ़ी से पीढ़ी तक प्रसारित करते हैं।

लिंटन[4] संस्कृति की पृष्ठ भूमि को समझाते हुए कहते हैं कि संस्कृति में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सीखे गए व्यवहारों का हस्तांतरण होता रहता है जो मनुष्य प्रजाति को उसके अस्तित्व के संघर्ष में महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करता है जो उनके लिए व्यवहारों की तरह की श्रुंखला के हस्तांतरण में संभव हो सका है।

लिंटन के इस विश्लेषण को हर्षकोविट्ज[5] ने अलग प्रकार से दर्शाने का प्रयत्न किया है इनके अनुसार संस्कृति मनुष्य द्वारा निर्मित पर्यावरण का भाग स्वरूप है इसकी वास्तविकता इससे दिखाई है की मनुष्य जीवन द्वैतियिकता पर आधारित है जिसमें प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण दोनों सम्मिलित होते है।

क्लुखोन[6] ने संस्कृति को एक विशेष समाज के सदस्यों द्वारा आयोजित जीने के लिए प्रारूप के रूप में वर्णित किया हैं। **क्रोएबर एंड क्लखोन**[7] कहते हैं कि संस्कृति अनुभव के आधार पर आकार लेती है जो अधिकतर संगठित, सीखे हुए अथवा एक समुदाय के लोगों द्वारा निर्मित होती है जिसमें वे तमाम छाप अथवा सांकेतिक शब्दों का बदलना तथा उनकी व्याख्याएं सम्मिलित होती है।

पिडिंगटन[8] संस्कृति को भौतिक तथा बौद्धिक वस्तुओं अथवा उपकरणों के एक पूर्ण संयोजन के रूप में वर्णित करते हैं जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी जैविक, सामाजिक और आर्थिक जरूरतों को पूरा करने तथा अपने स्वयं के स्वभाव का अनुकूलन करने का प्रयास करता है। उन्होने संस्कृति को दो भागो में समझाया है, पहले भाग में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न उपकरणों, औजारों, बर्तनों, वस्त्रों, भवनों, मंदिरों, मूर्तियों आदि को भौतिक वस्तुओं में सम्मिलित किया है जबकि दूसरे भाग में ज्ञान, विश्वास, मूल्यों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों आदि को अभौतिक या अमूर्त घटनाओ में सम्मिलित किया है।

हर्षकोविट्ज ने संस्कृति का विश्लेषण करते हुए कहा है कि संस्कृति की संरचना एक नहीं बल्कि विभिन्न घटक तत्वों से बनी है। ये भाग सबसे छोटे तत्व से लेकर सबसे बड़े तत्व तक होते हैं। ये विभिन्न भाग एक दूसरे के साथ पारस्परिक संबंध से एक संरचना का निर्माण करते हैं। उन्होंने आगे संस्कृति के घटकों के प्रकारों की चर्चा की है। संस्कृति की सबसे छोटी इकाई को उन्होने सांस्कृतिक तत्व के रूप में पहचान की जिसमें कई छोटे तत्व मिलकर सांस्कृतिक संकुल बनाते हैं और सारे सांस्कृतिक संकुल मिलकर सांस्कृतिक प्रतिमान बनाते हैं और तीनों विभाग मिलकर सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण करते हैं। ये चारों घटक संयुक्त रूप से संस्कृति की संरचना का निर्माण करते हैं। संक्षेप में, संस्कृति उन सभी को समाहित करती है, जो मनुष्य जीवन के अंत तक सीखते हैं। इस प्रकार से संस्कृति की विभिन्न इकाइयों, भागों या तत्वों को भाषा-बोली, रहन-सहन, भोजन, धर्म-संस्कार, अनुष्ठान, त्योहार, पोशाक, घर, कला जैसी भौतिक और अभौतिक आवश्यकताओं

से ही सांस्कृतिक संरचनातंत्र विकसित हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है।

संस्कृति की अवधारणा की संक्षिप्त चर्चा के बाद, कणी कंसरी को तत्व बिंदु के रूप में समझना आवश्यक हो जाता है। वैयक्तिक अध्ययन और सहभागी अवलोकन पद्धति के द्वारा प्राथमिक सूचनाओं और विभिन्न लिखित साहित्य से द्वितीयक सूचनाओं के आधार पर, यह पाया गया कि तापी जिले सहित समग्र दक्षिण गुजरात की सभी जनजातिओ में अनाज को कणी कंसरी देवी कहते हैं। गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भाषा-बोली और क्षेत्र के अनुसार अनाज की देवी कणी कंसरी को अलग अलग नाम से जैसे कन्नाळी, कन्हेरी, कणेश्वरी, कंसुरी, कंसारी, याहमोगी, पांडोर, देवमोगरा, कणसरी, कनसेरी आदि से पहचाना जाता है। शाह[9] ने सूरत के चौधरी के अध्ययन में अन्न की देवी का उल्लेख कंसारी, शाह[10] ने आदिवासी समुदाय के बदलते हुए पासाओ के अध्ययन में गामित जनजाति में कंसेरी, पंडया[11] ने धरमपुर में वारली जनजाति के अध्ययन में कनसरी, पटेल[12] ने दादरनगर हवेली, उमरगाम क्षेत्र के ढोडिया जनजाति के अध्ययन में कन्हेरी, गामीत[13] ने सूरत और तापी जिले के गामीत जनजाति के अध्ययन में कंसेरी, आचार्य[14] ने धरमपुर की जनजातियों की अन्न देवी को कंसेरी के रूप में, चौधरी[15] ने वांसदा की कोलघा समुदाय के अध्ययन में कनसेरी का उल्लेख किया है। इस प्रकार दक्षिण गुजरात में विभिन्न भाषाओं और बोलियों के उच्चारण के कारण विभिन्नता दिखाई देती है। आदिवासी समाज में कणी कंसरी के नाम से अनाज को दैवीय शक्ति प्राप्त हैं, इसलिए अनाज के साथ इस समाज के लोगो में बहुत ही पवित्र आस्था जुड़ी हुई है जिस से यह देवी कई तरह के अनुष्ठानों और विधिविधानों से जुड़ी हुई है।

कणी कंसरी एक तत्व के रूप में अन्य इकाइयों के साथ मिलकर छोटे संकुल का निर्माण करती है जैसे कि खेत, घर और गांव तीनों को मिलाकर सांस्कृतिक संकुल के रूप में परिभाषित किया गया है। इन तीन सांस्कृतिक परिसरों में विभिन्न इकाइयाँ कणी कंसरी के लिए अपना काम करती हैं। जिस प्रकार धान की उत्पति के लिए भूमि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इसे उगाने के लिए वर्षा, वायु, प्रकाश और सही मात्रा में समय की भी आवश्यकता होती है। इन प्राकृतिक कारकों को सांस्कृतिक तत्व कहा जाता है और इन्हें दैवीय तत्व के रूप में माना जाता है। कृषि परिसर के भीतर, इस प्रकृति के विभिन्न भाग कणी कंसरी के पोषण करने वालें तत्वों के रूप में कार्य करते हैं। कणी कंसरी, प्राकृतिक अंगों, खेतीबाड़ी के देखभाल करने वाले देवी देवताओं और खेती में उपयोग किए जाने वाले विभिन्न उपकरणों को उप-सांस्कृतिक परिसरों (इकाइयों) के रूप में उल्लेखित किया गया है। इन तीनों उप-परिसरों में छोटे-छोटे सांस्कृतिक तत्व होते हैं, जिनसे मानव व्यवहार की क्रियाएँ जुड़ी होती हैं। कृषि में अनाज उत्पादन प्राप्त करने के लिए भूमि को संवारना, जुताई करना, बुवाई करना, कचरे की निराई करना, फसल की कटाई करना, फसल को खलिहान में दावना, खेती से जुड़े देवताओं की पूजा करना आदि गतिविधियाँ कृषि परिसर से जुड़ी मानव क्रियाएं हैं। इसी प्रकार जब अनाज को खेतों से घर में लाया जाता है तो गृह परिसर की विभिन्न इकाइयों के साथ क्रियात्मक संबंध होता है। जबकि, ग्राम व्यवस्था को चलाने के लिए गांव के मुखिया, कारभारी, मजदूर, पुजारी, दाइयों, ग्राम चरवाहों आदि को गांव में विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जाता है। वे गाँव की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना बनाए रखने लिए अपना उत्तरदायित्व निभाते हैं। देवी-देवता साल के मौसम के अनुसार गाँव की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसी भावना के साथ गाँव पंच के माध्यम से सामूहिक पूजा और देवताओं का उत्सव भी मनाया जाता हैं, जिसे सांस्कृतिक तत्व के नाम से उल्लेखित किया गया है।

पद्धति शास्त्र : इस प्रपत्र को मेलिनोवस्की और रैडक्लिफ ब्राउन के संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया गया है। मेलिनोवस्की के अनुसार, सांस्कृतिक तत्व से व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। जब ब्राउन समाज को सर्वोपरि मानते हैं, तो यह तत्व एक साथ काम करता है। समाज का अस्तित्व उस कार्य से संभव होता है जो सांस्कृतिक तत्व करता है। उन्होंने सांस्कृतिक संगठन की तुलना जैविक एकीकरण से की हैं। दोनों के बीच विचारों में थोड़ा अंतर है, ब्राउन के सामाजिक संरचना में विभिन्न भागों, इकाइयों के कार्य भिन्न होते हैं जिनसे व्यवस्था बनी रहती है जबकि मेलोनिविस्की उल्लेख करते हैं कि सांस्कृतिक तत्व व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करता है, ये आवश्यकता ही समाज को एकीकृत करके संगठन बनाती है।

प्रस्तुत लेख में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति से विभिन्न व्यक्तियों से अन्वेषण पद्धति के माध्यम से सांस्कृतिक

परंपरा की सूचना प्राप्त की गयी है। इसके अलावा, प्राथमिक सूचना स्रोत का उपयोग किया गया है। क्षेत्र में कई अवसरों पर सहभागी अवलोकन के माध्यम से भी सूचनाएं एकत्रित की गई हैं। द्वितीयक सूचनाओं का उपयोग विभिन्न संदर्भ ग्रंथ, लेख, सोशल मीडिया से प्रसारित सूचनाओं के माध्यम से एकत्रित करके तापी जिला के आदिवासिओं की सांस्कृतिक संरचना को समझने का प्रयास किया गया है। सांस्कृतिक संरचना के भाग के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, विभिन्न सांस्कृतिक विरासत की विभिन्न इकाइयों को भी सम्मिलित किया गया हैं। लेख में कृषि, गृह और ग्राम इन तीन परिसरों की संरचना में विभिन्न तत्वों, इकाइयों के साथ कणी कंसरी तत्व के संयोजन के कार्यात्मक-संरचनात्मक संबंध का उल्लेख किया गया है।

कृषि परिसर और कणी कंसरी : आदिवासी वर्षों से मानसून आधारित खेतीबाड़ी करते आ रहे हैं। मानसून के समय में खेंतों में सबसे ज्यादा भिन्न भिन्न प्रकार के क्रिया-कलाप दिखाई देते हैं। कृषि खाद्यान्न का एकमात्र प्रमुख स्रोत है, इसलिए अनाज को कणी-कंसरी देवी के नाम से जाना जाता है। अनाज को एक भौतिक पदार्थ नही बल्कि, दैवीय शक्ति की मान्यता प्राप्त है। इसलिए अनाज के साथ जनजातियों की भावनाएं आध्यात्मिक रूप से जुड़ी हुई हैं। खेती कोई जमीन का टुकड़ा नहीं है, बल्कि कणी कंसरी देवी को प्राप्त करने का एक पवित्र माध्यम माना जाता है। धार्मिक संरचना में एक तत्व के रूप में कणी कंसरी (अनाज) का मुख्य कार्य मनुष्य को जीवित रखने के लिए भोजन की आपूर्ति करना है। इस संरचना में वर्षा, वायु, प्रकाश, आकाश, भूमि तथा बैल जैसे प्राकृतिक संसाधन एवं हल, बैलगाडी जैसे विभिन्न उपकरण, खेत देवता, होत्री देवता, खलीहान देवता तथा पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि तत्व मिलकर एक कृषि परिसर बनाते हैं।

इसी समय ज्येष्ठ (जून) के महीने में मनाये जाने वाले त्यौहार के दौरान लोग देव पूजन कार्य हेतु इकत्र होते हैं। अपने खेतों के कार्य हेतु मजदूर लाने पड़ते हैं। देव की उपस्थिति में ही मजदूरी की विभिन्न दरें ग्राम पंच द्वारा तय की जाती हैं। इस प्रकार, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ खेती की आर्थिक गतिविधिओं से जुड़ी होती हैं। अखातीज़, गुडी पडवा जैसे त्योहारों पर नए साल की खेती शुरू करते हैं। अतः इस दिनों देवताओं का कृषि अनुष्ठान करके नए साल की अच्छी फसल के उपज के लिए प्रार्थना की जाती हैं जिसमें मानसून के प्रथम बारिश से धरती पर उगने वाली हरी घास को नंदुरो देव का त्यौहार मनाकर प्रकृति का ऋण अदा करना, जंगल में हिंसक प्राणिओं और जहरीले जीवों से अपने जानवरों की रक्षा लिए वाघदेव, गांव की सीमाओं की रक्षा के लिए सीमदेम, धान की अच्छी उपज के लिए कणी कंसरी देवी आदि देवी-देवताओं की पूजा करने के विधि-विधान कृषि परिसर और कणी कंसरी से संलग्न हैं।

देवी-देवताओं के पूजन और त्यौहार मनाने के तौर तरीकों में दक्षिण गुजरात के सभी आदिवासी समुदाय में लगभग समानताएं देखी जा सकती हैं। इसके अलावा, मनुष्य के सामाजिक जीवनचक्र तथा गाँव की सामाजिक संरचना के प्रबंधन विभिन्न सामाजिक गतिविधियों की जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु पुरुष और महिलाओं को विभिन्न पदों पर स्थापित किया जाता है। गाँव का मुखिया गाँव में सर्वोच्च स्थान रखता है। कारभारी (प्रबंधक) गाँव के विभिन्न कार्यों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। धार्मिक अनुष्ठान व विभिन्न देवताओं की पूजा करने की जिम्मेदारी ग्राम पुजारी पर होती है । यदि हम यहां प्रत्येक तत्व के कार्य को देखें, तो काल्यो मेघ (वर्षा के देवता) का मुख्य कार्य वर्षा प्रदान करना, जीववारो (पवन या हवा के देवता) मानसून को बादलों के रूपमें परिचालित करके दुनिया में जहाँ पानी की आवश्यकता होती है वहां वर्षा के रूप में पानी पहुँचा कर कणी कंसरी सहित जीव सृष्टि का पालन-पोषण करके उसे जीवित रखने का कार्य करते है। जोसी देव-हुरिज देव (चंद्र और सूर्य देवता) का मुख्य कार्य समय समय पर उचित प्रकाश प्रदान कर के कणी कंसरी के आवश्यक पोषक तत्व को पूरा करना है। कृषि भूमि को जोतने, खेती करने से या अन्य कोई खेती संबंधित प्रवृति करने से पूर्व कणी कंसरी देवी का पालन पोषण करने वाली भोरीदरती (विविध तत्व से भरपूर धरती) पर विधि-विधान के साथ पूजा कर उसे नमन किया जाता हैं। भोरीदरती (विविध तत्व से भरपूर धरती) का मुख्य कार्य अनाज उगाने के साथ प्राणियों के अस्तित्व को बनाए रखना है। खेती के लिए प्रयोग किया जाने वाला हल और उसे खींचने के लिए बैल भी पूजनीय हैं। यहाँ हल और बैलों की सांस्कृतिक तत्व के रूप में पहचान की जा सकती है क्योंकि कृषि कार्य में उसका महत्वपूर्णं योगदान है। खेत में बुवाई के बाद उसे जीवित रखने के लिए वर्षा, हवा व

प्रकाश–आकाश की आवश्यकता होती है, तभी फसल की उपज पर्याप्त और उचित अनुपात में होती है। कृषि में बीजों के उचित अंकुरण के लिए पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन होना आवश्यक है। मानव सहित कणी कंसरी को जीवित रखने के लिए पृथ्वी, वर्षा, वायु, सूर्य प्रकाश, उपयुक्त समयावधि प्राकृतिक तत्वों अर्थात सभी सजीव और निर्जीव तत्वों की पूजा की जाती है। संक्षेप में, वायु, जल, प्रकाश, आकाश और पृथ्वी को प्राकृतिक तत्व माना जाता है, जिनकी देव पूजा उन्हें इष्ट देव की मान्यता प्रदान करता है। इन देवताओं को जेठ महीने में मनाया जाने वाले जेठो देव के त्योहार में कणी कंसरी के पालन पोषण करने की जिमेंवारी सौंपी जाती हैं। बीज बोने से लेकर पूरा अनाज तैयार होने तक खेतों में विभिन्न अनुष्ठान संपादित किये जाते हैं। बीज बोने के बाद फसल की अच्छी उपज के लिए खेतवाल देव को स्थापित किया जाता है। खेतवाल देव का मुख्य कार्य कीटों, चोरों, बुरी नजर, जंगली प्राणीयों आदि से बचाकर कृषि की रक्षा करना है। कृषि में हल और बैलों को जोता जाता है, गाड़ियाँ माल वहन का साधन हैं। खलिहान का उपयोग फसल को दावने के स्थान के रूप में किया जाता है। फसल की रक्षा के लिए विभिन्न अवसरों पर पूजा की जाती है। खेतवाल देवता की पूजा सबसे पहले बुवाई, निराई और कटाई के समय की जाती है। जब तैयार फसल को खेत से एक स्थान पर एकत्र किया जाता है उसे स्थानिक बोली में उडवो कहा जाता है, इसके आसपास की भूमि को साफ कर खलिहान बना दिया जाता है जिसे गाय और बैल के गोबर को मिलाकर लिपाई कर दी जाती है। खलीहान की सफाई करके एकत्रित मिट्टी का टीला बनाकर उस पर तीन छोटे पत्थर या गोबर की मूणत बनाकर खेतवाल या होत्री नामक देवता की स्थापना की जाती है। ऐसी भी मान्यता है कि खलिहान देवता अनाज (कणी कंसरी) को बरकत देता है। खलिहान में अनाज की सफाई के लिए बेहती हवा से उडाते समय हवा आना बंद हो जाय तो पवन देवता की पूजा की जाती है। वर्ष के अंतिम दिन, खलीहान की, खेती से जुड़े सभी देवताओं की पूजा के अवसर को खोलपूंजो एक अनुष्ठान है जिसे इस भावना के साथ संपादित किया जाता है कि देवी ने वर्ष के सारे महीनों रक्षा व तपस्या करके कणी कंसरी को सहयोग दिया है। इस दिन यह भी माना जाता है कि अनाज की देवी खलिहान में अधिक अन्न की बरकत (आशीर्वाद) देती है। कृषि परिसर से जुड़े देवताओं के रूप में प्रकृति के तत्व, खेत की देखभाल करने वाले देवता और खेत से खाद्य उपज प्राप्त करने के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरण सांस्कृतिक तत्व माने जा सकते हैं। इस तत्व को देवता मानकर उनके ऋणों को चुकाने के लिए खोल पूजन अनुष्ठान का कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। इस मौके पर पूजा विधि–विधान का सारा काम गाँव के पुजारी करते हैं। इस अवसर पर गाँव के लोग अपने रिश्तेदारों को आमंत्रित करते हैं और वे भी इस समारोह में भाग लेते हैं तथा उपस्थित लोगों के लिए सामूहिक भंडारे (भोज) का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक तत्व एक कार्यात्मक भूमिका के रूप में कणी कंसरी से जुड़े हुए हैं, इसलिए उन्हें देवताओं के रूप में पूजा जाता है। इनमें से प्रत्येक तत्व, उपकरण, देवी–देवताओं की अलग–अलग भूमिकाएँ होते हुए भी वे एक दूसरे के साथ संलग्न हैं जिससे कृषि एक सांस्कृतिक परिसर का कार्य करते हैं।

वर्तमान में कृषिक्षेत्र में सिंचाई के आधुनिक तरीकों के प्रयोग से मानसून आधारित खेती और इसके साथ जुड़े हुए सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। अधिक उपज एवं पौधों की सुचारू वृद्धि के लिए संकर बीज विकसित किए गए। फसल में कीटों को नियंत्रित करने के लिए कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है, फसल की कटाई के बाद अनाज को खलिहान में बैल जोत कर फसल के उपर घुमाना, हल से जुताई और बैलगाड़ियों की जगह वाहन के रूप में ट्रेकटर का उपयोग किया जा रहा है। इस प्रकार कृषि में नए उपकरण तथा खेती की वैज्ञानिक पद्धति की मदद से कृषि अधिक पैसा कमाने का साधन बन गई हैं। पारंपरिक खेती में परिवर्तन के साथ मूल्यों, प्रथाओं, पारंपरिक उपकरणों धार्मिकता से जुड़े कई तत्व बदल रहे हैं। दूसरी ओर, कृषि संबंधित बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास हुआ है जिससे कृषि आधारित कारखाने रोजगार के बड़े स्त्रोत बन गए है। कृषक मानसून आधारित खेती के बजाय नहरों, कुओं, बोरवेल, नदियों आदि के पानी का उपयोग करके साल भर कई फसल उगा रहे है। मौसम विभाग की तत्परता से सेटेलाइट के उपयोग से मौसम सम्बन्धी अनेक भविष्यवाणी की जाती है। साथ ही साथ मोबाइल एप के माध्यम से खेती संबंधित अनेक जानकारियाँ उपलब्ध कराई जाती हैं, इन सभी ने कृषि क्षेत्र में क्रांति ला दी है, आदिवासी समाज आज के वैश्वीकरण युग में इसका अपवाद नहीं है वह स्थानीय परिवेश से निकल कर वैश्विक हो रहा है।

घर परिसर और कणी कंसरी : आदिवासी समाज में मान्यता है की बारह महीने के कठोर परिश्रम के बाद इस वर्ष पहली बार कणी कंसरी देवी का गृह प्रवेश हो रहा है, इसलिए इनका स्वागत श्रद्धापूर्वक होना चाहिए। जिस तरह खेती के परिसर के साथ जुड़े विभिन्न तत्वों के कार्य अलग-अलग होते हुए भी परस्पर एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं अथवा एक दूसरे पर निर्भर होकर कृषि परिसर का निर्माण करते हैं उसी प्रकार एक घर के परिसर से जुड़े सभी तत्वों का एक दूसरे के साथ कार्यात्मक संबंध होते हैं। घर के अंदर अनाज रखने से पहले, घर के दरवाजे की (बांखुडी) की पूजा की जाती है और उसके बाद ही घर के अंदर अनाज को लेकर प्रवेश किया जाता है। बांखुडी द्वारपाल की जिम्मेदारी निभाता है। अनाज बोदळी (अनाज संग्रह के लिए मिट्टी तथा बाँस से बनी कोठी) में रखने से पहले इस देवी की पूजा की जाती है। मान्यता यह है की इस बोदळी में (कोठी) देवी निवास करती हैं तथा उसका कार्य अनाज को अपने अंदर सुरक्षित रखना है। अन्न चूल्हे पर पकता है इसलिए चूल्हे को भी दैवीय शक्ति कि मान्यता प्राप्त है। नए उपज का भोजन के रूप में प्रयोग करने से पहले तथा ऐसे ही अवसरों पर पूवर्जो की चूल्हे के पास ही विधि विधान संपन्न की जाती है। साथ ही साथ मानसून में जंगल में उगने वाली सब्जियों को भी पूर्वजों को पहले चढ़ाकर ही भोजन के रूप में उन्हें खाया जाता है। बर्तनों का उपयोग भोजन बनाने और परोसने में किया जाता है। अनाज को साफ करने के लिए सूंपडा (सूप) का उपयोग किया जाता है और साफ किया हुआ अनाज को रखने के लिए बांस की टोकरियों का उपयोग किया जाता है। सूंपडा का उपयोग अनाज की सफाई से संबंधित है इसलिए इसका उपयोग जीवन के विभिन्न अवसरों पर दिखाई देता है उदाहरणार्थ विवाह के अवसर पर दुल्हन की सजावट हेतु सामग्रियों को सुपड़ें में देने की प्रथा प्रचलित है। ऐसे ही अनाज पीसने के लिए हाथ से संचालित चक्की पवित्र मानी जाती है क्योंकि चावल सहित अन्य अनाजों को पीसने के लिए उपयोग की जाती है। खल और सांबेला को भी पवित्र माना जाता है इसलिए विवाह के अवसर पर खल और सांबेला पास विवाह की रस्म अदा की जाती है। घर के अंदर पशुओं को रहने के लिए बनाया गया स्थान भी पवित्र माना जाता है। इस गृह परिसर के अंदर बांखुडी, कोठी, खल-सांबेलु, चक्की, सूपड्डु, टोकरी, बर्तन, चूल्हा, पनियारू, घर का आंगन, झाडू, हिको आदि तत्व रूप में जुड़े हुए हैं। इन सभी तत्वों का अपना-अपना कार्य होता है जो कणी कंसरी के साथ मिलकर घर का संकुल बनाते है। पूरे घर को इस भावना से पवित्र माना जाता है कि कणी कंसरी, देवी के रूप में आयी है और अब कई महीनों तक साथ में ही रहेगी। इसलिए घर को 'आहवागोळ' (एक पवित्र स्थल) के नाम से जाना जाता है।

वर्तमान में घर के अंदर अनाज के भंडारण के लिए मिट्टी के बर्तनों के बजाय ऐल्युमिनीयम, लौह अथवा प्लास्टिक की कोठी का उपयोग किया जाता है। अन्न की दवांई के लिए थ्रेसर फ्लोर का उपयोग होता है। रसोई तैयार करने के लिए मिटटी के चूल्हे के स्थान पर गैस स्टोव का उपयोग करने से पारंपरिक मिट्टी के चुल्हे विलुप्त होते जा रहे हैं। पीढ़ियों से जीवन की आवश्यकताओं हेतु मिट्टी, लकड़ी या पत्थर से बनी वस्तुओं के स्थान पर प्लास्टिक, लौह, ऐल्युमिनीयम आदि आधुनिक धातुओं का उपयोग किया जाने लगा है। कदाचित इसी कारण पारंपरिक तत्व से जुड़े सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। कृषि के व्यापारीकरण से पहले अनाजों को बेचने की परम्परा नहीं थी क्योंकि इसके साथ आस्था जुड़ी हुई थी तथा अन्न का गृह के अन्दर निवास होना आदिवासी मान्यताओं के अनुरूप आवश्यक माना जाता था क्योंकि उनकी घर में उपस्थिति से सुख-समृद्धि बनी रहेगी। वर्तमान में कृषि का व्यापारीकरण और मशीनों के उपयोग से अनाजों को सीधे बाजार में बेचा जाने लगा है। इस प्रक्रिया के कारण कणी कंसरी देवी का घर एवं परिवार के साथ जुड़े हुए आस्थाओं को दुर्बल होते हुए देखा जा सकता है।

ग्राम परिसर और कणी कंसरी : ग्राम मानव समाज के निवास की एक लघुत्तम इकाई है। गाँव के लोग परस्पर भाईचारे, सहयोग और सह-अस्तित्व की भावना से रहते हैं। इसके कारण सामूहिक और सांस्कृतिक मूल्यों का चलन दिखाई देता है। जिस प्रकार मानव का कृषि की विभिन्न इकाइयों और घरेलू परिसरों के साथ कणी कंसरी का एक कार्यात्मक संबंध रहता है, उसी प्रकार से ग्राम परिसर के विभिन्न इकाइयों के साथ कार्यात्मक संबंध दिखाई देता है। कृषि और घर के परिसरों के साथ मानव के व्यक्तिगत व्यवहार को विकसित होते देखा गया है। परन्तु ग्राम परिसर के साथ मानव व्यवहारों को सामूहिक गतिविधियों के रूप में देखा जा सकता है।

ग्राम इकाई में व्यवस्था के लिए विभिन्न जिम्मेदारियों को निभाने के लिए नियुक्तियां की जाती हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परिसर अथवा संगठन के प्रति अपनी अपनी भूमिका निभाते है और संकुल बनाते हैं जिसमे जीवनचक्र के विभिन्न अवसरों से संबंधित विधि विधान और अनुष्ठानों में, कृषि संबंधित कार्यो में तथा देवी-देवताकी पूजन की गतिविधियों इत्यादि में करना है। इस प्रकार ग्राम प्रबंधन हेतु नियुक्त व्यक्तिओं के कार्य, पंच प्रथा द्वारा की जाने वाली व्यक्तिगत तथा सामूहिक गतिविधियाँ तथा इसी प्रकार की अन्य गतिविधियों के द्वारा ग्राम परिसर का निर्माण होता हैं। कणी कंसरी गाँव के हर कृषक के घर में स्थापित होती है इसलिए उन्हें किसी एक परिवार का नहीं अपितु पूरे ग्राम की देवी माना जाता है। गांव का प्रत्येक कृषक वर्ष की पहली उपज गाँव के की पांडोर माता देवी को अर्पित करता है और निर्धारित दिवस पर पूरे गाँव के लोग सामूहिक रूप से कणी कंसरी देवी का त्योहार मनाते हैं। इस प्रकार कणी कंसरी का कृषि, गृह और ग्राम परिसरों की विभिन्न इकाइयों से कार्यात्मक सम्बन्ध दिखाई देता है। इन तीनों परिसरों में मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न भागों, तत्वों और इकाइयों का उपयोग करता रहता है। ये विभिन्न इकाइयाँ विभिन्न मानवीय गतिविधियों से संलग्न हैं चाहे वह गतिविधियाँ सामाजिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक ही क्यों न हों। अर्थात यह सभी गतिविधियाँ जो विभिन्न परिसरों अथवा उप-परिसरों में संपादित की जाती हैं वे सभी मिलकर एक सांस्कृतिक संरचना का निर्माण करती हैं।

ग्राम देवताओं के साथ कणी कंसरी देवी का कार्यात्मक संबंध खेतों में फसल के रूप में लहेरती हुई फसल, खलिहान में कुंभ के रूप में ढेर, घर में बोदळी (कोठी) मे संग्रह किया हुआ अनाज तथा ग्राम स्तर पर पांडोर माता को कणी कंसरी का रूप माना जाता है। इसलिए, गाँव के लोग कृषि में पहली फसल गाँव की कुल देवी पांडोर माता को अर्पित करते हैं जिसको गाँव की सीमा पर जो वृक्ष होते है के उसके नीचे स्थापित किया जाता है। **कणी** कंसरी(पांडोर माता) के साथ गाँव के अन्य देवी-देवता जैसे की सिमदेव, नंदुरोदेव, वाघदेव, काकोहेडो-जिजिहेडो, राजा-वडवो, जेठोदेव, काल्योभूत, गावमेंड्यो, होली, दिवाली, हिंवपाटली आदि की विभिन्न कार्यों और उद्देश्यों के लिए पूजा की जाती हैं। इस प्रकार आदिवासी ग्राम में सभी देवता समाज व्यवस्था के रूप में परस्पर जुड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त कई देवी-देवताओं को विभिन्न कार्य हेतु पूरे वर्ष समय समय पर पूजा जाता है। ग्राम देवताओं को सांस्कृतिक तत्व के रूप में देखें तो गाँव की सीमा में स्थापित माता कणी कंसरी का ही रूप है। ये सभी देवी-देवता गाँव के सुख, समृद्धि और कल्याण के लिए कार्य करते हैं और इनसे झुड़े हुए विधि-विधानों को संपन्न करने में जो सामूहिकता दिखाई देती है इससे ग्राम परिसर का निर्माण होता हैं। इस संदर्भ में लोककथा है कि जब मनुष्य धरती पर आकर पहले ग्राम की स्थापना की तो भगवान ने मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु पृथ्वी पर देवी-देवताओं को भेजा। इसीलिए गाँव की सीमा पर देवी-देवताओं की स्थापना दिखाई देती है जिनकी पूजा और उत्सव वर्ष के अलग-अलग समय पर संपन्न की जाती है। इन अवसरों पर गाँव का कोई भी व्यक्ति खेती का काम नहीं करता है, गलती से यदि कर भी दे तो ग्राम पंच द्वारा जुर्माना लगाया जाता है। गाँव में आपदा अथवा महामारी के समय सामूहिक रूप से ग्राम पंच धन इकट्टा करता है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार की पूजा सामग्रियों को लाकर सामूहिक रूप से देवी-देवताओं की पूजा की जाती है और आपदा से निपटने का सामूहिक प्रयास किया जाता हैं।

आदिवासियों की सामाजिक व्यवस्था के संचालन का स्वरूप धार्मिक है जिससे धर्म और समाज में भेद करना कठिन है, जो धार्मिक है वह सामाजिक है। कोई भी नया कार्य या कार्य योजना देव पूजन अथवा त्योहारों के अवसर पर ही निष्पादित की जाती है। आदिवासी समाज में नव वर्ष का शुभारम्भ काल्योभूत, पालुडीयो देव तथा अखातीज जैसे त्योहारों से होता है। ज्येष्ठ-अषाढ़ (जून-जुलाई) वे महीने होते हैं जब मानसून से पहले कृषि के कामकाज शुरू किए जाते हैं। ज्येष्ठ के महीने में जेठो देव नामक उत्सव मनाया जाता है जिसमें विभिन्न देवी-देवताओं को उनकी जिम्मेदारियों के लिए प्रसन्न किया जाता है, ताकि कृषि में बीज (कणी कंसरी) का पालन-पोषण सुचारू रूप से हो सके। साथ ही साथ काल्योमेघ (बारिश के देवता), गाजनगोटो-थोटी विजोण(बादल की गरजना-बिजली के देवता), गांडोवेडो (पवन के देवता), खेतवाल देव (कृषि कार्य के रखेवाली करनेवाला देव), जोसी देव-हुरीज देव (चंद्रमा-सुरज देव), भोरी दरती (धरती माता) आदि देवताओं की प्रार्थना अनुष्ठानों के माध्यम से की जाती है। इन्ही अवसरों पर ग्रामपंच द्वारा विभिन्न प्रकार की मजदूरी

की दर निर्धारित की जाती है। फसल की निराई-गुड़ाई करने वाले मजदूरों तथा अन्य कृषि कार्य संबंधित मजदूरों की दिहाड़ी तथा उसे भुगतान करने के तरीकों को निर्धारित किया जाता है तथा यह निर्धारित मजदूरी पूरे वर्ष यानि आने वाले जेठा देव तक के लिए मान्य होती है। अगले वर्ष पुनः नई मजदूरी दरें अथवा पुरानी दरों को जारी रखने का निर्णय लिया जाता है। ग्राम के प्रत्येक छोटे बालक से लेकर वृद्ध लोग इस उत्सव में भाग लेते हैं। इस प्रकार जेठोदेव अवसर सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक मूल्य के साथ ही साथ आर्थिक व्यवस्था के पहलू भी जुड़ जाते हैं। सिमदेव को गाँव की सरहद की रक्षा के लिए, गावमेड्यो देव को ग्राम सरहद के देवता के रूप में, नंदुरदेव को पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रामें हरी घास उगाने के लिए, काकोहेडो-जिजिहेडो देव को जानवरों के स्वास्थ्य के लिए, वाघदेव को जंगल में चरने जाने वाले जानवरों की रक्षा के लिए, राजावाडवो देव को ग्राम शासन के प्रभारी देवता या गाँव का मुखी के देवता के रूप में, काल्यो भूत देव को देवताओं के सेवक के रूप में पूजा जाता है। भादों (सितंबर) के महीने में चौरिआमास के त्योहार में बैलों की पूजा की जाती है, कवार (अक्टूबर) के महीने में जब खेत में नए अनाज तैयार हो जाते हैं तब कणी कंसरी की पूजा सामूहिक उत्सव पाकुटी भंडारा के रूप में किया जाता है। इस त्योहार में गांव की देवी पंडोरी माता को नया धान चढ़ाया जाता है। काणतक और अगहन (नवंबर-दिसंबर) के महीने में दिपावली मनाई जाती है। आदिवासी समाज में हिन्दू पंचांग से भिन्न, होली को वर्ष का अंतिम त्योहार माना जाता है। इस त्योहार में गांव के पशुओं को चराने के लिए चरवाहों की नियुक्ति की जाती है तथा उनकी दिहाड़ी, अनाज की मात्रा और उनकी घरेलू जिम्मेदारीयाँ इत्यादि की चर्चा करके निर्णय लिया जाता है। इसी अवसर पर गाँव की सामूहिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए जनप्रतिनिधियों का भी चयन किया जाता है। जिन जनप्रतिनिधियों का कार्यकाल समाप्त हो गया है उन्हें उसको अगले साल के तक बने रहना है अथवा नए लोगों का चयन करना है उसकी चर्चा की जाती है। होली के बाद के महीनों में सामाजिक तथा धार्मिक कार्य जैसे धार्मिक स्थलों पर जाना, कुटुंब में विवाह, पूर्वजों के संस्कार, एवं गृह निर्माण तथा कृषि भूमि को समतल करना आदि गतिविधियाँ की जाती हैं। जनजातियों के जीवन चक्र के अनुसार ही उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक गतिविधियाँ संचालित होती रहती हैं।

आदिवासिओं की गाँव की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में ग्राम पंच का कार्य गाँव की विभिन्न देवी-देवताओं के अनुष्ठानों और त्योहारों को धार्मिक व्यवस्था के सन्दर्भ में विनियमित करना है। कणी कंसरी का अस्तित्व इन्ही देवी-देवताओं के साथ जुड़ा हुआ हैं। इस प्रकार ऋतुचक्र के अनुसार पूजा किए जाने वाले सभी देवी-देवताओं को एक सांस्कृतिक तत्व के रूप में पहचाना जा सकता है।

निष्कर्ष : दक्षिण गुजरात की जनजातियाँ कणी कंसरी को अन्नदेवी मानती हैं तथा इसके साथ आध्यात्मिकता के मूल्य समाविष्ट हैं। समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि संस्कृति का जन्म उन गतिविधियों, क्रियाओं तथा कर्मकांडों से हुआ है जिसे मनुष्य ने अपने अस्तित्व के लिए भोजन प्राप्त करने से लेकर भौतिक और अभौतिक वस्तुओं के प्राप्त हेतु विकसित किया है। इसी प्रक्रिया के संदर्भ में देखा जाए तो कणी कंसारी सांस्कृतिक रचना की एक सूक्ष्म इकाई है, जिसे सांस्कृतिक तत्व के नाम से जाना जाता है। इस कणी कंसरी के साथ सांस्कृतिक तत्व के रूप में विभिन्न इकाइयाँ जुड़ी हुई हैं। आदिवासी समाज के लोग इसमें से अनेकों मूर्त और अमूर्त तत्वों को देवी-देवता मानते हैं जो उनके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए उपयोगी है।

कणी कंसरी(अन्न) एक दैवीय शक्ति है, इसलिए इसे धर्म का एक भाग माना जा सकता है। वर्ष के दौरान, गाँव या समुदाय के लोग देवता की पूजा या उत्सव मनाने के लिए विभिन्न देवस्थल पर एकत्रित होते हैं। यहीं ग्रामवासियों द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए चयन अथवा प्रतिस्थापन, तथा भविष्य की योजना आदि पर चर्चा की जाती है। वर्तमान समय में यदि हम धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र की समीक्षा करें तो आदिवासी समुदाय में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के प्रसार के साथ, आदिवासी भी स्थापित धर्म के अनुयायी बन गए हैं। पारंपरिक धार्मिक व्यवस्था से जुड़े त्योहारों की तुलना में अन्य धर्मों के त्योहारों को अधिक प्रमुखता दी जा रही है। उस धर्म के मंदिर भी बनाए गए हैं। इसलिए नई पीढ़ी को नए सांस्कृतिक मूल्य से आकार दिया जा रहा है। जिन तत्व से आदिवासी संस्कृति का उद्‌भव हुआ था वह तत्व नष्ट होने से संस्कृति भी नष्ट होती दिख रही है।

वर्तमान समय में किसान मानसून के मौसम पर निर्भर रहने के बजाय बोरवेल, कुएं, नहर, नदी आदि पानी के स्त्रोतो से सिंचाई द्वारा पूरे साल कृषि कार्य करता है।

परंपरागत बीज के बजाय विकसित किया हुआ संकर बीज से आधुनिक खेती करने में परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों में ह्रास आया है। सिंचाई की सुविधा से सब्जियों, दलहनों आदि पकने वाली फसलें पैदा की जाती हैं। कृषि के साथ, आधुनिक समय में, पशु-पालन को भी व्यवसाय के रूप में विकसित किया गया है। कृषि में ट्रैक्टर, थ्रेशर, इलेक्ट्रिक मोटर, डीजल ईंजन आदि उपकरणों के उपयोग से आज कृषि मात्र अन्न के लिए नहीं अपितु बाजार में बिक्री के लिए की जाती है। धीरे धीरे कृषि आदिवासी समाज में आय का मुख्य साधन बनती जा रही है जिसके कारण पारंपरिक कृषि व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई सांस्कृतिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन दिखाई दे रहा है। अब कृषि के कम उपज सम्बन्धी समस्याओं का समाधान प्रकृति या भूत-प्रेत से नहीं अपितु इसका निराकरण वैज्ञानिक दृष्टि से ढूंढा जा रहा है।

वर्तमान समय में, लोकतांत्रिक शासन के विकेंद्रीकरण ने पारंपरिक पंचप्रथा के बजाय गाँव के लोकतांत्रिक रूप से चुने हुए लोक प्रतिनिधियों को जन्म दिया है। गाँव में लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण की अवधारणा ने गाँव की सामूहिक एकता में दरार पैदा कर दी है। पारंपरिक पंचप्रथा सांस्कृतिक इकाई का एक हिस्सा थी वह अब नहीं रही, इससे यह दिखाई पड़ता है कि पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी व्यवस्था और सांस्कृतिक मूल्य का पतन हो रहा है। सरकार की विभिन्न विकास योजनाओं के साथ बिजली, सड़क, पानी, शिक्षा, संचार के साधन, परिवहन, कृषि में आधुनिक खेती के लिए विभिन्न योजनाएं, भूमि, आवास और विभिन्न पहचान पत्र, दस्तावेज सरकार द्वारा जारी किए जा रहे हैं, अब न्याय पाने के लिए पारंपरिक पंच प्रणाली नही, बल्कि पुलिस थाना और अदालत कार्यालय महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

कणी कंसरी एक तत्व के रूप में सांस्कृतिक संरचना के केंद्र में रहा है। खेत का परिसर, घर का परिसर और गाँव का परिसर इस प्रकार तीन परिसरों की कई इकाइयों के साथ कणी कंसरी के तत्व मिलकर एक सांस्कृतिक संकुल बनाते हैं। यह तीनों सांस्कृतिक संकुल मिलकर एक सांस्कृतिक प्रतिमान बनाते हैं और अनेक प्रतिमानों से निश्चित सांस्कृतिक क्षेत्र निर्मित करते हैं जिसकी पारस्परिकता से सांस्कृतिक संरचना निर्मित होती हैं। अब इस प्रक्रिया के तत्वों में आधुनिक प्रवाहों के कारण परम्परागत सांस्कृतिक संरचना के मूल में समाहित तत्वों में परिवर्तन आने लगा है जिससे सांस्कृतिक संरचना में परिवर्तन परिलक्षित होने लगी है।

संदर्भ

1. Tylor, E., B., 'Primitive Culture', Estes & Lauriat, Boston, Vol-1, 1874, p. 1
2. Malinowski, Bronislaw, 'A Scientific Theory of Culture, and Other Essays', Chapel Hill, NC, US University of North Carolina Press, 1944, p: 36-42, 77, 90-91, 125
3. Linton, Ralph, 'The Study of Man, Appleton Century Crofts', New York, 1936, pp. 84-85
4. Ibid, p. 76
5. Herskovits, M., J., 'Man and His Works: The Science of Cultural Anthropology', Alfred A. Knopf, New York, 1948, pp. 17-18
6. Kluckhohn, C., 'Values and Value-Orientations in the Theory of Action: An Exploration in Definition and Classification'. In: Parsons, T. and Shils, E., Eds., Toward a General Theory of Action, Harvard University Press, Cambridge, 1951, pp. 388-433
7. Kroeber, Alfred L. and Clyde Kluckhohn, 'Culture: A Critical Review of Concepts and Definitions, Assistance of Wayne Untereiner, Appendices by Alfred G. Meyer, Papers of the Peabody Museum of American Archaeology and Ethnology', Harvard University, Vol. XLVII, No. 1, Cambridge, Massachusetts, 1952, p. 181
8. Piddington, Ralph, 'An Introduction to Social Anthropology', Oliver and Boyd, Edinburgh, Vol-1, 1952, (2nd ed.) pp. 3-4
9. शाह, घनश्याम, 'आदिवासियोंः गई काले अने आज (गुजराती अनुवादकः शांतिलात मेराई), सेन्टर फोर सोश्यल स्टडीज, सुरत, 1985, पृ. 94
10. शाह, दलीचंद, 'आदिवासी गामनां बदलाता पासाओ' (गुजराती), (अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबध), वी.एन.एस.जी.यूनिवर्सिटी, सुरत, 1989, पृ. 372-373
11. पंड्या, गौरी शंकर, 'वारली जातिनो समाज मानवशास्त्रीय अभ्यास' (गुजराती), गुजरात विध्यापीठ, अमदावाद (गुजरात), 1992, पृ. 501-502, 511-513
12. पटेल, मंछाराम, 'धोडिया जातिः बोली, साहित्य अने संस्कृति' (गुजराती), आदिम जाति तथा ग्रामीण संशोधन, व्यारा (गुजरात), 2000, पृ. 178
13. गामीत, महेश, गामीत जातिनो 'सांस्कृतिक अभ्यास' (गुजराती), गुजरात विध्यापीठ, अमदावाद (गुजरात), 2003, पृ. 155-159
14. आचार्य, शांति, 'देव कन्सरी कथानुं तुलनात्मक अध्ययन' (गुजराती), झवेरचंद मेघाणी लोकविध्या भवन, अहमदाबाद (गुजरात), 2003, पृ. 3-4
15. चौधरी, जे, टी., कोलघा 'आदिम जाति मां सामाजिक परिवर्तन' (गुजराती), (अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबंध), वी.एन.एस.जी. यूनिवर्सिटी, सूरत, 2003, पृ. 188-192

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

फेसबुक पर प्रदर्शित विज्ञापनों के प्रति उपयोगकर्ताओं के दृष्टिकोण का अध्ययन

❑ डॉ. अवधबिहारी सिंह
❖ सुमित श्रीवास्तव

सूचक शब्दः फेसबुक, विज्ञापन, नेटवर्किंग साइट, सोशल मीडिया।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य 'फेसबुक पर प्रदर्शित विज्ञापनों के प्रति उपयोगकर्ताओं के दृष्टिकोण का अध्ययन' है। सोशल मीडिया के द्वारा उपयोगकर्ता अपने विचार, अनुभाव साझा कर सकता है। आजकल अनेक कंपनियां अपने ब्रांड प्रमोशन के लिए सोशल नेटवर्किंग साइट का ही उपयोग अधिक कर रही हैं। बीते कुछ वर्षों में सोशल मीडिया के उपयोग का चलन बहुत अधिक बढ़ा है। आज हर आयु वर्ग के लोग सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। यहां कंपनियां विज्ञापन के माध्यम से अपने प्रोडक्ट की जानकारी लक्षित वर्ग तक आसानी से पहुंचा सकती हैं। अब विज्ञापन पारंपरिक संचार के माध्यम के अपेक्षा डिजिटल हो गया हैं। जनसंचार माध्यमों के विस्तार जैसे- रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र,पत्रिकाएं आदि विज्ञापन के विकास यात्रा में भागीदार रहे हैं परंतु इंटरनेट ने कंपनियों और उनके उत्पादों को स्थानीय पहुंच से निकालकर वैश्विक स्तर तक पहुंचा दिया है। सोशल मीडिया पर विज्ञापन उद्योग निरंतर उन्नति कर रहा है। वैसे तो कई सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म आज उपलब्ध हैं पर फेसबुक माध्यम ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। फेसबुक माध्यम का उपयोग करना बहुत सरल है इसलिए इस माध्यम पर हर आयु वर्ग के लोग जुड़े हुए हैं। फेसबुक प्रभावी विज्ञापन के माध्यम से विशिष्ट ग्राहकों को लक्षित करने और उनके प्रचार की अनुमति देता है। फेसबुक पर विज्ञापन की विशेषता जैसे सस्ता, लक्षित जनसमूह, तीव्रता एवं संदेश संप्रेषण के चलते आम जनमानस में यह अधिक लोकप्रिय हो गए हैं।

अपने ब्रांड की विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए आजकल अधिकतर कंपनियां सोशल मीडिया का सहारा ले रही हैं। छोटे और मध्यम वर्ग के कारोबारियों के पास विज्ञापन के लिए बड़ी पूंजी नहीं होती और इसलिए वे सोशल मीडिया पर ही ज्यादा फोकस करते हैं। इंटरनेट के आने से पहले तक टेलीविजन, रेडियो और समाचार पत्र सूचना के साथ-साथ विज्ञापनों के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान माना जाता था। लेकिन इंटरनेट के आने के बाद टीवी, रेडियो और समाचार पत्र सूचना के साथ-साथ विज्ञापनों की मुख्य धारा से कब दूर चले गए पता ही नहीं चला। केवल भारत में ही जनसंख्या के लगभग 60 प्रतिशत से भी ज्यादा लोग इंटरनेट का उपयोग दिन-प्रतिदिन के जीवन में करते हैं। इंटरनेट के इस उपयोग में सोशल मीडिया उनके जीवन में एक हिस्से के रूप में सम्मिलित हो गया है। सोशल मीडिया के इस बहुतायत उपयोग में फेसबुक और ट्वीटर जैसे सोशल मीडिया साइट्स सर्वाधिक लोकप्रिय हैं और इस पर ही क्रियाशील रहने वालों की संख्या सर्वाधिक है। इंटरनेट ने हर व्यक्ति, हर व्यापार और हर क्षेत्र को प्रभावित किया है पर जिस क्षेत्र को इंटरनेट ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया है वह सोशल मीडिया है जिस पर आज विज्ञापन का नया दौर देखने को मिल रहा है। सोशल मीडिया तेजी से हमारे जीवन के सभी पहलुओं में स्वयं के लिए एक जगह बनाते जा रहा है, जिस पर ग्राहक फेसबुक, यूट्यूब और ट्वीटर जैसे प्रमुख सोशल मीडिया प्लेटफार्मस के साथ अधिक व्यवहारिक और अवधारणात्मक रूप से अपने लिए उत्पाद तय कर रहा है।[1]

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म एक नई जगह का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ हमारे दोस्तों के साथ या निजी और सार्वजनिक संगठनों के साथ हमारी बातचीत की प्रकृति को बदल देता है। वास्तव में सोशल मीडिया प्लेटफार्म में जहाँ लोग, संस्थान और यहां तक कि सरकारें भी व्यावसायिक, सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक रूप से एक-दूसरे के साथ बातचीत कर सकती हैं और जानकारी, विचारों, उत्पादों और सेवाओं का आदान-प्रदान कर सकती हैं। फलस्वरूप, दुनिया भर के संगठनों ने सोचना शुरू कर किया कि इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है प्लेटफॉर्म ग्राहकों को आकर्षित

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)
❖ शोध अध्येता, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

करने और उन ग्राहकों के साथ एक लाभदायक व्यापारिक संबंध बनाने में मदद कर सकते हैं इसलिए, सोशल मीडिया विभिन्न विज्ञापन फर्मूस को कई विपणन उद्देश्यों को पूरा करने में मदद कर सकते हैं, जैसे कि ग्राहक जागरूकता पैदा करना, ग्राहकों के ज्ञान का निर्माण करना, ग्राहकों की धारणा को आकार देना, ग्राहकों को वास्तव में उत्पादों को खरीदने के लिए प्रेरित करना।[2]

इंटरनेट के सस्ता हो जाने और हर हाथ तक पहुंच जाने के बाद उपभोक्ताओं के लिए विज्ञापनों को प्राप्त करने और उस पर प्रतिक्रिया देने का तरीका भी बदल गया। डिजिटल ग्लोबल मीडिया 2021 की रिपोर्ट के अनुसार जुलाई 2020 के अंतिम सप्ताह में देश में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 696 मिलियन थी जिसके 2025 तक 974.86 मिलियन बढ़ जाने की संभावना है।ऐसे समय में जब देश में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, सोशल मीडिया विज्ञापनों का प्रचार करने और विज्ञापनों को प्राप्त करने का एक माध्यम बनकर उभरा है। देश में वर्तमान में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या 400 मिलियन से अधिक है। देश की कुल जनसंख्या 121 करोड़ में युवाओं की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत है।[3] डिजिटल ग्लोबल मीडिया 2021 की एक रिपोर्ट के अनुसार 16 से 64 वर्ष की आयु के उपभोक्ताओं की औसत इंटरनेट उपयोग करने का समय 6 घंटे 54 मिनट प्रति दिन है, जबकि 2 घंटे 25 मिनट सोशल मीडिया पर और 3 घंटे 24 मिनट प्रति टेलीविजन देखने में खर्च होते हैं।[4] वर्नर, कैन्टर और ICUBE 2020 की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या (जिन्होंने महीने में कम से कम एक बार इंटरनेट का उपयोग किया है, जैसा कि रिपोर्ट द्वारा परिभाषित किया गया है) अगले पांच वर्षों में अनुमानित 45 प्रतिशत बढ़ेगा जो 2020 में 622 मिलियन से बढ़कर 2025 तक 900 मिलियन हो जाएगा।[5] फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप और ट्वीटर जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के उद्भव ने लोगों के बातचीत करने के तरीके और व्यापार और सामाजिक सूचनाओं के आदान-प्रदान के तरीके को बदल दिया है। सोशल मीडिया छोटे और बड़े दोनों व्यवसायों के लिए अपने ग्राहकों के साथ लगातार जुड़ने के लिए जगह बनाता है।[6]

फेसबुक : सोशल मीडिया में फेसबुक एक ऐसा माध्यम है जिसकी पहुंच अधिकांश लोगों तक है। फेसबुक माध्यम का सबसे पहले प्रारंभ 4 फरवरी 2004 को हुआ था तब इसका नाम 'द फेसबुक' हुआ करता था जिसे वर्ष 2005 में फेसबुक कर दिया गया। इसके संस्थापक मार्क जुकरबर्ग हैं। नए ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भी सोशल मीडिया एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके माध्यम से कारोबार को आसानी से बढ़ाया जा सकता है। दुनिया भर में फेसबुक के व्यापक उपयोग ने इसे विज्ञापन हेतु एक महत्वपूर्ण मंच भी बना दिया है। एक शोध में पाया गया कि फेसबुक पर दिखने वाले विज्ञापन किसी फिल्म के ट्रेलर जितना ही प्रभावी होते हैं। फेसबुक पर दिखने वाले विज्ञापन से लोग टेलीविजन पर दिखने वाले विज्ञापनों की तुलना में बेहतर तौर पर ब्रांड से जुड़ पाते हैं।[7]

वेबसाइट 'सोशल टाइम्स डॉट कॉम' की रिपोर्ट के अनुसार, फेसबुक और विपणन एजेंसी न्यूरो-इनसाइट द्वारा किए गए शोध में सामने आया है कि फेसबुक पर दिखने वाले विज्ञापन से ब्रांड का प्रभाव लोगों पर अधिक पड़ता है वह इस पर तुरंत प्रतिक्रिया करते हैं। फेसबुक पर वीडियो विज्ञापन देखने वाले प्रतिभागी टेलीविजन पर देखे गए विज्ञापनों की तुलना में विज्ञापन ब्रांड से बेहतर तौर पर जुड़ पाए। ग्लोबल वेब इंडेक्स की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में फेसबुक एक ऐसा माध्यम है जिसके सबसे अधिक सक्रिय उपयोगकर्ता (एक्टिव यूजर) हैं।[8]

स्टेटिसटा की रिपोर्ट के अनुसार फेसबुक उपभोगकर्ताओं के हिसाब से भारत दुनिया में प्रथम स्थान पर है इन उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अनेक कंपनियाँ अपने विज्ञापन फेसबुक पर देने लगीं। पिछले कुछ सालों में फेसबुक पर विज्ञापन दाताओं की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई है। स्टेटिसटा की रिपोर्ट के अनुसार फेसबुक की आमदनी का सबसे बड़ा हिस्सा विज्ञापनों के द्वारा आता है। साल 2020 के दूसरी तिमाही के आंकडों से हिसाब से फेसबुक के पास 9 मिलियन से भी ज्यादा सक्रिय विज्ञापनदाता थे। फेसबुक ने 2020 में 85.9 अरब डॉलर का राजस्व अर्जित किया जिसमें से करीब 60 अरब डॉलर फेसबुक ऐप से आए थे और उसे 32.6 यूएस डॉलर बिलियन का शुद्ध लाभ हुआ था, फेसबुक की मूल कंपनी मेटा ने साल 2022 की पहली तिमाही में 3 प्रतिशत से 11 प्रतिशत अधिक शुद्ध लाभ का अनुमान लगाया है।[9] गटमन की रिपोर्ट के अनुसार साल 2018 से साल 2022 के बीच वैश्विक विज्ञापन खर्च

में 160 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक की वृद्धि हुई, जिसके साल 2022 के अंतिम सप्ताह के अंत तक 790 बिलियन के करीब पहुंचने की संभावना है।[10] फेसबुक सभी सोशल मीडिया प्लेटफार्म में सर्वाधिक परिष्कृत विज्ञापन प्रणाली का मंच है यही कारण है उसके फेसबुक के पास सभी सोशल मीडिया प्लेटफार्म से अधिक उपयोगकर्ता है। अब दुनिया भर में लाखों लोग ऑनलाइन सामाजिक नेटवर्क में भाग लेते हैं अकेले फेसबुक के 955 मिलियन लोग इन नेटवर्क्स और वर्ड ऑफ माउथ (डब्ल्यूओएम) के माध्यम से उपभोक्ता अपनी प्राथमिकताओं और खरीदने के निर्णयों को प्रभावित करते हैं, तब हर विक्रेता के लिए यह तेजी से प्रगति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वायरल सामग्री, सोशल मीडिया प्रतियोगिता और अन्य उपभोक्ताओं से जुड़ाव के प्रयासों के माध्यम से अपने ब्रांड को तेजी से बनाने या प्रचारित करने के लिए कई उद्यम या कंपनियां सोशल मीडिया प्लेटफार्म्स में निवेश कर रहे हैं, इन कंपनियों के विज्ञापन के पारंपरिक अभियान भी तेजी से बदल रहे हैं। अमेजन, लिपकार्ट, जिको, डेल और ईबे जैसी कंपनियां पारंपरिक 'वन-वे' विज्ञापन के संदेश को अपना रही हैं और सोशल मीडिया के माध्यम से उपभोक्ताओं के साथ द्विपक्षीय संवाद शुरू करने के लिए इसे एक मील के पत्थर के रूप में उपयोग कर रही हैं।[11]

विक्रेता सोशल मीडिया के बढ़ते क्षेत्र के बाद इस बात को भली प्रकार जान गए हैं कि सोशल मीडिया पर एक सकारात्मक विज्ञापन वर्ड ऑफ माउथ के कम शक्तिशाली नहीं है। यदि वे केवल सही सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का चयन करते हैं, सही संदेश तैयार करते हैं और सही उपयोगकर्ताओं को उस संदेश को फैलाने के लिए संलग्न कर सकते हैं तो उनका अभियान सफल होता है। सोशल मीडिया हाल इन दिनों में दुनिया भर के कई व्यवसायों के संचालन में एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है।

सोशल मीडिया पर विज्ञापन : जेनिथ की एडवरटाइजिंग एक्सपेंडिचर फोरकास्ट रिपोर्टके अनुसार, वैश्विक विज्ञापन बाजार 2020 की मंदी के बाद 2022 में 9.1 प्रतिशत की वृद्धि अंकित की गई, 2021 में यह 15.6 प्रतिशत थी। इसी रिपोर्ट के अनुसार 2023 में यह वैश्विक विज्ञापन खर्च 5.7 प्रतिशत और 2024 में 7.4 प्रतिशत तक बढ़ जाएगा, जिसमें विज्ञापनदाता की सर्वाधिक पसंद सोशल मीडिया, ऑनलाइन वीडियो और ईकॉमर्स चैनल हैं। इसी रिपोर्ट में यह भी दावा किया गया है कि सभी डिजिटल चौनलों पर विज्ञापन 2022 के अंत तक पहली बार वैश्विक विज्ञापन के व्यय के कुल प्रतिशत 60 प्रतिशत से अधिक हो जाएगा, जिसके 2024 तक उनकी हिस्सेदारी बढ़कर 65.1 प्रतिशत हो जाएगी। जेनिथ की इसी रिपोर्ट में दावा किया गया है कि जे सोशल मीडिया 2021 और 2024 के बीच सबसे तेजी से बढ़ने वाला चैनल होगा, जिसकी औसत वार्षिक वृद्धि दर 14.8 प्रतिशत होगी, इसके बाद ऑनलाइन वीडियो 14.0 प्रतिशत होगा। रिपोर्ट के अनुसार 2022 में सोशल मीडिया एडस्पेंड 177 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुंच जाएगा, जो टेलीविजन को 174 अरब अमेरिकी डॉलर से पीछे छोड़ देगा। 2024 तक सोशल मीडिया एड स्पेंड बढ़कर 225 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो जाएगा, जब यह सभी विज्ञापनों का 26.5 प्रतिशत हिस्सा होगा।।[12] सोशल मीडिया के बढ़ते क्षेत्र और उत्पादकों के बीच इसके प्रयोग को लेकर एक दिलचस्प अध्ययन साल 2012 में सामने आया था। इस रिसर्च के अनुसार 2012 में फॉर्च्यून 500 कंपनियों के बीच सोशल मीडिया का उपयोग बढ़ गया था। मैसाचुसेट्स डार्टमाउथ विश्वविद्यालय द्वारा किए गए इस अध्ययन के अनुसार, इनमें से 73 प्रतिशत कंपनियों के पास ट्विटर में एक आधिकारिक कॉर्पोरेट खाता है, जबकि 66 प्रतिशत के पास एक कॉर्पोरेट फेसबुक पेज है। इसके अलावा, 2011 तक 28 प्रतिशत कंपनियों के पास कॉर्पोरेट स्तर पर ब्लॉग थे, जो 2008 के बाद से सबसे बड़ी वृद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं सोशल मीडिया विभिन्न विज्ञापन फर्म्स को कई विपणन उद्देश्यों को पूरा करने में मदद कर सकते हैं, जैसे कि ग्राहक जागरूकता पैदा करना, ग्राहकों के ज्ञान का निर्माण करना, ग्राहकों की धारणा को आकार देना, ग्राहकों को वास्तव में उत्पादों को खरीदने के लिए प्रेरित करना। 2018 से 2022 के बीच वैश्विक विज्ञापन खर्च में 160 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक की वृद्धि हुई, जिसके 2022 के अंतिम सप्ताह के अंत तक 790 बिलियन के करीब पहुंचने की संभावना है।[13]

साहित्य समीक्षा :

'सोशल मीडिया और विज्ञापन', **विजय प्रकाश** उपाध्याय, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, शिया पीजी कॉलेज, लखनऊ, ने अपने शोध पत्र में निष्कर्ष निकाला कि सरकारी व गैर सरकारी संस्थान उत्पाद एवं सेवा का विज्ञापन देने के लिए सोशल मीडिया का प्रयोग कर रहे हैं साथ ही उपभोक्ता उत्पाद एवं सेवा के संबंध में आसानी

से अपनी टिप्पणी प्रस्तुत कर पाते हैं जिससे कि सोशल मीडिया में विज्ञापन, विपणन एवं जनसंपर्क का बाजार बढ़ रहा है।[14]

फेसबुक में विचारों का प्रस्तुतीकरण और युवाओं पर उसके प्रभाव का अध्ययन विषय पर शोधार्थी केशव पटेल द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र में निष्कर्ष आया कि आज के दौर में सोशल मीडिया ने संचार को एक इंटरैक्टिव वार्तालाप में परिवर्तित करने का भी कार्य किया है। फेसबुक अब सिर्फ मनोरंजन का साधन मात्र नहीं रह गया है, बल्कि युवाओं के बीच समाचार प्राप्त करने का एक स्त्रोत भी बन गया है। युवाओं द्वारा समाचारों की प्राप्ति के लिए फेसबुक का प्रयोग उनकी आदत बन गया है।[15]

डिजिटल विज्ञापनों का युवाओं के क्रय निर्णय पर प्रभाव का अध्ययन शोधार्थी विकास कुमार द्वारा किया गया। अध ्ययन से यह ज्ञात हुआ कि आज का युवा इंटरनेट का उपयोग बहुत अधिक करता है तथा डिजिटल विज्ञापनों ने युवाओं में ब्रांड तथा फैशन के प्रति चेतना लाने का काम किया है। अधिकतर युवा वर्ग ने स्वीकार किया कि डिजिटल विज्ञापन से प्रभावित होकर वे अनावश्यक वस्तुएं खरीदने में भी नहीं हिचकिचाते। डिजिटल विज्ञापन खरीददारी निर्णय को प्रभावित कर रहे हैं तथा डिजिटल विज्ञापनों का युवाओं पर सकारात्मक प्रभाव अधिक है।[16]

प्रतिष्ठित एमराल्ड प्रकाशन के International Marketing Review शोध जर्नल में प्रकाशित शोध पत्र 'Social media and international advertising: theoretical challenges and future directions' में **शीनतारो एवं टैलर** इस बात को प्रमुखता से कहते हैं कि वास्तविक अनुप्रयोगों के अस्तित्व के कारण सोशल मीडिया की वैश्विक पहुंच है। साथ ही यह एक शक्तिशाली निजीकरण उपकरण के साधनों का प्रतिनिधित्व करता है।[17]

महमूद अख्तर शरीफ, भास्कर मुखर्जी, योगेश के. द्विवेदी, नृपेंद्र पी. रानाक और रुबीना इस्लाम के शोध पत्र 'सोशल मीडिया मार्केटिंग : कंपरेटिव इफेक्ट ऑफ एडवरटाइजमेंट सोर्सेस' में लेखकों ने विज्ञापन और फेसबुक सोशल मीडिया के बीच अंतरसंबंधों का पता लगाने का प्रयास किया है।[18]

रचना गंगवार द्वारा 'सोशल मीडिया पर प्रसारित वायरल संदेशों का समाज पर प्रभाव' विषय पर शोध किया गया जो राधा कमल मुकर्जीःचिंतन परम्परा शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ। जिसमें यह प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि लोग व्हाट्स पर दैनिक संचार के लिए निर्भर हो गए हैं जो संचार का बहुत सरल व तेज माध्यम बन गया है किंतु यह भ्रामक खबरों को आसानी से फैलाया जा रहा है जिससे खबरों की विश्वसनीयता पर सवाल उठता है।[19]

गुरु सरन लाल द्वारा "डिजिटल मीडिया की पत्रकारिताः चुनौतियां और संभावनाएं" विषय पर किए गए शोध में निष्कर्ष आया कि वर्तमान समय में डिजिटल मीडिया काफी प्रासंगिक माध्यम है जहां त्वरित गति से सूचना लोगों तक पहुंच रही हैं एवं लोग त्वरित गति से ही अपनी प्रतिक्रिया भी दे पाते हैं।[20]

संध्या यादव द्वारा "वर्तमान परिदृश्य में सोशल मीडिया की प्रासंगिकताः एक अध्ययन" में यह निष्कर्ष आया कि सोशल मीडिया का उपयोग उपयोगकर्ता सूचना, मनोरंजन के अतिरिक्त भावनाओं की संतुष्टि के लिए भी करते हैं।[21]

उद्देश्य

1. फेसबुक पर प्रदर्शित विज्ञापन के प्रति उपयोगकर्ताओं के जुड़ाव का अध्ययन।
2. फेसबुक उपयोगकर्ताओं के बीच विज्ञापन के बारे में जागरुकता का अध्ययन।
3. फेसबुक पर प्रदर्शित विज्ञापनों की विश्वसनीयता का अध्ययन।

परिकल्पना

1. फेसबुक पर उपयोगकर्ता विज्ञापनों को अधिक समय तक देखते हैं।
2. फेसबुक पर प्रदर्शित विज्ञापन को उपयोगकर्ता विश्वसनीय मानते हैं।
3. फेसबुक पर वे विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं जो किसी अन्य माध्यम पर नहीं दिखते।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध में वर्णानात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया। जिसमें सर्वेक्षण विधि के द्वारा गूगल फॉर्म की सहायता से यादृच्छिक नमूना के आधार पर मिश्रित प्रश्नावली द्वारा कुल 70 फेसबुक उपयोगकर्ताओं से डाटा संकलित कर उनका विश्लेषण किया गया है।

शोध साधन- मिश्रित प्रश्नावली

आंकड़ों का विश्लेषण

प्रस्तुत प्रश्नावली के लिए फेसबुक पर 100 लोगों को सम्मिलित किया गया। जिनमें सिर्फ 39 महिलाएं व 31 पुरुष, कुल 70 लोग उत्तरदाता के रुप में सम्मिलित हुए।

लिंग	संख्या	प्रतिशत
पुरूष	31	44.28
महिला	39	55.71
योग	70	100.00

सूचनादाताओं की आयु

आयु वर्ग	संख्या	प्रतिशत
18–22	8	11.4
23–27	39	55.7
28–32	12	17.1
32 से अधिक	11	15.7
योग	70	100

प्रस्तुत प्रश्नावली में कुल 70 लोगों को सम्मिलित किया गया। जिसमें सबसे अधिक 55.7 प्रतिशत उत्तरदाता 23 से 27 वर्ष की उम्र के थे वहीं 17.1 प्रतिशत 28 से 32 वर्ष की उम्र के थे। 15.7 प्रतिशत 32 से अधिक उम्र के और 11.4 प्रतिशत 18 से 22 वर्ष के उत्तरदाता के रुप में सम्मिलित हुए।

फेसबुक उपयोग का समय

समय (घंटे)	संख्या	प्रतिशत
0–2 घंटे	43	61.4
2–4 घंटे	15	21.4
4–6 घंटे	8	11.4
6 घंटे से अधिक	4	5.7
योग	70	100

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में कुल 61.4 प्रतिशत उत्तरदाता सिर्फ 0 से 2 घंटे के बीच फेसबुक का उपयोग करते हैं वहीं 21.4 प्रतिशत उत्तरदाता ने बताया कि वह फेसबुक का उपयोग 2 से 4 घंटे के बीच करते हैं। 4 से 6 घंटे फेसबुक का उपयोग करने वालों की संख्या 11.4 प्रतिशत रही। 6 घंटे से अधिक फेसबुक का उपयोग करने वालों की संख्या 5.7 प्रतिशत रही।

फेसबुक का उपयोग किस लिए

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
समय व्यतीत करने के लिए	21	30
नए संपर्क बनाने के लिए	10	14.3
वीडियो देखने के लिए	6	8.6
जागरूक रहने के लिए	21	30
अन्य उपयोग के लिए	12	17.1
योग	70	100

कुल 30 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वह फेसबुक का उपयोग जागरूक रहने के लिए करते हैं वहीं 30 प्रतिशत उत्तरदाता समय व्यतीत करने के लिए फेसबुक का उपयोग करते हैं। 17.1 प्रतिशत उत्तरदाता फेसबुक का उपयोग अन्य उपयोग के लिए करते हैं। 14.3 प्रतिशत उत्तरदाता नए संपर्क बनाने के लिए फेसबुक का उपयोग करते हैं वहीं 8.6 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वह फेसबुक का उपयोग वीडियो देखने के लिए करते हैं।

फेसबुक पर किस तरह के विज्ञापनों अधिकता है

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
शॉपिंग संबंधी	52	74.3
राजनीति संबंधी	7	10
शिक्षा संबंधी	5	7.1
हेल्थ संबंधी	1	1.4
अन्य	5	7.1
योग	70	100

74.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि उन्हें फेसबुक पर शॉपिंग संबंधी विज्ञापन अधिक देखने को मिलते हैं। वहीं 10 प्रतिशत लोगों को राजनीति संबंधित विज्ञापन, 7.1 प्रतिशत लोगों को शिक्षा संबंधी व 7.1 प्रतिशत लोगों अन्य तरह के विज्ञापन देखने को मिलते हैं। सिर्फ 1.4 प्रतिशत लोगों को ही हेल्थ संबंधी विज्ञापन देखने को मिलता है।

फेसबुक विज्ञापन सूचना देने में सहायक

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	7	10
कम	9	12.9
सामान्य	32	45.7
अधिक	19	27.1
बहुत अधिक	3	4.3
योग	70	100

सर्वाधिक 45.7 प्रतिशत उत्तरदाता सामान्य रूप से मानते हैं कि फेसबुक पर विज्ञापन सूचना देने में सामान्य रूप से सहायक है। वहीं 27.1 प्रतिशत उत्तरदाता अधिक रूप से, 12.9 प्रतिशत उत्तरदाता कम व 10 प्रतिशत उत्तरदाता बहुत कम मानते हैं। सिर्फ 4.3 प्रतिशत उत्तरदाता ही बहुत अधिक मानते हैं कि फेसबुक पर विज्ञापन सूचना देने में अधिक सहायक हैं। अधिकांश लगभग 77.1 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि फेसबुक पर विज्ञापन सूचना देने में अधिक सहायक होते हैं।

फेसबुक पर वे विज्ञापन भी देखने के लिए मिलते हैं जो अन्य माध्यम पर नहीं दिखते

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	38	54.3
नहीं	14	20
कह नहीं सकते	18	25.7
योग	70	100

अधिकांश 54.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं वहीं 20 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत नहीं हैं 25.7 प्रतिशत लोगों ने इस सवाल पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

फेसबुक विज्ञापनों से किसी ऑफर या सेल का पता चलता है

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	56	80
नहीं	14	20
योग	70	100

अधिकांश 80 प्रतिशत लोगों ने माना कि उन्हें फेसबुक पर विज्ञापन से किसी ऑफर या सेल का पता चला है जबकि सिर्फ 20 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से असहमत दिखे।

फेसबुक पर लंबी अवधि के विज्ञापन

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	8	11.4
कम	13	18.6
सामान्य	35	50
अधिक	10	14.3
बहुत अधिक	04	5.7
योग	70	100

अधिकांश 50 प्रतिशत लोगों ने माना कि उन्हें फेसबुक पर अन्य माध्यमों की तुलना में लंबी अवधि के विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं। वहीं 14.3 प्रतिशत उत्तरदाता अधिक व 5.7 प्रतिशत लोगों बहुत अधिक रूप से मानते हैं। 18.6 प्रतिशत उत्तरदाता कम व 11.4 प्रतिशत उत्तरदाता बहुत कम रूप से इस बात को मानते हैं कि उन्हें फेसबुक पर अन्य माध्यमों की तुलना में लंबी अवधि के विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं।

अन्य माध्यमों की तुलना में फेसबुक पर अधिक समय तक विज्ञापन

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	17	24.3
नहीं	40	57.1
कह नहीं सकते	13	18.6
योग	70	100

अधिकांश 57.1 प्रतिशत उत्तरदाता नहीं मानते हैं कि वे अन्य माध्यमों कि तुलना में फेसबुक पर अधिक समय तक विज्ञापन देखते हैं। सिर्फ 24.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वे फेसबुक पर अधिक समय तक विज्ञापन देखते हैं। 18.6 प्रतिशत लोगों ने इस प्रश्न पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

किस प्रारूप के विज्ञापनों से अधिक प्रभावित

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
वीडियो	36	51.4
चित्र	22	31.4
स्लाइड	4	5.7
कैरोसेल	4	5.7
अन्य	4	5.7
योग	70	100

सबसे अधिक 51.4प्रतिशत लोगों ने माना कि वे फेसबुक पर वीडियो प्रारूप के विज्ञापन से अधिक प्रभावित होते हैं। वहीं 31.4 प्रतिशत उत्तरदाता इमेज प्रारूप के विज्ञापन से, 5.7 प्रतिशत उत्तरदाता विज्ञापन के स्लाइड प्रारुप से, 5.7 प्रतिशत उत्तरदाता विज्ञापन के करौसेल प्रारूप से, 5.7 प्रतिशत उत्तरदाता विज्ञापन के अन्य प्रारूप से प्रभावित होते हैं।

किस प्रकार के विज्ञापन से अधिक प्रभावित

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
सामाजिक	14	20
जागरूकता संबंधी	25	35.7
व्यवसायिक	12	17.1
राजनीतिक	4	5.7
अन्य	15	21.4
कुल	70	100

फेसबुक पर सबसे अधिक 35.7 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वे जागरूकता संबंधी विज्ञापन से अधिक प्रभावित होते हैं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक विज्ञापन से, 17.1 प्रतिशत उत्तरदाता व्यवसायिक विज्ञापन से

प्रभावित होते हैं। सिर्फ 5.7 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक विज्ञापन से प्रभावित होते हैं। वहीं 21.4 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य प्रकार के विज्ञापन से प्रभावित होते हैं।

फेसबुक विज्ञापन से प्रभावित होकर ऑनलाइन सामग्री क्रय

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	31	44.3
नहीं	39	55.7
योग	70	100

44.3 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि वे फेसबुक विज्ञापन से प्रभावित होकर ऑनलाइन सामग्री भी क्रय करते हैं। लेकिन 55.7 प्रतिशत लोगों के अनुसार वे फेसबुक पर विज्ञापन से ऑनलाइन सामग्री क्रय नहीं करते हैं।

फेसबुक विज्ञापन से किसी नए ब्रांड का पता

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	51	72.9
नहीं	11	15.7
कह नहीं सकते	08	11.4
योग	70	100

अधिकांश 72.9 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि उन्हें फेसबुक पर विज्ञापन से नए ब्रांड का पता चला है। 15.7 प्रतिशत लोगों के अनुसार उन्हें फेसबुक पर विज्ञापन से किसी नए ब्रांड का पता नहीं चला है। वहीं 11.4 प्रतिशत लोगों ने इस प्रश्न पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

फेसबुक विज्ञापनों कितने विश्वसनीय

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
बहुत कम	17	24.9
कम	09	12.9
सामान्य	40	57.1
अधिक	03	4.3
बहुत अधिक	01	1.4
योग	70	100

सर्वाधिक 57.1 प्रतिशत उत्तरदाता फेसबुक पर विज्ञापन को सामान्य रूप से विश्वसनीय मानते हैं। 4.3 प्रतिशत उत्तरदाता अधिक रूप से, 1.4 प्रतिशत उत्तरदाता बहुत अधिक रूप से फेसबुक पर विज्ञापन को विश्वसनीय मानते हैं। वहीं 24.9 प्रतिशत उत्तरदाता बहुत कम व 12.9 प्रतिशत उत्तरदाता फेसबुक पर विज्ञापन को कम विश्वसनीय मानते हैं।

फेसबुक पर झूठे व भ्रामक विज्ञापन

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	55	78.6
नहीं	15	21.4
योग	70	100

78.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उन्हें फेसबुक पर झूठे व भ्रामक विज्ञापन देखने को भी मिलते हैं। वहीं सिर्फ 21.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि उन्हे फेसबुक पर झूठे व भ्रामक विज्ञापन देखने को नहीं मिलते हैं।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध में 39 महिलाएं व 31 पुरुष, कुल 70 उत्तरदाता सम्मिलित हुए। उत्तरदाताओं में महिलाओं की संख्या पुरुष से ज्यादा है। आंकड़ों के अनुसार 23–27 उम्र वर्ग के लोग उत्तरदाताओं के रुप में अधिक सम्मिलित हुए जो कि कुल उत्तरादाताओं का 55.7 प्रतिशत है। अधिकांश उपयोगकर्ता फेसबुक का उपयोग जागरूक रहने व समय व्यतीत करने के लिए करते हैं।अधिकांश उत्तरदाताओं ने माना कि उन्हें फेसबुक पर वे विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं जो किसी अन्य माध्यम पर देखने को नहीं मिले हैं। उपयोगकर्ताओं को शॉपिंग संबंधी विज्ञापन अधिक देखने को मिलते हैं तथा उन्हें फेसबुक पर विज्ञापन के माध्यम से किसी ऑफर या सेल का पता भी चलता है। उत्तरदाताओं के अनुसार उन्हें फेसबुक पर अन्य माध्यमों की तुलना में लंबी अवधि के विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं। लेकिन अधिकांश उपयोगकर्ता फेसबुक पर अधिक समय तक विज्ञापन को नहीं देखते हैं। अध्ययन से ज्ञात होता है कि फेसबुक पर वीडियो प्रारूप के विज्ञापन सबसे अधिक प्रभावी है। वहीं फेसबुक पर जागरूकता संबंधी विज्ञापन से उपयोगकर्ता अधिक प्रभावित होते हैं। लेकिन अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार वे विज्ञापन से प्रभावित होकर भी किसी तरह से प्रतिक्रिया नहीं देते हैं। सिर्फ लगभग 44 प्रतिशत उपयोगकर्ता ही फेसबुक विज्ञापन पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। उत्तरदाताओं ने माना कि फेसबुक पर विज्ञापन सूचना देने में अधिक सहायक होते हैं। फेसबुक पर विज्ञापन से उन्हें नए ब्रांड का पता भी चलता है। लेकिन केवल 44.3 प्रतिशत उपयोगकर्ता ही विज्ञापन से प्रभावित होकर ऑनलाइन सामग्री क्रय करते हैं। अधिकांश उपयोगकर्ता फेसबुक पर विज्ञापन को विश्वसनीय मानते हैं लेकिन लगभग 79 प्रतिशत उपयोगकर्ताओं को फेसबुक पर झूठे

व भ्रामक विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं। इस तरह के फेसबुक पर प्रदर्शित होने वाले विज्ञापनों के चलते फेसबुक पर विज्ञापन की विश्वसनीयता पर सवाल उठाते हैं।

संदर्भ

1. अलूवालिया सरिका, 'ई विज्ञापन की अवधारणा' अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक 2016, पृ.6
2. उपाध्याय विजय प्रकाश, 'सोशल मीडिया और विज्ञापन', जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, शिया पीजी. कॉलेज, लखनऊ, 2016 पृ.4
3. Government of India- Census 2011 India- https://www-census2011-co-in/
4. Werner, G- 'Social Media Marketing Benchmark Report 2022'- https://influencermarketinghub-com/social&media&marketing&benchmark&report/#toc&1
5. The News Desk- 'Active Internet Users in India to Reach 900mn by 2025: IAMAI & Kantar ICUBE 2020 report & MediaBrief- 2021- https://mediabrief-com/iamai&kantar&icube&2020&report/
6. Statista Research Department- Facebook users by country 2021 | Statista- 2021https://www-statista-com/statistics/268136/top&15&countries&based&on&number&of&facebook&users
7. विनोद, विपुल, 'फेसबुक- सोशल मीडिया का चमत्कार', हिन्दी पॉकेट पुस्तक, 2014, पृ.3
8. https://aajtak-intoday-in/story/people&like&to&see&foKkiu&on&facebook&than&tv&1&848784-html
9. Statista - (2022b)- Facebook India: revenue 2020- https://www-statista-com/statistics/1241348/facebook&india&revenue
10. Guttmann, A- (2020)- Global advertising spending 2019 | Statista- Statista- https://www-statista-com/statistics/273288/advertising&spending&worldwide/
11. Kotler P., & Armstrong, G- (2013)- Principles of Marketing- World Wide Web Internet And Web Information Systems, 42, 785- https://doi-org/10-2307/1250103
12. Zenithmedia- (2022)- Digital advertising to eÛceed 60% of global adspend in 2022 - Zenith- https://www-zenithmedia-com/digital&advertising&to&eÛceed&60&of&global&adspend&in&2022/
13- Guttmann A., (2020) Global Advertising Spending 2019 | Statista- Statista- https://www-statista-com/statistics/273288/advertising&spending&worldwide/
14. उपाध्याय, विजय प्रकाश, पूर्वोक्त
15. पटेल, केशव, फेसबुक में विचारों का प्रस्तुतीकरण और युवाओं पर उसके प्रभाव का अध्ययन,महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय,मोतीहारी,2019
16. कुमार, विकास, डिजिटल विज्ञापनों का युवाओं के क्रय निर्णय पर प्रभाव का अध्ययन, Paripex-Indian Journal of Research, Vol.1, Jan. 2021
17. शीनतारो, टैलर, 'Social Media and International Advertising: Theoretical Challenges and Future Directions, International Marketing Review, 2013
18. महमूद अख्तर शरीफ, भास्कर मुखर्जी, योगेश के. द्विवेदी, नृपेंद्र पी. रानाक और रुबीना इस्लाम, 'सोशल मीडिया मार्केटिंग : कंपरेटिव इफेक्ट ऑफ एडवरटाइजमेंट सोर्सेस', जर्नल ऑफ रिटेलिंग एंड कंज़्यूमर सर्विसेज, 2019
19. गंगवार रचना, 'सोशल मीडिया पर प्रसारित वायरल संदेशों का समाज पर प्रभाव', राधा कमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 22 अंक 1, जनवरी-जून, 2020, पृ. 20-28
20. लाल, गुरु सरन, 'डिजिटल मीडिया की पत्रकारिता : चुनौतियां और संभावनाएं', राधा कमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 22 अंक 1, जनवरी-जून, 2020, पृ. 148-154
21. यादव, सुश्री संध्या, 'वर्तमान परिदृश्य में सोशल मीडिया की प्रासंगिकता : एक अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 22 अंक 1, जनवरी-जून, 2020, पृ. 140-147

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम

❑ डॉ. तान्या शर्मा

सूचक शब्दः गुणात्मक शिक्षा, भारतीय शिक्षा, शिक्षा का सर्वव्यापीकरण, शिक्षा में न्यायसंगतता, उच्चतर शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षा में अंतर्राष्ट्रीयकरण।

सभ्यता के प्रारंभ से ही शिक्षा भारतीय समाज की नींव रही है। भारत के औपनिवेशीकरण से पहले हमारे देश में अनौपचारिक ढांचे वाली गुरुकुल शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। इसमें समाज से संवाद तथा ज्ञान और इसके उपयोग के बीच संबंध की ज्यादा संभावना थी। नालंदा और तक्षशिला के काल में भारत में उच्चतर शिक्षा ज्यादा समग्र और समाज से जुड़ी हुई थी। हमारी मौजूदा शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश ढांचे पर आधारित है। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का ढांचा औपचारिक था और इसने भारत में शिक्षा के विकास में बहुत योगदान किया। भारत में विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और विद्यालय स्तर पर शिक्षा के ढांचे का निर्माण और विकास इसी प्रणाली के अनुसार हुआ है। शिक्षा मानव जीवन की आधारशिला है, मानव जीवन को परिपूर्ण बनाने एवं उसके संस्कारों का परिमार्जन करने में शिक्षा का बड़ा योगदान है, शिक्षा वह है जो जीवन की समस्याओं को समाप्त कर जीवन को आनंदमय बना दे, शिक्षा का उद्देश्य एवं मानव जीवन का उद्देश्य एक ही होना चाहिये, शिक्षा समस्या न बनकर समस्याओं का समाधान बने। भारतीय चिंतन में भी कहा गया है कि सविद्या या विमुक्तये अर्थात् वही विद्या होती है जो मुक्ति प्रदान करने का सामर्थ्य रखती है, वास्तव में हमें शिक्षा से परे जाकर विद्या प्राप्त करनी चाहिये। प्रत्येक राष्ट्र में वहाँ के नागरिकों का चरित्र एवं व्यक्तित्व निर्माण वहाँ की शिक्षा पर आधारित होता है। शिक्षा, संस्कृति एवं आध्यात्मिकता की त्रिवेणी धारायें साथ-साथ बहें और संगम पर एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण हो जिसके मूल्य सर्वव्यापी सर्वमान्य हों एवं समाज के लिए हितकारी हों, ऐसी शिक्षा पूर्वकाल में भारत के पवित्र भू-भाग में ही दी जाती थी, इसलिये स्वामी विवेकानंद जी ने शिकागो में दिये गये भाषण में भी कहा था कि भारत के चिंतन में 'वसुधैव कुटुम्बकम' है परन्तु दुर्भाग्यवश विदेशी शासकों ने हम भारतीयों की शिक्षा व्यवस्था को दूषित कर हमें शैक्षिक रूप से दुर्बल बना दिया था जिसकी परिणति ये हुई कि शिक्षा समाधान न होकर समस्या के रूप में बदल गई परन्तु 29 जुलाई, 2020 को 34 वर्ष बाद भारत को राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 प्राप्त हुई, जिसके लिये पूरा राष्ट्र आशान्वित है कि हमें गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्राप्त होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारत की गुणात्मक शिक्षा की दिशा में मील का पत्थर सिद्ध होगी। यह नीति सामान्य जनमानस के साथ राष्ट्रव्यापी चर्चा का प्रतिफल है। यह भारतीय समाज के उत्थान के लिए समर्पित है। अगर इस नीति का कार्यान्वयन सुविचारित एवं सुव्यवस्थित रीति से किया जाए तो भारत के विश्वगुरू बनने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।यह सर्वविदित है कि भारत की अधिसंख्य जनसंख्या युवा है। इस नीति को अन्तिम स्वरूप देने में इस तथ्य पर सम्यक् रूप से विचार किया गया है। इसका सफल कार्यान्वयन एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। शिक्षा सम्पन्न युवा राष्ट्र के समुत्थान में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेगा।इस नीति की एक बड़ी विशिष्टता यह है कि इसे सुसमृद्ध भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप गढ़ा गया है। यह नीति प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में निर्मित है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है जो भारतीयों में गौरवभाव को जागृत करने में निश्चित रूप से सफल होगी। अपनी जड़ों से जुड़े रहने का महत्व सर्वविदित है। इसी संदर्भ में यह नीति सभी शास्त्रीय भाषाओं तथा साहित्यों के पुनरूत्थान तथा राष्ट्रीय संस्थाओं के सशक्तीकरण हेतु स्पष्ट दिशा निर्देश देती है। इस नीति में भाषाओं पर शोध, परंपरागत कलाओं और लोक विधा पर बल दिया गया है। यह भारतीय परम्परा को सशक्त करेगा। भारतीय शिक्षा का एक समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास रहा है। इसके समुचित संरक्षण के लिए सांस्कृतिक जागरूकता कार्यक्रमों का समावेश अति महत्वपूर्ण, दूरगामी और भारतीय विरासत के लिए एक वरदान सिद्ध होगा।[1]

अपने इतिहास से सीख लेकर अपने गौरवशाली अतीत पर गर्व करने वाला, अपनी सांस्कृतिक धरोहरों और मूल्यों को सहेज कर आगे बढ़ने वाला देश ही सही अर्थों में विकास की अवधारणा के सापेक्ष 'वैश्विक प्रतिमान' बन सकता है। इस दृष्टि से भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा, गौरवशाली अतीत नए युग-संदर्भों के अनुरूप बदलती आवश्यकताओं और जनाकांक्षाओं के सापेक्ष भारतीय दृष्टिकोण के संपृक्त 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' बहुत आशान्वित और आश्वस्त करने वाली है।

ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज ही भारतीय ज्ञान-परम्परा, भारतीय संस्कृति, भारतीय विचार-दर्शन में

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, मगध महिला कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य के रूप में स्वीकृत और स्थापित हैं। इसी मान्यता, अवधारणा और लक्ष्य के कारण यह 'भारतीय शिक्षा नीति-2020' भारतीय संस्कृति और ज्ञान-परम्परा के उदात्त जीवन-मूल्यों और आदर्शों को आत्मसात करती है, जिससे भारत एक बार पुनः भौतिकतावादी, विध्वंसक विकास की अवधारणा से बाहर निकल कर 'त्यागपूर्ण उपभोग' के सिद्धांतों पर चलते हुए 'सर्व-समावेशी' और 'संतुलित' विकास का प्रतिमान बन सके।[2]

शिक्षा नीति : ऐतिहासिक यात्रा

ब्रिटिश कालीन भारत में पहली शिक्षा नीति 2.2.1835 में भारत के तत्कालीन गवर्नर लार्ड विलियम बैटिक के द्वारा लागू की गई, जिसका मसौदा ब्रिटिश गवर्नर लार्ड विलियम बैंटिक के शिक्षा सलाहकार थामस बैबिंगटन लार्ड मैकाले ने तैयार किया था। जो 10.6.1834 को शिक्षा सलाहकार नियुक्त होकर भारत आया था। लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति का उद्देश्य भारतीयों में अंग्रेजीयत पैदा करना था और भारतीयता की भावना को विस्मृत कराना था। अपने उद्देश्य में मैकाले बहुत हद तक सफल रहा। स्वतंत्र भारत में 1968 तक यह शिक्षा नीति लागू रही। 1952 में लक्ष्मण स्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 1964 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की अनुशंसा के आधार पर 1968 में शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया गया, जिसमें राष्ट्रीय विकास के प्रति वचनवद्ध, चरित्रवान और कार्यकुशल युवक युवतियों को तैयार करना था। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य राष्ट्र के सभी बच्चों को जाति, धर्म, लिंग, स्थान आदि के किसी भी आधार पर भेदभाव किए बिना शिक्षा के समुचित और समान अवसर प्रदान करना था। इसकी पूर्ति के लिए समस्त बालकों की पहुंच के अंदर ही कम दूरी पर प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए गए। 24 जुलाई 1986 के पूर्व तक यह नीति लागू रही।

तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के कार्यकाल में 24 जुलाई 1986 को द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की गई। यह शिक्षा नीति भी पूर्णतः कोठारी आयोग के प्रतिवेदन पर आधारित थी। सामाजिक दक्षता, राष्ट्रीय एकता एवम् समाजवादी समाज की स्थापना करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। बच्चों के समग्र व्यक्तित्व विकास पर जोर दिया गया और शिक्षकों के हाथ से छड़ी छीन ली गई। परिणामतः छात्रों में उद्दंडता और अनुशासन हीनता का क्रमशः श्री गणेश हुआ, जो उनके लिए शुभ नहीं हुआ।

भारत सरकार ने तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा 29 जुलाई 2020 को की। भारतवर्ष में 34 वर्षों बाद नई शिक्षा नीति आई है। इससे पूर्व 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी के समय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति आई थी। मोदी सरकार ने 2016 में ही नई शिक्षा नीति लाने की तैयारियां शुरू कर दी थी और इसके लिए टी. एस. आर सुब्रमण्यम कमिटी का गठन भी हुआ था जिन्होंने मई 2019 में शिक्षा नीति का अपना ड्राफ्ट केंद्र सरकार के सामने रखा, लेकिन सरकार को वह ड्राफ्ट पसंद नहीं आया। इसके बाद सरकार ने वरिष्ठ शिक्षाविद् एवं जे.एन.यू. दिल्ली के पूर्व कुलपति डॉ. के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक 9 सदस्य समिति का गठन किया। के. कस्तूरीरंगन की कमेटी ने एक नई शिक्षा नीति का ड्राफ्ट तैयार किया, जिसे सार्वजनिक कर केंद्र सरकार ने आम लोगों से भी सुझाव मांगे। इस मसौदे पर आम और खास लोगों के सुझाव आए। जिसमें विद्यार्थी, अभिभावक, अध्यापक से लेकर बड़े-बड़े शिक्षाविद्, विशेषज्ञ पूर्व शिक्षा मंत्री और राजनीतिक दलों के नेता सम्मिलित थे। इसके अलावा संसद के सभी सांसदों और संसद की स्टैंडिंग कमिटी से भी इस बारे में परामर्श किया गया जिसमें सभी दल के लोग सम्मिलित थे। इसके बाद लगभग अंग्रेजी में 66 पन्ने (हिंदी में 117 पन्ने) की नई शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई।

प्राचीन भारत में शिक्षा के केन्द्र : ज्ञान-विज्ञान के धरोहर :- भारत हजारों वर्षों से एक विकसित सभ्यता और संस्कृति का देश रहा है जिसने गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, वास्तुकला जहाज निर्माण, योग, ललित कला, शतरंज आदि क्षेत्रों में विश्व ज्ञान में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020[3] ने प्राचीन भारत के कुछ विश्व स्तरीय संस्थानों जैसे तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी के योगदान का उल्लेख करते हुए कहा है कि ये विश्वविद्यालय बहु-विषयी शिक्षण और अनुसंधान के लिए प्रसिद्ध थे और यहाँ सभी पृष्ठभूमियों और देशों के विद्वान और छात्र आते थे। इसके साथ ही शिक्षा नीति ने विभिन्न भारतीय विद्वानों जैसे चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर भास्कराचार्य,

ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि दत्त, माधव, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेव, मैत्रेयी आदि के विभिन्न क्षेत्रों में किए गए उत्कृष्ट योगदानों की बात करते हुए भारतीय संस्कृति और दर्शन द्वारा दुनिया को प्रभावित करने की बात कही है। इसके साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति, विश्व धरोहरों की इन समृद्ध भारतीय विरासतों को न केवल पोषित और संरक्षित करने की बात करती है, बल्कि इस ज्ञान को हमारी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से शोध, संवर्धन और नए उपयोगों के लिए भी प्रयोग में लाये जाने की पुरजोर वकालत करती है।

भारतीय शिक्षा नीति-2020 भारत के इक्कसवीं सदी के आकांक्षापूर्ण लक्ष्यों के अनुरूप है। इसमें भारत को ज्ञान के क्षेत्र में वैश्विक महाशक्ति में बदलने का लक्ष्य रखा गया है। लेकिन यह अपने दृष्टिकोण में वैश्विक होने के साथ ही भारत केंद्रित भी है। यह मानवाधिकारों, संवहनीय विकास और जीवनशैली तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्धता को बढ़ावा देने वाले ज्ञान, कौशल, मूल्य और आचरण को स्थापित करती है। इस तरह इसका प्रयास छात्रों को सही मायनों में वैश्विक नागरिक में बदलने का है। साथ ही इसका प्रयास छात्रों में विचारों के साथ ही भावना, बुद्धि और कार्यों में भी भारतीय होने का गहरा गौरव स्थापित करना है। इस नीति के लक्ष्यों और प्रयोजनों को पूरा करने के लिए 2040 की समय सीमा निर्धारित की गयी है।[4]

भारतीय शिक्षा नीति-2020 के आने के साथ ही भारत की शिक्षा प्रणाली में भी 21वीं शताब्दी के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों के अनुरूप बदलावों का अहम सिलसिला शुरू हो गया है। इस नीति में पठन-पाठन की पुरानी चली आ रही शिक्षक आधारित व्यवस्था की जगह विद्यार्थी-केंद्रित नई व्यवस्था लाकर समूची प्रणाली में बदलाव लाने पर जोर दिया गया है। जिससे विद्यार्थियों का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके और उनकी रचनात्मक क्षमता भी विकसित की जा सके। नई शिक्षा नीति में शिक्षा के इस मूल सिद्धांत पर विशेष बल दिया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को साक्षर बना देने और उन्हें अंक ज्ञान देने तक सीमित नहीं रहना चाहिए या फिर विद्यार्थियों में विवेचनात्मक सोच और समस्या का समाधान खोजने तक ही सीमित न रहे बल्कि शिक्षा से सामाजिक और भावनात्मक कौशल का विकास भी हो, इन्हें सॉफ्ट स्किल्स कहा जाता है और इनमें सांस्कृतिक चेतना और अनुभूति, दृढ़निश्चय और विश्वास, टीम भावना, नेतृत्व और संचार जैसे गुणों का विकास भी सम्मिलित है।[5]

भारतीय शिक्षा नीति-2020 में सभी को स्कूली शिक्षा उपलब्ध कराने और ज्यादा बच्चों को स्कूलों में दाखिल कराने पर ज़ोर दिया गया है। प्रारम्भिक शिशुकाल देखभाल और शिक्षा पर इसमें विशेष ध्यान दिया गया है। बुनियादी या प्रारंभिक शिक्षा में बच्चों को बढ़ने की क्षमता और अर्थ या भाव समझने की क्षमता और वास्तविक जीवन में गणित से गुणा-भाग और जमा-घटा कर पाने की क्षमता के विकास पर बल दिया गया है। इसी उद्देश्य से निपुण भारत मिशन शुरू किया गया है ताकि हर बच्चे के लिए ऐसा परिवेश बन जाए कि आने वाले पांच वर्ष में वह कक्षा तीन तक के स्तर की पढ़ने-लिखने की क्षमता और गणित का ज्ञान प्राप्त कर ले।[6]

आकलन प्रक्रिया निरंतर चलाए रखने से यह समझ में आता जाएगा कि बच्चे किस प्रकार सोचते और सीखते हैं और इसे ध्यान में रखकर ही एनईपी-2020[7] में कई बुनियादी सुधार सम्मिलित किए गए हैं जिनकी सहायता से विद्यार्थियों के आकलन की प्रक्रिया के तौर-तरीकों, प्रारूप और क्रियान्वयन को नया रूप दिया जा सकेगा। नीति में बोर्ड परीक्षाओं में बदलाव लाकर उन्हें और प्रामाणिक बनाना, बच्चों पर पुस्तकों का बोझ कम करने और कोचिंग की व्यवस्था समाप्त करने पर विशेष बल दिया गया है।

विद्यार्थियों, शिक्षकों और संस्थानों की क्षमता के निर्माण पर भी बल दिया जा रहा है। संस्थानों में विविध विषय रहेंगे और शिक्षा विज्ञान में भी परिवर्तन लाए जाएंगे जिससे बच्चों को विषय चुनने के अधिक विकल्प प्राप्त होंगे। ऐसी भी आशा है कि सहायता प्राप्त कॉलेज धीरे-धीरे बंद किए जाएंगे और वर्ष 2035 तक उनकी जगह अनेक विषयों की शिक्षा देने वाले संस्थान आ जाएंगे। सभी को शिक्षकों की अहम भूमिका के बारे में पता है। नई शिक्षा नीति में सुझाव है कि शिक्षकों को स्वयं में सुधार लाने और अपने अध्यापन कार्य से जुड़ी नई जानाकरियाँ प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रशिक्षण के अवसर मिलने चाहिए। इसी कारण शिक्षकों की प्रशिक्षण की व्यवस्था को भी नई परिस्थितियों और बदलते परिवेश के अनुरूप सुदृढ़ बनाने पर ध्यान दिया जाएगा। सभी के लिए समानता पर आधारित और समावेशी उत्तम शिक्षा की सुनिश्चित व्यवस्था कराने के उद्देश्य से नई राष्ट्रीय

शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा तक सबकी पहुँच, सभी की भागीदारी और शिक्षण स्तर के मामले में विभिन्न वर्गों के बीच अंतर को समाप्त करने पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस नीति में समानता को ही समावेशी व्यवस्था का आधार माना गया है। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों और क्षेत्रों के विकास पर भी विशेष बल दिया गया है।[8]

यह नीति अपने प्रारूप और आशय दोनों के ही आधार पर वैश्विक भी है और स्थानीय भी। इसमें शिक्षा की गुणवत्ता को सर्वोच्च प्राथमिक दी गई है और सबसे ज्यादा पिछड़े वर्गों और क्षेत्रों के बच्चों के लिए प्रारंभिक शिक्षा की सुदृढ़ नींव तैयार करके उनकी शिक्षा आवश्यकताएँ पूरी करने को प्रमुखता दी गई है ताकि भारत शिक्षा के क्षेत्र में विश्व नेता के रूप में उभरकर सामने आए। इस शिक्षा नीति में जिन पहलुओं पर जोर दिया गया है वे हैं:-

शिक्षा का सर्वव्यापीकरण : नोबेल पुरस्कार पाने वाले गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर, जिन्होंने ऐसे भारत की कल्पना की थी 'जहाँ भय-शून्य हो जहाँ सिर उन्नत हो, जहाँ ज्ञान मुक्त हो।' उनके हिसाब से शिक्षा मुक्त करती है और ज्ञान के आंतरिक पराग से परिपूर्ण कर देती है। गुरूदेव के मुख्य विचार थे कि शिक्षा को प्रकृति के अनुकूल भारतीय, अन्तर्राष्ट्रीय और आदर्शोन्मुख होना चाहिए। श्रीनिकेतन और शांतिनिकेतन को गुरूदेव ने इन्हीं सिद्धांतों के अनुरूप रचा और संचालित भी किया। महात्मा गाँधी ने भी शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था-शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य को सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाना है। आज भी गाँधी, टैगोर जैसे चिंतक प्रासंगिक हैं। कई अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति अर्थपूर्ण है।

एन.ई.पी.2020[9] में 2030 तक स्कूली शिक्षा के सर्वव्यापकीरण का लक्ष्य रखा गया है। इसका मतलब यह है कि 2030 तक प्री-स्कूल और सेकण्डरी स्तर पर 100 प्रतिशत सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) प्राप्त कर लिया जाए। साथ ही 2035 तक उच्चतर शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। उच्चतर शिक्षा में जीईआर को बढ़ा कर 50 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। विभिन्न राज्य और उनके भीतर के समूह शिक्षा प्राप्ति के लिहाज से अलग-अलग स्तरों पर हैं। इसलिए लक्ष्यों और प्रयोजनों के सर्वव्यापीकरण को क्षेत्रों और समूहों के संदर्भ में देखने की दरकार है। आशा है कि स्कूली शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से उच्चतर शिक्षा में अधिकतम नामांकन संभव होगा। एनईपी 2020 में पढ़ाई अधूरी छोड़ चुके बच्चों की स्कूलों में वापसी के लिए उपाय करने का सुझाव भी दिया गया है। साथ ही ऐसे कदम उठाने की बात भी कही गयी है जिनसे अब बच्चे पढ़ाई अधूरी नहीं छोड़ें। भारत की शिक्षा नीति को लेकर इस समय राष्ट्रव्यापी विचार-विमर्श चल रहा है।[10]

पाठ्यक्रम और अध्यापन के तौर-तरीकों में बदलावः राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक क्रांतिकारी कदम है। आज जरूरत इस बात की है कि शिक्षक-शिक्षा में अन्य विषयों के साथ विद्यार्थी शिक्षकों को भारत और उसके मूल्यों/लोकाचार/कला/परम्पराओं के ज्ञान से भी परिचित कराया जाए।

एनईपी - 2020 में शिक्षा में उदार नजरिये को अपनाने की बात कही गयी है। इसमें स्कूली और उच्चतर शिक्षा में वर्तमान पाठ्यक्रम और अध्यापन के ढंग के पुनर्गठन पर जोर दिया गया है ताकि इस नीति के लक्ष्यों और प्रयोजनों को पूरा किया जा सके। इसमें 10+2 के मौजूदा ढांचे के बजाय 5+3+3+4 का नया ढांचा अपनाने का सुझाव दिया गया है। इसमें तीन वर्ष की उम्र से शुरुआती बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा - अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन (ईसीसीई) का मजबूत आधार होगा। नीति में 2030 तक सुदृढ़ अध्यापन पर आधारित गुणवत्तापूर्ण ईसीसीई के सर्वव्यापीकरण का सुझाव दिया गया है। इसमें तीन से आठ साल तक की आयु के किसी भी बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिये महत्वपूर्ण बुनियादी चरण माना गया है। हर छात्र को तीसरी कक्षा तक बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान हासिल कर लेना चाहिये। स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम और अध्यापन का ढांचा आयु वर्ग और श्रेणी के अनुसार विकास के विभिन्न चरणों में छात्रों की जरूरतों और दिलचस्पियों के अनुरूप होना चाहिये।[11]

एनईपी-2020[12] में उच्चतर शिक्षा में ढांचागत सुधारों की बात कही गयी है। इसमें उच्चतर शिक्षा संस्थानों को बड़े बहुविषयक विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और ज्ञान केंद्रों में बदलने पर जोर दिया गया है। उदार बहुविषयक शिक्षा से शिक्षाप्राप्ति अनुसंधान और सामुदायिक कार्य समेत ज्ञानार्जन के औपचारिक और अनौपचारिक अवसरों को समन्वित कर छात्रों में बहुविध क्षमताओं का विकास किया जा सकेगा। यह शैक्षिक प्रक्रिया में अंतर-विषयक परिप्रेक्ष्य को बढ़ावा देगी। संस्थान बहुविषयक होने के नाते अध्यापन प्रणाली का इस तरह पुनर्गठन करेंगे कि छात्रों

को विषयों के चुनाव का अवसर मिले। उम्मीद है कि 2035 तक संबद्ध कॉलेज धीमे-धीमे खत्म हो जायेंगे और उनकी जगह बहुविषयक विश्वविद्यालय और महाविद्यालय ले लेंगे। नीति में विश्व स्तरीय बहुविषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान (एचई-आई) बनाने की सिफारिश की गयी है। इन संस्थानों को शैक्षिक अनुसंधान विश्वविद्यालय या मल्टीडिसिप्लिनरी एजुकेशनल रिसर्च यूनिवर्सिटी के नाम से जाना जायेगा।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध विरासत को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। छात्र-छात्राओं को अपने देश की उपलब्धियों, विविध क्षेत्रों में विश्व सभ्यता में इसके योगदान और इस पर शोध करने के लिए प्रोत्साहित करने की तत्काल आवश्यकता है। इस संबंध में पाठ्यक्रम बनाने वालों, स्कूल के अधिकारियों, माता-पिता, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, संग्रहालयों, विरासत के क्षेत्र में काम कर रहे लोगों और अन्य हितधारकों के बीच साझेदारी की भी महती आवश्यकता है। केवल निष्पक्ष और वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर ही हम इस भारतीय विरासत के उचित परिप्रेक्ष्य को समझ सकते हैं और तभी, हम इस सभ्यता से जुड़े होने के गौरव का सही अनुभव कर सकते हैं। [13]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पूरी शिक्षा व्यवस्था में सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव करती है ताकि इसका इक्कीसवीं सदी की शिक्षा के आकांक्षात्मक लक्ष्यों के साथ मेल तो बिठाया ही जा सके, साथ ही इसे प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत की नींव पर समृद्ध भी बनाया जा सके। शिक्षा नीति कहती है कि दुनिया के विभिन्न विकसित देशों के अनुभवों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं में सुशिक्षित होने से हानि नहीं बल्कि शैक्षिक, सामाजिक और तकनीकी उन्नति के लिए लाभ ही मिला है। इसी संदर्भ में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने भारत के सभी छात्र-छात्राओं द्वारा अच्छे, सफल, मौलिक सोच वाले, परिस्थिति अनुकूल और रचनाशील व्यक्ति बनने के लिए जिन मुख्य विषयों, कौशलों व क्षमताओं को आवश्यक माना है उसमें 'भारत का ज्ञान' एक मुख्य विषय है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, 'भारत के ज्ञान' को परिभाषित करते हुए कहती है कि 'भारत के ज्ञान' में प्राचीन भारत से प्राप्त ज्ञान और आधुनिक भारत और इसकी सफलताओं और चुनौतियों में इसके योगदान के साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के संबंध में भारत की भविष्य की आकांक्षाओं का एक स्पष्ट भाव सम्मिलित होगा।[14]

शिक्षा में न्यायसंगतता और समावेशी शिक्षा : नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सबके लिए गुणवत्तापूर्ण न्यायसंगत और समावेशी शिक्षा का लक्ष्य रखा गया है। इसमें शिक्षा के सभी स्तरों पर पहुंच भागीदारी और ज्ञानार्जन परिणामों में विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच अंतर को दूर करने की प्रतिबद्धता दोहरायी गयी है। न्यायसंगत को समावेशी विचार मानते हुए सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर समूह-सोशली एंड इकोनॉमिकली डिसएडवाटेज्ड ग्रुप्स (एसडीजी) और क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इसमें राज्यों के बीच विशाल अंतर को ध्यान में रखा गया है। इसमें कमजोर समूहों को बड़ी आबादी वाले क्षेत्रों को विशेष शिक्षा क्षेत्र स्पेशल एजुकेशन जोन (एसईजेड) घोषित करने की सिफारिश की गयी है जिनमें नीतियों और योजनाओं को ज्यादा प्रभावी ढंग से लागू किया जायेगा। नीति में एमईडीजी में पहुंच भागीदारी और ज्ञानार्जन परिणाम की समस्याओं तथा स्कूली और उच्चतर शिक्षा में समूहों और क्षेत्रों के बीच विभिन्न प्रकार को असमानताओं को दूर करने के लिए समुचित रणनीतियां अपनाने का सुझाव दिया गया है। प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल से लेकर उच्चतर शिक्षा तक ज्ञानार्जन के परिणामों को बढ़ावा देना एनईपी 2020 के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है।[15]

प्रभावशाली व्यवस्था के लिये सुधार इस नीति में शिक्षा के क्षेत्र में लक्ष्यों और प्रयोजनों को हासिल करने के लिये व्यवस्था का परिवर्तनकारी एजेंडा निर्धारित किया गया है। स्कूली शिक्षा के प्रमुख सुधारों में स्कूल समूहों की स्थापना स्कूल मापदंडों और प्राधिकरणों का निर्धारण तथा विद्यालय परीक्षा बोर्डों में सुधार सम्मिलित हैं। इसमें एक भारतीय उच्चतर शिक्षा आयोग हायर एजुकेशन कमीशन ऑफ इंडिया (एफसीआई) के गठन की सिफारिश की गयी है। यह आयोग उच्चतर शिक्षा में एकमात्र नियामक संस्था होगा। इसके चार स्तम्भ होंगे राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा संसाधन केंद्र-नेशनल हायर एजुकेशन रिसोर्स सेंटर (एनएचआरसी), राष्ट्रीय मूल्यांकन और मान्यता परिषद-नेशनल एमेसमेंट एंड एक्रेडिटेशन काउंसिल (एनएएसी), उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद हायर एजुकेशन ग्रान्ट कमीशन (एचईजीसी), तथा सामान्य शिक्षा परिषद-जनरल एजुकेशन काउंसिल (जीईसी)। एकमात्र नियामक संस्था के गठन के पीछे उद्देश्य उच्चतर और

पेशेवर शिक्षा में जरूरत से ज्यादा नियमन से आने वाली समस्याओं को दूर करना है।[16]

स्कूलों और उच्चतर शिक्षा के लिये प्रावधान :- निश्चय ही विद्यालयी पाठ्यक्रम में इस ज्ञान क्षेत्र को सम्मिलित करके शिक्षा नीति के इस स्वप्न को साकार किया जा सकता है। ऐसा करने का सबसे अच्छा तरीका है इस भारतीय ज्ञान परंपरा को मौजूदा पाठ्यक्रम के साथ एकीकृत करने के स्थान पर नया पाठ्यक्रम बनाकर इसे अलग इकाई का रूप देकर। सामाजिक विज्ञानों में स्थापित लक्ष्य और विषय (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र आदि) हमारी संस्कृति और परंपराओं के बारे में शिक्षण और सीखने के लिए कई अवसर प्रदान करते हैं। भारत के ज्ञान की यह सामग्री पाठ्यक्रम के अन्य विषयों, जैसे भाषा, साहित्य और ललित कला के साथ भी सामाजिक विज्ञान का संबंध स्थापित करने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से सभी चरणों में सभी विषयों के साथ जुड़ा हुआ यह भारत का ज्ञान, हमारी विरासत और संस्कृति के लिए एकीकृत शिक्षण दृष्टिकोण की सुविधा प्रदान करेगा। जहाँ भी प्रासंगिक हो, ऐसे ज्ञान को सही और वैज्ञानिक तरीके से सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं और देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों द्वारा इसमें जो योगदान दिया गया है, उसे भी इस ज्ञान परंपरा में सम्मिलित करना चाहिए।

नीति में स्कूली और उच्चतर शिक्षा के लिए मानक निर्धारण और मान्यता के बारे में प्रावधान किये गये हैं। इसमें स्कूली शिक्षा के लिये एक स्वतंत्र राज्य विद्यालय मानक प्राधिकरण-स्टेट स्कूल स्टैंडर्स आरिटी (एसएसएसए) की स्थापना का सुझाव दिया गया है। यह प्राधिकरण गुणवत्ता के प्रभावी आश्वासन और मान्यता प्रदान करने की प्रणाली को संस्थागत रूप देगा। उच्चतर शिक्षा के लिये एक स्तंभ के रूप में एनएएसी के गठन की बात की गयी है। आशा है कि इस नयी व्यवस्था से तंत्र ज्यादा पारदर्शी और उत्तरदायी बनेगा। शिक्षा नीति-2020 में भारतीय भाषाओं को लेकर जो विचार दिए गए हैं उनसे कुछ आशा बंधती है।

व्यावसायिक शिक्षा एवं नैतिक अनुसंधान : भारत सरकार की नई शिक्षा नीति 21वीं सदी के लिए भारत केंद्रित और जीवन्त ज्ञान समाज के निर्माण के संकल्प के साथ प्रस्तुत हुई है। एनईपी 2020 में सामान्य शिक्षा में कौशल के तत्व को मजबूत करने पर जोर दिया गया है। इसमें व्यावसायिक शिक्षण का मुख्यधारा को औपचारिक शिक्षा में समावेश कर इसका स्तर बढ़ाने की बात कही गयी है। आशा है कि 2025 तक 50 प्रतिशत से ज्यादा छात्र स्कूली और उच्चतर शिक्षा प्रणाली के जरिये ही व्यावसायिक शिक्षण भी हासिल करेंगे और शिक्षा प्रशिक्षण भी कर सकेंगे। सूचना और ज्ञान के उत्पादन, प्रसार और तेजी से हो रही तकनीकी प्रगति से उपजे नवाचार को आत्मसात करने के लिए जरूरी है। आशा की जाती है कि डिजिटल तकनीक के उपयोग द्वारा पारदर्शिता आयेगी, व्यापार की क्षमता बढ़ेगी।[17]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति अनुसंधान और योग की एक संस्कृति विकसित करने का प्रण लेती है। इसका उद्देश्य भारत को ज्ञान के क्षेत्र में विश्वगुरू बनाना है। इसमें एक राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान फाउंडेशन (एमआरएफ) की स्थापना का सुझाव दिया गया है। यह संस्थान विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अविषयक अनुसंधानों समेत अनुसंधान और योग को बढ़ावा देगा।

राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी की स्थापना : वस्तुतः उच्च शिक्षा में सुधार बहुत दिनों से प्रतीक्षित है। कहाँ तो सा विद्या या विमुक्तये कह कर शिक्षा को मनुष्य की मुक्ति प्रमुख साधन स्वीकार किया गया था और कहाँ हम आज शिक्षा को अंदर से जर्जर व्यवस्था में कैद पा रहे हैं। आज की स्थिति बहुत बदल चुकी है और मात्र खानापूर्ति ही हो पा रही है। यदि निकट से देखा जाय तो प्रचलित व्यवस्था शनैः-शैनः ज्ञान-निर्माण, कुशलता-प्रशिक्षण, सामाजिक दायित्वबोध के विकास और मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने की दृष्टि से खोखली होती जा रही है। लेकिन नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत के लिए रामबाण सिद्ध होगी। इसी सोच से इसे अपनाया गया है।[18]

एनईपी 2020 में एक राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच नेशनल एजुकेशनल टेक्नोलॉजी फोरम (एनईटीएफ) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। यह विचारण की प्रक्रिया को बेहतर बनाने तथा ज्ञानार्जन, आकलन योजना और प्रशासन में सुधार के मंच के रूप में काम करेगा।

नीति में शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रौद्योगिकी के समुचित समावेश की बात कही गयी है जिससे शिक्षण, ज्ञानार्जन और मूल्यांकन की प्रक्रियाओं में सुधार होगा। यह कदम शिक्षकों को तैयार करने और उनके सतत पेशेवर विकास में सहयोगी होगा। प्रौद्योगिकी के समावेश से कमजोर

समूहों तक शिक्षा की पहुंच बढ़ेगी तथा शैक्षिक योजना प्रशासन और प्रबंधन को ज्यादा सुचारू बनाया जा सकेगा।

शिक्षा पर सरकारी व्यय में वृद्धि : नई शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के आने के साथ ही पठन-पाठन की परंपरागत शिक्षक केंद्रित व्यवस्था के स्थान पर शिक्षार्थी पर ध्यान केंद्रित करने की व्यवस्था लाने के नए प्रतिमान अपनाने की सोच आ रही है जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों की रचनात्मक क्षमता के विकास पर ध्यान देकर उनका समग्र-सर्वांगीण विकास सुनिश्चित किया जा सकेगा। नई शिक्षा नीति में शिक्षा के इस मूल सिद्धांत पर जोर दिया जाएगा कि शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता और अंकज्ञान जैसी बुनियादी विधाओं तथा विश्लेषणात्मक सोच और समस्या के समाधान के उच्च गुणों जैसे बौद्धिक कौशल के विकास तक सीमित न रहकर सामाजिक और भावनात्मक कौशल को विकसित करना भी है। पहली बार शिक्षा पर व्यय में वृद्धि की गई है। यह वृद्धि संकेत देता है कि आने वाले समय में शिक्षा प्रणाली और मजबूत होगा।[19]

एनईपी 2020 शिक्षा पर सरकारी खर्च को सकल घरेलू उत्पाद-(जीडीपी) का छह प्रतिशत करने का संकल्प जाहिर करती है जिसकी सिफारिश 1986 की नीति में की गयी थी।

नीति में शिक्षा प्रणाली को मजबूत करने के उद्देश्य से वित पोषण के लिये दीर्घकालिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान की गयी है। ये हैं गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल शिक्षा, बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान सुनिश्चित करना, स्कूल परिसरों और समूहों को पर्याप्त और समुचित संसाधन मुहैया कराना, अल्पाहार और मध्याहन भोजन के रूप में पोषण की व्यवस्था, शिक्षक शिक्षण और शिक्षकों के सतत पेशेवर विकास में निवेश, विशिष्टता के लिए महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में सुधार, अनुसंधान संवर्धन तथा प्रौद्योगिकी और ऑनलाइन शिक्षा का व्यापक उपयोग।

शिक्षा में अंतरराष्ट्रीयकरण का पहल : एनईपी 2020 शिक्षा में ज्यादा से ज्यादा अंतर्राष्ट्रीयकरण का पक्षधर है। इसमें ऐसे अवसर पैदा करने की बात कही गयी है, जिनसे बड़ी संख्या में अंतर्राष्ट्रीय छात्र अध्ययन के लिए भारत आ सकें। इसमें विदेश में अध्ययन के इच्छुक भारतीय छात्रों को इसके लिए अवसर उपलब्ध कराने का प्रस्ताव भी किया गया है। इसमें कहा गया है कि उच्च गुणवत्ता वाले भारतीय विश्वविद्यालयों को अन्य देशों में परिसर खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा। इसी तरह विश्व के चोटी के विश्वविद्यालयों को भारत में संचालन की सुविधा प्रदान करने के लिए विधायी व्यवस्था की जायेगी। इन विश्वविद्यालयों को स्वायत्त भारतीय संस्थानों के समान ही नियमन, संचालन और विषय वस्तु के मानदंडों के संदर्भ में विशेष सुविधा दी जायेगी। इस नई शिक्षा नीति से अब देश के अन्दर ही यहाँ के छात्रों को व्यापक शिक्षा प्राप्त हो जायेगी।[20]

भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्धन : एनईपी 2020 शिक्षा के सभी स्तरों पर यह भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के प्रयोग का समर्थन करती है। इसमें देश की भाषाओं के संवर्धन के उद्देश्य से भारतीय अनुवाद और विवेचना संस्थान इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रांसलेशन एड एंटरप्रेटेशन (आईआईटीआई) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। इसमें कहा गया है कि संस्कृत को स्कूली और उच्चतर शिक्षा संस्थानों को मुख्यधारा में सम्मिलित किया जायेगा। इसमें स्पष्ट किया गया है कि तथा भारतीय भाषाओं को रोजगार के अवसरों के लिए योग्यता के मानदंडों रूप में सम्मिलित किया जायेगा।

निष्कर्ष : भारत अपनी स्वतंत्रता के 75वें वर्ष का उत्सव मना रहा है। हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने कहा है- ''आज के युवा, जिनका जन्म 21वीं सदी में हुआ है, भारत की स्वतंत्रता के 100 वर्ष तक भारत की विकास यात्रा को आगे बढ़ाने जा रहे हैं। इसलिए इस नई पीढ़ी के युवाओं का कौशल विकास एक राष्ट्रीय आवश्यकता है; यह आत्मनिर्भर भारत की आधारशिला है।''[21]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की दृष्टि अत्यंत व्यापक और दीर्घकालिक है। इस तथ्य और नीति के सिद्धांतों को ध्यान में और रखते हुए लक्ष्यों और प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिये तौर-तरीके निर्धारित किये गये हैं। शिक्षा के वर्तमान और इच्छित परिणामों के बीच अंतर को शुरुआती बाल्यावस्था से उच्चतर शिक्षण तक व्यवस्था में बड़े सुधारों तथा समुचित रणनीतियों और कार्यक्रमों के द्वारा दूर किया जाना है। यह नीति अपने दृष्टिकोण और संकल्प में वैश्विक के साथ ही स्थानीय भी है। यह कई मायनों में पिछली नीतियों से बहुत आगे है। इसमें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को शैक्षिक सुधारों के एजेंडे में सबसे ऊपर रखा गया है। इसका लक्ष्य शिक्षा की नींव को सुदृढ़ बनाना, सबसे

कमजोर समूहों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करना तथा भारत को शिक्षा के क्षेत्र में वैश्विक तौर पर अग्रणी स्थान तक पहुंचाना है।

नई शिक्षा नीति में विद्यार्थियों की अभिरुचि, योग्यता और तत्परता को देखते हुए अध्ययन विषय के चयन और शिक्षण-अवधि की दृष्टि से अनेक विकल्प दिये जाने का प्रावधान किया गया है साथ ही सीखने की प्रक्रिया पर विशेष बल दिया गया है ताकि अध्ययन का कार्य विद्यार्थियों के व्यक्तिगत अनुभव का हिस्सा बन सके। अब तक अध यापक पुस्तक और परीक्षा की वैतरणी के बीच एक सेतु का काम करते थे जिनकी सहायता से विद्यार्थी पार उतरता था। साथ ही पुस्तक और परीक्षा के बीच ऐकिक सम्बन्ध बना रहता था और पिछले कुछ वर्षों के प्रश्न पत्र हल करना सफलता की गारंटी होता था। रटन की प्रचलित परम्परा से अलग हट कर अनुभव, चिंतन और सृजन को महत्व देने की बात विद्यार्थियों को सशक्त और योग्य बनाने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। इसी तरह प्रस्तावित व्यवस्था में व्यावसायिक, मानविकी, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला और समाज विज्ञान आदि के विषयों में से चुनने की छूट एक क्रांतिकारी पहल है। इस तरह का लचीलापन विद्यार्थी में जिज्ञासा की भावना, प्रयोग धर्मिता, सृजनशीलता को बढ़ावा देने के साथ-साथ छात्र संख्या के दबाव को कम करने, विद्यार्थियों की रुचि की विविधता को सम्मान देने और शिक्षा प्रक्रिया की अतिरिक्त यांत्रिकता से उबारने में निश्चय ही सहायक सिद्ध होगी। इसके लिए संस्था के स्तर पर बहु अनुशासनात्मकता को प्रश्रय देना होगा। साथ ही पाठ्यक्रमों को समुचित आकार देना होगा ताकि उनमें संरचनात्मक दृष्टि से पूर्णता और कौशलगत उपादेयता का समुचित सन्निवेश हो सके। उच्च शिक्षा की ओर उन्मुख और अग्रसर होने वाले छात्रों के लिए चार वर्ष का स्नातक पाठ्यक्रम निश्चय ही उपयुक्त होगा। कहना न होगा कि इसके लिए पाठ्यक्रम को अद्यतन करने के साथ अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण भी आवश्यक होगा जिसमें शिक्षण विधि के साथ ही मूल्यांकन की व्यवस्था विकसित की जाय। नई व्यवस्था की प्रामाणिकता और उपयोगिता की स्वीकार्यता के लिए प्राध्यापकों के लिए गहन अभिविन्यास (ओरियेंटेशन) की आवश्यकता पड़ेगी। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक प्रशिक्षण का प्रश्न पेचीदा है क्योंकि इसमें शिक्षण विधि, शिक्षण की टेक्नोलॉजी के साथ ही विषयगत अनुसंधान में भी अद्यतन होते रहने की जरूरत होती है। इनके बीच सामंजस्य और संतुलन बैठाना बड़ा आवश्यक है और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए इसे अनिवार्यतः सतत होते रहना चाहिए। नई शिक्षा नीति कई तरह की उच्च शिक्षा संस्थाओं की संकल्पना के साथ प्रत्येक जिले तक उनकी स्थापना की बात करती है। यह सब पर्याप्त आर्थिक संसाधनों की अपेक्षा करता है। यह शुभ लक्षण है कि इसके लिए सरकार जी. डी. पी. का छह प्रतिशत खर्च करने के लिए तत्पर है।

सन्दर्भ

1. योजना प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, फरवरी 2022, पृ.5
2. वही, पृ. 10
3. एन.ई.पी., नेशनल एजूकेशनल पॉलिसी, 2020, भारत सरकार, पृ. 6
4. योजना, पूर्वोक्त, पृ. 6
5. वही, पृ. 5
6. वही, पृ. 5
7. एन.ई.पी., 2020, खण्ड 3, पैरा 3.1
8. योजना, पूर्वोक्त, पृ. 6
9. एन.ई.पी., 2020, खण्ड 10, पैरा 10.06
10. योजना, पूर्वोक्त, पृ. 6
11. वही, पृ. 24-27
12. एन.ई.पी. पैरा 4.1, पृ. 11
13. एन.ई.पी., पृ. 114
14. योजना, पूर्वोक्त, पृ. 24
15. वही, पृ. 3
16. वही, पृ. 152
17. वही, पृ. 129
18. वही, पृ. 11
19. वही, पृ. 23
20. वही, पृ. 39
21. वही, पृ. 19

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

आपदा तत्परता प्रबन्धन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

❑ डॉ0 राजेश कुशवाहा

सूचक शब्दः आपदा, स्वैच्छिक संगठन, आपदा तत्परता, कानूनी अधिकार, विपत्ति, आपातकालीन।

वर्तमान समाज के कल्याण का मूल प्रारम्भ स्वयंसेवी क्रिया से देखा जा सकता है जिसने इसे पिछली अनेक शताब्दियों से वर्तमान तक जीवित रखा है। हमारे देश में सामाजिक हित के लिये स्वैच्छिक संगठनों के कार्य की गौरवपूर्ण परम्परा रही है। यदि देखा जाये तो आपदा तत्परता प्रबन्धन में स्वैच्छिक संगठन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वास्तव में आपदा एक ऐसी प्राकृतिक या मानव जनित घटना है जिसका पुर्वानुमान लगाना बहुत ही कठिन कार्य है। हां हो सकता है कि यदि तैयारी अच्छी हो तो उसके नुकसान को कम किया जा सकता है। किसी भी प्रकार की आपदा को नियंत्रित करने और होने वाली सम्भावित क्षति को न्यूनतम करने की दृष्टि से आपदा से पूर्व प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण एवं पृथक चरण है। इस चरण में वे सभी दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक पूर्व तैयारियां समाहित हैं जो आपदा को नियंत्रित एवं न्यूनतम करने के लिए आवश्यक हैं। विपत्ति या आपदा के समय स्वयं सहायता का कोई विकल्प नहीं होता है क्योंकि इस दौरान संचार तंत्र बाधित हो जाने के कारण प्रभावित लोग तत्काल बाहर से सहायता पर निर्भर नहीं हो सकते क्योंकि तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आपातकालीन राहत कार्य की आवश्यकता होती है। यह कार्य स्वैच्छिक संगठन त्वरित गति से करते हैं, क्योंकि उनको क्षेत्रीय होने एवं क्षेत्रीय लोगों के साथ कार्य करने का अनुभव होता है। स्वैच्छिक संगठन क्षेत्रीय स्तर पर हमेशा लोगों की सहायता के लिए तत्पपर होते हैं। अतः आपदा तत्परता प्रबंधन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। इसी परिप्रेक्ष्य में यह शोध पत्र प्रस्तुत किया गया है।

हमारा देश एक विशाल जनसंख्या वाला देश है जिसकी जनसंख्या इंडिया पापुलेशन लाइव अक्टूबर 2022 के अनुसार 1417173173 हो चुकी है।[1] इतनी बड़ी जनसंख्या वाला देश प्राकृतिक आपदायें भी प्रत्येक वर्ष झेलता है तथा उससे निपटने के तरीके भी अपनाता है। वस्तुतः कहा जाये तो हमारे देश में प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए विभिन्न प्रकार की संस्थायें भी अपना योगदान प्रदान करती हैं। ये संस्थायें सरकारी व गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार की होती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में आपदा तत्परता प्रबंधन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की गई है। वास्तव में देखा जाय तो प्राकृतिक आपदाओं को रोकना मानव की सीमा के बाहर है। लेकिन समय-समय पर सूचना मिलने और बेहतर प्रबंधन से इन प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली जान-माल की हानि को एक बड़ी सीमा तक कम किया जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक आपदा हमें विनष्ट करने के साथ-साथ सचेत भी करती है; लेकिन हम इसकी चिन्ता तक नहीं करते है। कहा जाता है कि सावधानी ही बचाव है। इस सूत्र वाक्य को सरकारी तंत्र अमल में लाना भूल जाता है। हमारा देश अपनी भौगोलिक विभिन्नता के कारण बहुत पहले से ही प्राकृतिक आपदाओं जैसे, बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूकम्प, भूस्खलन, सुनामी आदि से भयाक्रांत रहा है। क्योंकि हमारे देश की भौगोलिक, जलवायुगत और जनसांख्यिकीय स्थितियां मिलकर इसे दुनिया को सर्वाधिक आपदा संभावित क्षेत्र बना रही हैं। भारत के कुल भू-क्षेत्र के लगभग 60 प्रतिशत भाग में भूकम्प एवं भू-क्षरण का खतरा मंडराता रहता है। इसके साथ ही लगभग 40 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है, कुल क्षेत्र का 8 प्रतिशत भू-भाग चक्रवात प्रभावित तथा लगभग 68 प्रतिशत भू-भाग सूखा प्रभावित है। सरकार की ही मानें तो प्रत्येक वर्ष 75 लाख हेक्टेयर जमीन और 2 से 10 हजार लोगों की जानें बाढ़ की भेंट चढ़ती हैं। देश का लगभग 59 प्रतिशत भू-भाग भूकम्प संवेदी है।[2] ऐसे भीषण विनाश के उदाहरण प्राकृतिक आपदाओं के इतिहास में गिने-चुने ही मिलते हैं।

हमारे देश में आपदा प्रबंधन एवं इसके रोकथाम और तैयारी हेतु अनेक कदम उठाये गये हैं। सम्पूर्ण देश में प्राकृतिक आपदा क्षेत्र निर्धारक मानचित्र तैयार किये गये हैं तथा आपदा विशेष के लिए सूक्ष्म क्षेत्र निर्धारक मानचित्र भी बनाये जा रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन एवं आपदा तत्परता में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका हमेशा

❑ वरिष्ठ सहायक आचार्य, समाजकार्य विभाग, समाज विज्ञान संस्थान, बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा (उ.प्र.)

से ही महत्वपूर्ण रही है। स्वैच्छिक संगठन प्रायः अपनी स्वेच्छा के अनुसार निःस्वार्थ भाव से आपदा प्रभावित लोगों की सहायता करते रहते हैं। स्व0 अटल बिहारी बाजपेयी जी ने कहा था कि समाज के उत्थान के लिए 'स्वयंसेवी संगठनों को आगे आना होगा।'[3] बाजपेयी जी के द्वारा कही गई बात स्वैच्छिक संगठनों की प्रतिबद्धता एवं कर्मठता को दर्शाती है। वास्तव में स्वैच्छिक संगठन समाज के लोगों के बहुत ही निकट होते हैं जिससे ये संगठन लोगों की वस्तुस्थिति से परिचित होते हैं। इनको पता होता है कि लोगों को क्या सहायता प्रदान करनी है? तथा किन मुद्दों के बारे में सलाह प्रदान करनी है? इन स्वैच्छिक संगठनों को समय-समय पर राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा अनुदान भी दिया जाता है तथा नीति निर्माण में इनकी सहायता भी ली जाती है। प्रस्तुत शोध पत्र में आपदा तत्परता प्रबंधन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका के बारे में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि स्वैच्छिक संगठन वास्तव में किस प्रकार से आपदा प्रबंधन में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं?

आपदा एवं आपदा प्रबंधन क्या है? : आपदा ऐसी घटना है जो प्राकृतिक एवं मानव निर्मित कारणों से घटती होती हैं जिसमें सामान्य जन-जीवन एक दम से अस्त-व्यस्त हो जाता है। वास्तव में कोई दुर्घटना जिसमें जान-माल के साथ सामाजिक संरचनाओं या सार्वजनिक संपत्तियों की अत्यधिक हानि हो तथा जिसकी भरपायी करने में बहुत अधिक समय व संसाधन लगते हैं, उसे आपदा कहते हैं। जैसे, भूकम्प, तूफान, महामारी, ओला वृष्टि, बादलों का फटना, लू, शीतलहर, हिमस्खन, सूखा व बाढ़, बांध का टूटना, हवाई एवं रेल दुर्घटनायें, रासायनिक गैसों का रिसाव, परमाणु बम विस्फोट जैसी आपदायें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रहीं हैं।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाई गई आपदा की परिभाषा, जो कि आपदा प्रबंधन के राष्ट्रीय अधिनियम, 2005 में भी सहयोजित है, इस प्रकार है-'आपदा किसी समुदाय या समाज के कामकाज में एक गंभीर व्यवधान है, जिसके कारण बड़े पैमाने पर मानवीय, आर्थिक और पर्यावरणीय क्षति होती है, जो उस समुदाय या समाज द्वारा अपने संसाधनों का उपयोग करते हुए इससे मुकाबला करने की क्षमता से परे है। सावधानी से बनायी गयी योजना, तत्परता और शमन के उपायों के प्रयोग द्वारा संकटों से बचा जा सकता है।'4

विभिन्न हितधारकों ने 'आपदा प्रबंधन' को अलग-अलग ढंग से समझा है। जो अनुक्रिया देते हैं, उनके लिए ये केवल एक अनुक्रिया प्रबंधन है। जो राहत कार्यों एवं व्यवस्था को फिर से शीघ्र बहाल करने में संलग्न होते हैं, उनके लिए ये एक मानवीय संकट और राहत प्रबंधन है। ये दोनों ही आपदा के उपरांत होने वाली गतिविधियां हैं। जोखिम में कमी, जोखिम से राहत और तत्परता के लिए आपदा-पूर्व योजना इस क्षेत्र के नए नियम हैं, और जो इसमें विश्वास रखते हैं, उनके लिए ये आपदा-पूर्व जोखिम में कमी तथा आपदा-उपरान्त अनुक्रिया, दोनों है। विश्व के अधिकतर हिस्सों में, खास तौर से दक्षिण एशिया में तथा भारत में भी आपदा-उपरान्त अनुक्रिया आपदा प्रबंधन की सबसे महत्त्वपूर्ण गतिविधियों में से एक मानी जाती थी।[5] अतः संस्थागत प्रणाली, नियमावलियां, नीतियां, कार्यक्रम केवल इन्हीं को ध्यान में रखकर बनाये जाते थे। आपदा प्रबंधन के लिए संपूर्ण शासन आपदा के परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए विकसित किया जाता था। किन्तु सौभाग्य से यह कहानी अब पुरानी हो चुकी है। पिछले डेढ़ दशक से, भारत में आपदा प्रबंधन में बहुत बदलाव आया है और यह नए अनुभवों के साथ नियमित अंतराल पर पुनर्परिभाषित हो रहा है।

स्वैच्छिक संगठन की अवधारणा : स्वैच्छिक संगठन की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Voluntarism के Voluntas शब्द से हुई है जिसका अर्थ इच्छा अथवा स्वतंत्रता से लगाया जा सकता है। हैराल्ड लास्की ने 'समुदाय की स्वतंत्रता को रूचिगत उद्देश्यों के वर्द्धन हेतु व्यक्तियों के इकट्ठा होने के मान्यता प्राप्त कानूनी अधिकार के रूप में परिभाषित किया है।'[6] भारतीय संविधान की धारा 19 (1) (सी) के अन्तर्गत भारतीय नागरिकों को समुदाय बनाने का अधिकार प्राप्त है।[7] समुदाय की स्वतंत्रता मानव स्वतंत्रताओं में प्रमुख है। यह मनुष्यों के लिये किसी सामान्य उद्देश्य के लिये समुदायित होने की व्यापक स्वतंत्रता है। वे किसी कार्य को स्वयं करने, अथवा अपने अथवा अन्य व्यक्तियों के हित को प्राप्त करने हेतु किसी कार्य को कराने, अन्याय अथवा अत्याचार का विरोध करने अथवा किसी महत्वपूर्ण अथवा छोटे, सामान्य अथवा लोक उद्देश्य का अनुसंधान करने के लिये इकट्ठा होने की इच्छा रख सकते हैं।[8] संयुक्त राष्ट्र की शब्दावली में स्वयंसेवी संगठनों को अशासकीय संगठन (NGO's) कहा जाता है। इन्हें Volags (Voluntary Agencies), AGS (Action Groups) आदि का नाम भी दिया गया है। स्वयंसेवी संगठन की विभिन्न प्रकार से परिभाषा की गयी है।

लार्ड बेवरिज (Lord Beveridge) के अनुसार, ''सही तौर पर, स्वयंसेवी संगठन एक ऐसा संगठन है जिसका आरम्भ एवं प्रशासन इसके सदस्यों द्वारा किसी बाह्य नियंत्रण के बिना किया जाता है, चाहे इसके कार्यकर्ता वैतनिक अथवा अवैतनिक हो।''[9] मेरी मोरिस (Mary Morries) एवं मोडलीन रोफ (Modeline Roff) की परिभाषाएं भी समान हैं। मोडलीन रोफ ने केवल यह बात जोड़ी है कि स्वयंसेवी संगठनों को कम से कम आंशिक तौर पर स्वयंसेवी संसाधनों पर आश्रित होना चाहिये।[10]

माईकेल बेंटन (Michall Banton) ने इसकी परिभाषा किसी एक सामान्य हित अथवा अनेक हितों के अनुसंधान हेतु संगठित समूह कहकर की है।[11] डेविड एल0 सिल्स (David L. Sills) के शब्दों में, ''स्वयंसेवी संगठन इसके सदस्यों के कुछेक सामान्य हितों की प्राप्ति हेतु राज्य नियंत्रण के बिना स्वैच्छिक सदस्यता के आधार पर संगठित व्यक्तियों का समूह है।[12] नार्मन जानसन (Norman Johnson) ने स्वयंसेवी समाज सेवाओं की विभिन्न परिभाषाओं की समीक्षा करते हुए इनकी चार प्रमुख विशेषताएं बतलायी हैं : 1. संरचना की विधि, जो व्यक्तियों के लिये स्वैच्छिक है; 2. प्रशासन की विधि; इसके संविधान, इसकी सेवाओं, इसकी नीति एवं इसके लाभार्थियों के बारे में स्वयं-प्रशासकीय संगठन निर्णय करते हैं; 3. वित्त विधि, कम से कम इसका कुछ कोष स्वैच्छिक अभिकरणों से प्राप्त होता है; एवं 4. प्रेरक जिसे लाभ प्राप्ति नहीं होती है।[13] कुछ लेखकों, यथा सिल्स के विचार में स्वयंसेवी संगठनों की विधिक प्रस्थिति इसकी क्रियाओं की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। परन्तु भारतीय संदर्भ में यह उनके वित्तीय दायित्व के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रावधान है कि सहायता अनुदानों के लिये केवल ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं पर विचार किया जायेगा जो निगमित हैं तथा जो कम से कम तीन वर्षों से कार्यरत हैं।[14] स्मिथ एवं फ्रीडमैन ने स्वयंसेवी संगठनों को औपचारिक रूप में संगठित, सापेक्षतया स्थायी द्वितीयक समूह समझते हैं जो कम संगठित, अनौपचारिक, अस्थायी प्राथमिक समूह से भिन्न होता है।[15] औपचारिक संगठन परिलक्षित होता है-कार्यालयों की अवस्थिति में जिनके कार्मिकों की भर्ती निर्धारित प्रक्रियाओं के माध्यम से होती है, अनुसूचित बैठकों में, सदस्यता के लिये पात्र योग्यताओं में, श्रम के विभाजन एवं विशेषीकरण में यद्यपि संगठनों में ये सभी विशेषताएं समान मात्रा में नहीं पायी जाती हैं; स्वयंसेवी संगठनों को अपनी स्वायत्तता को पर्याप्त मात्रा में त्यागना पड़ता है क्योंकि यदि यह सरकारी अनुदान लेना चाहती हैं तो इन्हें कुछेक शर्तो को (यद्यपि इनका स्वरूप नियामक है) स्वीकार करना होता है। उदाहरणतया, भारत में स्वयंसेवी संगठनों को राजनीति एवं धर्म से दूर रहना होता है यदि ये राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में भाग लेने हेतु सरकार से धन प्राप्त करना चाहते हैं। यह भारतीय धर्मनिरपेक्षता के अनुरूप है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक धन का किसी धर्म के प्रचार हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता। अंतिमतः उन्हें राष्ट्रीय उद्देश्यों, यथा समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, प्रजातंत्र, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के प्रति कटिबद्ध होना चाहिये।[16]

स्वयंसेवी संगठन की व्यापक परिभाषा का प्रयास करते हुए, एम0 आर0 इनामदार का कथन है ''स्वयंसेवी संगठन को समुदाय के लिये स्थायी तौर पर लाभप्रद होने के लिये अपने सदस्यों में सामुदायिक विकास हेतु शक्तिशाली इच्छा एवं भावना का विकास करना होता है, परिश्रमी एवं समर्पित नेतृत्व एवं भारित कार्यों में कुशल व्यक्ति प्राप्त करने हेतु आर्थिक तौर पर क्षय होना होता है।''[17]

स्वयंसेवी संगठन/ स्वैच्छिक संगठन की प्रमुख विशेषताएं : स्वयंसेवी संगठनों की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

1. यह कार्यो के क्षेत्र एवं स्वरूप के अनुसार विधिक प्रस्थिति प्राप्ति हेतु समिति पंजीकरण कानून 1980; भारतीय न्यास कानून 1882; सहकारी समिति कानून 1904 अथवा संयुक्त स्टाक कम्पनी 1959 के अन्तर्गत पंजीकृत होती हैं।
2. इसके निश्चित लक्ष्य, उद्देश्य एवं कार्यक्रम होते हैं।
3. इसकी प्रशासकीय संरचना, विधिवत् संरचित प्रबन्ध एवं कार्यकारी समितियां होती हैं।
4. यह बिना किसी वाह्य नियंत्रण के अपने सदस्यों द्वारा प्रजातंत्रीय नियमों के अनुसार प्रशासित होती हैं।
5. यह अपने कार्यों के सम्पादन के लिये सरकारी कोष से अनुदानों के रूप में तथा आंशिक तौर पर स्थानीय समुदाय एवं/अथवा इसके कार्यक्रमों से लाभान्वित व्यक्तियों से अंशदान अथवा शुल्क के रूप में अपनी निधियों को एकत्रित करती हैं।

स्वैच्छिक संगठनों की आपदा तत्परता प्रबन्धन में भूमिका : आपातकालीन प्रबंधन एक अंत:विषयक क्षेत्र का सामान्य नाम है जो किसी संगठन की महत्वपूर्ण आस्तियों की आपदा या विपत्ति उत्पन्न करने वाले खतरनाक जोखिमों से रक्षा करने और सुनियोजित जीवनकाल में उनकी

निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए प्रयुक्त सामरिक संगठनात्मक प्रबंधन प्रक्रियाओं से संबंधित है। आस्तियां सजीव, निर्जीव, सांस्कृतिक या आर्थिक के रूप में वर्गीकृत हैं। खतरों को प्राकृतिक या मानव-निर्मित कारणों के द्वारा वर्गीकृत किया जाता है, प्रक्रियाओं की पहचान के उद्देश्य से संपूर्ण सामरिक प्रबंधन की प्रक्रिया को चार क्षेत्रों में बांटा गया है। ये चार क्षेत्र सामान्य रूप से जोखिम न्यूनीकरण, खतरे का सामना करने के लिए संसाधनों को तैयार करने, खतरे की वजह से हुए वास्तविक नुकसान का उत्तर देने और आगे के नुकसान को सीमित करने (जैसे आपातकालीन निकासी, संगरोध, जन परिशोधन आदि) और यथासंभव खतरे की घटना से यथापूर्व स्थिति में लौटने से संबंधित है। क्षेत्र सार्वजनिक और निजी दोनों में होता है, प्रक्रिया एक सी सांझी होती है लेकिन ध्यान केन्द्र विभिन्न होते हैं। आपातकालीन प्रबंधन प्रक्रिया एक नीतिगत प्रक्रिया न होकर एक रणनीतिक प्रक्रिया है। अतः यह आमतौर पर स्वैच्छिक संगठन में कार्यकारी स्तर तक ही सीमित रहती है। सामान्य रूप से इसकी कोई प्रत्यक्ष शक्ति नहीं है। लेकिन यह सुनिश्चित करने के लिए कि एक स्वैच्छिक संगठन के सभी भाग एक सांझे लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करें, यह सलाहकार के रूप में या कार्यों के समन्वय के लिए कार्य करता है। प्रभावी आपात प्रबंधन स्वैच्छिक संगठन के सभी स्तरों पर आपातकालीन योजनाओं के संपूर्ण एकीकरण और इस समझ पर निर्भर करता है कि संगठन के निम्नतम् स्तर आपात स्थिति के प्रबंधन और ऊपरी स्तर से अतिरिक्त संसाधन और सहायता प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार हैं। **एम0 श्रीधर रेड्डी,** उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए) ने कहा कि आपदा प्रबंधन के लिए प्रोत्साहन व्यवसाय-स्वैच्छिक संगठन/गैर सरकारी संगठन साझेदारी प्रमुख मुद्दों में तैयारी तथा न्यूनीकरण उपायों को केन्द्रीभूत किया जाना चाहिए। आपदा प्रबंधन तथा स्वैच्छिक संगठन/गैर सरकारी संगठन एवं कार्पोरेट क्षेत्र की भूमिका विचार गोष्ठी में अपने उद्घाटन संबोधन में उन्होनें बिहार एवं आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक बाढ़ के दौरान सी0 एस0 ओ0 पार्टनर द्वारा किए गए प्रयासों की सराहना की। आपदाएं जिन पर सामान्यतः हमारा कोई नियंत्रण नहीं रहता, अब हमें विशेषकर लम्बी अवधि की तैयारी तथा प्रभावी न्यूनीकरण उपायों पर ध्यान केन्द्रित करना है। उन्होनें कहा कि न्यूनीकरण में निवेश को उच्च्य प्राथमिकता दी जानी चाहिए।[18]

आपदा तत्परता के चरण और व्यावसायिक गतिविधियांः प्रबंधन की प्रकृति स्थानीय आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर निर्भर करती है। फ्रेड कनी जैसे कुछ आपदा राहत विशेषज्ञों ने उल्लेख किया है कि एक तरह से एकमात्र असली आपदा आर्थिक होती है। कनी जैसे विशेषज्ञों ने बहुत पहले नोट किया कि आपातकालीन प्रबंधन चक्र में बुनियादी ढांचे, सार्वजनिक जागरूकता और यहां तक कि मानव न्याय के मुद्दों पर दीर्घकालीन काम को सम्मिलित करना चाहिए। आपातकालीन प्रबंधन की प्रक्रिया के चार चरण हैं। न्यूनीकरण, तत्परता, प्रतिक्रिया और उबरना हाल ही में होमलैंड सिक्योरिटी विभाग और फेमा (The Federal Emergency Management Agency) ने EM (Emergency Management) के प्रतिमान के भाग के रूप में ''समुत्थान'' और ''रोकथाम'', शब्दों को अपनाया है।[19]

न्यूनीकरण[20] : खतरों को आपदाओं में पूरी तरह विकसित होने से रोकने या घटित होने की स्थिति में आपदाओं के प्रभाव को कम करने का प्रयास न्यूनीकरण कार्यवाही है। न्यूनीकरण चरण अन्य चरणों से भिन्न है क्योंकि यह जोखिम को कम करने या नष्ट करने के लिए दीर्घकालीन उपायों पर केन्द्रित होता है। आपदा घटित होने के बाद लागू करने पर, न्यूनीकरण रणनीतियों के कार्यान्वयन को उबरने की प्रक्रिया का हिस्सा माना जा सकता है। न्यूनीकरण उपाय संरचनात्मक या गैर-संरचनात्मक हो सकते हैं। संरचनात्मक उपाय में स्वैच्छिक संगठन, बाढ़ बांधों की तरह तकनीकी समाधान का उपयोग करते हैं। गैर-संरचनात्मक उपायों में सम्मिलित हैं, कानून, भूमि उपयोग योजना (अर्थात् पार्क जैसी गैर जरूरी भूमि को बाढ़ क्षेत्रों के रूप में इस्तेमाल किए जाने के लिए नामोदिष्ट करना) और बीमा खतरों के प्रभाव को कम करने के लिए न्यूनीकरण सबसे अधिक प्रभावी तरीका है लेकिन यह हमेशा उपयुक्त नहीं होता, न्यूनीकरण में सम्मिलित है, निकासी के सम्बन्ध में विनियमों की व्यवस्था करना, विनियमों (जैसे अनिवार्य निकासी) के पालन का विरोध करने वालों के खिलाफ प्रतिबंध लगाना और जनता को संभावित जोखिमों की जानकारी देना। कुछ संरचनात्मक न्यूनीकरण उपायों से पारितंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। स्वैच्छिक संगठन इसकी जानकरी प्रदान कर जनता को जागरुक करते हैं।

अनावश्यक जोखिम की जानकारी और उससे परहेज ही मुख्य रूप से व्यक्तिगत न्यूनीकरण है। निजी/पारिवारिक

स्वास्थ्य और निजी संपत्ति को संभव जोखिम का मूल्यांकन इसमें सम्मिलित हैं। न्यूनीकरण का एक उदाहरण यह होगा कि खतरे वाली जगह जैसे बाढ़ वाले मैदान, अवतलन या भूस्खलन वाले क्षेत्रों में संपत्ति न खरीदना हो सकता है कि घटित होने तक घर के मालिक को संपत्ति को होने वाले खतरे के बारे में पता न हो। हॉलांकि, जोखिम की पहचान और मूल्यांकन सर्वेक्षण के लिए विशेषज्ञों को काम पर रखा जा सकता है। प्रमुख रूप से अवगत जोखिम के लिए बीमा खरीदना एक आम उपाय है।

भूकंप प्रवण क्षेत्रों में निजी संरचनात्मक न्यूनीकरण में सम्मिलित है, किसी संपत्ति में प्राकृतिक गैस की आपूर्ति को तुरन्त बंद करने के लिए एक भूकम्प वाल्व लगाना, संपत्ति में पुराने भूकम्पीय उपकरणों के स्थान पर नए लगाना और घरेलू भूकंपीय सुरक्षा बढ़ाने के लिए इमारत के अंदर के सामान की रक्षा करना, सामान की रक्षा में फर्नीचर, रेफ्रिजरेटर, पानी के हीटर और भंजनीय सामान को दीवारों पर लगाने के अलावा कैबिनेट में और सिटकनियां लगवाना सम्मिलित हो सकता है। बाढ़ प्रवण क्षेत्रों में दक्षिणी एशिया की तरह मकान खंभे/बांसों पर बनाए जा सकते हैं, जिन क्षेत्रों में बिजली लंबे समय तक गुल रहती है वहां जनरेटर का लगाया जाना इष्टतम् संरचनात्मक न्यूनीकरण का उदाहरण होगा। तूफान तहखाने और भूमिगत आश्रय का निर्माण ऐसे ही और उदाहरण हैं। आपदाओं के प्रभाव को सीमित करने के लिए किए गए संरचनात्मक और गैर संरचनात्मक उपाय न्यूनीकरण के अंतर्गत आते हैं।

अ) संरचनात्मक न्यूनीकरण[21]

इसमें विशेष रूप से इसे आपदा प्रतिरोधी बनाने के लिए भवन का उचित अभिन्यास सम्मिलित है। स्वैच्छिक संगठन इसकी जानकरी प्रदान कर जनता को जागरुक करते हैं।

ब) गैर संरचनात्मक न्यूनीकरण[22]

न्यूनीकरण की पूर्ववर्ती गतिविधि जोखिम की पहचान है। भौतिक जोखिम मूल्यांकन खतरों की पहचान और मूल्यांकन की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। खतरा विशेष जोखिम किसी विशिष्ट खतरे की संभावना और प्रभाव के स्तर दोनों को जोड़ता है। जितना उच्च जोखिम उतना अधिक जरूरी है कि खतरा विशिष्ट अरक्षितताएं न्यूनीकरण और तत्परता के प्रयासों से लक्षित हों। हॉलांकि, अरक्षितता नहीं हों तो खतरा भी नहीं होगा, उदाहरण के लिए निर्जन रेगिस्तान में घटने वाला भूकंप।

तत्परता[23] : प्राकृतिक आपदाओं, आतंकवादी कृत्यों और अन्य मानव निर्मित आपदाओं की रोकथाम और इनसे सुरक्षा, प्रत्युत्तर, उबरने और प्रभावों को कम करने के लिए प्रभावी समन्वय और क्षमताओं में वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए योजना, आयोजन, प्रशिक्षण, लैस करना, अभ्यास, मूल्यांकन और सुधार गतिविधियों का सतत चक्र, तत्परता है। स्वैच्छिक संगठन इसकी जानकरी प्रदान कर जनता को बताते हैं कि तत्परता से आपदाओं की रोकथाम और इनसे सुरक्षा की जा सकती है। तत्परता का उद्देश्य आपदा को रोकना है, जबकि व्यक्तिगत तत्परता आपदा घटित होने पर उपकरण और प्रक्रियाओं की तैयारी अर्थात् योजना पर केन्द्रित है। आश्रयों के निर्माण, चेतावनी उपकरणों की स्थापना, समर्थक जीवन रेखा सेवाओं (जैसे बिजली, पानी, सीवेज) के निर्माण और निकासी योजनाओं के पूर्वाभ्यास सहित तत्परता उपायों के कई रूप हो सकते हैं। स्वैच्छिक संगठन बताते हैं कि दो सरल उपाय आवश्यकतानुसार घटना से निपटने या निकासी में मदद कर सकते हैं। निकासी के लिए एक आपदा आपूर्ति किट तैयार की जा सकती है और आश्रय उद्देश्यों के लिए आपूर्ति का भंडार बनाया जा सकता है। अधिकारी, उत्तरजीविता किट जैसे 72 घंटे की किट तैयार करने की अक्सर वकालत करते हैं। इस किट में भोजन, दवाईयां, टार्च, मोमबत्तियां और धन हो सकते हैं। इसके अलावा, मूल्यवान वस्तुओं को सुरक्षित स्थान पर रखने की भी सिफारिश की जाती है।

तत्परता चरण में, स्वैच्छिक संगठन, आपात प्रबंधक जोखिम के प्रबंधन और उसका सामना करने के लिए कार्यवाई की योजना बनाते हैं और इस तरह की योजनाओं को लागू करने के लिए आवश्यक क्षमताओं का निर्माण करने के लिए जरूरी कार्रवाई करते हैं। आत्म तत्परता उपायों में सम्मिलित हैं -

1. आसानी से समझ में आने वाली शब्दावली और तरीकों वाली संप्रेषण योजना।
2. सामुदायिक आपात प्रत्युत्तर टीमों जैसे, बड़े पैमाने पर मानव संसाधनों सहित आपात सेवाओं का उचित रखरखाव और प्रशिक्षण।
3. आपातकालीन आश्रय और निकासी योजना के साथ जनसंख्या को आपातकालीन चेतावनी देने संबंधी विधियों का विकास और अभ्यास।
4. एकत्रीकरण, सूची और आपदा आपूर्ति और उपकरणों को बनाए रखना।
5. नागरिक आबादी में से प्रशिक्षित स्वयंसेवकों के संगठनों

का विकास करना, बड़े पैमाने पर आपातकाल में पेशेवर कार्यकर्ता तेजी से अभिभूत हो जाते हैं। इसलिए प्रशिक्षित, संगठित, जिम्मेदार स्वयंसेवक अत्यंत मूल्यवान होते हैं। कम्युनिटी इमरजेंसी रिस्पांस टीम और रेड-क्रास जैसे संगठन प्रशिक्षित स्वयंसेवकों के तैयार स्रोत हैं। रेड-क्रास की आपातकालीन प्रबंधन प्रणाली को, कैलिफोर्निया और फेडरल इमरजेंसी मेनेजमेंट एजेंसी प्रबंधन (फेमा) दोनों से उच्च रेटिंग मिली है।

किसी एक घटना से होने वाली प्रत्याशित मौतों या घायलों की संख्या का अध्ययन, हताहत भविष्यवाणी तत्परता का एक अन्य पहलू है। इससे योजनाकारों का अनुमान हो जाता है कि किसी विशेष प्रकार की घटना के प्रत्युचर में क्या-क्या संसाधन तैयार होने चाहिए।

प्रतिक्रिया[24] : प्रतिक्रिया चरण में आपदा क्षेत्र में आवश्यक आपातकालीन सेवाओं और पहले उत्तर देने वाले का जुगाड़ करना सम्मिलित है; इसमें अग्नि शामक, पुलिस और एम्बुलेंस दल जैसी पहले स्तर की कोर आपातकालीन सेवाओं को सम्मिलित करने की संभावना है; सैन्य अभियान के तौर पर किए जाने पर इसे आपदा राहत अभियान कहा जाता है और यह बिना लड़ाई के निकासी अभियान का अनुवर्ती हो सकता है। इन्हें विशेषज्ञ बचाव दल जैसी अनेक गौण आपातकालीन सेवाओं का समर्थन मिल सकता है। किसी आपातकाल का प्रतिक्रिया चरण खोज और बचाव से शुरू हो सकता है लेकिन अभी मामलों में ध्यान जल्दी से प्रभावित आबादी की बुनियादी मानवीय जरूरतें पूरा करने की ओर पलट जाएगा। यह सहायता राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों और स्वैच्छिक संगठनों द्वारा प्रदान की जा सकती है; आपदा सहायता का प्रभावी समन्वयन अक्सर महत्वपूर्ण होता है, खासकर जब अनेक संगठन जबाव दें और स्थानीय आपातकालीन प्रबंधन एजेंसी की क्षमता जरूरत से परे या आपदा के कारण कम हो गई हो।

निजी स्तर पर प्रतिक्रिया किसी जगह पर आश्रय या निकासी का रूप ले सकती है। जगह में आश्रय परिदृश्य में, एक परिवार को उनके ही घर में किसी भी रूप में बाहरी समर्थन के बिना कई दिनों तक रहने के लिए तैयार किया जाएगा। निकासी में, एक परिवार ऑटोमोबाइल या परिवहन के अन्य साधन द्वारा क्षेत्र छोड़ देता है और जितना सामान ले जा सकता है संभवतः आश्रय के लिए एक तम्बू सहित, अपने साथ ले लेता है। अगर यांत्रिक परिवहन उपलब्ध नहीं है तो पैदल निकासी में आम तौर पर कम से कम तीन दिन की आपूर्ति और वर्षा प्रतिरोधी बिस्तर होगा, तिरपाल और कंबल तो अवश्य ही होंगे।

एक अच्छी तरह से दोहरायी नयी आपातकालीन योजना को तत्परता चरण के भाग के रूप में विकसित करने से बचाव का कुशल समन्वयन होता है। आवश्यकता पड़ने पर खोज और बचाव को प्रयास की प्रारम्भिक अवस्था में ही शुरू किया जा सकता है। घायलों के जख्म, बाहरी तापमान, पीड़ितों को हवा और पानी की सुलभता के दृष्टिगत आपदा के अधिकांश शिकार संघात के बाद 72 घंटे के भीतर मर जाएंगे।

उबरना[25] : उबरने वाले चरण का उद्देश्य प्रभावित क्षेत्र को यथापूर्व स्थिति में बहाल करना है। इसका लक्ष्य प्रतिक्रिया चरण से भिन्न है। उबरने के प्रयास उन मुद्दों और निर्णयों से संबंधित हैं, जो तत्काल आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद किए जाने चाहिए, उबरने के प्रयास मुख्य रूप से नष्ट संपत्ति, पुनर्रोजगार और अन्य आवश्यक बुनियादी ढांचे की मरम्मत संबंधी कार्य हैं। समुदाय और बुनियादी ढांचे में आपदा पूर्व निहित जोखिम को कम करने के उद्देश्य से 'वापस बेहतर बनाने' के प्रयास किए जाने चाहिए अन्यथा अलोकप्रिय न्यूनीकरण उपायों के कार्यान्वयन के लिए 'अल्पकालीन अवसर' का लाभ उठाना, उबरने के प्रभावी प्रयासों का एक महत्वपूर्ण पहलू हैं। आपदा की स्मृति ताजा रहने पर प्रभावित क्षेत्र के नागरिकों द्वारा अधिक न्यूनीकरण परिवर्तनों को स्वीकार किए जाने की अधिक संभावना है। मनुष्य के जीवन को तत्काल खतरा कम हो जाने पर उबरने का चरण शुरू होता है। पुनर्निर्माण के दौरान संपत्ति का स्थान या निर्माण सामग्री पर विचार करने की सिफारिश की जाती है।

सबसे चरम गृह कारावास परिदृश्यों में सम्मिलित हैं युद्ध, अकाल और महामारी तथा यह एक साल या अधिक के लिए हो सकता है। तब घर के भीतर ही उबरना होगा, इन घटनाओं के योजनाकार आमतौर पर थोक में खाद्य पदार्थ, उचित भंडारण और तैयारी के उपकरण खरीदते हैं और सामान्य जीवन की तरह खाना खाते हैं। विटामिन की गोलियां, गेहूं, सेम, सूखे दूध, मक्का और खाना पकाने के तेल से एक साधारण संतुलित आहार तैयार किया जा सकता है। जब भी संभव हो सब्जियां, फल, मसाले और मांस, तैयार और ताजा दोनों ही शामिल करने चाहिए।

आपदा कालीन प्रबन्धन के सिद्धांत[25] : 2007 में फेमा आपातकालीन प्रबंधन उच्च शिक्षा परियोजना के वेन ब्लोन्शों

ने आपात प्रबंधन के सिद्धांतों पर विचार करने के लिए फेमा आपातकालीन प्रबंधन संस्थान के अधीक्षक, कोरतेज लॉरेंस के निर्देशन में आपात प्रबंधन वृतिकों और शिक्षाविदों का एक कार्यदल बुलाया। यह परियोजना इस बोध से प्रेरित हुई कि ''आपातकालीन प्रबंधन के सिद्धातों' पर असंख्य किताबें, लेख और निबन्ध उपलब्ध तो हैं लेकिन साहित्य की इतनी विशाल सारणी में इन सिद्धांतों की सर्वमान्य परिभाषा कहीं नहीं है। समूह निम्नलिखित आठ सिद्धांतों पर सहमत हुआ जो आपातकालीन प्रबंधन के सिद्धांत के विकास के लिए एक मार्गदर्शी के तौर पर प्रयुक्त होंगे।

1. व्यापक-आपातकालीन प्रबंधक आपदाओं से संबंधित सभी खतरों, सभी चरणों, सभी हितधारकों और सब प्रभावों पर विचार करते हैं और ध्यान में रखते हैं।
2. प्रगतिशील-आपातकालीन प्रबंधक भावी आपदाओं का पूर्वानुमान लगाते हैं और आपदा-प्रतिरोधी और आपदा-समुत्थान समुदाओं के निर्माण के लिए निवारक और तत्परता उपाय करते हैं।
3. जोखिम उन्मुख-प्राथमिकताओं और संसाधनों के समनुदेशन में आपातकालीन प्रबंधक उपयुक्त जोखिम प्रबंधन के सिद्धांतों (खतरे की पहचान, जोखिम विश्लेषण और प्रभाव विश्लेषण) का उपयोग करते हैं।
4. एकीकृत-आपातकालीन प्रबंधक सरकार के सभी स्तरों और एक समुदाय के सभी तत्वों के बीच में प्रयास की एकता सुनिश्चित करते हैं।
5. सहयोगी-आपातकालीन प्रबंधक व्यक्तियों और संगठनों के बीच व्यापक और सत्यनिष्ठ संबंध बनाते हैं ताकि विश्वास, एक टीम के वातावरण, आम सहमति और संप्रेषण को प्रोत्साहन मिले।
6. समन्वित-एक आम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आपातकालीन प्रबंधक सभी सम्बद्ध हितधारकों को गतिविधियों को समकालिक बनाते हैं।
7. लचीला-आपदा चुनौतियों को हल करने में आपातकालीन प्रबंधक रचनात्मक और नवीन उपायों का उपयोग करते हैं।
8. पेशेवर-आपातकालीन प्रबंधक शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुभव, नैतिक आचरण, सार्वजनिक नेतृत्व और सतत् सुधार पर आधारित विज्ञान और ज्ञान-आधारित उपाय को महत्व देते हैं।

आपदा प्रबन्धन हेतु राष्ट्रीय संगठन [26]

भारत में आपातकाल प्रबंधन की भूमिका गृह मंत्रालय के अधीनस्थ सरकारी एजेंसी भारतीय राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के कंधों पर आती है। हाल के वर्षो में महत्व में बदलाव आया है, प्रतिक्रिया और उबरने से रणनीतिक जोखिम प्रबंधन और न्यूनीकरण तथा सरकारी केंद्रित दृष्टिकोण से विकेन्द्रीकृत समुदाय की भागीदारी की ओर, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय एक आंतरिक एजेंसी का समर्थन करता है, जो आपात प्रबंधन की प्रक्रिया में भू-वैज्ञानिकों, ज्ञान और विशेषज्ञता को सम्मिलित कर अनुसंधान को सुसाध्य बनाती है।

हाल ही में भारत सरकार ने सार्वजनिक/निजी भागीदारी का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह का गठन किया है। यह मुख्य रूप से भारत-आधारित एक बड़ी कम्प्यूटर कंपनी द्वारा वित्तपोषित है और इसका उद्देश्य आपदाओं के रूप में वर्णित घटनाओं के अलावा आपात स्थितियों के प्रति समुदायों की सामान्य प्रतिक्रिया में सुधार लाना है। प्रथम रिस्पोंन्डर्स के लिए आपात प्रबंधन प्रशिक्षण (भारत में पहली बार), एकल आपातकालीन टेलीफोन नंबर की रचना और ईएमएस स्टाफ के लिए मानक, उपकरण और प्रशिक्षण की स्थापना का प्रावधान समूह के शुरूआती कुछेक प्रयासों में सम्मिलित है। वर्तमान में यह तीन राज्यों में प्रचालित है। हॉलांकि इसे राष्ट्रव्यापी प्रभावी समूह बनाने के प्रयास जारी हैं।

निष्कर्ष : संसाधनों की कमी वाले राज्यों में आपदा के प्रभाव को कम करने के लिए विकास नियोजन में पूर्वानुमानित जोखिम न्यूनीकरण निवेश करना महत्वपूर्ण है। निवेश करने के लिए जोखिम सूचित निर्णयों की ओर बढ़ना एक विवेकपूर्ण कदम होगा।

उच्च आपदाग्रस्त क्षेत्रों में भविष्य के लिए नियोजित परियोजनाओं में अनिवार्य रूप से आपदा जोखिम का लेखा-जोखा होना चाहिए। निवेश चाहे निजी हो या सार्वजनिक, वह विकास की उपलब्धियों की रक्षा करने तथा प्रतिरोध क्षमता प्राप्त करने के मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। आपदा जोखिम के लिए एक व्यापक और एक अधिक जन-केंद्रित निवारक दृष्टिकोण होना चाहिए। इस दृष्टिकोण में स्वैच्छिक संगठनों की सहायता ली जा सकती है। इन संगठन को आपदा जोखिम न्यूनीकरण कार्यों में समावेशी एवं सुलभ होने की आवश्यकता है। सरकार को संबंधित हितकारकों, खास तौर पर निजी क्षेत्रों को सहूलियत तथा प्रोत्साहन के साथ-साथ नीतियों, योजनाओं एवं मानकों को बनाने तथा उनके कार्यान्वयन में सम्मिलित करना

चाहिए। यदि आपदा प्रबंधन में स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी अनुदान के माध्यम से की जाये तो आपदा का प्रबंधन बहुत अच्छे से किया जा सकेगा। वास्तव में आपदा जोखिमों को कम कर दिया जाय तो कुछ हद तक आपदाओं का प्रबंधन किया जा सकता है। इसके लिए स्वैच्छिक संगठनों पर सरकार एवं समाज को विश्वास करना होगा। आने वाले भविष्य में यदि स्वैच्छिक संगठनों को अच्छी तरह से क्रियान्वित किया जाये जो आपदा तत्परता का प्रबंधन आसानी से किया जा सकेगा।

सन्दर्भ

1. https://www.macrotrends.net/countries/IND/india/population
2. यादव विरेन्द्र सिंह (सम्प.) 'प्राकृतिक आपदायें एवं मानवीय प्रबंधन के विविध स्वरूप', में लिखित सम्पादकीय से उद्दृत, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 4
3. Speech of Prime Minister Shri Atal Bihari Vajpayee in India Conference on, 'Role of Voluntary Sector in National Development', April 20, 2002, New Delhi, National Informatics Centre.
4. The Disaster Management Act, 2005, part-II, Section 2(d), p. 2.
5. कुमार, संतोष, 'आपदा जोखिम प्रबंधन', योजना, अंक 01, जनवरी, 2017, पृ. 18
6. Freedom of Association in Encyclopedia of the Social Sciences, Vol. 6, New York, Macmillan, Year, 1931, Page, 447.
7. G. D. H. Cole, 'Voluntary Social Services' (ed.) by A. F. C. Bourdilon, London, Methuen, Year, 1945, p. 11.
8. Michal Banton, 'Anthropolitical, Voluntary Association', in David L. Sills (ed.) International Encyclopedia of Social Sciences, Vol. 16, New York, The Macmillan Co., and the Free Press, Year, 1968, p. 538.
9. William Beveridge, 'Voluntary Action in Changing World', London, Bedford Square Press, National Council of Social Services, Year, 1979, p. 100.
10. V. M. Kulkarni, 'Voluntary Action in a Developing Society', Indian Institute of Public Administration, New Delhi, Year, 1969, p., 8.
11. Michael Banton, 'Anthropolitical Aspects', Voluntary Associations in David, L. Sills (ed.) International Encyclopedia of Social Sciences, Vol. 16, New York, The Macmillan Co. & the Free Press, Year, 1968, p. 358.
12. David & Sills, op. cit., pp. 362-363.
13. Norman Johnson, 'Voluntary Social Services', Oxford, Basit Blackwell and Mortin, Robertson, Year, 1981, p.14.
14. Planning Commission Seventh Five Year Plan (1985-1990), Govt. of India, New Delhi, 1985.
15. Smith and Freeman, 'Voluntary Association, Perspective in the Literature', Cambridge (Mass), Harward University Press, 1972.
16. M. A. Mutalib, 'Voulutarism and Development-Theoretical Perspectives', in the Indian Journal of Public Administration, Vol. XXXIII, No, 3, July-Sept., Year, 1987.
17. N. R. Inamdar, 'Role of Voluntarism in Development', op. cit. Indian Journal of Public Administration 33(3) 1987, p. 421
18. https://www.outlookindia.com/website/story/disaster-management-isnt-just-rescue-and-relief-operations-m-shashidhar-reddy/315448
19. Cunny, Fred C., 'Disasters and Development', Oxford University Press, Year, 1983.
20. https://web.archive.org/web/20110816182821/http:// ecommons. txstate.edu/arp/312/ |date, 16 August 2011.
21. https://web.archive.org/web/20110716153737/http://training.fema.gov/EMIWeb/edu/fem.asp, date, 16 July 2011.
22. https//hi.wikipedia.org/wiki/ आपदा तत्परता # न्यूनीकरण
23. https://web.archive.org/web/20170127102512/https://www.fema.gov/pdf/government/npg.pdf, date, 27 January 2017
24. Walker, 'International Search and Rescue Teams', A League Discussion Paper, League of the Red Cross and Red Crescent Societies, Geneva, Year, 1991.
25. Alexander, 'Principles of Emergency Planning and Management', Terra Publishing, Harpenden, Year, 2002.
26. https://web.archive.org/web/20180424135333/http://www.iaem.com/publications/documents/PrinciplesofEmergencyManagement.pdf
27. http://www.the-eps.org आपातकालीन योजना सोसायटी, date, 23 March 2011 https://web.archive.org/web/20180628154030/https://www.the-eps.org/date, 28 June 2018

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

सोशल मीडिया का उच्चतर शिक्षार्थियों पर प्रभाव

❑ सुश्री गोल्डी कुमारी

सोशल मीडिया आज छात्रों के जीवन का अभिन्न अंग है। इस आधुनिक मीडिया ने छात्रों के व्यक्तिगत, पारिवारिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया है। इन सभी पक्षों में सर्वाधिक प्रभाव छात्रों की शैक्षणिक गतिविधियों पर पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि सोशल मीडिया का उच्चतर शिक्षा के छात्रों की शिक्षा पर कैसा प्रभाव पड़ा है। इस अध्ययन में अध्ययन क्षेत्र के रूप मे दरभंगा जिले के ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान संकाय को लिया गया। यह शोध कार्य वर्णनात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। समग्र से 162 उत्तरदाताओं का चयन स्तरीकृत दैव निर्देशन विधि द्वारा किया गया। आँकड़ों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। साथ ही आवश्यकतानुसार द्वितीयक स्त्रोंतों से भी सूचना प्राप्त की गयी। अध्ययन से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया का प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में पड़ा है। एक ओर छात्रों द्वारा सोशल मीडिया का प्रयोग पढ़ाई के लिए किया जाता है जिससे उनकी शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तो दूसरी ओर पढ़ाई के दौरान बार-बार अपडेट्स चेक करने तथा वर्ग-संचालन के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग करने से उनकी एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सूचक शब्दः सोशल मीडिया, उच्चतर शिक्षा, प्रभाव।

मीडिया का अभिप्राय जनसंचार के उन साधनों- समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियों, टेलीविजन, टेलीफोन, सिनेमा, कम्प्यूटर एवं इंटरनेट आदि-से हैं, जिसके माध्यम से सूचनाओं, विचारों एवं क्रियाकलापों को बड़े हिस्से तक पहुँचाना होता है। आर.के. शर्मा के अनुसार के अनुसार ''मीडिया युवाओं की भावनाओं व विचारों को अधिक प्रभावित करता है। वह पुराने मूल्यों व मनोवृत्तियों के स्थान पर नये मूल्यों एवं मनोवृत्तियों को स्थापित करता है।''[1]

जहाँ तक सोशल मीडिया का प्रश्न है, सोशल मीडिया इंटरनेट आधारित सूचना संचालन का माध्यम है जिसमें उपयोगकर्त्ताओं को विभिन्न प्रकार की सामग्रियों (जैसे फोटो, वीडियो तथा टेक्स्ट आदि) को साझा करने का अवसर रहता है। डेविड लैंडस बर्गेन के अनुसार ''सोशल मीडिया उपकरणों का एक मंच है जो सामाजिक संचार की कई आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सोशल मीडिया एक उपकरण है जो (1) व्यक्तियों को अधिक सुगमता से मानवीय नेटवर्क का उपयोग करने की अनुमति देता है। (2) ब्रॉडकास्ट संचार की अपेक्षा अन्तःक्रियात्मक है, (3) शक्तिशाली है क्योंकि यह न केवल टेक्स्ट का प्रयोग करता है बल्कि वीडियों, ऑडियों के साथ-साथ ''मल्टीमीडिया'' है, (4) संचार को सुविधाजनक बनाने के लिए साधन और उद्देश्यों पर निर्भर करता है।''[2] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया हमारे संचार की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके द्वारा बड़ी सुगमता से लोगों से जुड़ सकते है। संचार के अन्य माध्यम की तुलना में यह शक्तिशाली है क्योंकि इसमें सभी प्रकार की सुविधाएँ एक ही स्थान पर मिल जाती है। ऑडियों, वीडियों तथा टेक्स्ट आदि सभी प्रकार के सामग्री का संचालन सोशल मीडिया पर सम्भव है।

सोशल मीडिया की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार से हैंः

1. उपभोक्ता से निर्माता में परिवर्तन : सोशल मीडिया की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें उपभोक्ता को निर्माता बनने का अवसर रहता है। इसमें लोगों को केवल संदेश प्राप्त नहीं करना होता है, बल्कि सूचना का निर्माण एवं प्रसार करने का भी मौका रहता है। सोशल मीडिया ने हर एक व्यक्ति को कंटेंट निर्माता बनने का अवसर प्रदान किया है।

2 .अन्तः क्रियात्मक : इस आधुनिक मीडिया की विशेषता इसका अन्तः क्रियात्मक होना है। इसके माध्यम से प्रेषक और प्राप्तकर्त्ता संदेशों का आदान-प्रदान निर्बाध रूप से कर सकते है अर्थात् सोशल मीडिया में संचार दोतरफा रहता है। यह सारे उपयोगकर्त्ताओं को आपस में संलग्न करता है और उनकी भागीदारी बढ़ाता है।

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

3. **लोकतांत्रिक एवं विकेन्द्रीकृत :** सोशल मीडिया सूचना संचालन का लोकतांत्रिक एवं विकेन्द्रीकृत माध्यम है। इसमें जनता की भागीदारी सर्वाधिक होती है। इसे 'जनता का मीडिया' भी कहा जाता है। लोगों को अपने विचार स्वतंत्र रूप से प्रगट करने का अवसर होता है। इस आधुनिक मीडिया की संरचनात्मक ढाँचे पर यद्यपि व्यावसायिक संस्था का अधिकार होता है परन्तु विषय-वस्तु के निर्माण, उसके प्रसारण और संपादन का नियंत्रण उनके उपयोकर्त्ताओं के हाथों में होता है। इस कारण सोशल मीडिया विकेन्द्रीकृत है।
4. **तीव्रता :** इस आधुनिक मीडिया में सूचना का संचालन त्वरित गति से होता है। कोई भी घटना घटित होने के पश्चात् ही पूरी दुनिया में त्वरित गति से पहुँच जाती है। इस तरह त्वरित सूचना का उत्पादन, त्वरित प्रेषण के साथ त्वरित फीडबैक इसकी प्रमुख विशेषता है।
5. **शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों के लिए उपयुक्तः** सोशल मीडिया की एक खास विशेषता है कि इसका उपयोग शिक्षित व अशिक्षित कोई भी कर सकता है। इसी कारण आज इसका प्रयोग छोटे-छोटे बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक कर रहे हैं। इसका उपयोग करना काफी सरल है।
6. **आम लोगों की सहभागिता :** सोशल मीडिया को आम लोगों की मीडिया कहा जाता है। इस विशेषता के कारण यहाँ आम लोगों को भी अपने विचार को पूरी दुनिया में प्रसारित करने का अवसर मिला है। आज यह मीडिया आम लोगों को अपनी पहचान विश्व भर में बनाने का मौका दे रहा है।
7. **स्थायित्व :** सोशल मीडिया में सूचनाओं की स्थायित्वता बनी रहती है। जो सूचना एक बार सोशल मीडिया पर डाल दी जाती है, उसे फिर से दोबारा देखना आसान होता है, जब तक कि सूचना को डिलीट नहीं किया जाए। इस प्रकार सोशल मीडिया सूचनाओं को संग्रहित करने का उत्तम साधन है।
8. **संपादित करने का अवसर :** सोशल मीडिया में सूचना को प्रेषित करने से पहले संपादित करने का अवसर रहता है। किसी सूचना की त्रुटियों को संपादित कर सुधार किया जा सकता है।

इस प्रकार सोशल मीडिया अनेक विशेषताओं से युक्त है। इन विशेषताओं के करण यह मीडिया लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। इसकी लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं।

उच्च शिक्षा का अर्थ है सामान्य रूप से सबको दी जानेवाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष, विशद् तथा सूक्ष्म शिक्षा से है। उच्च शिक्षा तृतीयक शिक्षा है जो एक अकादमिक डिग्री प्रदान करती है। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कॉलेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती है। इसके अन्तर्गत स्नातक, स्नातकोत्तर, व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते है।[3]

वर्तमान समय में सोशल मीडिया हम सभी के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। खासकर छात्रों का आकर्षण सोशल मीडिया से काफी ज्यादा है। यही कारण है कि इसका प्रभाव उनके व्यक्तिगत, पारिवारिक, शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन पर पड़ा है। इन सभी पक्षों में सर्वाधिक प्रभाव छात्रों के शैक्षणिक स्तर पर पड़ा है। इस आधुनिक मीडिया ने एक ओर शिक्षा प्राप्त करने का नया मार्ग प्रशस्त किया है तो दूसरी ओर यह छात्रों को उनके लक्ष्यों से भटकाने का भी कार्य कर रहा है। सोशल मीडिया ने शिक्षा व्यवस्था को नया स्वरूप प्रदान किया है। पहले जहाँ छात्रों को लाइब्रेरी में जाकर पढ़ना होता था, वहीं आज वह घर में रहकर आराम से पढ़ सकते है। इसमें सोशल नेटवर्किंग साइट्स (यूट्यूब, फेसबुक, व्हाट्सएप एवं टेलीग्राम आदि) महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यूट्यूब आज शिक्षा प्राप्त करने का लोकप्रिय माध्यम है। यहाँ पर बड़े-बड़े संस्थानों के विशेषज्ञों द्वारा छात्रों को पढ़ाया जाता है। किसी भी विषय की जानकारी छात्रों को आसानी से मिल जाती है। कई शैक्षणिक संस्थानों द्वारा लाइव क्लासेज चलाए जाते हैं, जहाँ छात्रों को अपने डाउट्स को आराम से दूर करने का अवसर रहता है। आज ग्रामीण छात्र भी ऑनलाइन पढ़ाई करते हैं। यूट्यूब के अलावा फेसबुक पर भी शिक्षकों द्वारा अपने विषय से सम्बन्धित वीडियों अपलोड किए जाते हैं। आज सभी शिक्षण संस्थानों के शिक्षकों द्वारा व्हाट्सएप ग्रुप या टेलीग्राम ग्रुप बनाकर अध्ययन सामग्री तथा अन्य सूचनाओं का संप्रेषण किया जाता है। छात्रों द्वारा भी समूहों का निर्माण किया जाता है जहाँ अध्ययन सामग्री तथा अन्य विषय पर विचार-विमर्श किया जाता है। यूट्यूब के द्वारा

विभिन्न प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी की जाती है एवं करियर से सम्बन्धित जानकारी भी मिल जाती हैं। इस नयी मीडिया की एक बड़ी समस्या है कि यहाँ सूचनाओं की विश्वसनीयता में संदेह की गुंजाइश बनी रहती है। यूट्यूब पर कुछ व्यक्ति शिक्षा से सम्बन्धित गलत सूचना प्रदान करते हैं, ऐसी स्थिति में छात्रों के लिए सत्यता की जाँच करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार से यह मीडिया बहुत गुणी है परन्तु इसके कुछ अवगुण हैं जिससे बचकर रहने की आवश्यकता है। इसके बाद भी सोशल मीडिया ने छात्रों को कम पैसे, कम मेहनत एवं कम समय में पढ़ने का अवसर प्रदान किया है।

साहित्य समीक्षाः तुश्त्री पी. बकरानिया[4] ने अपने शोध पत्र 'इम्पैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन कॉलेज स्टूडेन्ट्स' में पाया है कि छात्रों द्वारा सोशल मीडिया का प्रयोग अंधाधुन्ध किया जा रहा है जिसके कारण उनके शैक्षणिक प्रदर्शन पर दुष्प्रभाव पड़ा है तथा उनका व्यवहार विचलित होता जा रहा है। अध्ययन के निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि सामाजिक मीडिया छात्रों की शैक्षणिक गतिविधियों को नुकसान पहुँचा रहा है।

नवनीत शर्मा[5] ने अपने शोध कार्य 'सोशल मीडिया का किशोर विद्याथियों के सामाजिक व्यवहार, अध्ययन आदतों एवं शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव' में पाया है कि किशोर छात्रों के अध्ययन आदतों पर सोशल मीडिया का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, परन्तु इसका दुरूपयोग करने से उनकी एकाग्रता क्षमता को हानि पहुँचती है, जिसके परिणामस्वरूप छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में कमी आती है।

हरसीत लेड[6] ने अपने शोध पत्र 'द पॉजिटिव एण्ड निगेटिव इम्पैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन एजुकेशन, टीनेजर्स, बिजनेस एण्ड सोसायटी' में पाया है कि सोशल मीडिया छात्रों के जीवन का अभिन्न अंग है। इसके द्वारा उनकी बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। सोशल मीडिया पर छात्रों को वर्चुअल ग्रुप बनाने का अवसर मिलता है जहाँ वो विभिन्न तरह के टॉपिक पर चर्चा करते हैं। अकादमिक गतिविधियों पर सोशल मीडिया का दुष्प्रभाव देखा जा सकता है। जहाँ पहले छात्र घण्टों किताबों तथा पेन-कॉपी का इस्तेमाल कर पढ़ते थे, वही आज अधिक समय पढ़ने में परेशानी की अनुभूति होती है। इसका कारण सोशल नेटवर्किंग साइट्स का आकर्षण है। अध्ययन से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया से छात्रों की शिक्षा की गुणवत्ता, उनकी रचनात्मकता बढ़ती है परन्तु इसका दुरूपयोग करने से उनकी एकाग्रता क्षमता में कमी आती है। इसलिए इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।

दिव्या गोयल एवं मितुशी सिंह[7] ने अपने शोध पत्र 'इम्पैक्ट ऑफ स्टूडेन्ट्स ऐटिट्यूड टूवार्ड्स सोशल मीडिया यूज इन एजुकेशन ऑन देयर एकेडमिक परफॉर्मेन्स' में पाया है कि सोशल मीडिया शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है। मैनेजमेंट के छात्रों को प्रोजक्ट तैयार करने में काफी सहायता मिलती है। छात्रों का कहना है कि इसमें निजता की खतरे की समस्या रहती हैं। अध्ययन में पाया गया कि सोशल मीडिया छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

प्रिया श्रीवास्तव एवं ए0 लोकनाथन[8] ने अपने शोध पत्र 'इम्पैक्ट ऑफ सोशल नेटवर्किंग साइट ऑन द एजुकेशन ऑफ यूथ' में पाया है कि सोशल मीडिया का प्रभाव शिक्षा पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनो रूपों में पड़ा है। अध्ययन से स्पष्ट है कि एक तरफ सोशल मीडिया ने शिक्षा प्राप्त करने का नया मार्ग प्रशस्त किया है तो दूसरी ओर युवाओं का ध्यान भटकाने मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा हैं। शोधकर्त्ताओं का कहना है कि माता-पिता और शिक्षकों को सोशल मीडिया की सही उपयोग करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। युवाओं को साइबर क्राइम से बचाने के लिए साइबर सेफ्टी एजुकेशन देनी चाहिए।

जाहिद आमिन, अहमद मनसूर, शायद राबित हुसैन एवं फैजल हसमत[9] ने अपने शोध पत्र 'इम्पैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन स्टूडेन्ट्स एकेडमिक परफॉर्मेन्स' में पाया है कि सोशल मीडिया युवाओं को बेहतर करियर और भविष्य बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह आधुनिक मीडिया छात्रों के लिए उपयोगी उपकरण है जिससे उन्हें एकेडमिक कार्यो में मदद मिलती है। अध्ययन के निष्कर्ष से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया का प्रभाव सकारात्मक है। यह छात्रों के उज्जवल भविष्य में योगदान देता है।

विश्रान्ति राउत एवं प्रफुल्ला पाटिल[10] ने शोध पत्र 'यूज ऑफ सोशल मीडिया इन एजुकेशनः पॉजिटिव एण्ड निगेटिव इम्पैक्ट ऑन द स्टूडेन्ट्स' में पाया है कि छात्रों द्वारा सोशल मीडिया का ज्यादातर उपयोग मनोरंजन और शैक्षणिक कार्यों के लिए करते हैं। अधिकतर छात्र पढ़ाई से ज्यादा समय स्टेट्स अपडेट्स करने, व्हाट्सएप मैसेज

करने तथा फेसबुक देखने में लगाते हैं, जिससे उनका मन पढ़ाई से भटक जाता है। सोशल मीडिया पर अधिक समय व्यतीत करने में छात्रों के एकेडमिक परफॉर्मेन्स पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अनुज शियोपूरी एवं अनीता शियोपूरी[11] ने शोध पत्र 'इम्पैक्ट ऑफ सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऑन स्टडीज' में पाया है कि सोशल मीडिया के अधिकाधिक प्रयोग से छात्रों की शैक्षणिक क्रियाकलापों प्रभावित हो रही है। इस अध्ययन से पता चलता है कि छात्र स्वयं यह स्वीकार करते है कि यह उनके पढ़ाई में बाधा उत्पन्न करता है तथा उन्हें लक्ष्य से विमुख करता है।

उपर्युक्त साहित्यों के पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया शिक्षा प्राप्त करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। यदि छात्र इसका सकारात्मक प्रयोग करते है तो यह छात्रों के एकेडमिक परफार्मेन्स को बेहतर बनाता है परन्तु इसका दुरूपयोग करने से यह छात्रो को लक्ष्यों से भटकाता तथा एकेडमिक क्रियाकलापों को नुकसान पहुँचाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. सोशल मीडिया का प्रयोग करने वाले स्नातकोत्तर छात्रों का सामान्य परिचय प्राप्त करना।
2. सोशल मीडिया का छात्रों की शिक्षा में उपयोग की जानकारी प्राप्त करना।
3. सोशल मीडिया का पढ़ाई के दौरान उपयोग की जानकारी प्राप्त करना।
4. सोशल मीडिया का वर्ग संचालन के दौरान उपयोग की जानकारी प्राप्त करना।
5. सोशल मीडिया के छात्रों की एकाग्रता क्षमता पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त करना।

परिकल्पनाएँ:-

1. उच्चतर शिक्षा में लड़कियों की तुलना में लड़को की भागदारी अधिक होती है।
2. सोशल मीडिया का छात्रों की शिक्षा पर नकारात्मक की तुलना में सकारात्मक प्रभाव अधिक पड़ता है।
3. सोशल मीडिया छात्रों की एकाग्रता क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव की तुलना में नकारात्मक प्रभाव अधिक डालता है।

अध्ययन क्षेत्रः प्रस्तुत अध्ययन में दरभंगा जिले के ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार) के सामाजिक विज्ञान संकाय को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन किया गया। इस विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान संकाय के अन्तर्गत 8 विषयों की पढ़ाई होती है। ये विषय हैः समाजशास्त्र, भूगोल, गृह विज्ञान, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, प्राचीन इतिहास और संस्कृति एवं अर्थशास्त्र। प्रत्येक विषय में चार सेमेस्टर होते है। वर्तमान में दो सेमेस्टर की पढ़ाई चल रही है। इन सभी विषयों में सर्वाधिक विषय की पढ़ाई नरगौना पैलेस में होती है। केवल गृह विज्ञान तथा प्राचीन इतिहास और संस्कृति की पढ़ाई अन्यत्र होती है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध कार्य मुख्यतः वर्णनात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। समग्र से निदर्श का चयन स्तरीकृत निदर्शन विधि के द्वारा किया गया। प्रत्येक विषय की पढ़ाई में चल रहे दोनों सेमेस्टर से 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं का चयन स्तरीकृत दैव निदर्शन विधि के द्वारा किया गया। सम्पूर्ण समग्र से 10 प्रतिशत उत्तरदाता का चयन करने का कारण यह है कि समग्र का आकार काफी बड़ा था। समग्र से 10 प्रतिशत प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्श का चयन स्तरीकृत दैव निदर्शन विधि के द्वारा किया गया जो पूरे समग्र का सही प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार कुल 162 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। तथ्य संकलन करने के लिए प्राथमिक स्त्रोतों के संदर्भ में साक्षात्कार प्रविधि का उपयोग किया गया। साथ ही साथ अवलोकन का भी प्रयोग किया गया। आवश्यकतानुसार द्वितीयक स्त्रोंतो के माध्यम से भी सूचना प्राप्त की गई। यंत्र के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया।

तालिका संख्या : 1

उत्तरदाताओं का लिंग

लिंग	संख्या	प्रतिशत
स्त्री	109	67.28
पुरूष	53	32.72
अन्य	0	0
कुल योग	162	100

सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार लिंग है। लिंग के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण समाज व संस्कृति द्वारा निर्देशित तथा नियन्त्रित होता है। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में स्त्रियों का प्रतिशत 67.28 है तथा पुरूषों का प्रतिशत 32.72 है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि स्त्रियों के प्रतिशत की बहुलता हैं। आनुभविक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि लड़कियों का प्रतिशत अधिक होने का कारण यह है कि उन्हें आज भी लड़कों की तुलना में अपने स्थान से दूसरे

स्थान पर जाकर पढ़ने की आजादी कम दी जाती है जबकि लड़के की संख्या कम होने का कारण है कि अधिकांश लड़कों को पढ़ने के लिए बाहर भेज दिया जाता है, यहाँ वही लड़के पढ़ते हैं जिनके पास साधनों की कमी रहती है या जो उतने योग्य नहीं होते। साथ ही एक और कारण है कि लड़कियाँ लड़कों की तुलना में सामाजिक विज्ञान विषय का चयन अधिक करती हैं। इन दोनों कारणों के पीछे पारिवारिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति की भूमिका रहती है। इस प्रकार परिकल्पना 1 अप्रमाणित सिद्ध होती हैं।

तालिका संख्या : 2

उत्तरदाताओं की जाति

जाति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य जाति	70	43.21
पिछड़ी जाति	39	24.07
अनुसूचित जाति	53	32.72
कुल योग	162	100

भारतीय समाज की अनोखी विशेषता जाति व्यवस्था है। यह विभिन्न प्रकार की जातियों में विभाजित है। प्रत्येक जाति के विचार, रहन-सहन तथा खान-पान आदि में भिन्नता पायी जाती है। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामान्य जाति के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 43.21 है। 32.72 प्रतिशत उत्तरदाता अनुसूचति जाति के हैं तथा 24.07 प्रतिशत उत्तरदाता पिछड़ी जाति के हैं। आँकड़ों के आधार पर स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सबसे अधिक सामान्य जाति के हैं।

तालिका संख्या : 3

उत्तरदाताओं की धर्म

धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दू	138	85.19
मुस्लिम	24	14.81
अन्य	0	0
कुल योग	162	100

भारतीय समाज में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को नियन्त्रित और निर्देशित करता है। प्रत्येक धर्म की अपनी प्रथाएँ, संस्कृति तथा रीति-रीवाज होते हैं। सभी व्यक्तियों को अपने धर्म से जुड़े नियमों का पालन करना होता है। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में हिन्दुओं का प्रतिशत 85.19 तथा मुस्लिमों का प्रतिशत 14.81 है। स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सर्वाधिक हिन्दू हैं।

तालिका संख्या : 4

उत्तरदाताओं का निवास स्थान

निवास स्थान	संख्या	प्रतिशत
गाँव	49	30.25
कस्बा/शहर	17	10.49
नगर	96	59.26
महानगर	0	0
कुल योग	162	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में 59.26 प्रतिशत नगर में निवास करते हैं। 30.25 प्रतिशत उत्तरदाता गाँव में रहते हैं जबकि 10.49 प्रतिशत उत्तरदाता कस्बा/शहर में रहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सबसे अधिक नगर में निवास करते हैं। नगर में रहने वाले उत्तरदाताओं की संख्या अधिक होने का कारण यह है कि बहुत से छात्र पढ़ाई के लिए हॉस्टल या किराए के घर में रहते है।

तालिका संख्या : 5

उत्तरदाताओं के पिता का व्यवसाय

पिता का व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
कृषि	25	15.43
मजदूरी	19	11.73
सरकारी नौकरी	31	19.14
निजी नौकरी	28	17.28
व्यापार	51	31.48
कोई रोजगार नहीं	8	4.94
कुल योग	162	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 31.48 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता व्यापार करते है; 19.14 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता सरकारी नौकरी करते हैं तथा 17.28 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता निजी नौकरी करते हैं। 15.43 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता कृषि कार्य करते हैं तथा 11.73 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता मजदूरी करते हैं। केवल 4.94 प्रतिशत उत्तरदाता के पिता कोई रोजगार नहीं करते। स्पष्ट है कि सबसे अधिक उत्तरदाता के पिता व्यापार करते है। इसका कारण है कि व्यापार करने के लिए विशेष डिग्री की आवश्यकता नहीं होती। कम शिक्षित व्यक्ति भी छोटा व्यापार कर धन उपार्जन कर सकता है।

तालिका संख्या : 6

उत्तरदाताओं के पारिवारिक मासिक आय

पारिवारिक मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
20,000 से कम	74	45.68
20,000 – 60,000	68	41.98
60,001–1,00,000	17	10.49
1,00,000 से अधिक	3	1.85
कुल योग	162	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 45.68 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय 20,000 से कम है। 41.98 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय 20,000 – 60,000 है तथा 10.49 प्रतिशत उत्तरदाताओं का पारिवारिक मासिक आय 60,001–1,00,000 है। केवल 1.85 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय 1,00,000 से अधिक है। इस प्रकार आँकड़ो स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सबसे अधिक की पारिवारिक मासिक आय 20,000 से कम है।

तालिका संख्या : 7

छात्रों की पढ़ाई पर सोशल मीडिया का प्रभाव

पढ़ाई पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
सकारात्मक	41	25.31
नकारात्मक	10	6.17
सकारात्मक एवं नकारात्मक	111	68.52
कोई प्रभाव नहीं	0	0
कुल योग	162	100

सोशल मीडिया का छात्रों के जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा है। इसका प्रभाव उनकी पढ़ाई पर उसी प्रकार का पड़ता है जिस प्रकार वह इसका उपयोग अपनी पढ़ाई के लिए करते है। यदि छात्र सोशल मीडिया का उपयोग सही ढंग से करे तो इसका प्रभाव सकारात्मक होगा, परन्तु यदि इसका दुरूपयोग किया जाए तो इसके परिणाम विघटनकारी हो सकते हैं। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में 68.52 प्रतिशत मानते है कि सोशल मीडिया उनकी पढ़ाई पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनो प्रभाव डालता है। 25.31 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि सोशल मीडिया उनकी पढ़ाई पर सकारात्मक प्रभाव डालता है जबकि 6.17 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि सोशल मीडिया उनकी पढ़ाई पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि एक तरफ सोशल नेटवर्किंग साइट्स छात्रों के लिए शिक्षा प्राप्त करने का सुविधाजनक मार्ग प्रदान कर रहा है तो दूसरी ओर यह छात्रों की शिक्षा में अनेक प्रकार की बाधा (एकाग्रता क्षमता को नुकसान, तनाव एवं अनिद्रा आदि) उत्पन्न कर रहा है। जिससे उनकी शिक्षा पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार परिकल्पना 2 अप्रमाणित सिद्ध होती है।

तालिका संख्या : 8

सोशल मीडिया का शिक्षा के लिए उपयोग

शिक्षा के लिए उपयोग	संख्या	प्रतिशत
बहुत अधिक	26	16.05
अधिक	124	76.54
कम	12	7.41
बिल्कुल नहीं	0	0
कुल योग	162	100

सोशल मीडिया वर्तमान समय में शिक्षा प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। इस आधुनिक मीडिया ने छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने का नया मार्ग प्रदान किया है। यदि छात्र इसका उपयोग अपनी शिक्षा के लिए करें तो उन्हें काफी लाभ मिलेगा। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 76.54 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी शिक्षा में सोशल मीडिया का अधिक उपयोग करते हैं। 16.05 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया का बहुत अधिक उपयोग अपनी शिक्षा के लिए करते हैं तथा 7.41 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया का कम उपयोग अपनी शिक्षा के लिए करते हैं। आँकड़ों से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सर्वाधिक सोशल मीडिया का उपयोग अपना शिक्षा के लिए करते हैं। वर्तमान समय में छात्रों के पढ़ाई के लिए महत्वपूर्ण माध्यम सोशल मीडिया प्लेटफार्म यूट्यूब है। जहाँ छात्र अपने विषय से जुड़े विशेषज्ञों द्वारा पढ़ाई करते हैं।

तालिका संख्या : 9

सोशल मीडिया का पढ़ाई के दौरान उपयोग (अपडेट्स चेक करना)

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	98	60.49
नहीं	23	14.20
कभी–कभी	41	25.31
बिल्कुल नहीं	0	0
कुल योग	162	100

सोशल मीडिया एक शक्तिशाली संचार का माध्यम है

जिसमें उपयोगकर्त्ताओं को सभी प्रकार की सुविधाएँ (जैसे फोटो, ऑडियों-वीडियों तथा टेक्स्ट आदि) एक ही स्थान पर मिल जाती है। इसके इसकी इन्हीं विशेषताओं के कारण छात्रों का आकर्षण सोशल मीडिया से काफी अधिक हैं। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 60.49 प्रतिशत उत्तरदाता मानते है कि वह पढ़ाई के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग (अपडेट्स चेक) करते हैं। 25.31 प्रतिशत उत्तरदाता पढ़ाई के दौरान कभी-कभी सोशल मीडिया का उपयोग (अपडेट्स चेक) करते हैं तथा 14.20 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया का उपयोग (अपडेट्स चेक) पढ़ाई के दौरान नहीं करते हैं। इस प्रकार आँकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता पढ़ाई के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग (अपडेट्स चेक) करते हैं। यहाँ अपडेट्स चेक करने का तात्पर्य है कि छात्र पढ़ाई करते समय बीच-बीच में सोशल मीडिया प्लेटफार्म (जैसे व्हाट्सएप, फेसबुक तथा इंस्टाग्राम आदि) पर नई सूचना को देखते हैं। जैसेः मित्रों द्वारा लगाया व्हाट्सएप स्टेटस, फेसबुक पर मित्रों द्वारा शेयर की गयी नई सूचना तथा इंस्टाग्राम पर फिल्म कलाकारों द्वारा लगाया गया फोटो आदि को देखते हैं तथा उस पर टिप्पणी करते हैं। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान समय में छात्रों का आकर्षण सोशल मीडिया से काफी अधिक है जिसके कारण वह पढ़ाई के समय में भी स्वयं पर नियंत्रण नहीं रख पाते। पढ़ाई के समय बार-बार मैसेज, स्टेट्स अपडेट्स चेक करना तथा यूट्यूब आदि देखने से छात्रों की पढ़ाई पर नकारात्मक प्रभाव प्रड़ता है।

तालिका संख्या : 10

सोशल मीडिया का वर्ग संचालन के दौरान उपयोग

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	36	22.22
नहीं	58	35.80
कभी-कभी	63	38.89
बिल्कुल नहीं	05	3.09
कुल योग	162	100

सोशल मीडिया वर्तमान में हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम है, परन्तु छात्रों द्वारा इसका उपयोग जरूरत से अधिक किया जा रहा है। आज छात्र इससे इतना संलग्न हो गए हैं कि उन्हें यह ज्ञात नहीं रहता है कि इसका प्रयोग कहाँ नही करना चाहिए। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में 38.89 प्रतिशत वर्ग-संचालन के दौरान कभी-कभी सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। 35.80 प्रतिशत उत्तरदाता का कहना है कि वह वर्ग-संचालन के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग नहीं करते हैं जबकि 22.22 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया का उपयोग वर्ग-संचालन के दौरान करते हैं। 3.09 प्रतिशत उत्तरदाता वर्ग-संचालन के दौरान सोशल मीडिया का बिल्कुल उपयोग नहीं करते। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सबसे अधिक सोशल मीडिया का उपयोग वर्ग-संचालन के दौरान कभी-कभी करते हैं। यहाँ वर्ग संचालन का तात्पर्य है कि जब शिक्षक द्वारा व्याख्यान दिया जाता है तथा छात्र उस व्याख्यान में होते हैं। आँकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्रों को दिन-प्रतिदिन सोशल नेटवर्किंग साइट्स (व्हाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम तथा यूट्यूब आदि) की लत लगती जा रही है, जिसके कारण वह वर्ग-संचालन के दौरान भी कभी-कभी सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं जो उचित नहीं है।

तालिका संख्या : 11

छात्रों की एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
पूर्ण रूप से सहमत	90	55.56
आंशिक सहमत	62	38.27
पूर्ण रूप से असहमत	8	4.94
आंशिक असहमत	2	1.23
कह नहीं सकते	0	0
कुल योग	162	100

शिक्षा प्राप्त करने तथा लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अच्छी एकाग्रता क्षमता का होना अत्यन्त अनिवार्य है। एक छात्र के लिए अच्छी एकाग्रता क्षमता का होना उसकी सफलता के लिए परम आवश्यक है। सोशल मीडिया के आगमन से छात्रों की एकाग्रता क्षमता प्रभावित हो रही है। उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में 55.56 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण रूप से सहमत हैं कि सोशल मीडिया उनकी एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। 38.27 प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक सहमत है कि सोशल मीडिया उनकी एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। 4.94 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण रूप से असहमत है कि सोशल मीडिया उनकी एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। 1.23 प्रतिशत उत्तरदाता आंशिक असहमत है कि सोशल मीडिया

उनकी एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने का कारण है कि छात्र दिन-प्रतिदिन के जीवन में सोशल मीडिया पर बहुत अधिक समय व्यतीत करते है। यही कारण है कि उनका मन किसी भी कार्य में एकाग्रित नहीं हो पाता। इस प्रकार आँकड़ों से स्पष्ट है अधिकांश छात्र पूर्ण रूप से सहमत है कि सोशल मीडिया उनकी एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है जिसके कारण उनका मन पढ़ाई से भटक जाता है। परिणामस्वरूप उनके एकेडमिक परफॉर्मेन्स को नुकसान पहुँचता है। इस प्रकार परिकल्पना 4 प्रमाणित सिद्ध हुई।

निष्कर्षः आँकड़ों से स्पष्ट है कि सोशल मीडिया छात्रों की शिक्षा पर सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रभाव डालता है। एक ओर छात्रों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग पढ़ाई के लिए किया जा रहा है, जिससे उनकी शैक्षणिक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, तो दूसरी ओर पढ़ाई के दौरान बार-बार अपडेट्स चेक करने तथा वर्ग-संचालन के समय में भी सोशल मीडिया का उपयोग करने से उनके शैक्षणिक स्तर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही सोशल मीडिया छात्रों की एकाग्रता क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। जिसके कारण वह अपना मन पढ़ाई पर केन्द्रित नहीं कर पाते। उनका मन सोशल नेटवर्किंग साइट्स (व्हाट्सएप, फेसबुक, यूट्यूब एवं इंस्टाग्राम आदि) पर रहता है। इसके नकारात्मक पक्ष को दूर करने की आवश्यकता है, वरना यह छात्रों के करियर को बुरी तरह प्रभावित कर सकता है।

सुझावः-

1. वर्ग संचालन के दौरान स्मार्टफोन के प्रयोग पर रोक लगे तथा जो इस नियम का उल्लंघन करे, उसके लिए दण्ड की व्यवस्था हो।
2. कॉलेजों एवं यूनिवर्सिटीयों में सोशल मीडिया विषय पर संगोष्ठी होने की आवश्यकता है तथा विशेषज्ञों द्वारा सोशल मीडिया के नकारात्मक पक्ष को उजागर किया जाए। साथ ही इससे बचाव के सुझाव दिए जाने की आवश्यकता है।
3. माता-पिता तथा शिक्षकों द्वारा सोशल मीडिया के संयमित उपयोग करने की सीख तथा सही मार्गदर्शन देने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. सिंह, गोपी रमण प्रसाद, 'परिवर्तन और विकास का समाजशास्त्र' प्रिंटवेल टावर, दरभंगा, 2021 पृ. 70-71
2. सुमन, स्वर्ण, 'सोशल मीडिया-सम्पर्क क्रान्ति का कल, आज और कल,' हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, books.google.com.
3. https://en.m.wikipedia.org>wiki>Higher education
4. Bakrania, Tushti. P, 'Impact of Social Media on collage students', International Research Journal on Advanced Science Hub, Vol.-01, Issue - 08, 2020, pg.- 236-239.
5. शर्मा, नवनीत, 'सोशल मीडिया का किशोर विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार, अध्ययन आदतों एवं शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव', शोध गंगा, http://hdl.handls.net/10603/302056
http://hdl.hancdle.net/10603/312056, 2020
6. Lad, Harshit, 'The Positive and Negative Impact of Social Media on 'Education, Teenager, Business and Society', International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology, Vol.- 6, Issue 10, Oct. 2017.
7. Goel, Divya and Singh, Mitushi, 'Impact of Students attitudes towards Social Media use in education on their academic performance, AIMA Journal of Management & Research, Volume - 10, Issue 2/4, March 2016.
8. Srivastava, Priya and Lognathan, A, 'Impact of Social Networking sites on Education of Youth, International Journal of Applied research, Volume-6, Issue - 3, March 2016.
9. Amin, Zahid; Mansoor, Ahmad; Hussain, Syed Rabeet and Hashmat, Faisal, 'Impact of Social Media on Students Academic Performance', International Journal of Business and Management Invention, Volume - 5, Issue- 4, April 2016, pg. 22 - 24.
10. Raut, Vishranti and Patil, Prafulla, 'Use of Social Media in Education: Positive and Negative impact on the students', international Journal on Recent and Innovation Trends in Computing and Communication, Volume-4, Issue - 1, Jan 2016.
11. Sheopuri, Anuj and Sheopuri, Anita, 'Impact of Social networking sites on Studies', 'International Journal of core Engineering & Management, Volume - 1, Issue - 11, Feb. 2015.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

जनजातीय विकास में संवैधानिक प्रावधानों तथा सरकारी योजनाओं की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ दीपक कुमार खरवार
❖ प्रोफेसर विभूति भूषण मलिक

सूचक शब्दः जनजाति, संवैधानिक प्रावधान, योजना, विकास, नीतियां।

भारत विविधताओं का देश है, जिसमें विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, जाति आदि समुदाय के लोग रहते हैं जिनमें से आदिवासी भी एक है जो बृहत्तर भारतीय समाज से पृथक हमेशा प्राकृतिक क्षेत्रों में निवास करते रहे हैं। उनकी अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म, रीति-रिवाज एवं व्यवस्था रही है। सदियों से उनका भूमि, वन और अन्य संसाधनों पर नियंत्रण रहा है और वे स्वयं के कानूनों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों से शासित रहे हैं। औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेजों का ध्यान आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों की तरफ गया और उन्होंने अनेक प्रकार की नीतियां एवं कानून बनाकर आदिवासियों की प्राकृतिक संपदा का जमकर दोहन किया और जनजातियों के विकास की ओर कोई ध्यान नही दिया गया। पृथक्करण की नीति के आधीन इनको अलग-थलग रखा गया और यह मान लिया गया कि आदिवासी समुदाय अपना विकास स्वयं कर लेंगे। आदिवासी विकास से संबंधित इस प्रकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन पहली बार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देखने को मिलता हैं। धर्मनिरपेक्ष एवं समतावादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया गया तथा पृथक्करण की नीति को त्यागकर आत्मसातीकरण की नीति को अपनाया गया जिसके बाद ही आदिवासियों को मुख्यधारा में जोड़नें के लिए संविधान में विभिन्न प्रावधान किए गए। प्रस्तुत शोध पत्र में जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए किये गये संवैधानिक प्रावधानों तथा उनके विकास के लिए चलाए जा रहे विभिन्न विकास कार्यक्रमों, योजनाओं और नीतियों का अध्ययन क्षेत्र की जनजातियों पर पड़ने वाले सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं।

भारत में जनजातियों के विकास के लिए किसी भी नीति निर्माण की दुविधा यह रही है कि किस तरह से यह संतुलन बनाया जाय जिससे कि आदिवासियों की पहचान, भाषा, रीति-रिवाज, संस्कृति एवं मूल्यों का संरक्षण किया जा सके तथा मुख्यधारा की जीवन शैली के सैलाब से जनजातियों की रक्षा की जा सके। इसके साथ ही उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल और आय सृजन तक उनकी पहुँच को सुनिश्चित किया जा सके, जिससे कि उनके जीवन को और बेहतर बनाया जा सके। लेकिन यदि हम आदिवासी विकास के कालानुक्रमिक इतिहास को देखें तो 19वीं शताब्दीं के अन्त तक तो आदिवासी विकास के लिए किसी प्रकार का कोई प्रयास नही किया गया। उस समय तक समाजवैज्ञानिकों का मानना था कि चूंकि समाज का निरंतर विकास हो रहा है तथा वह एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ रहा है इसलिए आदिवासी विकास हेतु विशेष मानवीय प्रयत्नों की आवश्यकता नही है। इस प्रकार उद्विकासवादी सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने जनजातियों को अकेले छोड़ देने की नीति का समर्थन किया। आगे चलकर जनजातीय समस्याओं के निराकरण एवं जनजातीय कल्याण के लिए पृथक्करण की नीति को कुछ मानवशास्त्रियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समर्थन किया। आदिवासी विकास से संबंधित इस प्रकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन पहली बार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देखने को मिला। धर्मनिरपेक्ष एवं समतावादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया गया तथा पृथक्करण की नीति को त्यागकर आत्मसातीकरण की नीति को अपनाया गया। जवाहरलाल नेहरू ने एकीकरण का समर्थन करते हुए पंचशील का सिद्धान्त दिया जिसका उद्देश्य यह था कि एक ऐसा सामर्थ्यवान ढाँचा आदिवासी समुदाय को प्रदान किया जाए जिससे वे अपनी स्वशासन की प्रणाली में अपनी प्रतिभा के अनुरूप अपनी परम्परा, सांस्कृतिक जीवन एवं लोकाचार के सर्वश्रेष्ठ तत्वों को बनाये रखते हुए विकास के लाभ प्राप्त कर सकें। इसका क्रियान्वयन थोड़ा कठिन था क्योंकि भारत के लगभग 15 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रों में फैले प्रत्येक आदिवासी समुदाय आमतौर पर एक-दूसरे से भाषाओं, बोलियों, रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक प्रथाओं एवं जीवनशैलियों में काफी अलग-अलग हैं। इसलिए

❑ शोध अध्येता समाजशास्त्र विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
❖ डीन अम्बेडकर स्कूल ऑफ सोशल साइंस, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

स्वतंत्रता के बाद आदिवासी समुदाय के विकास के लिए जो भी प्रावधान किया गया उसमें इस बात का ध्यान रखा गया कि आदिवासियों के विकास के साथ-साथ उनकी अपनी संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज आदि को नुकसान न पहुँचे।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने आदिवासी विकास की ओर प्राथमिकता के आधार पर कार्य करने की नीति अपनाई। संविधान निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर व पिछड़े वर्गों को विकास के विशेष अवसर प्रदान किये जायें ताकि ये वर्ग देश की मुख्य धारा में अपने आप को समाहित कर सकें। संविधान में आदिवासी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए बहुत से प्रावधान किये गये तथा साथ ही अनेक प्रकार की नीतियों व कार्यक्रमों के माध्यम से इनका विकास करने का प्रयास किया गया।

स्वतंत्रता पूर्व जनजातीय विकास : भारत में लगभग 200 वर्षों तक अंग्रजों का शासन रहा। आदिवासी क्षेत्रों की दुर्गमता के कारण औपनिवेशिक काल के दौरान जनजातीय लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना कठिन था। इन क्षेत्रों में मिशनरियों के प्रवेश के बाद ही प्रशासन के अधिकारियों द्वारा आदिवासियों पर कुछ ध्यान देना शुरू किया गया। इतिहास दर्शाता है कि भारत में ब्रिटिश विधायिका ने 1874 का अनुसूचित जिला अधिनियम XIV पारित किया जिसके द्वारा स्थानीय सरकार को सशक्त किया गया और यह अधिकार दिया गया जिससे वे कुछ क्षेत्रों की पहचान कर सकें और उसे अनुसूचित क्षेत्र के रूप में घोषित कर सकें। भारत में आदिवासियों के विकास के लिए ब्रिटिश प्रशासन द्वारा कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। इन क्षेत्रों के पिछड़ेपन को अनुभव करते हुए 1882 के भारतीय शिक्षा आयोग ने आदिवासी क्षेत्रों में स्थित स्कूलों को स्कूल फीस न देने और अतिरिक्त अनुदान का भुगतान करने के रूप में आदिवासी बच्चों के लिए अधिमान्य उपचार का सुझाव दिया था।[2]

भारत में आदिवासी विकास की औपनिवेशिक नीति अलगाव की औपनिवेशिक नीति पर आधारित थी। औपनिवेशिक सरकार ने आदिवासियों के साथ अपने निहित स्वार्थो को ध्यान में रखते हुए कार्य किया। उन्होंने जनजातीय क्षेत्रों की क्षमता को अनुभव किया इसलिए जनजातीय क्षेत्रों को आशिंक रूप से बहिष्कृत क्षेत्र घोषित करके बाहरी लोगों या मैदानी लोगों के प्रवेश को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया। परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने आदिवासियों को आम लोगों से अलग करने की नीतियों का अनुसरण किया।[3] चूंकि अंग्रेज भी विशाल वन संपदा का दोहन करने और रक्षा एवं सुरक्षा के उद्देश्य से वन क्षेत्रों का उपयोग करने लिए बहुत उत्सुक थे, इसलिए इन क्षेत्रों में संचार में सुधार करना भी उनके लिए महत्वपूर्ण था। उन्होंने इन क्षेत्रों को सुलभ बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाए लेकिन इसके साथ ही साथ उसी समय आदिवासियों को मुख्य समाज से अलग-थलग भी रखा। आदिवासी क्षेत्रों में ब्रिटिश प्रशासन के प्रभाव पर लिखते हुए एच. हट्टन ने कहा कि आदिम जनजातियों को तत्काल लाभ होने के बजाय भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से उनमें से अधिकांश को लाभ से कहीं अधिक नुकसान ही पहुँचा है। यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक दिनों में ब्रिटिश प्रशासन ने जनजातियों के अधिकारों और रीति-रिवाजों की अनदेखी और उपेक्षा करके उनकी आर्थिक स्थिति को बहुत नुकसान पहुँचाया।[4] आदिवासी क्षेत्रों में संचार के खुलने, जंगलों की सुरक्षा और स्कूलों की स्थापना के कारण बहुत सारे परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप आदिवासियों के सामने बहुत सारी समस्याएँ उत्पन्न हो गईं।[5] यू0 एन0 ढेबर आयोग द्वारा भी आदिवासियों पर ब्रिटिश प्रशासन के प्रभाव का इसी प्रकार का अवलोकन प्रस्तुत किया गया है जिसमें वे कहते हैं कि परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारत के अधिकांश हिस्सों के आदिवासियों को स्थिति बहुत दयनीय हो गयी और कुछ हिस्सों को छोड़ दिया जाय तो साक्षारता का स्तर बहुत निम्न है। आदिवासियों की जमीन का एक बड़ा हिस्सा गैर-आदिवासियों के हाथों मे जा चुका है। जंगल में उनके अधिकारों को निश्चित रूप से सीमित कर दिया गया। सरकारी और वन कार्य के उद्देश्य से लाए गए बाहरी तत्वों द्वारा उनका जमकर शोषण किया गया। कई बार सुधार के प्रयास किये गए लेकिन ये सारे प्रयास सब बेकार प्रमाणित हुए।[6]

स्वतंत्रता के पश्चात् जनजातीय विकास : संविधान सभा में डॉ. बी0 आर0 अम्बेडकर ने कहा कि सामाजिक धरातल पर हमारे पास भारत में एक ऐसा समाज है जो श्रेणीबद्ध असमानता के सिद्धांतों पर आधारित है, जिसका अर्थ है कुछ का उत्थान और दूसरों का पतन। अर्थात् धरातल पर हमारे पास एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ

ऐसे लोग हैं जिनके पास अपार धन-दौलत है और कुछ ऐसे लोग हैं जो घोर गरीबी में जीवन यापन कर रहे हैं। 26 जनवरी 1950 को हम अंतर्विरोध के जीवन में प्रवेश करने जा रहे है। राजनीति में तो हमारे पास समानता होगी लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमारे पास असमानता होगी। राजनीति में तो हम एक आदमी-एक मत और एक मूल्य के सिद्धांत को मानेगे। लेकिन यदि हमारी सामाजिक और आर्थिक संरचना एक व्यक्ति और एक मूल्य को नकारती रही तो हम कब तक इस अंतर्विरोध का जीवन जीते रहेगें? कब तक हम अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेगें? अगर हम इसे लम्बे समय तक नकारते रहे तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डालकर ही ऐसा करेगें। हमें इस अंतर्विरोध को जल्द से जल्द दूर करना चाहिए नहीं तो जो लोग असमानता से पीड़ित हैं; वे राजनीतिक लोकतंत्र के उस ढांचें को उखाड़ फेकेगे, जिसे इस सभा ने इतनी मेहनत से बनाया है।[7]

स्वतंत्रता के बाद भारत में आदिवासी विकास के दृष्टिकोण पर एक गंभीर बहस छिड़ गई। बहस अलगाव की औपनिवेशिक नीति और आत्मसात तथा एकीकरण की राष्ट्रवादी नीति के ईद-गिर्द घूमती रही। औपनिवेशिक मानवशास्त्री वेरियर एल्विन ने देश के एक दुर्गम हिस्से में एक 'राष्ट्रीय उद्यान' के निर्माण की वकालत करने के बाद आदिवासी विकास के लिए अलगाववादी मार्ग का अनुसरण किया, जहां बैगा संस्कृति को संरक्षित किया जा सकता था।[8] बाद में, उन्होंने 'संग्रहालय नमूने' के रूप में रखने के अपने 'राष्ट्रीय उद्यान' सिद्धांत में संशोधन किया और स्पष्ट किया कि हम आदिवासियों को 'संग्रहालय नमूने' के रूप में संरक्षित नहीं करना चाहते हैं लेकिन समान रूप से हम प्रगति की घड़ी को रोकना नहीं चाहते। हो सकता है कि हम बर्बरता के मिथक में विश्वास न करे लेकिन हम एक अज्ञान वर्ग का निर्माण नहीं कर सकते।[9] 'राष्ट्रीय उद्यान' सिद्धांत का यह संशोधन आदिवासी विकास के नेहरूवादी मॉडल को पृष्ठभूमि प्रदान करता है जिसे लोकप्रिय रूप से पंचशील या आदिवासी विकास के पाँच स्तंभो के रूप में जाना जाता है।

अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान करने से लेकर विभिन्न संवैधानिक निकायों जैसे राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन तक सरकार ने आदिवासी विकास के लिए कई कदम उठाए हैं। राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग एक संवैधानिक निकाय है जिसका गठन आदिवासी समुदाय की विभिन्न समस्याओं को देखने और उनकी शिकायतों को सुनने के लिए किया गया है। पहले अनुच्छेद 338 के अंतर्गत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए एक ही आयोग था, लेकिन 89 वें संविधान संशोधन 2003 के द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग को राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग से 2004 में अलग कर दिया गया और भारत के संविधान में एक नया अनुच्छेद 388 (क) सम्मिलित किया गया।[10] इसके अतिरिक्त भारत का संविधान आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक उत्थान के साथ-साथ उनकी संस्कृति, भाषा, परंपरा एवं रीति-रिवाज के संरक्षण के लिए विभिन्न अनुच्छेदों के तहत कई प्रावधान करता है।[11]

आजादी के बाद जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के लिए विभिन्न प्रावधान किए गये हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अनेक प्रकार की योजनाए तथा कार्यक्रम जनजातीय क्षेत्रों में निरंतर संचालित किए जा रहे हैं। लेकिन इतने सारे संवैधानिक प्रावधानों तथा योजनाओं के उपरांत भी केन्द्र तथा राज्य सरकार जनजातियों के वाछिंत विकास को प्राप्त करने में आशिंक रूप से सफल रहे हैं।

साहित्य समीक्षा

जी0 एस0 घुर्ये[10] ने अपनी पुस्तक 'इडियन कास्ट्युम' में जनजातियों के अन्दर व्याप्त अनेक प्रकार की समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा आदि का कारण मुख्य समाज से अलग रहना है। वे कहते हैं कि जनजातियों को आधुनिक सभ्यता के संपर्क में लाने की आवश्यकता है। इससे उन्हें अपनी निम्न स्थिति और दयनीय दशा का ज्ञान होगा एवं उन्हें सुधारने की प्रेरणा मिलेगी।

वर्जीनियस खाखा[11] ने अपने लेख 'संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातियां' में जनजातियों के हितों को ध्यान में रखते हुए जो भी संवैधानिक प्रावधान बनाए गए है उसका वर्णन किया है। जिसमें जनजातीय क्षेत्रों में सामान्य नागरिको के बसने या संपत्ति अर्जित करने पर प्रतिबंध, उनकी भाषाओ, बोलियों और संस्कृति आदि का संरक्षण, नौकरियों में आरक्षण, शैक्षिक अधिकार, जनजातीय क्षेत्रों में विशेष प्रशासनिक व्यवस्था आदि से संबंधित प्रावधान सम्मिलित हैं। खाखा कहते हैं कि इसके बावजूद भी नतीजे संतोष जनक नहीं हैं। खाखा ने एक उदाहरण प्रस्तुत

किया है जिसमें वे कहते हैं कि जनजातियों के लिए स्कूली शिक्षा की व्यवस्था संबद्ध राज्य के प्रमुख समुदाय की भाषा में की जाती है। इसका यह परिणाम है कि जनजातियां स्वयं की भाषा, संस्कृति के ज्ञान को भूलती जा रही हैं। खाखा कहते हैं कि यह एक विडंबना है कि जनजातीय समुदाय के हित एवं कल्याण के लिए सार्थक संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों के बावजूद जनजातियों के पृथक्करण का मूल कारण स्वयं उनसे सम्बद्ध कानून ही है।

वासुदेव भट्ट[12] ने अपने लेख 'ट्राइबल सब-प्लान फॉर कोरागस' में कोरागस समुदाय पर जनजाति उप-योजना की रणनीति के प्रभाव का वर्णन किया है जिसमें वे कहते हैं कि जनजातियों को उपयोजना से अपेक्षित सीमा तक लाभ नही मिला है। उन्होनें इसका मुख्य कारण जनजातियों में जागरूकता की कमी को बताया है।

ए0 के0 सिंह[13] ने अपनी पुस्तक 'ट्राइबल डेवलपमेंट इन इंडिया' में जनजातीय विकास के बारे में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का वर्णन किया है। उन्होंने चार ऐसे महत्वपूर्ण कारकों की पहचान की है जिसके कारण सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रभावित हुआ है। उन्होंने भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में योजना, जनजातीय संस्कृति और व्यक्तिगत प्रबंधन की भूमिका का भी विश्लेषण किया है।

मनीष कुमार राहा[14] ने अपने काम 'ट्राइबल इंडिया-प्राब्लेम्स ऑफ डेवलपमेंट एंड प्रॉस्पेक्ट्स' में कहा है कि जनजातियों के विकास के लिए सरकारी प्रयास और नीतियां विफल रही हैं क्योंकि योजनाकारों ने लक्ष्य समूह की आवश्यकता को बिना ध्यान दिए हुए ही नीतियों को बना दिया। आगे वे कहते हैं कि जनजाति विकास के लिए धन का बड़ा हिस्सा आवंटित किया जाता है उसके बाद भी वांछित उद्देश्य को प्राप्त करने में सरकारी नीतियां विफल रही हैं।

मधुकर[15] ने अपने लेख 'झारखण्ड की जनजातियां' में कहते है कि झारखण्ड की जनजातियों को विकास का उतना लाभ नहीं मिला जितना धन उनपर खर्च किया गया। इसका प्रमुख कारण जनजातियों के सोच और दृष्टि के अनुसार विकास नहीं करना हो सकता हैं। आगे वे कहते हैं कि आदिम जनजातियों की लगभग 95 फीसदी से भी अधिक जनसख्ंया आज भी शिक्षा से वंचित है। हालाकिं इन क्षेत्रों में सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। बिरिजिया, असुर और कोरबा जैसी हुनर वाली जनजातियां अब बेरोजगार हो गयी हैं क्योंकि अब गाँवों में कारखानों से बने सामान सस्ते कीमत पर पहुँचने लगे हैं। अब इनका जीवन पास के जंगल से छोटे-मोटे शिकार और शराब पर टिका हुआ है। मधुकर कहते हैं कि आदिम जनजातियों की इच्छा, जरूरत और उनकी गति से जब तक विकास तय नही किया जायेगा और जबतक उनके द्वारा ही विकास कार्य नही करवाया जायेगा तब तक विकास की राशि बिचौलिए खाते रहेंगे और यह माना जाता रहेगा कि उनका विकास किया जा रहा है।

शोध के उद्देश्य

1. सरकार की नीतियाँ जनजातियों के विकास में किस हद तक सहायक रही है इसका अध्ययन करना।
2. जनजातीय समाज ने किस तरह से सरकार के विकासमूलक योजनाओं के साथ स्वयं को समायोजित किया है अथवा समायोजित नहीं कर पाया है, इससे उत्पन्न विरोधाभासों का पता लगाना।

अध्ययन पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र हेतु उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के आधार पर सोनभद्र जनपद का चयन किया गया है। सोनभद्र जनपद में 8 विकासखण्ड हैं, जिसमें से 3 विकासखण्डों में आदिवासियों की जनसंख्या अधिक है। अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु नगवा, दुद्धी एवं बभनी विकासखण्डों का चयन किया गया है। असंभावनामूलक प्रतिचयन (Non-Probability Sampling) के अन्तर्गत उद्देश्यात्मक प्रतिचयन (Purposive Sampling) के माध्यम से प्रत्येक ग्राम पंचायत से 100-100 जनजातीय लोगों का चयन किया गया है, जिनकी कुल संख्या 300 है। अध्ययन की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है जिससे अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त हो सके।[12] इस अध्ययन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों पद्धतियों का भी उपयोग कर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।[13]

जनजातीय समाज एवं विकास नीति की भूमिका

तालिका क्रमांकः 1

उत्तरदाताओं में अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में जानकारी की स्थिति

उत्तर	जनजाति						सम्पूर्ण योग	
	गोंड		खरवार		बैगा			
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	6	6.0	7	7.0	6	6.0	19	6.3
नहीं	94	94.0	93	93.0	94	94.0	281	93.7
योग	100	100.0	100	100.0	100	100.0	300	100.0

स्रोत-क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 1 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 6.3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनको सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं के बारे में जानकारी है तथा 93.7 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता है जिनको जनजाति से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि सर्वाधिक 93. 7 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजनाओं के बारे में जानकारी ही नहीं है, जिससे वे सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का लाभ ले सकें। बहुत ही कम उत्तरदाता ऐसे हैं जिनको इसके बारे में जानकारी है। उनसे पूछने पर कि आपको इसके बारे में कैसे पता है तो उन्होंने बताया कि हमारे घर के जो बच्चे कालेज में पढ़ने जाते हैं उन सबको अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में पता होता है और वो लोग इसके लिए जो भी जरूरी कागजात होते हैं उसको वे बनवा करके सम्बन्धित योजना का लाभ लेते हैं।

जिनको जानकारी नहीं है उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि अधिकतर उत्तरदाता ऐसे हैं जो कम पढ़े-लिखे हैं और उनके बच्चे भी इतना ज्यादा नहीं पढ़े-लिखे हैं जिनको इसके बारे में पता हो। उनका कहना है कि इसके बारे में कोई कुछ बताता भी नहीं है क्योंकि उनका मानना है कि कोई उनका भला नहीं चाहता है।

तालिका क्रमांकः 2

सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए किए गये विकास उपायों की जानकारी

उत्तर	जनजाति						सम्पूर्ण योग	
	गोंड		खरवार		बैगा			
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	8	8.0	7	7.0	5	5.0	20	6.7
नहीं	92	92.0	93	93.0	95	95.0	280	93.3
योग	100	100.0	100	100.0	100	100.0	300	100.0

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 2 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 6.7 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनको सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए किए गये विकास उपायों के बारे में जानकारी है तथा 93.3 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता हैं जिनको सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए किए गये विकास उपायों के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सर्वाधिक 93.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए किए गए विकास उपायों के बारे में जानकारी ही नहीं है और जब जानकारी ही नहीं होगी तो किसी भी योजना का लाभ ले पाना या मिल पाना बहुत मुश्किल है। ऐसे उत्तरदाता बहुत ही कम हैं जिनको सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए किए गए विकास उपायों के बारे में जानकारी है।

तालिका क्रमांकः 3

सरकार द्वारा संचालित योजनाओं से समस्याओं का समाधान होना

उत्तर	जनजाति						सम्पूर्ण योग	
	गोंड		खरवार		बैगा			
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	0	0.0	0	0.0	0	0.0	0	0.0
नहीं	70	70.0	76	76.0	66	66.0	212	70.7
कह नहीं सकते	30	30.0	24	24.0	34	34.0	88	29.3
योग	100	100.0	100	100.0	100	100.0	300	100.0

उपर्युक्त तालिका क्रमांकः 3 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 70.7 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनका मानना है कि सरकार द्वारा संचालित अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित योजनाओं से उनका कोई समाधान नहीं होगा तथा 29.3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे उत्तरदाता हैं जो कुछ कहने की स्थिति में नहीं है तथा ऐसे उत्तरदाता शून्य हैं जिनका मानना हो कि सरकार द्वारा संचालित अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित योजनाओं से उनका कोई समाधान होगा।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अधिकांशतः 70.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लगता है कि सरकार द्वारा जो भी योजनाएँ उनके विकास के लिए संचालित की जा रही है उससे उनके समस्याओं का समाधान नहीं हो पायेगा। जिनको ऐसा लगता है उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे लोग अनपढ़ आदमी है उनको नहीं पता चल पाता है कि कौन सी योजना कब आती है और कौन सी योजना पहले से चली आ रही है। आज तक, जब हम लोगों को इसका लाभ नही मिला तो विकास कहाँ से होगा। जो भी कुछ आता है वो बिचौलिये खा जाते हैं। हम लोगों तक वह पहुँच ही नहीं पाता है।

तालिका क्रमांकः 4

जनजातीय समाज की संस्कृति का संरक्षण करने के लिए किए जा रहे प्रयासों के प्रति जागरूकता

उत्तर	जनजाति						सम्पूर्ण योग	
	गोंड		खरवार		बैगा			
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	0	0.0	0	0.0	0	0.0	0	0.0
नहीं	86	86.0	65	65.0	60	60.0	211	70.3
कह नहीं सकते है	14	14.0	35	35.0	40	40.0	89	29.7
योग	100	100.0	100	100.0	100	100.0	300	100.0

उपर्युक्त तालिका क्रमांकः 4 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 211 अर्थात 70.3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनका मानना है कि सरकार उनकी संस्कृति का संरक्षण नहीं करती है तथा 89 अर्थात 29.7 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता हैं, जिनको सरकार उनकी संस्कृति का संरक्षण करती है या नहीं के बारे में जानकारी नहीं है तथा ऐसे उत्तरदाताओं की संख्या शून्य है जिनका ये मानना हो कि सरकार उनके संस्कृति का संरक्षण करती है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अधिकांशतः 70.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि सरकार उनकी संस्कृतियों का संरक्षण नहीं करती है। उनसे पूछने पर उन्होंने बताया कि सरकार उनकी संस्कृति का संरक्षण नहीं करती है। कुछ समय तक तो उन्हें ये लग रहा था कि उनकी संस्कृति धीरे-धीरे खत्म हो जायेगी क्योंकि नई पीढ़ी अब काम धन्धे के लिए शहर मे चली जाती है तो वे धीरे-धीरे ये सब भूलते जा रहे हैं। इसलिए गांव में हम जैसे जो पुराने लोग रहते हैं, वही लोग एकजुट होकर निर्णय लिए हैं कि अपनी संस्कृति को हमी लोगों को बचाना है तो हमी लोगों को कुछ करना पड़ेगा।

जिनको इसके बारे में नहीं पता है कि सरकार उनकी संस्कृति का संरक्षण करती है कि नहीं, उनसे पूछने पर पता चला कि उन लोगों को इसके बारे मे नहीं पता है कि

सरकार उन लोगों की संस्कृतियों का संरक्षण करती है कि नहीं।

तालिका क्रमांकः 5

उत्तरदाताओं में संस्कृति संरक्षण के सन्दर्भ में विचारों की स्थिति

उत्तर	जनजाति						सम्पूर्ण योग	
	गोंड		खरवार		बैगा			
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	74	74.0	68	68.0	81	81.0	223	74.3
नहीं	4	4.0	24	24.0	17	17.0	45	15.0
कह नहीं सकते	22	22.0	8	8.0	2	2.0	32	10.7
योग	100	100.0	100	100.0	100	100.0	300	100.0

तालिका क्रमांक 5 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 74.3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनका मानना है कि यदि सरकार हमारी संस्कृति का संरक्षण नहीं करती है तो भी हमारी संस्कृति का संरक्षण होना चाहिए तथा 15.0 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनका कहना है कि संस्कृति का संरक्षण नहीं होना चाहिए तथा शेष 10.7 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता हैं जो कुछ कहने की स्थिति में नहीं है कि उनकी संस्कृति का संरक्षण होना चाहिए या नहीं।

निष्कर्षतः अधिकांशतः 74.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि यदि सरकार उनके संस्कृति का संरक्षण नहीं करती है तो भी उनकी संस्कृतियों का संरक्षण होना चाहिए क्योंकि हमारे आदिवासी समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से अलग है। हम लोग प्रकृति और अपने पूर्वज लोगों की पूजा करते हैं और सभी लोग एक साथ मिलकर करते हैं।

कुछ 15 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता हैं जिनका कहना है कि उनकी संस्कृति का संरक्षण नहीं होना चाहिए क्योंकि जब हमारे पास खाने-पीने की ही व्यवस्था नहीं तों हम इसको बचा के ही हम क्या कर लेगे। संस्कृति हमको खाने को थोड़ी देगी।

शेष 10.7 प्रतिशत उत्तरदाता कुछ कहने की स्थिति मे नहीं है। उनका मानना है कि संस्कृति बचे या न बचे हम लोगों को इससे क्या लाभ या हानि होगा। हम लोग गरीब आदमी हैं मजदूरी करके पेट पालते हैं। यदि एक दिन भी मजदूरी न करे तो अगले दिन की खाने की व्यवस्था कैसे होगी हमें भी नहीं पता होता है। इसलिए इससे हमको कोई लेना-देना नहीं है।

तालिका क्रमांक 6

अनुसूचित जनजाति की आवश्यकताओं की पूर्ती हेतु विभिन्न विकास कार्यों की पर्याप्तता

उत्तर	जनजाति						सम्पूर्ण योग	
	गोंड		खरवार		बैगा			
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	0	0.0	0	0.0	0	0.0	0	0.0
नहीं	88	88.0	90	90.0	84	84.0	262	87.3
कह नहीं सकते	12	12.0	10	10.0	16	16.0	38	12.7
योग	100	100.0	100	100.0	100	100.0	300	100.0

उपर्युक्त तालिका क्रमांकः 6 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 87.3 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनका कहना है कि जो भी विकास कार्यक्रम हमारे लिए चलाए जा रहे हैं वे हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं तथा 12.7 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। उनको नहीं पता है कि इन विकास योजनाओं से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी या नहीं। ऐसे उत्तरदाताओं की संख्या शून्य है जिनका ऐसा मानना है कि जो भी विकास कार्यक्रम उनके विकास के लिए चलाए जा रहे है वह उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए

पर्याप्त हैं।

जनजातियों के बेहतर विकास के लिए उत्तरदाताओं द्वारा सरकार को दिये गये सुझाव : उपर्युक्त विकास से सम्बन्धित समस्याओं के अतिरिक्त जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि आप लोग सरकार को क्या सुझाव देना चाहेंगे जिससे आपके समुदाय का या आपके पूरे जनजातीय समाज का विकास हो सके। इस सन्दर्भ में सभी उत्तरदाताओं ने अपने-अपने विभिन्न विचार को अभिव्यक्त किया, जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं:-

1. **कुछ उत्तरदाताओं** का विचार है कि सरकार उन लोगों के लिए ऐसी योजना बनाए जिसका लाभ उन्हें बिना किसी बिचौलिए के माध्यम से मिले क्योंकि जब भी कोई योजना आती है तो लाभ सबको नहीं मिलता। उसके लिए पहले प्रधान या प्रधान का कोई करीबी आदमी को उन्हें पैसा देना पड़ता जिससे उनका नाम उस योजना में आ जाए और फिर जब योजना में नाम आ जाता है तो उसके बाद भी उसमें से कुछ हिस्सा प्रधान को देना पड़ता है तब उनका काम आगे बढ़ता है। इसलिए उनका विचार है कि सरकार को सबसे पहले तो इन बिचौलियों को हटाना चाहिए।

2. **कुछ** उत्तरदाताओं ने कहा कि उनके यहां पानी की बहुत बड़ी समस्या है, पानी का स्तर इतना नीचे चला गया है कि अब उनके बस का नहीं है कि वो लोग बोरिंग करा सकें क्योंकि 200 से 250 फुट तक बोरिंग कराने के लिए 25000 रूपए से 50000 रूपए तक लगता है जो उनके बस की बात नहीं है। इसलिए सरकार को उनके यहां इसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

3. **उनके** यहाँ ना कोई नजदीक में अस्पताल है, ना स्कूल है और ना ही कोई रोजगार का साधन है। स्वास्थ्य खराब होने की स्थिति में वो इलाज नहीं करा पाते हैं क्योंकि उनके यहां अस्पताल की सुविधा नहीं है और उनके बच्चे आठवी कक्षा के बाद पढ़ाई नहीं कर पाते हैं क्योंकि उनके यहां आठवी के बाद पढ़ने के लिए स्कूल नहीं है तथा उनके यहां रोजगार की बहुत समस्या है जिसके कारण उनके सामने रोजी-रोटी की बहुत समस्या रहती है। इसलिए उनका मानना है कि सरकार को सबसे पहले उनके यहां अस्पताल और स्कूल बनवाना चाहिए और उन लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना चाहिए इसी से उनका विकास होगा।

4. **आगे कुछ** उत्तरदाताओं ने कहा कि सरकार को चाहिए कि सबसे पहले वो उनके क्षेत्र को आदिवासी क्षेत्र घोषित करे जिससे आदिवासियों से सम्बन्धित जितनी भी योजनाएं आती है उन सबका लाभ इनको मिले और जिससे इनकी उन्नति होगी और जब तक ये नहीं होगा तब तक उनका विकास नही हो सकता हैं।

5. **कुछ** उत्तरदाताओं ने कहा कि उनका समाज बहुत पिछड़ा हुआ है क्योंकि उनमें शिक्षा का अभाव है, इसलिए उनके समाज के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। उनका मानना है कि यदि व्यक्ति के पास शिक्षा है तो वह किसी काम को उसे कैसे करना है वह पता होता है। शिक्षा से व्यक्ति के अन्दर जागरूकता आती है, वह किसी भी योजना के बारे में जान सकता है, उसके लिए किसी के उपर पैसे खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा से व्यक्ति को अपना हक और अधिकार पता होता है।

6. **कुछ** उत्तरदाताओं ने कहा कि सरकार की जो भी योजनाएँ आती हैं उसकी सम्पूर्ण जानकारी पूरे आदिवासी समाज को दी जाय जिससे वे सभी योजनाओं के बारे में जान सके और उसका लाभ ले सकें।

अतः निष्कर्ष कहा जा सकता है कि अभी सोनभद्र क्षेत्र के जनजातीय समाज की स्थिति बहुत दयनीय है। वे अभी भी बुनियादी सुविधाओं से ही वंचित हैं और जब तक किसी भी व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तब तक वह उससे आगे की सोच ही नहीं सकता। इसलिए यहां का जनजातीय समाज अभी अपनी बुनियादी सुविधाओं के चक्र में ही फंसा हुआ है जिसके कारण जनजातीय समाज इस समय इससे अधिक सोच ही नहीं पा रहा है। इसलिए जब उनसे पूछा गया कि जनजातियों के बेहतर विकास के लिए आप लोग सरकार को क्या सुझाव देगें तो सर्वाधिक उत्तदाताओं का कहना है कि सबसे पहले सरकार उनके यहां पानी की व्यवस्था करे जिससे उन्हें दैनिक जीवन में उपयोग के लिए पानी मिल जाए और वे अपनी खेती भी कर सकें। दूसरी तरफ उनके यहां निकट में स्कूल व अस्पताल नहीं है तो उसकी भी सरकार व्यवस्था करे जिससे वे अपने स्वास्थ्य और शिक्षा को बेहतर कर सके। उनके यहां रोजगार की समस्या निरंतर बनी हुई है जिससे उन्हें अपनी रोजी-रोटी चलाने में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। रोजगार के नाम पर मात्र मनरेगा ही है जिसमें वे मजदूरी कर सकते हैं, लेकिन इसमें भी हमेशा काम नहीं चलता है तो इसलिए उनको काम नहीं मिलता है।

निष्कर्ष : किसी अधिकार या कानून या नीति को कागज़ पर मात्र लिख देने का यह मतलब नहीं होता कि वह अधिकार या कानून या नीति वास्तव में लागू हो चुका है।

इन प्रावधानों को अमली जामा पहनाने के लिए लोगों को निरंतर कोशिशें करनी पड़ती हैं।[17] संविधान में आदिवासी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए विभिन्न प्रावधान किये गये। जनजातियों के लिए संविधान में किये गये इन विभिन्न प्रावधानों का उद्देश्य जनजातियों को देश के अन्य विकसित समाज के समकक्ष लाना, उन्हें देश की मुख्य जीवनधारा के साथ जोड़ना तथा एकीकरण करना था, ताकि वे देश की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में भागीदार बन सके। इस संक्षिप्त विवरण से तो हमारे मस्तिष्क में एक खुशनुमा तस्वीर उभरती है, लेकिन अफसोस की बात यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 70 सालों के पश्चात् आदिवासी समुदाय की दशा दुखद् और दयनीय बनी हुई है।[18] यह कटु सत्य है कि संविधान निर्माताओं के आदर्श विचारों को यथार्थ रूप अबतक नहीं दिया जा सका है। आज भी आदिवासी क्षेत्रों में भू-अलगाव, शोषण, कर्ज, आदिवासियों के वन अधिकार, वन ग्रामों का विकास, पंचायत अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार, अप्राकृतिक विस्थापन एवं अपर्याप्त पुनर्स्थापना, जनजातियों का संरक्षण एवं विकास, आदिवासी उपयोजना का प्रभावी एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियान्वयन ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर प्रभावी कार्य किये जाने की आवश्यकता है।

दूसरी तरफ किसी भी योजना का लाभ उपयुक्त व्यक्ति को तभी प्राप्त हो सकता है जब उस योजना के बारे में उस व्यक्ति को जानकारी हो अन्यथा किसी भी योजना को मात्र लागू कर देने से सफलता नहीं मिल सकती हैं क्योंकि ग्रामीण परिवेश में रहने वाले लोग इतने जागरूक नहीं होते और ना ही वे किसी प्रकार के इलेक्ट्रानिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं जिससे वे किसी भी योजना के बारे में जान सकें। इसके लिए वे ऐसे व्यक्ति पर निर्भर रहते हैं जो इनको योजना के बारे में सही-सही जानकारी उपलब्ध करा सके। इसलिए योजना के कार्यान्वयन से जुड़े सम्बन्धित कर्मचारियों को क्षेत्र में जाकर लोगों को बताना चाहिए ताकि वे जागरूक हो सके और उसका लाभ ले सकें।

सन्दर्भ

1. अटल योगेश, एवं यतीन्द्र सिंह सिसोदिया 'आदिवासी भारतः एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विकासात्मक विवेचन', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2011, पृ. 156-157
2. वही, पृ. 123
3. Xaxa, Virginius 'Tribes as Indigenous People of India', Economic and Political Weekly, Vol.34, No.51, Dec.1999, pp. 18-24, https://www.jstor.org/stable/4408738
4. Hutton, J. H., 'Caste in India', (Third edition), Oxford University Press, Bombay, 1961, pp. 8, https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.261746
5. Dhebar, U. N., Report of the Scheduled Tribes Commission (1960-1961), Vol.I Government of India, Manager of Publication https://dspace.gipe.ac.in/xmlui/handle/10973/52579
6. Constituents Assembly Debate Vol. XI, 25 Nov. 1949, Guidelines for Swachh Bharat Mission (Gramin), Ministry of Drinking Water and Sanitationhttps://swachhbharatmission.gov.in/sbmcms/writereaddata/images/pdf/Guidelines/Complete-set-guidelines.pdf
7. Rath, Govind Chandra, 'Tribal Development in India', Sage Publications, New Delhi, 2006, 73-79
8. The Constitution (Eighty-ninth Amendment) Act, 2003 https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india/amendments/constitution-india-eighty-ninth-amendment-act-2003
9. खाखा, वर्जीनियस, 'संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातियां', योजना, जनवरी 2014, पृ0 7
10. घुर्ये, जी0 एस0, 'इडियन कास्ट्युम', पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1995
11. खाखा, वर्जीनियस, 'संवैधानिक प्रावधान, कानून और जनजातियां', योजना, जनवरी, 2014
12. भट्ट, वासुदेव, 'ट्राइबल सब-प्लान फॉर कोरागस : योजना', वाल्यूम0 26, न0 23, जनवरी, 1982,
13. सिंह, ए0 के0, 'ट्राइबल डेवलपमेंट इन इंडिया', अमर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
14. कुमार, मनीश राहा, 'ट्राइबल इंडिया-प्राब्लेम्स ऑफ डेवलपमेंट एंड प्रॉस्पेक्ट्स', गेन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1989
15. मधुकर, झारखण्ड की जनजातियां, योजना, जनवरी, 2014
16. रावत, हरिकृष्ण, 'सामाजिक शोध की विधियां', रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली और जयपुर, 2013, पृ0 139
17. Hussain, Dr. Manzoor and Yaseen, Gousia (2018) 'Indira Awas Yojana: Concept, Nature, Objectives and Role', Scholars Journal of Arts, Humanities and Social Sciences https://www.researchgate.net/publication/330535528
18. Prdhan Mantri Awas Yojana - Gramin, Ministry of Rural Development (Government of India)https://rural.nic.in/en/press-release/pradhan-mantri-awaas-yojana-%E2%80%93-gramin-completes-5-years

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन : एक अध्ययन

❑ सुश्री नेहा सविता
❖ डॉ वन्दना द्विवेदी

वर्तमान समय में ठोस अपशिष्ट का उचित प्रबंधन सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य के रूप में उभरकर सामने आया है। विकासशील देशों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति हीन उत्तरदायित्व की भावना ने इस समस्या को और बढ़ा दिया है, भारत भी इस समस्या से अछूता नही है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर-प्रदेश राज्य के कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। शोध के अंतर्गत कानपुर नगर निगम द्वारा प्राप्त रिर्पोट के आधार पर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के सभी स्तरों एवं समस्याओं का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिये एक स्थायी तथा जिम्मेदार संस्था की कार्य प्रणाली की कमी है साथ ही ठोस अपशिष्ट से राजस्व सृजन का अभाव पाया गया। प्रस्तुत शोध पत्र नगर में किये गये शोध अध्ययन के आधार पर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को दक्ष बनाने के लिये सुझाव भी प्रदान करता है।

सूचक शब्दः ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, कानपुर नगर, अवलोकन।

वर्तमान समय में तेज आर्थिक एवं औद्योगिक विकास, बढ़ती हुई जनसंख्या एवं नगरीकरण तथा उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था ठोस अपशिष्ट की मात्रा में दिन प्रतिदिन वृद्धि कर रही है। बढ़ती हुई ठोस अपशिष्ट की यह मात्रा पर्यावरण, मानवीय स्वास्थ्य एवं अन्य प्राणियों के लिये अत्यन्त हानिकारक है। ठोस अपशिष्ट से निकलने वाली मीथेन तथा अन्य हानिकारक गैस पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं तथा मानवीय स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती हैं। खुले क्षेत्र में पड़े हुये अपशिष्ट से लिचेट पदार्थ का रिसाव होता है जो जल एवं मृदा प्रदूषण का कारण बनता है। गाँवों से नगरों की ओर पलायन के कारण भी नगरों में ठोस अपशिष्ट की मात्रा में बढ़ोत्तरी हुई है। भारत में उत्पन्न हो रहे अपशिष्ट को एक उत्पाद के रुप में सम्मिलित करने के लिये बहुत कम विकल्प हैं। अनुचित ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली के कारण गम्भीर नकारात्मक पर्यावरणीय दुष्परिणाम सामने आते हैं। भारत के अधिकांश नगरों में वैज्ञानिक उपायों का उपयोग न करते हुये लैण्डफिल क्षेत्र में अपशिष्ट को जलाना प्रचलित है जिसके कारण हानिकारक निलंबित कण तथा पार्टिकुलेट मैटर का उत्सर्जन होता है।[1]

कानपुर, राज्य का औद्योगिक नगर होने के कारण यहाँ ठोस अपशिष्ट जनित्र की मात्रा भी अधिक उत्पन्न होती है। कानपुर नगर में ग्रामीण क्षेत्र से पलायन, नगरीकरण, बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था से अछूता नहीं है अतः यहाँ पर ठोस अपशिष्ट की मात्रा में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी हो रही है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार नगर की रजिस्टर्ड जनसंख्या- 27,65,348 थी। 2021 में किये गये पायलट सर्वे के अनुसार नगर में प्रतिव्यक्ति जनित अपशिष्ट की मात्रा 550 ग्राम/व्यक्ति है एवं कुल जनित ठोस अपशिष्ट की मात्रा 1773 टन/दिन है।[2] आने वाले समय में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा नगरीकरण ठोस अपशिष्ट जनित्र की मात्रा को बढ़ायेगा अतः आवश्यकता इस बात की है ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन पर्यावरण अनुकूल उचित तरीके से किया जाये जिसके कारण ठोस अपशिष्ट की समस्या से उभरा जा सके।

ठोस अपशिष्ट

ऐसा पदार्थ जिसमें कोई आर्थिक उपयोग शेष न बचा हो, जैसे घरों से निकलने वाला अपशिष्ट, प्लास्टिक, ई-अपशिष्ट, पेड़-पौधों से उत्सर्जित अपशिष्ट आदि।[3] ठोस अपशिष्ट को मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर अध्ययन कर सकते हैं:-

जैविक अपघटकीय अपशिष्टः-

यह वह अपशिष्ट है जिसे आसानी से अपघटित किया

❑ शोध अध्येत्री अर्थशास्त्र, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
❖ प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पी.पी.एन.पी.जी.कॉलेज, कानपुर (उ.प्र.)

जा सकता है जैसे- वनस्पति अपशिष्ट, कृषि अपशिष्ट, घरों का जैविक अपशिष्ट। जैविक अपशिष्ट को कम्पोस्ट प्रक्रिया के द्वारा खाद में परिवर्तित किया जाता है तथा बायो गैस/सी.एन.जी. में परिवर्तित करके बस या गाड़ियों में उपयोग किया जाता है।[4]

गैर-जैविक अपघटकीय अपशिष्टः-

गैर-जैविक अपघटकीय के अर्न्तगत ऐसे अपशिष्ट को सम्मिलित किया जाता है जिसका अपघटन करना कठिन कार्य होता है जैसे- प्लास्टिक, धातु, काँच, थर्मोकोल, पुराने कपड़े, बैटरी, केमिकल आदि। गैर-जैविक अपघटकीय अपशिष्ट का निस्तारण रिसाइकिलिंग, रोड निर्माण में प्रयोग, आर.डी.एफ. तथा खतरनाक अपशिष्ट का भस्मीकरण के द्वारा किया जाता है।[5]

शोध उद्देश्य

1 कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति का अवलोकन करना।

2 कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के कार्य में आने वाली बाधाओं की पहचान करना।

3 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को बेहतर करने के लिये सुक्षाव उपलब्ध कराना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन विवरणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है एवं शोध पत्र में द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। शोध अध्ययन में पायलट स्टडी के दौरान कानपुर नगर निगम से प्राप्त अद्यतन प्रगति रिपोर्ट तथा सिटी सॉलिड वेस्ट एक्शन प्लान रिपोर्ट सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त कानपुर नगर के ठोस अपशिष्ट प्लांट की कार्यपद्धति के लिये अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षा

श्रीवास्तव, रजनी[6] के शोध अध्ययन में वाराणसी नगर की ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली का अध्ययन किया गया है। शोध अध्ययन में ठोस अपशिष्ट की उत्पन्न होने वाली मात्रा तथा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की कार्य प्रणाली में सुधार के लिये एकत्रित डाटा के आधार पर मूल्यांकन किया गया है। एकत्रित आँकड़ों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वाराणसी नगर में ठोस अपशिष्ट का वैज्ञानिक प्रबंधन, पुनर्चक्रण तथा ठोस अपशिष्ट से आर्थिक मूल्य की प्राप्ति न होना प्रमुख समस्या है।

बी. पॉल तथा डी. पॉल[7] के शोधपत्र के अध्ययन अनुसार इंदौर नगर में 1115 मीट्रिक टन से अधिक ठोस अपशिष्ट उत्पन्न होता है और इस उत्पन्न अपशिष्ट को आवासीय तथा व्यावसायिक क्षेत्र से पृथक्करण प्रक्रिया का पालन करते हुये एकत्रित किया जाता है। इंदौर अपने 100 प्रतिशत अपशिष्ट को संशोधित करता है। इंदौर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को वैज्ञानिक ढंग से कुशल बनाने में नागरिकों के प्रयासों का महत्वपूर्ण योगदान है जिनकी जागरुकता के कारण इंदौर में सफल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली का संचालन हो रहा है।

अर्चना तथा अन्य[8] के द्वारा किये गये शोध अध्ययन में यह बताया है कि लखनऊ नगर में उत्पन्न ठोस अपशिष्ट के लिये वर्तमान नीति तथा बुनियादी ढाँचा अपर्याप्त है। बढ़ता हुआ नगरीकरण, व्यवसायीकरण एवं उपभोग वृद्धि के कारण ठोस अपशिष्ट में तीव्र गति से वृद्धि हुई है तथा ठोस अपशिष्ट के अनुचित प्रणाली के कारण पर्यारणीय तथा मानवीय स्वास्थ्य समस्याओं में बढ़ोत्तरी हुई है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के अर्न्तगत अपशिष्ट संग्रहण क्षेत्र से पृथक्करण प्रक्रिया का पालन न करना ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की प्राथमिक समस्या है जिसके निवारण के लिये जागरुकता तथा सहयोग एवं जिम्मेदार प्रणाली को सुनिश्चित करना है।

प्रियदर्शी तथा जैन[9] के अनुसार अलीगढ़ में ठोस अपशिष्ट का उचित प्रबंधन करने के लिये पृथक्करण, आम नागरिकों की भागीदारी तथा स्कूलों में जागरुकता कार्यक्रम शुरु करके ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को कुशल बनाया जा सकता है। शोध अध्ययन के परिणाम अनुसार ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की चुनौतियों से निपटने के लिये एक बेहतर विधि विकसित करने की आवश्यकता है जिसके अर्न्तगत ठोस अपशिष्ट को उपयोगी सामग्री में बदला जा सके। अलीगढ़ में बढ़ते नगरीकरण तथा अनियंत्रित जनसंख्या भार को संयोजित करते हुये जी.पी.एस. तकनीक के साथ ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को वैज्ञानिक बनाया जा सकता है।

सिंह, रसमीत[10] के शोध अध्ययन के द्वारा इंदौर नगर की ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली की कुशलता तथा इसके विभिन्न स्तरों जैसे उत्पादन, संग्रहण, परिवहन तथा निस्तारण का विश्लेषण किया गया है। अपशिष्ट स्थानांतरण क्षेत्र में जी.पी.एस. प्रणाली का प्रयोग करके अपशिष्ट के संग्रहण तथा परिवहन व्यवस्था को आसान बनाया गया

है। इंदौर नगर का यह मॉडल अपशिष्ट को लैण्डफिल तक ले जाने की प्रक्रिया में न्यूनतम लागत का अनुसरण करता है तथा ठोस अपशिष्ट श्रमिकों की कार्य अनुसूची को बेहतर प्रबंधित करने का समर्थन करता है।

किरण बाला[11] द्वारा किये गये शोध अध्ययन के अनुसार बढ़ते औद्योगीकरण तथा उपभोक्तावाद ने पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया है जबकि पृथ्वी पर बेहतर जीवनशैली के लिए अनुकूल पर्यावरण का होना आवश्यक है। ठोस अपशिष्ट की मात्रा बढ़ाने में औद्योगीकरण एवं उपभोक्तावाद का सीधा योगदान है तथा समाज में जागरुकता की कमी इस समस्या को और बढ़ा देती है।

कुलदीप सिंह[12] ने अपने शोध अध्ययन में उपभोगवादी अर्थव्यवस्था एवं प्रकृति प्रदत्त संसाधनों के प्रयोग का आपसी सम्बन्ध दिखाया है। उपभोगवादी अर्थव्यवस्था ने बिना सोचे समझे खनिज पदार्थो के खनन को अन्धाधुन्ध तरीके से बढ़ा दिया है जिससे पर्यावरण में असंतुलन का खतरा उत्पन्न हो गया है।

प्रीति सक्सेना[13], अनीता देवी द्वारा लिखित शोध पत्र में 2 अक्टूबर 2014 को आरम्भ किये गये स्वच्छ भारत अभियान का बरेली महानगर के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया है। पूरे देश में स्वच्छता को लोकप्रिय बनाने के लिए अपशिष्ट प्रबंधन को महत्वपूर्ण कारक माना है। शोध अध्ययन में यह पाया गया है कि बरेली नगर अभी अपशिष्ट प्रबंधन में पिछड़ा है तथा इसके लिए एक जिम्मेदार एवं मजबूत इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

वन्दना द्विवेदी, सविता, नेहा[14] के शोध पत्र में महात्मा गाँधी जी के स्वच्छता सम्बन्धित विचारों को आधार बनाकर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का अध्ययन किया गया है। उपभोक्तावाद को न्यूनतम करते हुए किस प्रकार कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को सफल बनाया जाये, इसका विश्लेषण किया गया है।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन

ठोस अपशिष्ट का पर्यावरण अनुकूल निस्तारण करना एवं शून्य अपशिष्ट की दिशा में आगे बढ़ना ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के अर्न्तगत ठोस अपशिष्ट का निस्तारण वैज्ञानिक प्रक्रिया से करना चाहिए जिससे लैण्डफिल में अपशिष्ट की कम से कम मात्रा पहुँचे। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं जिसके आधार पर ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन किया जाना चाहियेः-

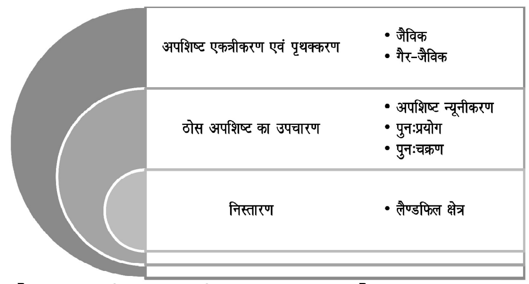

ठोस अपशिष्ट जनित्र उत्पन्न होनाः-

ठोस अपशिष्ट औद्योगिक, घरेलू, कृषि एवं निर्माण क्षेत्रों से उत्पन्न होता है। प्रयोग होने वाली वस्तुओं का जब कोई मूल्य शेष नहीं रहता है तो वह वस्तु मूल्यहीन हो जाती है और वह वस्तु फेंक दी जाती है।[15] यहीं से ठोस अपशिष्ट के उत्पादन की शुरूआत होती है जैसे- प्रयोग करने के बाद बोतल, प्लास्टिक रैपर, काँच आदि को फेंक देना।

ठोस अपशिष्ट का एकत्रीकरण एवं पृथक्करणः-

ठोस अपशिष्ट का एकत्रीकरण करने के लिए अलग-अलग डस्टबिन का प्रयोग किया जाता है जैसे- सूखे एवं गीले कचरे के लिए अलग डस्टबिन तथा खतरनाक अपशिष्ट के लिए अलग डस्टबिन को उपयोग में लाना। ठोस अपशिष्ट एकत्रीकरण की यह प्रक्रिया पृथक्करण प्रक्रिया के साथ शुरू होती है। अलग-अलग कूड़ेदान का प्रयोग अपशिष्ट पृथक्करण का हिस्सा है, इससे जैविक एवं गैर-जैविक अपशिष्ट को प्रारंभिक प्रक्रिया से ही अलग कर लिया जाता है जिससे अपघटन प्रक्रिया को आसान बनाया जा सके।[16] रिसाइकिलिंग के लिये धातु, पेपर, काँच आदि अपशिष्ट को अलग कर लिया जाता है जिससे रिसाइकिलिंग प्लाण्ट में अपशिष्ट को अलग करने की आवश्यकता न पड़े। ठोस अपशिष्ट एकत्रीकरण के प्रारंभिक चरण में अपशिष्ट पृथक्करण से मानवीय श्रम एवं धन की बचत होती है तथा कार्य करने में मानव श्रम को कम स्वास्थ्य जोखिमों का सामना करना पड़ता है।

ठोस अपशिष्ट का उपचारण एवं निस्तारणः-

ठोस अपशिष्ट के उपचारण से तात्पर्य है अपशिष्ट को 3R संकल्पना तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा उपचारित करके अपशिष्ट की कम से कम मात्रा को लैण्डफिल क्षेत्र में पहुँचाना। अपशिष्ट उपचारण में कम्पोस्टिंग, रिसाइकिलिंग, न्यूनीकरण, पुनःप्रयोग, बायोगैस प्लाण्ट, आर.डी.एफ. आदि प्रक्रियायें सम्मिलित है।[17] लैण्डफिल क्षेत्र तक सिर्फ उस अपशिष्ट को पहुँचाया जाता है जिसका अब किसी भी प्रकार से उपचारण सम्भव नहीं है।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिये एक जिम्मेदार संस्था एवं नीतिः-

ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन महत्वपूर्ण कार्य है जिसके अन्तर्गत एक ऐसी उत्तरदायी संस्था हो जिसमें पर्यावरण एवं मानवीय स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता हो। ठोस अपशिष्ट के वैज्ञानिक प्रबंधन के लिये यह आवश्यक है कि कार्य करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी प्रशिक्षित हो तथा उनमें ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति जिम्मेदारी हो। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिये ऐसी नीति का निर्माण करना चाहिए जिसमें ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के सभी चरणों का वैज्ञानिक ढंग से पालन सुनिश्चित किया जाये।[18]

आम नागरिकों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति जागरूकताः-

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को सफल बनाने में आम जनभागीदारी का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि अधिकांशतः अपशिष्ट को उत्पन्न करने में आम जन ही सम्मिलित होते हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि आम जनमानस में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति उत्तरदायित्व की भावना हो। अपशिष्ट के एकत्रीकरण एवं पृथक्करण जैसी प्रक्रियाओं में आम जनमानस सीधे तौर पर सम्मिलित होता है अतः ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति लोगों में जागरूकता होना अत्यन्त आवश्यक है।[19]

इसके अतिरिक्त ठोस अपशिष्ट प्रणाली को शून्य अपशिष्ट के लक्ष्य तक ले जाने के लिए अपशिष्ट प्रबंधन संस्था, सम्बन्धित अधिकारी एवं कर्मचारी तथा आम जनमानस का पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है साथ ही रिसाइकिलिंग, पुर्नचक्रण एवं पुनःप्रयोग की अवधारणा को अपनाना चाहिए।[20]

कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

कानपुर नगर राज्य का औद्योगिक नगर होने के साथ शैक्षिक कार्यो के लिए महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न क्षेत्रों के लोग रोजगार एवं शिक्षा के उद्देश्य से यहाँ आकर रहते हैं और यह वह जनसंख्या होती है जो नगर की रजिस्टर्ड जनसंख्या में सम्मिलित नहीं होती है परन्तु यह जनसंख्या ठोस अपशिष्ट जनित्र में सम्मिलित होती है। नगर में किये गये पायलट सर्वे के अनुसार प्रति व्यक्ति जनित अपशिष्ट की मात्रा 550 ग्राम/व्यक्ति है तथा कुल ठोस अपशिष्ट की मात्रा 1773 टन/दिन है।[21] जे.एन.एन.यू.आर.एम. योजना के अन्तर्गत ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिये कार्यदायी संस्था सी.डी.एस., उ.प्र. जल निगम को 2008 बनाया गया था। इसके अर्न्तगत अपशिष्ट के एकत्रीकरण, भण्डारण एवं परिवहन तथा उपचारण एवं निस्तारण के लिये 'मेसर्स ए टू जेड विनिर्माण प्राइवेट लिमिटेड' के साथ 2010 में एक त्रिपक्षीय अनुबंध सी. एण्ड डी.एस. उत्तर प्रदेश जल निगम एवं कानपुर नगर निगम के बीच किया गया। इस अनुबंध के अर्न्तगत ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का कार्य प्रारम्भ किया गया। इस परियोजना के अर्न्तगत मेसर्स ए टु जेड विनिर्माण प्राइवेट लिमिटेड एवं निजी संस्थाओं की सहायता से 15 मेगावाट क्षमता का वेस्ट टू एनर्जी संयंत्र का निर्माण कार्य किया गया परन्तु ए टू जेड संस्था द्वारा कार्य को सही तरीके से न कर पाने के कारण 2015 में ए टू जेड संस्था को ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के कार्य से हटा दिया गया।[22] 2016 को संयंत्र के संचालन हेतु 'मेसर्स अर्थ इन्वायरमेन्ट मैनेजमेन्ट सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड' का चयन किया गया। संयंत्र के संचालन के लिये प्रस्तावित इम्प्लीमेंटेशन योजना के अर्न्तगत वेस्ट टू एनर्जी प्लाण्ट का पुर्नसंचालन किया जाना है जिसमें कम्पोस्ट खाद एवं आर.डी.एफ. तथा अपशिष्ट का निस्तारण किया जायेगा। पुराने अपशिष्ट के निस्तारण हेतु रु 95/टन की दर से नगर निगम द्वारा भुगतान करने की योजना थी। वर्ष 2018 में भारत सरकार द्वारा मेसर्स आइ.एल. एण्ड एफ.सी. कम्पनी को अधिगृहीत करने के कारण वित्तीय अधिकारों पर प्रतिबंध लग गया तत्पश्चात् कानपुर नगर निगम ने संसाधनों के साथ मानव श्रम का प्रयोग करते हुये ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का संचालन जारी रखा है।[23]

राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण, नई दिल्ली ने ठोस अपशिष्ट प्लाण्ट का संचालन म्युनिसिपल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम 2016 के अनुसार कराये जाने के निर्देश दिये हैं तथा समय-समय पर आने वाली समस्याओं से निपटने के लिये प्रभावी कदम उठाये जाने के निर्देश दिये हैं। उत्तर प्रदेश ठोस अपशिष्ट मॉनीटरिंग समिति द्वारा प्लाण्ट के निरीक्षण के दौरान रख-रखाव एवं संचालन वैज्ञानिक ढ़ंग से न होने के कारण एन.जी.टी. द्वारा कानपुर नगर निगम पर 15 करोड़ रु. का पर्यावरणीय हर्जाना लगाने की सिफारिश की तथा कानपुर नगर निगम के प्रबंधन तंत्र के विरूद्ध कार्यवाही करने की सिफारिश की।[24]

कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की समस्याः-

औद्योगिक नगर होने के कारण कानपुर में औद्योगिक

इकाइयों तथा MSME क्षेत्र का काफी विस्तार है। यह औद्योगिक क्षेत्र ठोस अपशिष्ट को बिना उपचार के फेंक देते हैं। नगर के अधिकांश क्षेत्रों में ठोस अपशिष्ट खुले क्षेत्रों में पड़ा हुआ रहता है। ठोस अपशिष्ट को एकत्रित करते समय अपशिष्ट का पृथक्करण नहीं किया जाता। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्राधिकरण पर अपने कार्यों को सही तरीके से न कर पाने के कारण एन.जी.टी. द्वारा जुर्माना भी लगाया जा चुका है। अपशिष्ट को डम्पिंग साइट में बिना उपचारण के फेंक दिया जाता है जिस कारण यहाँ पर कूड़े के ढ़ेर बनते जा रहे हैं। नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबधंन की समस्या को निम्नलिखित आँकड़ों के आधार पर समझा जा सकता है-

सारणी 1

जनसँख्या एवं घरेलू परिवार

वर्ष	वर्ष 2011	वर्तमान	वर्ष 2025
जनसँख्या	2765348	3223188	3450742
घरेलू परिवार	2765348	671120	718501

स्त्रोत- City Solid Waste Action Plan (CSWAP) नगर निगम द्वारा प्राप्त

प्रस्तुत सारणी में जनसँख्या के आँकड़ों को प्रदर्शित किया गया है। कानपुर नगर औद्योगिक एवं शिक्षा का केन्द्र होने के कारण यहाँ पर बाहरी जनसँख्या निवास करती है तथा यह जनसँख्या ठोस अपशिष्ट उत्पादन में सम्मिलित होती है। ठोस अपशिष्ट के वैज्ञानिक निस्तारण के लिए आँकड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि जनसँख्या से सम्बन्धित उचित आँकड़े हों क्योंकि जनसँख्या तथा ठोस अपशिष्ट उत्पादन का सीधा सम्बन्ध है।

सारणी 2

वर्तमान ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति

वर्तमान ठोस अपशिष्ट उत्पादन	1773 (TPD)
प्रति व्यक्ति उत्पादन	550 ग्राम
कुल अपशिष्ट एकत्रीकरण	1200 (TPD)
कुल 110 वार्ड का डोर टू डोर एकत्रीकरण	100 प्रतिशत
कुल वार्ड संख्या तथा स्त्रोत पृथक्करण	44, 40 प्रतिशत
प्रसंस्करण संयंत्र में कुल परिवहन की गयी ठोस अपशिष्ट की मात्रा	1200 (TPD)
सुरक्षित लैण्डफिल सुविधा (SLF)	120 (TPD)
डम्पसाइट्स	457 (TPD)

स्त्रोत- CSWAP रिपोर्ट के आधार पर एकत्रित आँकड़े।

TPD- Ton per day, SLF- Secured landfill facility.

प्रस्तुत सारणी में ठोस अपशिष्ट के निस्तारण की स्थिति को दर्शाया गया है। ठोस अपशिष्ट के एकत्रीकरण तथा पृथक्करण के मध्य बहुत अन्तर है। प्रसंस्करण संयंत्र में अपशिष्ट को अलग करने में श्रम तथा धन की हानि होती है क्योंकि ऊर्जा का अधिकांश हिस्सा अपशिष्ट पृथक्ककरण में चला जाता है। अपशिष्ट पृथक्करण केवल 44 वार्डो में किया जाता है तथा अन्य जगह बिना पृथक्करण के अपशिष्ट को इकट्ठा कर लिया जाता है, इस कारण अपशिष्ट का अधिकांश हिस्सा डम्पसाइट्स में भेज दिया जाता है। कुल ठोस अपशिष्ट का एकत्रीकरण, उत्पादन की अपेक्षा कम है और यह अपशिष्ट खुले स्थानों पर छोड़ दिया जाता है जिसका निस्तारण जल्दी नहीं हो पाता है।

सारणी 3

कानपुर नगर निगम एवं ठोस अपशिष्ट संयंत्र के आँकड़े

कुल सफाई कर्मी	5839
सफाई कर्मियों की आवश्यकता	8000
सफाई इंसपेक्टर	31
ठो.अ.स. में कुल कर्मचारी	150
सुरक्षित लैंडफिल सुविधा तथा लिचेट संयंत्र	प्रस्तावित
संयंत्र में प्रतिदिन ठोस अपशिष्ट से कम्पोस्ट का उत्पादन	लगभग 50 टन
संयंत्र में प्रतिदिन RDF उत्पादन	600 टन
संयंत्र में उपकरण	कानपुर नगर निगम तथा बाहरी स्त्रोत

स्त्रोत- CSWAP रिपोर्ट के आधार पर एकत्रित आँकड़े।

RDF- Refused Derived Fuel

नगर में उत्पन्न प्रतिदिन ठोस अपशिष्ट की मात्रा की तुलना में कर्मियों की संख्या कम है इस कारण अपशिष्ट के एकत्रीकरण तथा परिवहन में समस्या होती है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के अर्न्तगत खतरनाक अपशिष्ट, लिचेट की समस्या तथा जल एवं मृदा की सुरक्षा के लिए SLF(Secured Landfill Facility) संयंत्र आवश्यकता है परन्तु नगर में अभी तक SLF संयंत्र की सुविधा नहीं है। संयंत्र में से निकलने वाली कम्पोस्ट खाद तथा RDF से राजस्व की प्राप्ति नहीं होती है, यह तथ्य अपशिष्ट को एक लाभदायक संसाधन होने की दिशा में नकारात्मकता को प्रदर्शित करता है।

सारणी 4

ठोस अपशिष्ट के संचालन, रखरखाव (O&M) की लागत एवं लाभ

वर्ष	वार्षिक O&M लागत	वार्षिक राजस्व संग्रह (लाख)
2016-17	17.55	0.35
2017-18	18.93	0.51
2018-19	19.46	1.34
2019-20	25.77	1.99
2020-21	37.29	2.96

स्त्रोत- CSWAP रिपार्ट के आधार पर एकत्रित ऑकड़े।

O&M- The Operation and Maintenance Cost

यह ऑकड़े ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के संचालन में लगने वाली लागत को प्रदर्शित करते हैं। आने वाले समय में नगर के ठोस अपशिष्ट में और भी बढ़ोत्तरी होगी तथा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की लागत बढ़ेगी परन्तु ठोस अपशिष्ट से राजस्व सृजन न के बराबर है। ठोस अपशिष्ट प्लाण्ट में गैर जैविकीय अपशिष्ट का प्रसंस्करण करके उसे प्लास्टिक दानों में बदला जाता है परन्तु गैर जैविक अपशिष्ट उत्पादन की तुलना में यह मात्रा अत्यन्त न्यूनतम है जिसका आर्थिक मूल्य बहुत ही कम है। अपशिष्ट को ऊर्जा के संसाधन के रूप में विकसित करते हुये राजस्व सृजन पर अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के मार्ग में आने वाली बाधायें

नगर निगम से प्राप्त रिपोर्ट एवं शोध अध्ययन के आधार पर कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र में आने वाली बाधाओं को निम्नलिखित बिन्दुओं में समझा जा सकता हैः-

1 बार-बार ठोस अपशिष्ट प्रबंधन संस्था बदलने के कारण एक स्थायी संस्था का अभाव होना।
2 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में कार्य करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारियों की संख्या आवश्यकता से कम होना।
3 अपशिष्ट पृथक्करण के लिये आवश्यक उपकरणों का अभाव।
4 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन का कार्य वैज्ञानिक ढंग से करने के लिये वित्त की कमी।
5 कार्य करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारियों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति उत्तरदायित्व का अभाव।
6 स्थानीय नागरिकों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति जागरूकता का अभाव।
7 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास को अनदेखा करना।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को दक्ष बनाने के लिये सुझाव

1 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिये एक स्थायी संस्था को सुनिश्चित करना तथा संस्था को ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति उत्तरदायी बनाना।
2 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन संस्था में कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना तथा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन एवं पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करना।
3 संस्था द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के सभी चरणों का वैज्ञानिक ढंग से पालन किया जाये।
4 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र में अनुसंधान विकास एवं नवप्रवर्तन को बढ़ावा देना।
5 अपशिष्ट को ऊर्जा का संसाधन मानते हुये ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के क्षेत्र को व्यवसायिक एवं रोजगारपरक क्षेत्र के रूप में प्रोत्साहित करना।
6 ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति आम जनमानस में जागरूकता को प्रोत्साहित करना तथा पर्यावरण संरक्षण के लिये प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष : ठोस अपशिष्ट का उत्पन्न होना मानवीय समाज के विकास के साथ उत्पन्न होने वाली समस्या है जिससे पर्यावरण अनुकूल निस्तारण, बढ़ती हुई जनसंख्या में रोकथाम तथा उपभोक्तावाद को हतोत्साहित करके बचा जा सकता है। नगरों में ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक कठिन कार्य है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में ठोस अपशिष्ट कम जटिल होता है। बढ़ते हुये उपभोक्तावाद के कारण ठोस अपशिष्ट में अनेक जटिल पदार्थो का मिश्रण होने लगा है जिसके कारण ठोस अपशिष्ट पृथक्करण में समस्या होती है इस कारण ठोस अपशिष्ट का अपघटन करना एक कठिन कार्य बन जाता है। कानपुर नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति जागरूकता बहुत कम है जिसे बढ़ाया जाना आवश्यक है। ठोस अपशिष्ट के उचित प्रबंधन के लिये कार्य करने वाले कर्मचारियों को वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है। अधिकारियों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति

जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने के लिये बेहतर कार्य प्रणाली निर्धारित करनी चाहिए। नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के आँकड़ों को एकत्रित करने के लिये ठोस अपशिष्ट प्रबंधन संस्था को प्रयास करना चाहिए तथा एक ऐसी सुव्यवस्थित प्रणाली का विकास करना चाहिये जो आँकड़ों के आधार पर ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को कुशल बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सके, साथ ही ठोस अपशिष्ट को ऊर्जा के संसाधन के रुप में विकसित करते हुये राजस्व सृजन क्षमता को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिये।

सन्दर्भ

1. Paul,B.,Paul,D., "Comparative Analysis of Municipal Solid Waste Management in Kochi and Indore", Nature Environment and Pollution Technology, Vol.20,no.3,2021, p.1339-1340, www.neptjournal.com
2. City Solid Waste Action Plan (CSWAP),ULBs City Profile:(demographic and waste generation details),Kanpur Nagar Nigam,2022,p.1,2.
3. Chandrappa, Ramesh.,Das, Diganta Bhusan., "Solid Waste Management: Principles and Practice", Springer Verlog Berline Heidelberg, 2012, (e-Book), p. 48.
4. Ibid, p.48
5. Ibid, pp.48,49.
6. Srivastava, Rajani Et al., "Characterization and Management of Muicipal Solid Waste : a case study of Varansi city, India, Excellent Publication, International Journal of Current Research and Academic Review, Vol.2, No.8, 2014, pp.10-16. www.ijcrar.com
7. Paul, op.cit., pp.1339-1345
8. Archana Et al., "Assessment of the Status of Municipal Solid Waste Management(MSWM) in Lucknow- Capital city of Uttar Pradesh", India, IOSR Journal of Environment Science,Taxicology and Food Technology (IOSR-JESTFT), Vol.8, Issue 5 ver.2, May 2014, pp.41-49. www.iosrjournals.org
9. Priyadrshi, Harit., Jain, Ashish., "Municipal Solid Waste Management Study and Strategy In Aligarh city, Uttar Pradesh, India", International Journal of Engineering Science Invention(IJESI),Vol.7, Issue 5 ver.3, May2018, pp.29-40. www.ijesi.org
10. Singh, Rasmeet., "Municipal Solid Waste Management in the city of Indore- A Case Study", Journal of Civil Engineering and Environmental Science, Peertechz Publication, March 2021, pp.8-16.
11. बाला, किरण, 'वायु प्रदूषण की समस्या के प्रति जन सचेतना- एक अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी:चिन्तन परम्परा, वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018, पृ. 35-42.
12. सिंह, कुलदीप., 'हिमाचल प्रदेश में पर्यावरण संरक्षण एवं जागरुकता अभियान में समाचार पत्रों की भूमिका', राधाकमल मुकर्जी:चिन्तन परम्परा, वर्ष 21 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2019, पृ. 14,15.
13. सक्सेना, प्रीति, देवी, अनीता, 'स्वच्छ भारत अभियान : एक परिदृश्य बरेली जनपद, राधाकमल मुकर्जी:चिन्तन परम्परा, वर्ष 19 अंक 1, जनवरी-जून 2017, पृ. 89-93.
14. द्विवेदी, वन्दना, सविता, नेहा., 'कुशल ठोस अपशिष्ट प्रबंधन एवं गाँधी दर्शन : वर्तमान आवश्यकता', राधाकमल मुकर्जी:चिन्तन परम्परा, वर्ष 24 अंक 1, जनवरी-जून 2022, पृ. 107-114.
15. Chandrappa. Op.cit., p.49.
16. Ibid, p.65-74
17. Ibid, p.101,114.
18. Zhu, Da., Et al., "Improving Municipal Solid Waste Management in India", The World Bank Washington. D.C, 2008, pp.76-95. www.worldbank.org
19. Singh. op.cit., pp.10,11.
20 Singh. op.cit.,p.108.
21. City. Op.cit., p.2.
22. सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट की अद्यतन प्रगति, नगर निगम कानपुर, 2020, पृ.2.
23. वही, पृ. 3
24. वही, पृ. 5

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

वन अधिकार अधिनियम और "जनजातीय" क्षेत्रों में वनों के बदलते स्वरूप का विश्लेषण

❑ गोपाल सिंह

सूचक शब्दः वन अधिकार अधिनियम 2006, वन, संयुक्त वन प्रबंधन, मिश्रित वन, एकल वन, निजी कंपनी, वन रिपोर्ट 2021।

अनुसूचित जनजाति तथा अन्य परंपरागत वन निवासियों के अधिकार के लिए भारत सरकार ने एक कानून बनाया है। शासन ने अपनी पुरानी कमियों को दूर कर औपनिवेशिक शासन काल में आदिवासियों के साथ हुए ऐतिहासिक अत्याचार एवं अन्याय से मुक्ति दिलाने तथा वनों पर उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006, जिसे लोकप्रिय रूप से वन अधिकार अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है। वन अधिकार के नियमों से जुड़े सभी कानूनों की प्रारंभिक जांच कर क्रियान्वयन में लाने की जिम्मेदारी ग्राम सभा को सौपी गई है। निश्चय ही यह अधिनियम जनजातियों एवं वनों मे रहने वाले समुदायों के लिए मील का पत्थर है। कई स्तरों पर इस अधिनियम को क्रांतिकारी कानून की संज्ञा दी जा रही है। लेकिन इसके साथ-साथ कई राज्यों जैसे- उड़ीसा और तेलंगाला में वन अधिकार धारकों की जमीनों में "हरित हराम" कार्यक्रम के अंतर्गत नवीन प्रजाति का पौधारोपण करके वनों के स्वरूप को बदलने के साथ-साथ उन्हें पहले से प्राप्त पट्टे वाली वन भूमि से भी बेदखल किया जा रहा है। पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप मॉडल के माध्यम से मध्यप्रदेश सरकार प्रदेश की 40 प्रतिशत भूमि को निजी हाथों में देने की योजना बना रही है। भारत वन स्थिति प्रतिवेदन 2021 में भी प्राकृतिक वनों में कमी, वनों के बदलते स्वरूप और जंगलो में लगने वाली आग के प्रति चिंता प्रकट की है। वनों के स्वरूप मे बदलाव जनजातियों की आजीविका के साथ-साथ कई तरह के अन्य संकट खड़ा करता है। प्रस्तुत शोध पत्र मे वन अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने के साथ-साथ वनों के बदलते स्वरूप एवं उससे उत्पन होने वाली विभिन्न समस्याओं एवं उनका जनजातीय एवं वनों में रहने वाले समुदाय के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जायेगा।

भारत एक वैविध्यपूर्ण देश हैं जो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के मिलाप से बना है। यही कारण है कि इस पवित्र भूमि में एक साथ अनेक धर्म, संस्कृति, भाषा, प्रजाति एवं संप्रदाय के लोग सदियों से निवास करते हैं। इसका मुख्य कारण यहां विद्यमान भौगोलिक विविधताओं एवं जलवायु का होना है। इन्हीं विविधताओं के बीच एक समुदाय ऐसा भी है, जो प्राचीन काल से अपनी पृथक पहचान बना कर पर्वतीय एवं वन्य क्षेत्रों में आज भी निवास कर रहा है जिन्हें आदिवासी, जनजातीय व वनपुत्र इत्यादि के नामों से पुकारा जाता है। वर्ष 2011 में प्रकाशित जनगणना के अनुसार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 705 विविध जनजाति समुदाय निवास करते हैं, जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत हिस्सा है।"[1] वन आदिवासियों के आजीविका के लिए हमेशा से ही प्राथमिक साधन रहे हैं, इसीलिए सबसे पहले हमारे लिए वन की परिभाषा को जान लेना बेहतर होगा। वन उस भौगोलिक क्षेत्र को कहा जाता है जो विभिन्न प्रकार के वनस्पति (पेड़, झाड़ियों, लताओं, घास-पत्तों इत्यादि) समूहों से आच्छादित हो। सामान्य परिभाषा मे वन ऐसे समुदाय या पारिस्थितिकीय तंत्र को कहते हैं, जो जैविक तथा अजैविक तत्वों से मिलकर बना है। वन को "आरण्य" या जंगल भी कहा जाता है। लेकिन, जंगल में कही भी कोई व्यवस्था या प्रबंध नहीं झलकता है, मगर वहीं, वन शब्द से व्यवस्था या प्रबंध स्पष्ट है। वर्ष 1996 में सर्वोच्च न्यायालय के गोदावर्मन मामले के निर्णय के अनुसार, "एफ.आर.ए." की धारा 2 (घ) के अंतर्गत वन भूमि को व्यापक रूप से परिभाषित किया है, इसमें सभी वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त को वन माना जाए, चाहे उसके अंतर्गत अवर्गीकृत वन, असीमांकित विद्यमान वन या समझे गए वन, संरक्षित वन, आरक्षित वन, अभ्यारण और राष्ट्रीय उद्यान में सम्मिलित वन हो। वन को भारतीय संविधान की सातवी अनुसूची के "समवर्ती सूची" में वर्णित किया गया है।[2] सदियों से जनजाति समुदाय की अर्थव्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित रही है जिसमें घने जंगल एवं मिश्रित वन प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आदिवासियों के लिए वन एक सच्चे मित्र की तरह रहे हैं अर्थात वन और आदिवासी एक-दूसरे के पूरक हैं, वे एक दूसरे को सुरक्षा देते है। वनों से ही जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना का निर्माण होता है। यहाँ तक कि जनजातियों के अपने

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान एवं मानवाधिकार विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय वि.वि. अमरकंटक (म.प्र.)

पर्व-त्यौहार, लोकगीत, कहानी, कला, नृत्य, भाषा तथा राग-विराग इत्यादि सांस्कृतिक गतिविधियां जंगलों के इर्द-गिर्द घूमती हैं।"[3]

वन नीति का विश्लेषण एवं जनजातियों द्वारा वन अधिकारों के लिए संघर्ष :- साम्राज्यवादी शासन काल में अंग्रेजों ने आदिवासियों की वनीय परंपरागत संरचना को काफी नुकसान पहुंचाया। वन अधिनियम 1865 के माध्यम से सबसे पहले जनजातियों के जल, जंगल, जमीन को हड़पने की पहली कोशिश की गई। इन्हें सरकारी संपत्ति घोषित कर आदिवासियों को अतिक्रमणकर्ता करार कर दिया गया। बाद के समय में ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों ने प्राकृतिक संसाधनों पर इनके अधिकार को और अधिक सीमित किया। वन कानून 1878, 1894 एवं 1927 में सभी आदिवासियों के विरूद्ध थे, ताकि किसी भी तरह से उन्हें जंगल से दूर रखा जा सके। जंगली जानवरों के शिकार करने पर भी प्रतिबंध लगाया गया। उनके शिकार करने के तौर-तरीके को विधि बनाकर अपराध की श्रेणी में रख दिया गया। आदिवासियों द्वारा अपनाए गए जंगलों के परंपरागत संरक्षण एवं प्रबंधन व रख--रखाव को ब्रिटिश सरकार ने मान्यता न देने के साथ-साथ जनजातियों के परंपरागत राजनीतिक मान्यताओं को भी स्वीकृति नहीं दी। यही कारण था कि अंग्रेजों के साम्राज्यवादी कदमों को जंगलों की ओर जाने से नहीं रोका जा सका। आदिवासियों की जमीनों को अधिग्रहण करने का षडयंत्र रचा गया और पीढ़ियों से आदिवासी जिस भूमि पर खेती करते चले आ रहे थे, उन्हें कानूनों के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा छीन लिया गया। आदिवासी बाहुल्य वन क्षेत्रों से आर्थिक लाभ अंग्रेजों को प्राप्त होने लगा था अर्थात इस समय लकड़ियों का व्यापार बहुत तेजी से बढ़ने लगा था और लकड़ी के व्यापार के लिए जंगलों को काटने के लिए ठेका भी प्रारंभ कर दिया गया और बड़ी संख्या में भारतीय जंगलों से कीमती वनों की लकड़ियों को काट कर ग्रेट ब्रिटेन भेजा गया। प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान भारी मात्रा में सागौन, साल, देवदार जैसे कीमती पेड़ों को काटा गया, युद्ध में हुए नुकसान जैसे- पुल, हास्पिटल, भवनों, झोपड़ियों एवं नौकाओं इत्यादि के पुनः निर्माण में भारतीय वनों का उपयोग किया गया। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक "टिंबर ब्रांच" का गठन किया गया और अप्रैल 1917 से लेकर अक्टूबर 1918 तक लगभग 2,28,076 टन लकड़ियों का उपयोग भारतीय जंगलों से किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध का प्रभाव एक बार फिर से भारतीय वनों पर पड़ा। सरकार को अब महुआ, आम, जामुन जैसे पेड़ों में रुचि नहीं थी, अंग्रेज अफसर चाहते थे कि नुकसान/काटे हुए जंगलों व पेड़ों के स्थान पर नए पेड़ लगाए जाए। सरकार ने अब सागौन, चीड़ जैसे पौधों को लगवाना शुरू किया, जिनकी मांग विदेशी बाजार में बहुत थी और इस तरह एकल वन व एक प्रजाति वाले वनों को बढ़ावा दिया गया, जिस कारण मिश्रित वनों में भी इस समय कमी देखी गई।

भारत में अंग्रेजों के आने से पूर्व यहाँ "पारिस्थितिक-समानता" की स्थिति विद्यमान थी। वनों के रखरखाव, सुरक्षा और प्रबंध में ग्रामीण आदिवासी व वानाश्रित समुदाय का नियंत्रण होता था और वे स्वयं वनों की देखभाल करते थे। देशी शासकों की वनीय मांगे सीमित थीं और आदिवासी के वनीय अधिकारों के स्वतंत्रता पर कभी भी हस्तक्षेप नहीं किया जैसा की औपनिवेशिक काल में होता रहा है। लेकिन, भारत में अंग्रेजों के आते ही पारिस्थितिक-समानता में बदलाव हुआ। अंग्रेजों ने यहाँ के देशी राजाओं से 1865 में देवदार और चीड़ के वनीय क्षेत्रों को लीज पर लेना प्रारंभ कर दिया। ब्रिटिश शासकों ने सबसे पहले इन वनों के आस-पास रहने वाले आदिवासी जनसमुदाय लोगों को बेदखल और वन उपयोग संबंधी प्रथागत अधिकार को खत्म कर दिया गया। वर्ष 1865 से 1925 तक वन विभाग ने अपने व्यवसायिक हितों के अनुरूप इन जंगलों का प्रबंधन किया गया जिससे वन विभाग को वर्ष 1910 से 1925 के मध्य हर वर्ष 1.6 लाख रुपये से अधिक का मुनाफा हुआ। अंग्रेजी शासन ने इस तरह भारत में कई बहुमूल्य कीमती वनों को कम कीमत पर लीज में ले रखा था।

वन अधिकारों के लिए यह संघर्ष औपनिवेशिक शासन काल से लेकर वर्तमान समय तक "वन संघर्ष" जारी है। अंग्रेजों ने वन नीतियों के नाम पर, रेलवे स्लीपर बिछाने के नाम पर आदिवासी क्षेत्रों के वनों को काटा, जो इनके जीवन का मुख्य आधार थे। वही साहूकारों ने भी अंग्रेजी शासन का सहयोग कर इनकी जमीन को हड़पने में मदद की, जबकि जमीन उनके आजीविका का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। संघर्ष के इस दौर में जंगलों को काटकर वहाँ बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किये जा रहे हैं। इसे ही शायद विकास की संज्ञा दी जाती है, किसी दूसरे के घर को

उजाड़ करके किया गया विकास, विकास नहीं हो सकता क्योंकि हम "वसुधैव कुटुम्बकम" अवधारणा पर विश्वास करने वाले लोग हैं। 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक दिनों में जब छोटानागपुर में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन था तो 12500 वर्ग मील तक अधिकार अंग्रेजों का था जो भारतीय हिन्दू और मुस्लिम कर्मचारी अंग्रेजों की सेवा कर रहे थे तो उन्होंने भी आदिवासियों के ऊपर थोड़ा सा भी रहम व दया नहीं की। इसलिए आदिवासियों पर शोषण एवं अत्याचार बढ़ते चले गये, वन अधिकारों के मांग के कारण इन्हें अतिक्रमणकर्ता और चोर-डकैत कहा गया। अंग्रेजों के आने से यह संघर्ष और अधिक बढ़ गया। भारत में आदिवासियों की अपनी पुरानी खोई हुई सत्ता पुनः प्राप्त करने के लिए कई क्रांतियाँ हुईं, इनके संघर्ष का प्रारंभ 1767 ई. के भूमिज आदिवासियों के विद्रोह से होता है, जिनमें पहड़िया विद्रोह (1776), ढाल विद्रोह (1773), तिलका मांझी का विद्रोह (1784), चुआड़ा विद्रोह (1769), भील विद्रोह (1881), तमाड़ विद्रोह (1819-20), लरका विद्रोह (1821), कोल विद्रोह (1831-32), बिरसा मुंडा 'उलगुलान' (1895-1900), बस्तर क्रांति- 'भूमकल' (1910), भील आंदोलन 'धूमल' (1913), ताना भगत आंदोलन (1914) एवं झारखंड आंदोलन (1920-2000) सम्मिलित हैं। इन आंदोलनों की प्रकृति अलग-अलग रही है। कोई विद्रोह स्थानीय राजा के नेतृत्व में किया गया तो कुछ जमीदार-जागीदार के नेतृत्व में, तो कोई विशुद्ध आदिवासियों का रहा।

जब अंग्रेज भारत छोड़कर जा रहे थे, तो आदिवासी क्षेत्रों में विद्यमान वनों को पूरी तरह बर्बाद कर चुके थे। भारत जब गुलामी की जंजीरों से आजाद हुआ तो भारत सरकार ने सबसे पहले घुमक्कड़ जनजातियों के लिए संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन कुछ समुदायों को जनजाति मान लिया गया है, जिसे संविधान में "अनुसूचित जनजाति" शब्द दिया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उत्थान के लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गई। आदिवासियों को वनों पर पुनः अधिकार देने के उद्देश्य 1952 में भारत की प्रथम राष्ट्रीय वन नीति और वन संरक्षण अधिनियम 1972 जैसे कानून लेकर आए ताकि आदिवासियों की स्थिति को बेहतर किया जा सके। कानून तो बनाए गए मगर आदिवासियों एवं वनवासियों के अधिकारों के संदर्भ में यह कानून मौन रहे। अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में बाहरी उपनिवेशवाद तो समाप्त हो गया लेकिन जनजाति क्षेत्रों में एक नए किस्म के उपनिवेशवाद का उदय हुआ जिसे आंतरिक उपनिवेशवाद कहा गया। इस उपनिवेशवाद से आज भी आदिवासी बाहर नहीं निकल पाए हैं। साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी एवं पूंजीवादी ताकतों के विरुद्ध जनजातियों का संघर्ष आज भी क्रमबद्ध रूप से औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान समय तक अनवरत जारी है। भारत में आदिवासी समुदाय अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए निचले स्तर पर काफी विरोध, धरना एवं प्रदर्शन आदि किए गए इसलिए, भारत सरकार ने औपनिवेशिक शासन काल में आदिवासियों के साथ हुए ऐतिहासिक अत्याचार एवं अन्याय से मुक्ति दिलाने एवं वनों पर उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से "अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006" में कानून पारित किया गया।

साहित्य समीक्षा :-

कमल नयन चौबे[4] ने अपने अध्ययन में वन अधिकार कानून के पूर्व-इतिहास, इसके वर्तमान और भविष्य की एक संवेदनशील, बारीकी से वन कानून को अध्ययन किया है।

माधव गाड़गिल और रामचन्द्र गुहा[5] ने अपनी पुस्तक में प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण (टिकाऊ) और अपव्ययी (अस्थिर) उपयोग और उनके प्रभावों की जाँच करता है। यह भारत के पारिस्थितिक इतिहास का वर्णन करता है।

शालिनी अस्थाना[6] ने अपने लेख में आदिवासियों के वन जीवन गाथा पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं और बताया कि आदिवासी जीवन औपनिवेशिक शासन काल से ही संघर्षमय है।

माजिद मियाँ[7] ने अपने अध्ययन में पाया की अंग्रेजों के न्याय व्यवस्था के कारण आदिवासियों का और ज्यादा नुकसान हुआ है। सरकार के गलत रवैया व नीतियों के कारण जंगल के वास्तविक अधिकारों से तथा अपनी जमीनों से हाथ धोना पड़ रहा है।

केदार प्रसाद मीणा[8] ने अपने अध्ययन मे विश्लेषित किया कि आदिवासियों ने हमेशा से ही शोषण का विरोध किया है। कहीं वन विभाग के कर्मचारियों व ठेकेदारों के विरूद्ध, कहीं महाजनों-जमीदारों की लूट व अत्याचार के विरूद्ध और कही अंग्रेजों के खिलाफ। उन्होंने विभिन्न आदिवासी विद्रोह एवं क्रांतियों का उल्लेख किया जिसमें हूल आंदोलन सबसे बड़ा आंदोलन था।

हेराल्ड एस. तोपनों[10] ने अपने अध्ययन में विश्लेषित किया कि किस प्रकार आंतरिक उपनिवेशवाद जनजातीय वन भूमि को अपने शिकंजे में ले रहा है। जमीन जनजातियों के जीवन में किस तरह महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

अध्ययन के उद्देश्य :- प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उदेश्य वन अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन की वास्तविकता को समझना, जनजातीय क्षेत्रों में वनों स्वरूप में आ रहे बदलावों को जानने के साथ ही आजीविका के संकट को विश्लेषित करना है।

शोध पद्धति : इस अध्ययन हेतु विश्लेषित एवं वर्णनात्मक शोध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। विषय के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने के लिए मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का सहारा लिया गया है जिसमें आलोचित विषय पर विभिन्न महत्वपूर्ण पुस्तके, आलेख, पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, विभिन्न अधिनियम, सम्बंधित शोध और इंटरनेट आदि का प्रयोग के लिए किया गया। साथ ही, विभिन्न शोध परियोजनाओं के लिए प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु अध्ययन क्षेत्र के भ्रमण के दौरान एकत्रित अनुभाविक आगतों को इस शोध पत्र में समाहित किया गया है।

वन अधिकार अधिनियम 2006 : वन अधिकार कानून वनाश्रित लोगों के लंबे संघर्ष के इतिहास का परिणाम है। भारत सरकार ने अपनी पुरानी कमियों को न दोहराकर एवं औपनिवेशिक शासन काल में आदिवासियों के साथ हुए ऐतिहासिक अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए वनों पर उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से “अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारो की मान्यता) अधिनियम, 2006” पारित किया। इस कानून का मुख्य उद्देश्य है जंगल में निवास कर रहे वनाश्रित (अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी) या अतिक्रमणकर्ता के रूप में रह रहे लोगों को पैतृक भूमि का पट्टा और वनोपज पर कानूनी अधिकार मिल सके।[11]

वन कानून में उपबंध : अनुसूचित जनजाति तथा अन्य परंपरागत वन निवासियों को निम्नलिखित अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं -

1. वन अधिकार कानून के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत समुदाय वन अधिकार कानून के लिए पात्र होंगे और जीविकोपार्जन, स्वामित्व अधिकारों के अलावा अपनी परंपरागत भूमि पर अधिकार जताने व कब्जा करने और वन उत्पाद को संग्रहित कर उपयोग का अधिकार प्राप्त है।
2 वनों के आसपास तालाबों में पाए जाने वाले जलीय जीव (मछली, केकड़ा, झींगा आदि) भोजन के रूप में संग्रहित करने या जल स्रोतों से जुड़े संसाधनों पर निर्भर है तो वह अधिकार के पात्र हैं।
3. कानून में यह व्यवस्था की गई है कि सभी वन ग्रामों को राजस्व ग्रामों के रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है।
4. यह कानून सामुदायिक वन संसाधनों की रक्षा और पुनर्निरोपण, निरीक्षण का अधिकार वनवासियों को उपलब्ध करवाता है।
5. प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के साथ-साथ बौद्धिक संपदा और पारंपरिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान को सुरक्षित रखने का पारंपरिक अधिकार प्रदान करता है।
6. यदि किसी कारणवश विस्थापन या बेदखली की जाती है तो उन्हें वैकल्पिक भूमि प्रदान करने की व्यवस्था यह कानून करता है।
7. कानून वनवासियों के आसपास स्थित झाड़ीदार जंगली क्षेत्रों की जमीनों पर अधिकार देने की बात करता है।

वन अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन की प्रक्रियाः वन अधिकार कानून में अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासियों को अधिकार देने में, त्रिस्तरीय व्यवस्था को अपनाया गया है। सबसे पहले ग्राम सभा द्वारा दावा जमा करने की घोषणा करने की तारीख से तीन महीने के अंदर जो-जो दावेदार होंगे वे अपना-अपना दावा जमा करेंगे। फिर ग्राम सभा इस बात का पता लगाती है कि दावेदार ने जिस वन भूमि क्षेत्र में दावा प्रस्तुत किया है, वह उस भूमि क्षेत्र में कितने वर्षों से खेती करता आ रहा है, क्या यह वास्तव में अपनी आजीविका के लिए उस पर आश्रित है, उसी आधार पर ग्राम सभा आगे की सुनवाई करेगी, प्राप्त दावों के आधार पर सूची बनाएगी, दावे से संबंधित सभी विवरण लिखे जाएंगे, फिर ग्राम सभा दावेदार द्वारा संकल्प पारित कर प्रस्ताव तैयार कर के संबंधित संकल्प ऊपर समिति को जांच हेतु अग्रेषित करेगी। यदि संबंधित समितियां दावे में असत्यता पाती हैं या दावों के संबंध में फर्जीवाड़ा व झूठे साक्ष्य पेश किए गए या गलत तरीके से वन अधिकार प्राप्त करने की

कोशिश की जा रही है, तो संबंधित समिति दावों को निरस्त कर सकती है। यदि दावे में पेश की गए सभी साक्ष्य सही पाए जाते हैं तो वह अधिकार धारक को मान्यता मिल जाने पर, उस जमीन को वह न तो किसी को बेच सकेगा और न ही किसी को हस्तांतरित करने की अनुमति होगी।[12]

वन अधिकार अधिनियम की प्रक्रिया में आने वाली समस्याएं : वन अधिकार अधिनियम से जुड़ी हुई त्रिस्तरीय समितियों ने अपने कार्य प्रतिवेदन के क्रियान्वयन से संबंधित समस्याओं, बाधाओं एवं चुनौतियों से अवगत कराया है। कुछ अध्ययनों से ज्ञात हो पाया कि अधिकांश आदिवासी बाहुल्य राज्यों में वन अधिकार दावों के अंतर्गत व्यक्तिगत अधिकारों को मान्यता देने पर सरकारों का ज्यादा जोर रहा है।"[13] ग्राम सभा से वन अधिकार दावे पास हो जाने के बावजूद भी उपखंड स्तर की समिति और जिला स्तर की समिति द्वारा ज्यादातर दावे ग्राम सभा को वापस कर दिए जाते हैं।"[14] इसके लिए राज्य सरकारों ने सामुदायिक वन अधिकार के प्रावधानों को लेकर न तो कोई जन जागरूकता अभियान का कार्य किया है और न ही उनके आंतरिक महत्व के बारे में बताया है। वन अधिकार अधिनियमों में से जुड़ी हुई सभी समस्याओं के लिए उपचारात्मक क्षतिपूर्ति प्रदान कराकर हल किया जा रहा है। इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने वन अधिकार कानून की मूल आत्मा को ठेस पहुंचाने का कार्य किया है। वन अधिकार अधिनियम में महिलाओं की भागीदारी भी अपेक्षित स्तर से कम रही है, क्योंकि वन कानूनों के उपयोग संबंधी राजनीतिक एवं सामाजिक निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी समेत व्यक्तिगत दावों में महिला और पुरुष दोनों के नाम पर संयुक्त अधिकार पत्र बनाने की वकालत करता है, लेकिन भारत जैसे देशों में आज भी पितृसत्तात्मक रवैये के कारण वन अधिकार कानून महिलाओं को यथार्थ भाव से दूर करता है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जिनके सामाजिक-आर्थिक कल्याण व उत्थान के लिए कानून बना है, उन्हें इस कानून से जुड़ी हुई जानकारी तक नहीं है। वन अधिकार कानून से जुड़े सभी व्यक्ति एवं समुदायों को अपेक्षित सूचना उपलब्ध करवाना सरकारी विभागों की जिम्मेदारी बताई गई है। दावे प्राप्त करने में दावेदार को शासकीय कार्यालय की लंबी भाग दौड़ करनी पड़ती है, इस प्रकार हम देखते हैं कि वन कानून को एक लंबी न्याय प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। वनीय संरचना व अभिशासन परिवर्तन के कारण उनकी आजीविका का सुरक्षा खतरे में है, जिस कारण वन अधिकार कानून से वनवासियों का जुड़ाव नहीं हो पा रहा है, जो वास्तविक कानून के पूर्ण लाभ प्राप्त करने में एक बड़ी बाधा है। वन विभाग के अधिकारी व कर्मचारीगण भी वनवासियों से सीधे मुंह बात नहीं करते हैं, अधिकांश वनीय कानून की जानकारी प्रशासनिक भाषा में बता कर चले जाते हैं। यही कारण है कि आदिवासी वनोपज को संग्रहित करने व दावा पेश करने से डरते हैं, कि कहीं उनके द्वारा लगाए गए दावों में से उनके वन भूमि क्षेत्रफल को कम ना कर दिया जाए। इसी गलत प्रवृत्ति के कारण आदिवासी एवं वनवासी क्षेत्रों में एक मात्रा में साल, सागौन और यूकेलिपटिस जैसे पेड़ों का वृक्षारोपण करके एकल वनीय वन तैयार किए जा रहे हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि वन संरक्षण, प्रबंधन में स्थानीय वनवासी द्वारा वन विभाग का सहयोग नहीं कर पा रहे हैं। जिस उद्देश्य को लेकर सरकारों ने वन अधिकार कानून वनवासियों के कल्याण व उत्थान के लिए लाया था, वह उसे लाभ न पहुंचाकर के स्वयं शासन राजस्व प्राप्ति के रूप में लाभ कमा रहा है। भगवती प्रसाद दिवेदी बताते हैं कि "आदिवासी और वन इन दोनों का एक-दूसरे से आपस में सहजीवी रिश्ता होता है, ये जंगलों की सुरक्षा करते हैं और बदले में वन इन्हें जीवन के सारे संसाधन उपलब्ध करता है।"[15]

संयुक्त वन प्रबंधन : संयुक्त वन प्रबंधन 1 जून 1990 को अस्तित्व में आया, जो वर्ष 1988 के राष्ट्रीय वन नीति पर आधारित है। इस नीति में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया गया है, ताकि वनों के विकास में भागीदारी बनी रहे। जब स्थानीय वनवासी ग्रामीणवासी समुदाय के लोग राज्य वन विभाग के साथ मिलकर वन प्रबंधन एवं संरक्षण करने की प्रक्रिया में सम्मिलित होते हैं तो, उसे ही संयुक्त वन प्रबंधन कहा जाता है।"[16]

वन अधिकार अधिनियम की आड़ में वनीकरण या पौधारोपण कार्यक्रम के कारण बेदखली का विश्लेषण : वन अधिकार अधिनियम वनवासियों के वनों पर उनके परंपरागत अधिकार को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से लाया गया था। लेकिन इस अधिनियम की आड़ में वनों के स्वरूप को बदलने का षड्यंत्र हो रहा है। मध्य प्रदेश सरकार ने ग्राम वन विभाग के लिए अधिसूचित किया है जिसमें बताया गया है कि इन नियम के अंतर्गत क्षतिग्रस्त जंगलों को "ग्राम वन" के रूप में अधिसूचित

किया जाएगा। इसके लिए प्रत्येक गावों में जहाँ भी संयुक्त वन प्रबंधन की समितियां गठित हैं, वहां पर ग्राम वन समितियों को सूक्ष्म वनोपज से संबंधित कानूनी अधिकार दिए जाएंगे। इस अधिनियम की कोशिश रही है कि वनों में से वन विभाग का वर्चस्व और एकाधिकार समाप्त हो जाए और ताकि वन प्रशासन को वन प्रबंधन के मामले में लोकतांत्रिक बनाया जा सके। जबकि वास्तविकता यह है कि इस नियम के माध्यम से सभी प्रकार की वन भूमि को वन विभाग के प्रशासन के हाथों में सौंपने की तैयारी कर रहा है। इसके लिए संयुक्त वन प्रबंधन समितियों की मदद ली जाएगी, अब वनों का रख-रखाव व प्रबंधन भी वन विभाग के मार्ग निर्देशन में होगा। इसके अलावा इन दोनों नियमों में यह उपबंध किया गया है कि संयुक्त वन प्रबंधन समितियां अब औद्योगिक इकाइयों के साथ अनुबंध कर सकेंगे। इसका दूसरा पहलू उड़ीसा में भी देखने को मिला है, जहां राज्य सरकार द्वारा वनवासियों को जंगलों एवं उनकी पैतृक वन भूमि से बेदखल करने की षड्यंत्र हो रही है, इसके लिए सरकार आदिवासी वन क्षेत्रों व भूमि पर वनीकरण कर रही है, जिस पर लोग पहले से ही दावे प्राप्त कर के वहां रह रहे हैं या दावे प्रस्तुत करना चाहते हैं या दावे कर चुके हैं। कुछ मामलों में व्यक्तिगत वन अधिकार भूमि पट्टे दिए भी जा चुके हैं। आसपास के वनों में गठित संयुक्त वन प्रबंधन समितियों की मदद ली गई है, जिससे दो गांवों के बीच तनाव पैदा हो गया है। तेलंगाना राज्य में भी आदिवासी क्षेत्रों में वनीय विकास एवं जीविकोपार्जन के नाम पर "हरित हराम" कार्यक्रम चलाया गया है, जिसके द्वारा लगभग 5000 हजार किसानों व आदिवासियों की आजीविका को छीनने वाले पौधारोपण कार्यक्रम चलाए जा रही है। सरकार इसके लिए वन विभाग और राजस्व विभाग के अधिकारियों की मदद के रूप में संयुक्त सर्वेक्षण करवा रही है। हरित हराम जैसे पौधारोपण कार्यक्रम को हरित भारत मिशन के अंतर्गत वित्तपोषण दिया जा रहा है। पौधरोपण कार्यक्रम के नाम वनीकरण के वित्तपोषण लिए कोष बनाया गया है, ताकि पैसे प्राप्त होते रहें। जिस पैसे का उपयोग आदिवासी वन आश्रित लोगों को जंगलों से बेदखल करने और रोजगार देने के नाम पर उनकी आजीविका नष्ट करने के लिए किया जा रहा है।[17]

मिश्रित वन और आदिवासी समाज :- मिश्रित वन वह वन कहलाता है, जिसमें एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में दो या दो से अधिक प्रमुख किस्मों के वृक्ष एक साथ पाए जाते हैं। इन वनों में कम से कम 20 प्रतिशत छोटी आबादी के पेड़-पौधे और वृक्ष पाए जाते हैं।[18] मिश्रित वन ही वह वन होता है, जो पशु पक्षियों के लिए जैव विविधता को प्रदर्शित करता है और एक साथ एक ही जंगलों में विभिन्न प्रकार के (भालू, हिरण, बाघ, लोमड़ी, नीलगाय, जंगली सूअर, जंगली कुत्ता, खरगोश, सांप इत्यादि) वन्य प्राणी पाए जाते हैं, जिन्हें राष्ट्रीय उद्यान या प्राकृतिक संसाधनों के भंडार के रूप में सुरक्षित किया गया है। इस तरह, यह वन पर्यटन के लिए प्रासंगिक आर्थिक गतिविधि प्राप्त करते हुए परिस्थितिकी तंत्र और परिस्थितिकी संतुलन के लिए भी आवश्यक है।''[19] इन वनों का महत्व हमारे जीवन और जनजाति समुदाय में इनकी भूमिका और अधिक बढ़ जाती है। आदिवासी समुदाय सदियों से ही अपने आजीविका के आर्थिक साधन जुटाने के लिए मिश्रित वनों पर निर्भर रहा है। भोजन के रूप में जंगलों से शहद, मछली और शिकार करने के लिए जानवर और घर निर्माण एवं भोजन पकाने के लिए लकड़ी पर्याप्त मात्रा में मिल जाती थी। मदन और मजुमदार का मानना है कि "जनजातियों की अर्थव्यवस्था वनों से लकड़ी काटने, पशु चराने, शिकार करने, वन्य शिल्प, वन्य वस्तुएं एकत्र करने तथा खेती व कृषि करने तक सीमित है।"[20]

आदिवासी समाज में खान-पान की पूरी शैली प्राकृतिक रूप में बहुत समृद्ध रही है और इसमें प्रकृति का बड़ा योगदान रहा है। जैसे वर्षा के समय मिलने वाले पिहरी (मशरूम) और पुटपुरा एक महत्वपूर्ण भाग है क्योंकि इसकी उपलब्धता वर्ष में सिर्फ एक बार होती है और मशरूम की तो कई प्रकार की प्रजातियां जिनका सेवन या समुदाय करता रहा है। इसी तरह बांस की करील और बरसाती भाजी भी इन्हें वर्ष में एक बार प्राप्त होती है। वर्षा के महीने में और गर्मियों में मुनगा, तेंदू फल, सुनसुनिया साग, पोकरी साग इत्यादि, इसे लगभग सभी आदिवासी समुदाय के लोग बड़े चाव से खाते हैं। पर इसकी उपलब्धता और पहुंच काफी कम होती जा रही है।[21]

आदिवासियों के जीवन में मिश्रित वन बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं अर्थात इस चीज को समझना होगा कि मिश्रित वन है तो आदिवासी है, आदिवासी है तो वन हैं, उनकी आत्मा यहीं बसती है। लेकिन यह अब आदिवासियों के लिए काफी कठिन होता दिखाई दे रहा है, क्योंकि जब

से सरकार वन नीति में बदलाव और वनों का व्यवसायीकरण किया है, तब से आदिवासी के लिए अपने जीवन निर्वाह के लिए जंगलों से जलाऊ लकड़ी, खाद पदार्थ एवं अन्य वस्तुएं प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती पूर्ण समस्या खड़ी हो गयी है जिसका प्रमुख कारण आदिवासी क्षेत्रों में वनों के स्वरूप में लगातार बदलाव किया जाना रहा है। जंगलों की मूल प्रकृति को हुई पूरी तरीके से बदल कर रख दिया गया है, अब ये जंगल मिश्रित वन न होकर एकल वन हो गया है, जहां केवल और केवल एक ही प्रजाति के वृक्षों का वृक्षारोपण किया जा रहा है। मध्यप्रदेश शासन व वन विभाग की ओर से इस प्रकार के वनों का नामकरण भी किया जैसे- हरियाली चुनरी योजना, रुद्राक्ष व शीशम वृक्षारोपण, बांस वृक्षारोपण एवं उर्जा वन वृक्षारोपण इत्यादि। एकल वन से आदिवासी समुदाय की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि इन वनों में वैसे पेड़ों का वृक्षारोपण हो रहा है, जो केवल व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक हो और वनवासी एवं वनपुत्र को एकल वन एवं व्यवसायिक वन से कोई लाभ नहीं मिलने वाला है। सरकार आदिवासियों की आर्थिक उत्थान व कल्याण की बात तो करती है, मगर आदिवासी क्षेत्रों में मिश्रित वनों को बढ़ावा देने के उद्देश्य कोई महत्वपूर्ण ठोस कदम नहीं उठाया गया है। यदि कुछ स्थानों पर मिश्रित वन के लिए पेड़ लगाए भी गए हैं तो आदिवासी समुदाय को उन क्षेत्रों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं है। यहां मोटे-मोटे अक्षरों में प्रवेश निषेध लिखा होता है और इन वन क्षेत्रों में वन विभाग द्वारा लगाए गए बोर्ड में पेड़ पौधों के नाम व पेड़ों की प्रजाति का नाम लिखा हुआ होता है जो नाममात्र का होता है। आज आदिवासी समुदाय सदियों से वनों को अपना कहने वाला व मानने वाला अचानक से उससे दूर होता जा रहा है। काम नहीं मिलने के कारण जनजाति भुखमरी जैसी स्थिति का सामना कर रही है। शहर में आने से पहले अपना स्वयं का कुटीर उद्योग गांव में था। एक बड़ी संख्या में वनों का व्यवसायीकरण होने से जनजाति समुदाय बर्बाद तो हुए हैं, साथ ही हमारा पर्यावरण संतुलन भी गड़बड़ा गया है। आदिवासी लोग घर की जरूरतों को पूरा करने के लिए काम की तलाश में शहर जा रहे हैं, वे वहां मजदूर बन गए हैं। महिलाएं वेश्यावृत्ति के जाल में फंसती जा रही हैं।"[22]

वनों के सर्वश्रेष्ठ संरक्षक/पहरेदार हैं आदिवासीः- आदिवासी लोग अपने आसपास के वन्य क्षेत्र में 32 से 38 करोड़ हेक्टेयर जंगल की सुरक्षा करते हैं, बदले में जंगल लगभग 3,400 करोड मीट्रिक टन कार्बन स्टोर करते हैं। खाद्य और कृषि संगठन की नई रिपोर्ट में बताया गया है कि जिन क्षेत्रों में आदिवासी समुदाय निवास करते हैं, वहां पर जनजातियों के द्वारा वनों के काटने की दर काफी कम पाई गई है। दुनिया भर की सरकारों ने सामूहिक रूप से आदिवासी लोगों को भूमि के अधिकारों को लेकर औपचारिक मान्यता दी है। आदिवासी लोगों ने जैव विविधता की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।"[23] इन सब के जानने के बावजूद भी आदिवासी क्षेत्रों में विद्यमान वनों के स्वरूप को बदला जा रहा है और मिश्रित वनों को काटकर इन क्षेत्रों में भारी संख्या में सागौन और यूकेलिप्टस के पेड़ लगाए जा रहे हैं। मध्य प्रदेश में वन विभाग की स्थापना वर्ष 1860 में हुई और साथ ही वैज्ञानिक तरीके से वन प्रबंधन करने की शुरुआत हुई। संभवतः मध्य प्रदेश भारत का ऐसा पहला राज्य है, जहां भारत की प्रथम वन नीति 1894 से ही कार्य योजना बनाने का कार्य प्रारंभिक स्तर पर चालू किया गया था।[24]

निजी कंपनियों के हाथों में 40 फीसदी जंगल :- मध्य प्रदेश सरकार प्रदेश की वन भूमि का एक बहुत बड़े हिस्सों को निजी कंपनियों के हाथों में देने की योजना बना रही है। केंद्र सरकार भी जंगलों को निजी हाथों में देने की तैयारी बहुत दिनों से कर रही है। सरकार इसके माध्यम से प्रदेश में वनों की दयनीय स्थिति को सुधारना चाहती है और प्रदेश की 40 प्रतिशत जमीन को पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (PPP) मॉडल के माध्यम से निजी कंपनियों को देने की योजना बना रही है। मध्य प्रदेश राज्य के कुल 94,689 वर्ग किलोमीटर में से लगभग 37,420 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र को सरकार बिगड़ा हुआ वन क्षेत्र कहती है। बिगड़ा हुआ वन क्षेत्र सामान्य अर्थों में उसे कहते हैं, जिस वन क्षेत्र में बड़े--बड़े पेड़ों की संख्या कम हो, झाड़ियां अधिक हों और अधिकांश जमीन खाली पड़ी हुई। सरकार द्वारा बताए गए आंकड़ों के अनुसार प्रदेश के कुल 52,739 गांव में से 22,600 गांव ऐसे हैं जो या तो जंगलों में बसे हैं या फिर जंगलों के काफी निकट बसे हैं, इनमें से ज्यादातर गांव आदिवासियों के हैं। मध्य प्रदेश का एक बहुत बड़ा हिस्सा आरक्षित किया गया है और एक हिस्से पर राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण और सेंचुरी आदि हैं। बाकी प्रदेश में बची हुई जमीन को

बिगड़ा वन या संरक्षित वन कहा जाता है। सरकार जिस बिगड़े वन क्षेत्र की बात कर रही है, उसे ही प्राइवेट कंपनियों को सौंपने की योजना बना रही है।[25] जबकि बिगड़े हुए वनों की देखभाल व सुरक्षा करने की जिम्मेदारी गांव स्तर पर बनी "वन ग्राम समिति" को सौंपा गया है। वन अधिकार अधिनियम (2006) की धारा 5 उपबंधों को क्रियान्वित करने के लिए वन्यजीव, वन और जैव विविधता की सुरक्षा के लिए ग्रामसभा अपने सदस्यों में से समितियों का गठन करेगी। सरकारी राजस्व प्राप्ति की दौड़ में, आदिवासी समुदाय वनों से कोसों दूर होता जा रहा है। 2 फरवरी 2016 को एक रिपोर्ट में वन ग्रामों को राजस्व ग्राम में परिवर्तित करना दिखाया गया है। वन अधिकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्यसभा में हुए चर्चा के दौरान कुछ राज्यों में हुई परिवर्तन की संख्या छत्तीसगढ़ में वन ग्रामों की संख्या 658 में से 421 एफआरए के अंतर्गत राजस्व ग्राम में परिवर्तित कर दी गई, वहीं मध्य प्रदेश में कुल 1165 ग्रामों की संख्या में से 925 से वन ग्रामो को राजस्व ग्राम में परिवर्तित कर दिया गया है।[26]

भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2021 :- भारत में वर्ष 1987 में पहला वनु सर्वेक्षण प्रकाशित हुआ था। भारत वन स्थिति का 17वा संस्करण 2021 में प्रकाशित हुआ है। इसमें भारत के वन और वृक्ष आवरण का आकलन किया गया है। इस रिपोर्ट को द्विवार्षिक रूप से भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित किया जाता है। इस रिपोर्ट का उपयोग भारतीय वन प्रबंधन के अलावा वानिकी एवं कृषि जैसे क्षेत्रों में नीतियों के नियोजन और निर्माण की मदद के लिए किया जाता है। साथ ही रिपोर्ट में वनों में आग लगने वाली स्थिति व कारण के बारे में बताया गया है, रिपोर्ट के अनुसार 35.46 प्रतिशत वन क्षेत्र जंगल की आग से ग्रस्त हैं जिसमें से 2.81 प्रतिशत वन अत्यंत अग्नि प्रवण 7.85 प्रतिशत की प्रतिशत वन अति उच्च अग्नि प्रवण और 11.51 प्रतिशत उच्च अग्नि प्रवण स्थिति में है। अगर यही हाल रहा तो वर्ष 2030 तक भारत में 45 से 64 प्रतिशत वन जलवायु परिवर्तन और बढ़ते तापमान के समाप्त हो जायेंगे। देश के घने जंगलों या प्राकृतिक वन में 1,582 वर्ग किलोमीटर की गिरावट देखी गई है और 5,320 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में झाड़ीदार जंगलों में वृद्धि हुई है। सबसे कम 501 वर्ग किलोमीटर में घने जंगलों में वृद्धि हुई है। इस प्रकार से वनों का विनाश वा उसमें कमी आना चिंता का विषय है।[27]

सुझाव

1 वन अधिकार अधिनियम की जागरूकता के लिए वनवासियों के बीच का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए और इसके लिए गैर- सरकारी संगठनों की मदद ली जानी चाहिए।

2 इस अधिनियम के अंतर्गत वन अधिकार धारकों को वन भूमि पट्टा दिए जाने के साथ-साथ उन्हें अन्य सरकारी योजनाओं के माध्यम से शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, आवास और कृषि यंत्र जैसी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध करवाया जाना चाहिए।

3 इस अधिनियम के अंतर्गत जो त्रिस्तरीय व्यवस्था को अपनाया गया है उसके कार्य प्रणाली में सम्मिलित कर्मचारियों के बीच आपसी तालमेल हो सके इसके लिए दिशा निर्देश दिए जाने चाहिए।

4 वन अधिनियम के क्रियान्वयन में सम्मिलित समितियों को प्राप्त अधिकारों के अनुकूल ही उन्हें सुविधाएं उपलब्ध करवाया जाना चाहिए।

5 वन अधिकार समितियों से जुड़े सभी प्रशासकों को वन अधिकार की पूरी जानकारी के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करवाया जाना चाहिए।

6 ग्राम सभा की बैठक से वन वासियों को क्या-क्या लाभ हो सकते हैं, उसकी जानकारी वन अधिकार धारक को दिया जाना चाहिए।

7 दावेदार द्वारा लगाए गए दावे किसी कारणवश निरस्त हो जाते हैं, तो उसकी सूचना तुरंत दावेदार को लिखित रूप में निरस्त होने के कारणों एवं उस समस्या का समाधान के बारे में दी जानी चाहिए।

8 संयुक्त वन प्रबंधन समितियों के माध्यम से सरकार वनवासी क्षेत्रों में जीविकोपार्जन व रोजगार उपलब्ध कराने वाले वृक्षों का पौधारोपण करवाया जाय।

9 जिस वन ग्राम में संयुक्त वन प्रबंधन समिति नहीं है, वहां तत्काल इसका गठन किया जाना चाहिए।

10 तेजी से समाप्त हो रहे प्राकृतिक वनों को रोकने व उसकी वृद्धि के लिए वन अधिकार अधिनियम अधिनियम में अनुसूचित जनजाति एवं अन्य वनवासियों को इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए।

11 जमीन के बदले पैसे वाले पैकेज पर अंकुश लगाया जाना चाहिए।

12 वन अधिकार अधिनियम के अंतर्गत वन अधिकार धारक के क्या-क्या कर्तव्य होंगे उसे ग्रामसभा के

माध्यम से बताया जाना चाहिए।

13 सरकारों को अपने व्यवसायिक राजस्व वाली नीति में बदलाव लाना चाहिए।

निष्कर्ष : आदिवासी व वनों पर आश्रित समुदायों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए सरकार को महत्वपूर्ण कदम उठाना होगा और अपनी समस्त वन नीतियों में मिश्रित वनों को बढ़ावा देना होगा, वनों के संरक्षण हेतु जनजातीय समुदाय को सरकार द्वारा पुरस्कृत किया जाना चाहिए ताकि जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को बेहतर बनाया जा सके। ग्राम स्तर पर गठित "वन अधिकार समिति" को आर्थिक संसाधन उपलब्ध करवाया जाना चाहिए ताकि बेहतर रूप से वनों का प्रबंधन वं संरक्षण किया जा सके। वनों में इनके जीविकोपार्जन के लिए कुछ संसाधन रहेंगे ही नहीं तो बंजर व अनुपजाऊ जंगल, जमीन जनजातियों के लिए किस काम के, यदि सरकार आदिवासियों के प्रति सच्ची श्रद्धा रखती है तो जंगलों मे उनके प्रवेश को सीमित न किया जाए और जंगलों के रखरखाव और प्रबंधन व संरक्षण में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करें। इसके लिए सरकार को अपनी वनीय नीतियों में बदलाव लाना होगा।

सन्दर्भ

1. Rajput Uday Singh, 'Functioning of Gram Panchayat In Tribal Area The Grassroots Realities of Selected District of Eastern Madhya Pradesh', SSDN Publishers and Distributors, 2021, p. 02
2. https://tribal-nic-in
3. चौबे, कमल नयन, 'जंगल की हकदारी राजनीति और संघर्ष', वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2015, पृ. 70-78
4. अस्थाना, शालिनी, 'दलित आदिवासी : एक संघर्ष जीवन', अपनी माटी, सितम्बर, 2015, पृ.1-3
5. Gadgil Mahadev and Ramchandra Guha, 'This Fissured Land : An Ecological History of India', University of California Press, 1993
6. मियाँ, माजिद, 'जंगल के दावेदार : आदिवासी संघर्ष', अपनी माटी, सितम्बर, 2015, पृ.1-4
7. मीणा, केदार प्रसाद, 'क्रांतिकारी आदिवासी आजादी के लिए आदिवासियों का संघर्ष', साहित्य उपक्रम, फरवरी, 2012, पृ. 11-12
8. मीणा, केदार प्रसाद, 'आदिवासी विद्रोह : विद्रोह परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ', अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2015, पृ. 29-139
9. दुबे, संजीव कुमार एवं मीणा, सियाराम, 'औपनिवेशिक काल में झारखण्ड के आदिवासियों का शोषण एवं संघर्ष', अपनी माटी, 01 नवंबर, 2021, पृ 1-4
10. तोपनो, हेराल्ड एस, 'उपनिवेशवाद के शिकंजे में जनजातीय क्षेत्र उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष', विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार दिल्ली, 2015, पृ.52--54
11. https://www-tribal-nic-in
12. https://mpvanmitra-mkcl-org/hi
13. Mudgal Sanjukta and Sharma, J-V, 'Effectiveness of FRA in Madhya Pradesh', Doi,10-21474, International Journal of Advanced Research, IJAR, 2021, pp. 295&296
14. Kumar Sujeet, 'Forest Rights Act Enables State Control of Land Control of Denies Most Adivasis and Forest Dwellers Land Rights, Economic and Political', Vol.55, Issue 6, 2020, pp. 1 & 7
15. तोमर, सोहम, 'आदिवासी समाज और नक्सलवाद', ज्ञानदा प्रकाशन पी. एण्ड. डी., अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली, 2020, पृ.103.
16. Pattanaik Aaravind, 'Forest Management in Tribal Areas Policy and Participation, Signature Books International', Sonia Vihar, Delhi, 2013, p. 71
17. https://fra-org-in/
18. https://m&hindi-indiawaterportal-org
19. https://www-renovablesverdes-com
20. बेहरा, जयंत कुमार, 'भारतीय समाज में जनजातियों के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन गोंड जनजाति के विशेष संदर्भ में', जनजाति विकास विविध पक्ष., स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 48-53
21. चार्ल्स, आमीन, कान्हा 'मैकल के आदिवासियों की भोजन विविधता उपलब्धता और भविष्य', 2019., https://www-sahapedia-org/kaanaha&maaikala&kae&adivas saiyaon&kai&bhaojana&vaivaidhata a&upalabadh ataa&aura&bhavaisaya
22. तोपनो, हेराल्ड एस, पूर्वोक्त, पृ. 52--54
23. https://www-downtoearth-org-in/hindistorg/wildlife&biodiversity/forest&rights/tribal&people&are&the&best&protectors&of&forest&fao&76167
24. https://mpforest-gov-in/&quter/into&H&aspÛ
25. https://www-gaonconnection-com/desh/madhya&pradesh&preparing&to&give&40&percent&of&the&forest&to&private&companies&but&where&will&the&lakhs&of&tribal&living&go&48305
26. https://fra-org-in/
27. https://fai-nic-in/forest&report&2021&details

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

जनजातीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति : मातृसत्तात्मक खासी समुदाय के विशेष परिप्रेक्ष्य में

❑ डॉ. इन्दिरा श्रीवास्तव
❖ सुश्री निर्मालिका सिंह

सूचक शब्दः खासी, जनजातीय समाज, मातृसत्तामक, व्यवस्था, मातृवंशीय परम्परा, महिला सशक्तीकरण।

लिंग भेदभाव, महिलाओं के शोषण की सदियों पुरानी समस्या का समाधान खोजने और समाज में उनकी स्थिति को ऊपर उठाने के लिए महिला सशक्तिकरण के मुद्दे पर विभिन्न स्तरों पर काफी चर्चा हुई है। हालांकि अधिकांश जनजातीय समाजों में भले ही गरीब हों, महिलाओं के पास हमेशा एक विशेष स्थान और भूमिका होती है, जिसे वे अपने समकक्ष पुरुषों की तुलना में बड़ी जिम्मेदारी के साथ विभिन्न क्षेत्रों में निभाती हैं। मेघालय का खासी समाज एक ऐसा समाज है जिसे आमतौर पर मातृवंश के रूप में जाना जाता है। जहाँ अधिकार, उपाधि, उत्तराधिकार, विवाह के बाद निवास और उत्तराधिकार का पता महिला रेखा के माध्यम से लगाया जाता है, इसलिए यह माना जाता है कि उन्हें जागरुक करने और सामाजिक-आर्थिक अपने समाज में पुरुषों के साथ अपने अधिकारों को स्थापित करने के लिए राजनैतिक या मनोवैज्ञानिक समझ ज्ञान के रूप में उन्हें स्वचालित रूप से एक सम्मानित स्तर पर रखा जाता है। यह माना जाता है कि उनकी शिक्षा तक पहुँच, सम्पत्ति पर स्वामित्व, उनके परिवार और समाज में अधिकार तथा मुखिया होने के नाते परिवार के समस्त निर्णय वे खुद ही लेती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जनजातीय समाज में खासी समुदाय की वास्तविक, मातृसत्तात्मक स्थितियों, महिलाओं की प्रस्थिति, उनके अधिकारों का अध्ययन करना है तथा नवीन परिवर्तनों व आधुनिकीकरण का परम्परागत खासी नेतृत्व प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका अध्ययन करना है।

जनजातीय समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति के बारे में एक लम्बे समय तक मतभेद बना रहा है। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचार परस्पर बहुत विरोधी रहे हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि सभ्य समाजों की तुलना में जनजातीय समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति कहीं अधिक उच्च है, जबकि अनेक विद्वान आदिवासी समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति को साधारणतया बहुत निम्न और पिछड़ी हुई मानते हैं। सभी समाजों के समान जनजातीय समाजों में भी सिद्धान्त और व्यवहार के बीच एक बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। तात्पर्य यह है कि जनजातियों में विभिन्न प्रकार की प्रथाओं के रूप में व्यवहार के जिन मानदण्डों को महत्व दिया जाता है, वास्तविक क्रियाओं और व्यवहारों का उनसे मेल खाना सदैव आवश्यक नहीं होता।[1]

इस दृष्टिकोण से मैलीनोवस्की[2] ने लिखा है कि आदिवासों समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति का मूल्यांकन करने का सही तरीका यह है कि एक ओर हम यह देखें कि स्त्रियों और पुरुषों के पारस्परिक दायित्व क्या हैं तथा दूसरी ओर यह देखने का प्रयत्न करें कि स्त्रियों को पुरुषों की निरंकुशता से बचाने के लिए कौन-कौन से संस्थागत उपाय किये जाते हैं। इसी बात को लोवी[3] ने और अधिक स्पष्ट करते हुए उन चार आधारों का उल्लेख किया है जिनकी सहायता से एक विशेष समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है। यह आधार हैं–

1. स्त्रियों के प्रति पुरुषों का वास्तविक व्यवहार
2. समाज में स्त्री की कानूनी और प्रथागत प्रस्थिति
3. स्त्रियों को प्राप्त होने वाले सामाजिक सहभागिता के अवसर
4. स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों की प्रकृति और उनका विस्तार।

कुछ विद्वानों का विचार है कि जनजातीय स्त्रियों की प्रस्थिति का सही मूल्यांकन उत्तराधिकार तथा आवास की प्रकृति के आधार पर ही किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से एक सामान्य निष्कर्ष यह दे दिया जाता है कि मातृसत्तात्मक समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति ऊँची होती है, जबकि उन जनजातियों में स्त्रियों की प्रस्थिति नीची है जहाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था पायी जाती है। मातृसत्तात्मक व्यवस्था का विशुद्ध रूप यद्यपि आज संसार के किसी भी भाग में उपलब्ध

❑ एसोसिएट प्रोफेसर, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, प्रयागराज (उ.प्र.)
❖ शोध अध्येत्री, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, प्रयागराज (उ.प्र.)

नहीं है लेकिन मेघालय की खासी (Khasi) तथा गारो (Garo) जनजाति में प्रचलित मातृसत्तात्मक व्यवस्था इस संरचना के काफी निकट है।[4]

खासी पूर्वोत्तर भारत में मेघालय राज्य में कई जनजातियों में से एक है जो मातृवंशीय वंश का अभ्यास करती हैं। खासी का इस्तेमाल मेघालय में कई उप समूहों को संदर्भित करने के लिए एक छत्र वाक्यांश के रूप में किया जाता है, जिनकी भाषाएँ, संस्कार, समारोह और आदतें अलग-अलग हैं लेकिन की हिन्न्यू ट्रेप (द सेवन हट्स) के रूप में एक जातीय पहचान साझा करते हैं।[5]

खासी एक प्राचीन जनजाति है जिसे दुनिया में सबसे बड़ी जीवित मातृवंशीय संस्कृति कहा जाता है, जो गारो जैसे अन्य उपसमूहों के साथ, मेघालय, साथ ही असम और बांग्लादेश के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहते हैं। माना जाता है कि खासी पूर्वी एशिया के सोम-खमेर लोगों से पैतृक सम्बन्ध रखने वाले प्रवासी है। मेघालय में खासी और अन्य उपसमूहों द्वारा प्रचलित मातृवंशीय परम्परा भारत के भीतर अद्वितीय है। खासी के बीच मातृवंशीय सिद्धान्तों पर मिथकों, किंवदंतियों और मूल कथाओं पर जोर दिया गया है। खासी राजाओं ने युद्धों में भाग लिया और परिवार चलाने की जिम्मेदारी महिलाओं पर छोड़ दी और इस तरह समाज में उनकी भूमिका बहुत गहरी और सम्मानित हो गई।[6]

महाभारत में नारी राज्य (महिला साम्राज्य या मातृसत्ता की भूमिका) का सन्दर्भ संभवतः खासी और जयंतिया पहाड़ियों और मेघालय की वर्तमान मातृवंशीय संस्कृति से सम्बन्धित है। खासी, गारो और अन्य उपसमूहों की गौरवपूर्ण विरासत मांतृवंशीयता है, हालांकि 2004 में यह बताया गया था कि उनके मातृवंशीय लक्षण कम हो रहे थे।[7]

खासी समाज व्यवस्था मातृस्थानीय एवं मातृरेखीय है। ये अपना वंश निर्धारण उन महिला पूर्वजों से करते हैं, जिन्हें लोक कथाओं में प्रायः जनजातीय पौराणिक राजकुमारियाँ बताया जाता है। यहाँ तक कि सृष्टि रचयिता देवता के लिए भी ये स्त्री लिंगीय लक्षणों का उल्लेख करते हैं। इनमें वंशनिर्धारण माँ से होता है अर्थात् केवल स्त्री रेखीय रूप में होता है। सम्पत्ति का उत्तराधिकार माँ से केवल बेटी को ही मिलता है। परिवार की सबसे छोटी बेटी 'काखडुह' को सारी पैतृक सम्पत्ति विरासत में मिलती है। एक महिला के पुनर्विवाह या विवाह के बाहर जन्म देने के लिए कोई सामाजिक कलंक नहीं है क्योंकि 'खासी सामाजिक कस्टम वंश अधिनियम' उन्हें सुरक्षा देता है महिलाओं को उनके गोत्र से बाहर विवाह करने के लिए जाना जाता है। सभी अधिकारों का आनन्द लेने वाली महिलाएँ एक स्वतंत्र जीवन जीती है, अच्छे कपड़े पहनती है, चर्च जाती हैं, और कई शादी नहीं करना पसंद करती हैं। वे देश के बाकी हिस्सों के विपरीत पूरी सुरक्षा का आनन्द लेती है। खासी समाज की एक सफल कैरियर महिलाओं को लगता है कि उनकी सामाजिक विसंगति ने उन्हें हर तरह से सफल होने में सक्षम बनाया है। अधिकांश छोटे व्यवसायों का प्रबन्धन महिलाओं द्वारा किया जाता है।[8]

बीना अग्रवाल[9] ने गारो और खासी के बीच विशिष्ट विशेषताओं की तुलना की। उन्होंने बताया कि गारो ने मातृवंशीय विरासत, वैवाहिक पोस्ट, वैवाहिक निवास, क्रॉस चचेरे भाई विवाह के लिए प्राथमिकता, महिलाओं द्वारा विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों की स्वीकृति का अभ्यास किया, लेकिन महिलाओं द्वारा व्यभिचार को दण्डित किया जाता है, जबकि खासी ने मातृवंशीय विरासत, मातृस्थानीय और डुओलोकल पोस्ट-वैवाहिक निवास (जिसमें पति अलग घर में रहता है जबकि पत्नी अपने माता-पिता के निवास पर रहती है) क्रॉस चचेरे भाई विवाह का विरोध और फिर महिलाओं द्वारा विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों की स्वीकृति को माना जाता है।

बच्चों की देखभाल माताओं और सास की जिम्मेदारी है। इस समाज की सबसे छोटी बेटी जिसे पैतृक सम्पत्ति विरासत में मिलती है, अपने माता-पिता के बुढ़ापे में उनकी देखभाल के साथ-साथ अपने भाई-बहन के कल्याण और शिक्षा की देखभाल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कुछ खासी पुरुष स्वयं को एक गौण दर्जा प्राप्त समझते हैं। उन्होंने पुरुषों के लिए समान अधिकारों की रक्षा के लिए सिन्गखोंग रिम्पेई थिम्मई (SRT, 3000 सदस्य) और सैम काम रिन कू माई (सोसाइटल रिस्ट्रक्चरिंग एसोसिएशन) जैसे समाज स्थापित किये हैं। वे व्यक्त करते हैं कि ''खासी पुरुषों के पास कोई सुरक्षा नहीं है, उनके पास अपनी जमीन नहीं है, वे पारिवारिक व्यवसाय नहीं चलाते हैं तथा साथ ही वे लगभग अधिकारविहीन हैं। हालांकि शिलांग टाइम्स का सम्पादन करने वाली पेट्रिसिया मुखिम का मानना है कि, मुझे लगता है कि खासी पुरुष बाहरी लोगों की तुलना में अपनी मर्दानगी में कमी महसूस करते

हैं, यह अफसोस की बात है, क्योंकि यही हमें दूसरों से अलग करता है।[10]

त्योहारों एवं धार्मिक जीवन के आयोजनों, विशेषतः परिवार से सम्बन्धित आयोजनों का संचालन भी स्त्रियाँ किया करती है। पूर्वज आत्माओं की पूजा की जाती है और ये मुख्यतः स्त्रीरूपी होती है, सभी प्रकार के बलि आयोजनों का संपादन पुरोहिताइनें करती हैं। कुछ स्थितियों में स्त्रियाँ धार्मिक तथा लौकिक (सेक्युलर) दोनों क्षेत्रों की मुखिया होती है। उदाहरणार्थ, महत्वपूर्ण खाइटिम प्रदेश में प्रदेश की प्रधान पुरोहित और वास्तविक पुरोहित एक स्त्री हुआ करती थी, जिसने पवित्र एवं राजसी भूमिकाओं का समावेश स्वयं में ही कर लिया था।[11]

साहित्य समीक्षा- पी.आर.टी. गुरूदों[12] ने अपनी किताब 'The Khasi' में खासी समुदाय की मातृसत्तात्मक व्यवस्था, उनकी शिष्टाचार, परम्परायें, उनका नृवंश विज्ञान समानताएँ, उनका कानून तथा संस्थान, उनका धार्मिक विश्वास, उनकी लोकथाओं, उनकी भाषा तथा उनका पारम्परिक जीवन शैली व सामाजिक व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार, परम्परागत रूप से, खासी घनिष्ठ विस्तारित परिवारों या कुलों में रहते हैं। चूँकि बच्चे अपनी माँ का उपनाम लेते हैं, इसलिए बेटियाँ कबीले की निरन्तरता सुनिश्चित करती है। एक खासी महिला कभी भी अपने पति के घर में सम्मिलित नहीं होती है, बल्कि वह उससे जुड़ती है।

हेमलेट बरेह ने अपनी पुस्तक द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द खासी पीपल' में भारतीय दक्षिण-पूर्व एशिया में एक प्राचीन आस्ट्रिक जाति का पता लगाया, जो सुदूर वर्मी जंगलों में लोगों के एक सोम-खमेर समूह के वंशज थे, यही वर्तमान की खासी जनजाति है। हालांकि यह अनिश्चित है अब खासी पश्चिम में उत्तर-पूर्वी भारत के पहाड़ों और तलहटी में चले गये, भाषाई साक्ष्य से पता चलता है कि उनकी भाषा खासी में सोम खमेर बोलियो की समानताएँ हैं।[12]

परियरम एम.चाचो[14] ने अपनी पुस्तक 'Matrilineal System: Some Structural Implications' में मातृसत्तात्मक समाज की वास्तविक स्थितियों का विस्तृत वर्णन किया है। इस समाज में भाई परिवार का संरक्षक होता है, ठीक वैसे ही जैसे पितृसत्तात्मक समाज में पिता, परन्तु सम्पत्ति की उत्तराधिकारी घर की छोटी बेटी ही होती है और अपनी माँ की मृत्यु के बाद परिवार की मुखिया बन जाती है। एक खासी महिला कभी भी अपने पति के घर में सम्मिलित नहीं होती है, बल्कि वह उससे जुड़ जाती है, लेकिन आज, कुछ पुरुष अपनी पत्नी और बच्चों से दूर रहते हैं, खासकर जब उनकी पत्नी काम के लिए बाहर होती है।

वैलेटिया पकएंटन[15] ने अपनी पुस्तक Gender Preference in Khasi Society : An evaluation of Tradition, Change and continuity में खासी समाज के विभिन्न आयामों तथा खासी समाज में चाचा (यूनीस) तथा सबसे कम उम्र की बेटी (खदुह) का वर्णन करते हैं तथा साथ ही खासी समाज में बच्चे के रूप में लड़की के जन्म के महत्व तथा स्त्रियों की स्थिति का विस्तृत संख्यात्मक अध्ययन उन्होंने किया है।

टिप्लुट नोंग्रबी[16] ने अपनी पुस्तक 'Gender and the Khasi Family, Structure : Some Implications of the Meghalaya succession to self- Acquired Properly Act, 1984' में Succession Act of Khasi 1984 का खासी समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया है तथा कैसे वहाँ की लिंग भूमिका-प्रस्थिति, शक्ति अधिकारों पर आर्थिक व राजनीतिक कानूनों, सुधारीकरण का प्रभाव पड़ रहा है, इसका विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है। सम्प्रति नये कानूनों के बाद, हालांकि कुछ खासी पिता अब कुछ घरों का नेतृत्व करते हैं तथा मेघालय के अधिकांश लोगों का मानना है कि सदियों पुरानी खासी सांस्कृतिक प्रथाएँ उनके जीवन में इतनी अंतर्निहित है कि खासी की अनूठी मातृभाषा आने वाले दशकों तक जीवित रहेगी।

शर्मिला दास तालुकदार[17] ने अपनी पुस्तक 'Khasi Cultural Resistance to Colonialism' में खासी समाज की संस्कृति में होने वाले परिवर्तन का वर्णन किया है साथ ही उन्होंने परम्परागत खासी समाज में धर्म, रीति रिवाज परम्पराओं के महत्व को भी बताया है। उन्होंने वर्तमान में खासी समाज में अन्य धर्मों के बढ़ते प्रभाव (क्रिश्चियन), ईसाई मिशनरियों के प्रलोभन, परम्परागत धर्म के अन्धविश्वास व उनके प्रति विरुचि तथा आर्थिक लालच के फलस्वरूप, क्रिश्चियन धर्म के बढ़ते प्रभाव व धर्म परिवर्तन पर विस्तृत काम किया है।

बार्नेस मेरी[18] ने 2009 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Khasi Society and the impact of Modernity: Challenges of identity and integrity in Medhi' में

परम्परागत खासी समाज, इसके मातृसत्तात्मक स्वरूप पर आधुनिकता के कारण पड़ने वाले बदलाव तथा इस संक्रमणकालीन दौर में अपनी परम्परागत स्थिति को बचाये रखने के लिए खासी समुदाय द्वारा किये जानेवाले संघर्ष का विस्तृत वर्णन किया है।[18]

शोध उददेश्य

1. परम्परागत खासी समाज में महिलाओं की मातृसत्तात्मक स्थिति, पैतृक सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अध्ययन करना।
2. खासी समुदाय में विवाह की स्थिति, नातेदारी परम्परा, पारिवारिक संरचना का अध्ययन करना।
3. मातृसत्तात्मक खासी समाज में पुरुषों की स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय के स्वरूपों का अध्ययन करना।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र में मातृसत्तात्मक खासी समाज में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन प्राथमिक आंकड़ों के माध्यम से किया गया है। मेघालय के 11 जिलों में से (पूर्वी खासी हिल्स जिला, पश्चिम खासी हिल्स जिला, दक्षिण पश्चिम खासी हिल्स जिला, री-भोई जिला, पश्चिम जयंतिया हिल्स जिला, पूर्वी जयंतिया हिल्स जिला, पूर्वी गारो हिल्स जिला, पश्चिम गारो हिल्स जिला, उत्तरी गारो हिल्स जिला, दक्षिण पश्चिम गारो हिल्स जिला तथा दक्षिण गारो हिल्स जिला) पूर्वी खासी हिल्स जिला का चयन सोदेश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया, पूर्वी खासी हिल्स जिलों के 923 गाँवों में से मावंलिगकना एनर्जी ब्लॉक के अंतर्गत रिंगकेश गाँव का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली के द्वारा किया गया, गाँवों का चयन पहुँच और संचार की सुविधाओं, भाषा, खर्च, पर व्यय, समय इत्यादि सभी को ध्यान में रखकर किया गया है, हालांकि उपर्युक्त चयनित गाँव में मेघालय के ग्रामीण समाज की अधिकांश विशेषतायें पाई जाती हैं। इस गाँव में कुल मिलाकर 119 परिवार थे, जिसमें से दैव निदर्शन पद्धति के द्वारा 50 परिवारों को चुना गया है, जिससे साक्षात्कार विधि द्वारा खासी समाज में सत्तावंश अधिकार, लिंग, शिक्षा, जाति, व्यवसाय, आय, व्यय, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं के प्रति उनके दृष्टिकोण तथा स्त्रियों, पुरुषों के सम्बन्ध इत्यादि विषयों पर उनसे बात करके जानकारी एकत्र की गई। शोध का प्रारूप वर्णनात्मक एवं खोजपूर्ण है। अध्ययन करने हेतु तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है, जहाँ प्राथमिक स्त्रोतों के लिए साक्षात्कार व अवलोकन प्रवधि का प्रयोग किया गया है, वही द्वितीयक स्त्रोतों के लिए इन्टरनेट, पुस्तकें, प्रकाशित व अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, शोध पत्रिकाओं आदि का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण-

तालिका-1

उत्तरदाताओं का आयु लिंग अनुपात

आयुवर्ग	पुरूष	महिला	योग
20-30	1	1	2
31-40	0	3	3
41-50	2	4	6
51-60	6	10	16
61-70	6	12	18
70-80	3	2	5
योग	18	32	50

उपर्युक्त तालिका-1 से हम यह देखते हैं कि कुल 50 उत्तरदाताओं में से 32 के यहाँ परिवार की मुखिया स्त्रियाँ हैं जिनमें अधिकतर 50 साल से ऊपर के आयु की महिलायें ही परिवार की मुखिया है। 51-60 के बीच 10 तथा 61-70 वर्ष के बीच 12, अर्थात् आयु वृद्धि के अनुसार महिलाओं को परिवार सम्पत्ति इत्यादि का मुखिया बनने की संभावना अधिक है, वहीं मातृसत्तात्मक खासी समाज में लगभग 36प्रतिशत पुरुष मुखिया भी देखे गये, जो खासी समुदाय में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन को परिलक्षित करता है। उपरोक्त तालिका के अध्ययन से मुख्य रूप से 2 बिन्दु दृष्टिगोचर हो रहे हैं-

1. परम्परागत खासी समाज में पहले अधिक आयु की महिलाएँ परिवार के निर्माण, प्रबन्धन, निर्णय इत्यादि में मुखिया थी और आर्थिक व सामाजिक सत्ता उनके हाथों मं केन्द्रित थी, लेकिन पिछले कुछ दशकों से सामाजिक परिवर्तन, बाहरी प्रभाव, शैक्षिक विस्तार व वृद्धि के कारण पुरुष वर्ग की भागीदारी धीरे-धीरे सत्ता में आई है।
2. कई महिलाएँ तलाकशुदा, अलग या परस्पर अलग हो गई हैं ओर इस प्रकार स्वतः ही परिवार की मुखिया बन गई है। खासी समाज में तलाक या अलगाव होने पर माँ अनिवार्य रूप से अपनी बच्चों की देखरेख करती हैं तथा अपने परिवार में संरक्षक एवं निर्णय निर्माता बनती हैं।

तालिका-2
उत्तरदाताओं में शिक्षा का स्तर

Age/ Education	0-25	25-50	50-75	75+	Total	Frequency
निरक्षर	0	2	2	4	8	16%
प्राथमिक	0	6	5	4	15	30%
माध्यमिक	14	6	2	0	22	44%
उच्च शिक्षा	4	1	0	0	5	10%
कुल	18	15	9	8	50	100%

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से पता चलता है कि 50 में से केवल 10 प्रतिशत ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाती है वह भी नई आयु की स्त्रियाँ 0-25 वर्ष आयु सर्वाधिक महिलायें माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की हुई है, लगभग 44 प्रतिशत, जबकि लगभग 16 प्रतिशत महिलायें निरक्षर हैं। 30 प्रतिशत महिलायें प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की है। अतः उपरोक्त तालिका से निष्कर्ष निकलता है, अधिक आयु की खासी स्त्रियाँ, अधिक शिक्षित नहीं हैं, परन्तु अगली पीढ़ी की खासी स्त्रियाँ तेजी से उच्च शिक्षा की ओर बढ़ रही हैं। महिला मुखियाओं का आधुनिक शिक्षा शैली से शिक्षित न होने से कोई अधिक अंतर नहीं पड़ता क्योंकि वे समाज के प्रति अधिक जागरुक व संवेदनशील व कुशल नेतृत्वकर्त्ता हैं, साथ ही खासी समाज में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति अन्य समाजों की स्त्रियों की स्थिति से कहीं अधिक अच्छी है।

तालिका-3
मुखिया की वैवाहिक स्थिति के अनुसार परिवारों का वितरण

लिंग	अविवाहित	विधवा/ विधुर	तलाकशुदा/अलग किए	एक बार शादी	एक से अधिक बार शादी	योग
पुरुष	1	1	4	11	1	18
महिला	1	1	8	20	2	32
योग	2	2	12	31	3	50

उपर्युक्त तालिका-3 में यह देखा गया है कि लगभग 50 में से 32 महिला मुखिया में 20 महिलायें (40 प्रतिशत) एक बार विवाह करके, विवाह पश्चात मुखिया बनी है, वही लगभग 8 महिलायें तलाकशुदा हैं तथा 1 महिला अविवाहित है, तलाक होने पर महिला पूर्णरूप से पति से स्वतंत्र हो जाती है तथा मुखिया बनके अपने उत्तरदायित्वों का निवर्हन करती हैं वही लगभग 36 प्रतिशत पुरुष मुखिया में से 11 पुरुषों ने एक विवाह प्रथा का पालन किया तथा 4 पुरुषों का तलाक हुआ और वे उसके बाद परिवारों के प्रमुख बने। यह खासी समाज में होने वाले परिवर्तन का उदाहरण है। तालिका 3 से महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल रहे हैं, जो निम्नवत है-

1. लगभग 64 प्रतिशत महिलायें मुखिया हैं जिनमें से लगभग 44 प्रतिशत महिलायें विवाह के बाद मुखिया बनी हैं, जो कि किसी भी मैदानी गैर आदिवासी समाज के मामले में बहुत ही असामान्य है। इसका कारण है, पारम्परिक खासी रीति रिवाज के अनुसार पुरुष आमतौर पर अपनी पत्नियों के साथ रहते हैं और पत्नियों का निवास स्थान उनका पैतृक घर होता है।
2. सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में खासी महिलाओं के प्रभुत्व के कारण वे अधिक स्वतंत्र होती है इसलिए पति से अलग होने के बाद वे अकेले रहकर परिवार की बागडोर अच्छे ढंग से संभालती है जबकि पुरुष दूसरा विवाह कर लेते हैं।
3. यहाँ यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि साक्षरता का स्तर पुरुषों की तुलना में महिलाओं में अधिक है, लेकिन उच्च शिक्षा की श्रेणी में पुरुषों का प्रतिशत अधिक है, जो कि दर्शाता है कि ग्रामीण महिलाओं की प्राथमिक शिक्षा तक बेहतर पहुँच है लेकिन उच्च शिक्षा में उनकी पहुँच कम हो जाती है।

तालिका-4

महिला व पुरुष मुखियाओं का आर्थिक रूप से सक्षम होने का वितरण

लिंग	कामकाजी न होना	कामकाजी होना			योग
		प्राइवेट नौकरी	सरकारी नौकरी	व्यवसाय	
पुरुष	4	3	3	8	18
महिला	10	8	2	12	32
योग	14	11	5	20	50

उपर्युक्त तालिका-4 के अध्ययन में यह पता चलता है कि लगभग 32 महिला मुखियाओं में से 12 अर्थात 24 प्रतिशत अपना व्यवसाय करके धन अर्जित करती हैं वहीं 8 प्राइवेट नौकरी द्वारा तथा 2 सरकारी नौकरी द्वारा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रहे हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि लगभग 10 महिलायें अर्थात् 20 प्रतिशत गैर नौकरी पेशा है, फिर भी वे परिवार की मुखिया हैं क्योंकि कमाई, मुखिया होने का मानदण्ड नहीं है, भले ही वे न कमाती है, उनके पति बच्चे भाई कमा के धन लाते हो परन्तु परिवार की निर्णय क्षमता महिला के पास ही रहती है। वही पुरुष मुखिया में सिर्फ 4 ही काम नहीं करते हैं, बल्कि 18 पुरुष मुखिया में से 8 कुल 16 प्रतिशत पुरुष अपना स्वयं का व्यवसाय करते हैं, वही 6-6 प्रतिशत पुरुष, प्राइवेट व सरकारी नौकरी कर रहे हैं।

तालिका-5

पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार

लिंग	सम्पत्ति मिली	सम्पत्ति नहीं मिली	योग
पुरुष	8	10	18
महिला	29	3	32
योग	37	13	50

उपर्युक्त तालिका-5 से हमें पता चलता है कि यदि हम सम्पत्ति के उत्ताराधिकार के मामले को देखें तो पारम्परिक रिवाज के अनुसार पैतृक सम्पत्ति मुख्य रूप से महिलाओं को विरासत में मिली है, विशेष रूप से उनकी सबसे छोटी बेटी को, हालांकि अन्य बेटियों को भी पुश्तैनी सम्पत्ति में हिस्सा मिलता है लेकिन अनौपचारिक रूप से सबसे कम उम्र बेटी को प्राप्त सम्पत्ति के बराबर नहीं है और सम्पत्ति का ये बँटवारा बेटियों के मामा की सहमति से होता है। आंकड़ों से पता चलता है कि 18 पुरुष महिलाओं में से सिर्फ 8 को सम्पत्ति विरासत में मिली, 10 को नहीं, अर्थात् सिर्फ 16 प्रतिशत पुरुष मुखियाओं को सम्पत्ति विरासत में मिली है जबकि लगभग 58 प्रतिशत महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति विरासत में मिली है। समग्र तथ्य यह है कि सिर्फ कुछ ही पुरुषों को पैतृक सम्पत्ति विरासत में मिली है, अधिकतर महिलाओं को विशेषाधिकार के रूप में पैतृक सम्पत्ति विरासत में प्राप्त हुई है।

तालिका-6

मताधिकार प्रयोग व राजनीतिक सहभागिता

मताधिकार का प्रयोग	संख्या	प्रतिशत
हमेशा	32	64
कभी-कभी	10	20
कभी नहीं	6	12
तटस्थ	2	4
कुल	50	100

तालिका 6 के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समाज की महिलायें राजनीतिक रूप से जागरुक हैं तथा अपने मताधिकार का प्रयोग खुलकर करती हैं, लगभग 69 प्रतिशत महिलायें हमेंशा वोट डालती हैं तथा अपनी स्वेच्छानुसार व्यक्तियों को चुनती हं। 12 प्रतिशत महिलाएं कभी नहीं वोट करतीं और 4 प्रतिशत तटस्थ हैं। हालांकि पारम्परिक मातृवंशीय समाज ने हमेशा महिलाओं को ग्राम परिषद जैसी सामाजिक संस्थाओं में निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रखा है, लेकिन हाल के दिनों में, इसमें धीरे-धीरे सुधार होने लगा है, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में।

तालिका-7

खासी ग्रामीण समाज में महिलाओं के प्रति अपराध का विवरण

अपराध	हमेशा	कभी कभी	कभी नहीं	तटस्थ	योग
छेड़छाड़/पीछा करना	0	18	28	4	50
बलात्कार	0	6	40	4	50
घरेलू हिंसा	2	22	24	2	50
दहेज हत्या	0	4	44	2	50
हत्या	0	9	39	2	50
यौन शोषण	3	12	31	4	50

साइबर अपराध	0	18	20	12	50
बाल विवाह	4	16	28	2	50
बहुविवाह	8	28	13	1	50

तालिका-7 के गहन अध्ययन से यह पता चलता है कि खासी समाज की ग्रामीण महिलाओं के प्रति अपराध की दर तुलनात्मक रूप से कम है तथा अन्य समाजों की तुलना में खासी समाज की महिलाओं के प्रति अपराध के रूपों (दुर्व्यवहार, छेड़छाड़, हत्या, बलात्कार, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, दहेज हत्या, पुनर्विवाह पर रोक, बाल विवाह) में कमी है, लगभग 80 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार बलात्कार तथा 78 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार, महिलाओं की हत्या, खासी समाज में कभी नहीं होती, हालांकि बढ़ते आधुनिकीकरण के कारण अपराध के दरों में भी वृद्धि हो रही है। 36 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार वे कभी-कभी छेड़छाड़ का शिकार हुई हैं तथा 56 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार कभी नहीं हुई हैं। 44 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार वे कभी-कभार घरेलू हिंसा के भावनात्मक, मानसिक शोषण का शिकार हुई हैं, शारीरिक शोषण का बहुत कम तथा 48 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार वे कभी भी घरेलू हिंसा का शिकार नहीं हुई, क्योंकि वे खुद अपने परिवार की मुखिया है। एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह देखने को मिला है, दहेज व दहेज के कारण की जाने वाली हत्याओं का रूप खासी समाज में न के बराबर है। लगभग 88 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार, हमारे यहाँ दहेज हत्या नही होता, जो कि उत्तर भारत व अन्य किसी भी पितृसत्तात्मक समाज के अनुसार बेहद आश्चर्यजनक व सम्मानजनक बात है। यौन शोषण के मामले में भी खासी समाज की स्थिति काफी बेहतर है, लगभग 24 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार यौनशोषण कभी-कभी हल्की मात्रा में होता है तथा 62 प्रतिशत महिलायें कभी भी किसी प्रकार के यौन शोषण का शिकार नहीं हुई हैं। साइबर अपराधों के प्रति भी यही निष्कर्ष सामने आया है, अधिकांश महिलायें साइबर अपराध का शिकार नहीं हुई है। चूँकि खासी एक मातृसत्तात्मक समाज है इसलिए वहाँ बहुपति विवाह भी पाया जाता है, परन्तु जिसकी संख्या आधुनिक परिवर्तित समाज में बेहद कम हो गई है, साथ ही बाल विवाह भी खासी समाज में अन्य समाजों की तुलना में बेहद कम है।

निष्कर्ष के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि भारत के पुरुष प्रधान क्षेत्रों की तुलना में खासी संस्कृति में महिलाओं की प्रस्थिति कहीं अधिक बेहतर है। हालांकि भारत में महिलाओं के लिए गाली गलौज करना या सड़क पर उत्पीड़न के अन्य रूपों का सामना करना आमबात है, लेकिन मुझे मेघालय में ऐसा कुछ भी देखने को नहीं मिला।

तालिका-8

महिलाओं पर प्रिंट व मास मीडिया का प्रभाव

मीडिया का रूप	प्रतिदिन	कभी-कभी	कभी नहीं
अखबार पढ़ना	28	12	10
रेडिया सुनना	22	20	8
टी0वी0 देखना	18	25	7
इण्टरनेट/सोशल मीडिया	4	10	36

तालिका-8 के अध्ययन से यह पता चलता है कि खासी समाज में महिलाओं में साक्षरता के स्तर अच्छा होने के कारण वहाँ लगभग 56 प्रतिशत महिलायें प्रतिदिन अखबार पढ़ती हैं वहीं 24 प्रतिशत महिलायें कभी-कभी तथा 20 प्रतिशत महिलायें कभी नहीं। यद्यपि आजकल अधिकांश परिवारों में रेडियो भी अपेक्षाकृत उपलब्ध है इसलिए 44 प्रतिशत महिलायें हर रोज रेडियो सुनती हैं तथा 40 प्रतिशत महिलाएं कभी-कभी। ग्रामीण समाज व गरीबी होने के कारण अभी खासी समाज के हर एक घर में टी0वी0 उपलब्ध नहीं है इसलिए सिर्फ 8 प्रतिशत महिलाएं हर रोज टी0वी0 देख पाती हैं बाकी नहीं, जबकि अधिकांश खासी महिलाओं को सोशल मीडिया, इन्टरनेट इत्यादि की जानकारी न के बराबर है, इसलिए लगभग 72 प्रतिशत महिलाएं सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर नही है।

निष्कर्ष : आज आधुनिकीकरण और शिक्षा के प्रभाव से जनजातियों के विचारों में परिवर्तन देखने को मिल रहा है। मेघालय का खासी समाज पितृसत्तामक बारीकियों वाला एक मातृवंशीय समाज है इसके बावजूद भारत के पुरुष प्रधान क्षेत्रों की तुलना में खासी संस्कृति में अंतर देखना आसान है। एक अंग्रेजी समाचार पत्र, द शिलांग टाइम्स की एक कार्यकर्ता और संपादक पेट्रीसिया मुखिम ने कहा कि शेष भारत में पितृसत्ता जीवन के सभी पहलुओं में अंतर्निहित है, पुरुषों के निर्णय लेने से लेकर महिलाओं को राजनीति, शिक्षा में जगह नहीं देने तक, व्यापार और हर दूसरे क्षेत्र में, जबकि भारत में कहीं और लड़कियों को अक्सर पढ़ाई और काम करने में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। मुखीम का मानना है कि खासी के साथ चीजें अलग है खासी महिलाएँ सामाजिक गतिशीलता का आनंद लेती है और उनके लिए आर्थिक गतिशीलता प्राप्त करने के लिए कोई बंधन नहीं है।[19]

ग्रामीण खासी महिलायें किसी भी सीमा व बन्धन से मुक्त हैं तथा वे किसी भी सामाजिक व धार्मिक महत्व के समारोह में स्वतंत्र रूप से भाग लेती हैं। साथ ही धार्मिक कार्यों मंदिर की पुजारी इत्यादि भी महिलायें ही होती हैं जो मैदानी इलाकों की तुलना में एकदम विपरीत स्थिति है। अन्य समाजों के विपरीत यहाँ सुरक्षा की समस्या भी बहुत कम है, जैसा कि हमने इस शोध पत्र में देखा कि यहाँ महिलाओं के प्रति अपराध की दर भी काफी कम है।

अभी भी ग्रामीण खासी महिलाएँ अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति अधिक जागरुक नहीं हैं और ऐसा करने के लिए वे अनिच्छुक भी हैं। हालांकि वोट देने में उनका प्रतिशत सम्मानजनक है परन्तु स्थानीय निकायों में खुद चुनाव लड़ने, प्रतिनिधित्व करने में वे पीछे हैं, परन्तु आधुनिक मासमीडिया, प्रिन्ट एवं सोशल मीडिया के बढ़ते फैलाव व जागरुकता के कारण इसमें भी परिवर्तन हो रहा है।

इस प्रकार खासी समुदाय के बारे में हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यहाँ मातृवंशीय व्यवस्था का पालन होता है, न कि मातृसत्तात्मक। स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति में पूर्ण आर्थिक अधिकार प्राप्त होता है और वे मुखिया होती हैं, परन्तु प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से पति का पारिवारिक मामलों में निर्णय महत्वपूर्ण होता है। राजनीतिक रूप से भी महिलाओं को स्थानीयशासी संस्था (डोरबाग शाँग) में भाग लेने की अनुमति नहीं है, 2013 के विधान सभा चुनाव में केवल 8.33 प्रतिशत के साथ विधायक के रूप में महिलाओं का प्रतिनिधित्व दिखा, हालांकि खासी समुदाय पितृसत्ता के कठोर शिकंजे से मुक्त एक मातृवंशीय समाज है जिसमें महिलाओं की प्रस्थिति शेष भारत की महिलाओं से बेहतर व मजबूत है।

सन्दर्भ

1. Sasikumar M, 'Matriling Among the Khasis : A Sturv in Petrospect and Prospect', Gyan Publishing House, Kolkata, 2019, p. 57
2. Malinowski B., 'Towards a Scientific Theory of Culture', University of North Carolina Press, 9 Reprint 1944, p. 18
3. Lowi, 'Premitive Society', Liveright Publication, Columbia University, New York, 1920, p. 44
4. De. Utpal Kumar, Ghosh, Bhole Nath, 'Status of Women in the Rural Khasi Society of Meghalaya', wwww.researchgate net/ publication/24114896, February 2007, pp. 3-4
5. Nongbri Tiplut, 'Gender and the Khasi Family strucrture: Some Implications of the Meghalaya Succession to self- Acquired Property Act', 1984, Sociological Bulletin, 1988, 37 (1 & 2), page 71-74.
6. Das Gitika and Abhijit Kumar, 'Bezbaruah, Social Transition and the Status of Women among the Khasi Tribe Meghalaya', Global Research Methodology Journal 1(2), 2011, pp. 16-22
7. Mukhim, Patrica, 'Khasi Matrilineal Society Challenges in 21st Century', 2005, Paper presneted in the Second World Congress on Matriarchal Studies held in Texas State University, USA on 29 Septemer -2 October 2005.
8. Narzary, P.K. and S.M. Sharma', Daughter Preference and Contraceptive use in Matrilineal Tribal Scoieties in Meghalaya', India, 2013, Journal of Health, Population and Nutrition, 31 (2), pp. 278-289.
9. Nongkinrih, A.K., 'Khasi Society of Meghalaya', 2002 A Sociological understanding, Indus Publishing New Delhi pp. 11-12.
10. मजूमदार, D.N., मदन, D.N. 'सामाजिक मानवशास्त्र परिचय, मयूर बुक्स नई दिल्ली, 2018 पृ. 122-123।
11. सोनी, जयकुमार, 'जनजातियों की समस्याएँ एवं विकासः एक अध्ययन', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 12, अंक 1, जनवरी-जून 2010।
12. Gurdon, P.R.T., 'The Khasi', Akansha Publishing House, 2012, New Delhi, pp. 22-24.
13. Bareh, Hamlet, 'The History and Culture of the Khasi People', Manimala, University of Michigan, Oct 31, 2006, p. 238.
14. Chacko, M. Pariyaram, 'Matriliny in Meghalaya: Tradition and Change', 1998, ASTRAL Publications, p. 169.
15. Pakyntein Valentina, 'Gender Preference in Khasi Society: An Evaluation of Tradition, Change and Continuity', Indian Anthropological Association 2006, pp. 27-35.
16. Nongbri Tiplut, op.cit., pp. 71-82.
17. Talukdar, Sharmila Das, 'Khasi Cultural Resistence to Colonialism', Spectrum Publications Guwahati, 2004, pp. 45.
18. Mawrie, Barnes, 'Khasi Society and the Impact of Modernity : Challenges to Identity and Integrity: in Medhi', Omsons Publications, New Delhi, 2009, pp.176-195.
19. Sgiem, L.M. 'Khasi Matriliny in Transition. In M.B. Challan' (ed.) The Dynaimics of Family System in Matriliny of Meghalaya, Shillong: Tribal Reserarch Institute, 1999, pp. 31.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

वैदिक लोक जीवन में अग्नि-एक समीक्षात्मक अध्ययन

❑ डॉ.सुनील कुमार

सूचक शब्दः लोक जीवन, अग्नि एवं संस्कृति।

भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक विचारधारा का अत्यधिक महत्व है, वैदिक धारा का उद्‌गम वेदों से है जिन्हें भारतीय संस्कृति की शाश्वत निधि कहा गया है जो मानवजाति के लिए सार्वभौम तथा सार्वकालिक संदेश वाहक के समान है। प्राचीन भारतीय लोकजीवन से सम्बन्धित अग्नि के प्रयोग का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। मानव सभ्यता के विकास में अग्नि का आविष्कार महत्वपूर्ण घटना है, यह कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता का प्रारम्भ ही अग्नि के साथ हुआ है।[1] प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद ने अपने समस्त ज्ञान पक्ष के प्रकाशन की श्रेणी में सबसे पहले अग्नि के महत्वपूर्ण प्रयोजन को प्रकाशित करने का कार्य किया है।

भारतीय चिन्तन परम्परा व्यष्टि से परमेष्टि का अनुसरण करती है। लोक जीवन मानव संस्कृति का आधार और मूल स्रोत है। भारतीय चिन्तन समग्रता का प्रभाव है जिसमें एकांगिकता का कोई स्थान नही है। लोक शब्द का प्रयोग उस समाज के लिए किया जाता है जो अपने परम्परागत आदर्शों, विश्वासों, रीति-रिवाजों तथा कला की अभिव्यक्ति के स्वरूपों के प्रति आस्थावान तथा आग्रही होता है। निरन्तरता और संश्लेषण लोक एवं शास्त्रीय जीवन की विशेषता रही है जिसका संचालन ऋतु एवं सत्य से अनुशासित एवं नियन्त्रित होता है। भारतीय जीवन में बहुकेन्द्रकता तथा सह संबन्ध एवं साहचर्यता का बोध मिलता है। लोक सत्ता एवं शास्त्र दोनो को रास्ता दिखाता है। भारतीय चिन्तन परम्परा 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति' का संग्रह तथा संयोजन करके चलता रहता है। भारतीय जीवन में लोक की विशालता असीम है। अग्नि की खोज ने अनेक नई आदिम खोजो को जन्म एवं कई अभिनव प्रयोग के मार्ग को प्रशस्त किया है।

सर्वप्रथम ऋग्वेद में अग्नि देव का दर्शन प्राप्त होता है[1] जो अग्नि के महत्व को दर्शाता है। पृथ्वी-स्थानीय देवताओं में अग्नि प्रमुख है। यज्ञ से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाली वैदिक कविता के केन्द्रीभूत यज्ञ अग्नि का विग्रहवत् रूप होने के कारण वे प्राथमिक महत्व के हैं। इंद्र के बाद वैदिक देवताओं में उन्हीं का स्थान है। ऋग्वेद में उनके प्रति कम से कम 200 सकल युक्त एवं अनेक सूक्तों में अन्य देवताओं के साथ उनकी भी स्तुति की गई है।

यास्क ने पृथ्वी-स्थानीय देवताओं को अग्नि का प्रतिनिधि माना है। यज्ञ जैसे कार्यो में सर्वप्रथम अग्नि का प्रयोग किया जाता है। अतः अग्नि यज्ञ में अग्रणी होता है।[2] वैदिक साहित्य में अग्नि को पिता, बधुगृहपति, दमनस, राक्षसों का नाशक जैसे विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। अग्नि को देवो तथा द्यावा-पृथ्वी के पुत्र के नाम से जाना जाता है। अपने नित्य आवाह्नों के द्वारा अग्नि अतिथि कहलाता है। अग्नि को रक्षोम अग्नि अर्थात् राक्षसों से रक्षा करने वाला कहा गया है।

वैदिक धर्म भारतीयों की रचना है। यद्यपि कुछ तत्व दूसरी जगहों से ग्रहण किये गये हैं, किन्तु इसके सभी तत्व एक नयी व्यवस्था के अन्तर्गत साथ-साथ लाये गये थे जो वैदिक भावना के शक्तिशाली प्रभाव से प्रभावित है। भारोपीय आर्य धर्म का आवश्यक स्वरूप वैयक्तिकरण एवं प्रकृति के तीक्ष्ण शक्तियों के उपासक थे जिसके मुख्य स्रोत अग्नि एवं सूर्य थे।[3] भारोपीय, इण्डो-आर्यन एवं इण्डो-ईरानियन लोगो के धार्मिक जीवन में अग्नि की पूजा एक उभयनिष्ठ पक्ष है।[4] मैक्डॉनेल ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जब भारतीय आर्यो ने भारत में प्रवेश किया उसी समय वे अपने साथ अग्नि एवं सोम की पूजा-पद्धति को साथ लाये।[5] विभिन्न भारोपीय लोगो द्वारा अग्नि के लिए सामान्य शब्द प्रयोग किया गया है जो अग्नि के पूजा के एक सामान्य रूप के अस्तित्व को सिद्ध करता है जैसा कि अग्नि के लिए भाषागत साक्ष्य संस्कृति में 'अग्नि' लैटिन में 'इग्निस' लिथुआनियन भाषा में 'उग्निस' स्लैवोनिक भाषा में 'ओग्निस' इरानियन भाषा में 'अतर' इत्यादि शब्द पाये जाते हैं।[6] इन समस्त शब्दों की मौलिक भाषा सम्बन्धित एक उभयनिष्ठ भाषा एवं विचार को प्रमाणित करती है जो इसकी उत्पत्ति को सिद्ध करती है।

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजविज्ञान, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

वे अग्नि एवं अन्य प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे। मानव आदिम काल से ही रहस्यमयी शक्तियों की पूजा करता चला आ रहा है जो अनन्त, दैवीय शक्ति का भाग है।[7]

भारोपीय परिवार चूल्हे के चारों ओर समूह में इक्ट्ठा होते हैं। चूल्हा इनकी एकता को बनाता है तथा अपनी पूजा का अधिकार जमाता है। अग्नि पिता अथवा गाँव के मुखिया के समान है क्योंकि लम्बे जाड़े की ऋतुओं के दौरान भारोपीय जाति के घरेलू जीवन के बीच में अग्नि के चूल्हे उत्तरी भवन में अवश्य रूप से होते हैं एवं ये स्थल अवश्य ही धार्मिक अधिकारों से सम्बन्धित रहे होगें। सम्भवतः अग्नि का चूल्हा स्वयं ही अग्नि में देवताओं को छवि प्राप्त करने की रीति से जोड़ता है।[8] यह एक प्रभावशाली शक्ति है एवं मनुष्य का एक मित्र है तथा इससे प्राप्त उष्मा उसे जीवन प्रदान करती है जो उसका भोजन पकाती है तथा उसके जीवन के समस्त कार्यों को सम्पादित करती है। इरानियन एवं इण्डो-आर्यन द्वारा अपने भारोपीय पूर्वजों से घरेलू अग्नि की पवित्रता को ग्रहण किया गया था। अपने विभिन्न जातियों में अलग होने के पश्चात् उन्होने अपनी स्वयं की देवी का विकास किया तथा साधारण रूप से प्रत्येक स्थान पर अग्नि-पूजा की भूमिका को स्थापित किया गया है।

रूसो-लिथुआनियन की भूमि पर यह एक उत्कृष्ट प्रकार की पूजा की वस्तु थी। लिथुआनियन के निवासी अग्नि को 'उग्निस' कहकर पुकारते थे। वे लोग इसे श्वेन्टा अथवा 'पवित्र अग्नि' या फिर श्वेन्टा पोनिक 'पवित्र स्वामिनी' के नाम से भी सम्बोधित करते थे। अपने माता-पिता का घर छोड़ने पर एक युवती कहती थी कि पवित्र अग्नि हमारी रक्षा करेगी। लिथुअनिया में एक अंगीठी की देवी भी थी जिसे 'एस्पेलाइन' कहा गया है। यह अंगीठी के पीछे रहती थी। इस प्रकार से एक रोमन परिवार का धार्मिक जीवन साधारण था एवं व्यवहारिक रूप से उन आत्माओं के चारों तरफ घूमता था जो उनके कल्याण से सम्बन्धित थे। सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण वेस्ता था, पारिवारिक चूल्हे पर अग्नि सदैव जलती रहती थी जिसके ऊपर पारिवारिक जीवन अत्यधिक निर्भर रहता था।[9] नुमा के कैलेन्डर में विभिन्न त्योहारों से सम्बन्धित देवताओं के उपरान्त पाँच देवता अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये देवता प्रकृति के आवश्यक गुणों से सम्पन्न हैं जिनमें जानस, वृहस्पति, मंगल क्यूरिनस एवं वेस्ता प्रमुख थे। पवित्र अग्नि (वेस्ता) की देख-रेख कुँवारी कन्या के द्वारा की जाती थी।[10] वेस्ता प्राचीन रोमन धर्म के यथार्थ प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती थी एवं उसका देवत्व साधारण एवं शुद्ध था। रोमन धर्म पर यूनानी धर्म का विस्तृत प्रभाव था जो अनेको देवताओं के युग्मों में दिखाई देता है। उदाहरण के तौर पर उनमें से एक वेस्ता के साथ हेस्टिया सम्मिलित है। इनमें वेस्ता रोमन देवी जबकि भारोपीयो से चूल्हों की देवी हेसिटया पवित्र देवी सम्बन्धित थी जिसको अतीत में बलि प्रदान करने के प्रारम्भ में एवं अंत में मदिरा के साथ सम्मान प्रदान किया जाता था।[11] देवताओं एवं पुरूषों के मध्य वह सम्मान एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करती थी। एक शुद्ध कुँवारी कन्या के रूप में अग्नि प्रत्येक निवास स्थल एवं अन्य देवताओं को दी जाने वाली प्रत्येक बलि को वह अपने निवास स्थान के आंतरिक भाग में रखती है। वह प्रथम आवाह्न एवं प्रथम हिस्से को प्राप्त करती एवं उसका संचालन करती है। प्रत्येक नगर, शहर एवं राज्य आवश्यक रूप से इसके केन्द्रीय चूल्हे के साथ अपना पिटैनियन रखते थे जिससे कि सामान्य विश्वास तथा सामान्य इच्छायें नागरिको में संगठित हो। यह अग्नि कभी बुझनी नही चाहिए किन्तु यदि ऐसी परिस्थिति आ जा तो इसे सामान्य अग्नि की लौह नही अपितु रगड़ द्वारा अथवा सूर्य के प्रकाश से तापित काँच के द्वारा पुनः जला दी जाती थी।[12] अग्नि की वेदी को अशुद्ध हाथों से छुआ नहीं जा सकता था एवं उसकी पवित्र अग्नि के संरक्षक को शुद्ध एवं शालीन होना चाहिए। यूनानी पौराणिक कथाओं में विशाल चूल्हा विचारों के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक विस्तार है जिसे हेस्टिया के रूप में माना जाता है तथा यह मानव समाज की नींव है।[13] यूनानी हेस्टिया एवं रोमन अवेस्ता में अत्यधिक समानता थी। अनेक विद्वान विश्वास करते है कि रोमन अवेस्ता का देवता यूनान से उत्पन्न हुआ था। **इतिहास** के जनक हेरोडोटस ने स्पष्ट किया है कि सीथियन भी इस्टिया नामक अग्नि देवी की उपासना करते थे जो उनके कर्मकाण्डों में महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। उनके अनुसार सीथियनो के मध्य ता-बी-ती अर्थात् 'गर्मी' अथवा 'ऊष्मा' जो अवेस्ता में ताप, संस्कृत में ताप्ती, तापायती, तप्त, लैटिन में टेपेस्को इत्यादि सभी अत्यन्त पवित्र एवं अत्यधिक सम्मानित देवी थी। यह संदेह से परे है कि एक चूल्हा अग्नि की उपासना के साथ-साथ सामान्य चिरस्थायी अग्नि आर्यों के प्राचीन धार्मिक विचारों व देवताओं से सम्बन्धित हैं।[14] तैतीस देवताओं की

अवधारणा, 'होता' अथवा 'जाओ तार' द्वारा यज्ञ का सम्पादन, 'आहुति' अथवा 'आजुइति' का देना, ये समस्त वेद एवं अवेस्ता दोनो के धार्मिक अग्नि-पूजा के अलग-अलग उभयनिष्ठ लक्षण हैं।[15]

इण्डो-आर्यन ने सप्त सैन्धव प्रदेश में प्रवेश किया तब उन्होंने अपनी एक पृथक देव परम्परा का विकास किया किन्तु उन्होंने अग्नि-पूजा जैसी महान परम्पराओं को इण्डो-ईरानियन एवं इण्डो-यूरोपियन से ग्रहण किया। श्री निवासन आयंगर[16] का मानना है कि वेदों के ऋषि 'आर्य' शब्द का प्रयोग बिना किसी जातीय निहितार्थ के करते थे लेकिन केवल लोगों के उस संदर्भ में जो केवल अग्नि देवी की पूजा करते तथा अग्नि विहीन देवी की पूजा करने वालों का विरोध करते थे। वैदिक काल[17] में भारत में दोनों ही प्रकार की देवियों का प्रचलन था। प्रथम प्रकार में वे थे जिसकी उपासना आर्यों द्वारा अग्नि में हवि प्रदान करके की जाती थी, क्योंकि वे अग्नि को देवताओं का मुख भाग मानते थे। द्वितीय प्रकार में दस्यु थे जिनको आर्यों द्वारा अनाग्नि अथवा अग्नि विहीन नाम से पुकारा गया था। देवी के रूप में अग्नि की उपासना 3000 वर्ष पूर्व से लेकर आज तक बनी हुई है जो भी हो, समस्त देवताओं, जो अग्नि के तत्वों से उत्पन्न हुए हैं, उन्हें वैदिक अग्नि कहा गया है तथा यह बुद्धि एवं मानवता का महान पुजारी है। मुख्य वैदिक देवता जिसे अग्नि कहा गया है, अपने उपासकों के लिए शक्तिशाली दानदाता है जो उन्हें घरेलू कल्याण की समृद्धता, स्वास्थ्य, शत्रुओं को नष्ट करने एवं विरोधियों पर विजय प्राप्त करने की सम्पदा प्रदान करती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि ऋग्वेद का प्रथम श्लोक सबसे प्रारम्भिक है तथा वह देवी अग्नि को सम्बोधित है। अग्नि वेदों के मुख्य लौकिक देवता है जिसके 200 मंत्रों में इनको सम्बोधित किया गया है। आठवें मण्डल के अतिरिक्त अन्य समस्त मण्डल के श्लोक अग्नि की प्रशंसा के साथ प्रारम्भ होते हैं। ऋग्वेद के समस्त देवताओं में इन्द्र के पश्चात सबसे महत्वपूर्ण देवता अग्नि को माना गया है।[18] यास्क के निरूक्त के अनुसार ऋग्वेद के प्रारम्भिक पौराणिक कथाओं में सभी देवताओं पर विचार किया गया था जो तीन वर्गों में विभाजित थे। इसके अनुसार सूर्य आकाश में इन्द्र (तूफान) अथवा वायु (हवा) वायुमण्डल में तथा पृथ्वी पर हैं।[19] वैदिक देवताओं का वर्गीकरण प्राकृतिक आधार पर हैं जो उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। स्वयं कथानक से भी यह देखा गया है कि इन्द्र, अग्नि एवं सोम अब तक सबसे महान देवता है।[20] अग्नि का महत्व मानव जीवन में सूर्य एवं प्रकाश की अपेक्षा कम नही हैं, क्योंकि जैसे-जैसे शाम होती थी एवं अन्धेरा गहराता था तब अग्नि ही रात के भय को दूर करने के लिए पृथ्वी पर एकमात्र देवता थे जो प्रकाश या सूर्य के बिना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि ऋग्वैदिक ऋषि कहते हैं कि तीन सौ, तीन हजार उन्तालिस देवता अग्नि की पूजा करते हैं।[21] उनकी पूजा पाप को दूर करने के लिए एवं शत्रुओं से रक्षा के लिए एवं सब कुछ सकारात्मक रखने के लिए धन, अच्छा मकान, पशु, सम्मान एवं सुख जो वास्तव में वे समस्त व्यक्ति जो अपने व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में मूल्यवान रूप में प्राप्त करते हैं। इस सम्बंध में ऋग्वेद अग्नि के मंत्रों से भरा पड़ा है। अग्नि आग की देवी है जो सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करती है। आर्यों का धर्म अग्नि एवं सूर्य जैसे प्रकृति के कार्यों एवं तत्वों की पूजा करती है। ये देवता स्थूल एवं आत्मा दोनों ही गुणों से सम्पन्न है एवं इनके पीछे तत्व एवं शक्तियाँ दोनों ही निहित रहती हैं।

वैदिक परम्परा के अनुसार समष्टि, व्यष्टि तथा शक्तियों के मध्य संवादशीलता होती है जो मनुष्यों के मस्तिष्क में देवत्व की भावना को उत्पन्न करती है, वह उन शक्तियों का भी प्रतिनिधित्व करती है जो बाह्य संसार को नियंत्रित करती है।[22] अग्नि एक देवता है क्योंकि उष्मा एवं प्रकाश का मानवीय मूल्यांकन एक व्यक्तिगत वस्तु हो सकती है किन्तु अग्नि भी एक नैतिक शुद्धता के लिए एक प्रतीक है जो अग्नि के कार्यों के लिए एक शुद्धिकरण है। अग्नि एक देवता के रूप में मनुष्य के लिए एक आत्मिक प्रकाश है। अतः ईश्वर की संकल्पना पूर्णरूपेण काल्पनिक नहीं है। यद्यपि अग्नि के देवत्व में उष्मा एवं प्रकाश के लिए प्रतीक स्वरूप कार्य निहित है जिसे व्यक्ति मूल्य एवं चिन्तन को एक पवित्रता के रूप में ला सकता है। वैदिक देवताओं का दूसरा प्रमुख गुण यह है कि वे उसके देवत्व में निरन्तर कमी के बिना एक दूसरे के कार्यों को करते रहते हैं। उदाहरण के लिए जब वह सूर्य का प्रतीक होती है तो वह मनुष्यों के लिए उष्मा एवं प्रकाश का कार्य करती है। अग्नि स्वयं जीवन के आश्चर्य का प्रतीक है,[23] एवं अग्नि वैश्वानर मनुष्य के अंदर एवं बाहर स्वयं ईश्वर के रूप में पहचानी जाती है।[24] वैदांतिक विचारों के ग्रंथों के अनुसार प्रकाश ब्रह्मा है जो सच्चे ज्ञान के संदर्भ के रूप

में हृदय में बैठा हुआ है जिसको सभी इन्द्रियाँ मस्तिष्क एवं चेतना के साथ सृष्टि के एक कारण के रूप में संदर्भित करती हैं।[25] अग्नि की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक पौराणिक कथायें प्रचलित हैं। वैदिक देवता केवल प्रकृति के ही देवता नही थे अपितु कार्यकारी देवता भी थे। उसने देवताओं एवं मनुष्यों के मध्य मध्यस्थ की भूमिका का निर्वहन किया था।[26] वह बलि को लेकर देवताओं को प्रदान करता है एवं वह बलि का केन्द्रीय वस्तु है।

ऋग्वेद के अनुसार बलिदान वाली अग्नि स्वर्ग से पृथ्वी पर आयी। प्रथम अग्नि मत्रीस्वान द्वारा लायी गई थी।[27] ऐसा प्रतीत होता है दिन का पहला प्रकाश पहली अग्नि थी जो भृगु को प्रदान की जाने वाली बलि के रूप में पृथ्वी पर स्थापित की गई थी।[28] वैदिक पौराणिक कथायें प्रोमिथियस के यूनानी पौराणिक कथाओं से समानता रखती हैं जिसने अग्नि चुराकर मनुष्य को प्रदान की थी।[29] ओल्डेनवर्ग के अनुसार वह एक भारती प्रोमिथियस है जो बिना किसी दैवीय प्रकृति के आग के द्वारा लाये गये थे। ऋग्वेद में अग्नि प्रथम बार मत्रीस्वान एवं विवस्वत के समक्ष प्रकट हुई।[30] मत्रीस्वान मनुष्य के लिए अग्नि को बहुत दूर से लाया था।[31] अतः मत्रीस्वान बहुत घनिष्ठ रूप से अग्नि से जुड़ा हुआ है। उसका नाम तीन बार अग्नि के लिए प्रयुक्त हुआ है।[32] अग्नि मौलिक रूप से पृथ्वी का देव है, एक दिव्य स्वर्ग है एवं अत्यधिक दूर से लायी गई है। अग्नि एवं सोम स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये गये। यह एक भारतीय धार्मिक इतिहास में प्रारम्भिक उदाहरण है।[33]

अग्नि के उद्‌गम से सम्बंधित पौराणिक कहानियाँ अग्नि के भौतिक उद्‌गम के विभिन्न बिन्दुओं को निर्दिष्ट करती हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र[34] में कहा गया है कि उषाओं ने सूर्य एवं यज्ञ के साथ-साथ अग्नि को उत्पन्न किया जिससे नीचगामी एवं अप्रिय अंधकार दूर हुआ। एक अन्य[35] में कहा गया है कि इन्द्र एवं विष्णु ने सूर्य एवं उषस् के अतिरिक्त अग्नि को भी उत्पन्न किया। ऋग्वेद के ही अनुसार[36] ऋषियों ने विशुद्ध अग्नि पत्थर, वृक्ष एवं बूटियों से पैदा की जो दिन-प्रतिदिन पृथ्वी पर बढ़ती ही जा रही है। केवल प्राचीन काल में अग्नि को शुद्ध माना जाता था जिसको प्रस्तर खण्डों को रगड़कर अथवा छड़ियों को रगड़कर पैदा की जाती थी। इन्द्र ने भी कहा है कि अग्नि दो प्रस्तर खण्डों के मध्य अवतरित हुई।[37] कभी-कभी ऐसा भी कथन मिलता है कि अग्नि को देवताओं ने आर्यों अथवा मनुष्यों के लिए एक प्रकाश के रूप में उत्पन्न किया।[38] ग्रिफिथ के अनुसार[39] इन्द्र ने स्वर्ग एवं पृथ्वी के मध्य बिजली पैदा की। दूसरे मंत्र में वह कहा है कि अग्नि दो अरणियों अथवा दो छड़ियों को रगड़कर पैदा की गई जो उसके माता-पिता के रूप में स्वीकार किये गये हैं।[40] इस सम्बन्ध में अरणि ही इनके माता-पिता हैं, जहाँ अरणि की ऊपरी लकड़ी पुरूष तथा नीचे की लकड़ी स्त्री है।[41] अथवा दोनों ही लकड़ियाँ इनकी माताएँ हैं क्योंकि इनकी दो माताएँ भी बतायी गई है।[42] यह अरणि उसी प्रकार निहित रहता है जिस प्रकार से माता के अंदर गर्भ[43] निहित रहता है। दोनों ही लकड़ियाँ इन्हें (अग्नि को) ऐसे नवजात शिशु की भाँति उत्पन्न करती हैं जिसे पकड़ना कठिन है।[44] घर्षण के द्वारा अग्नि के उत्पादन के संदर्भ में कहा गया है कि वेस्ता[45] की दस पुत्रियों द्वारा अग्नि जली जिसका अर्थ है कि वे दस अंगुलियाँ जिससे अग्नि पैदा करने का कार्य अग्नि छड़ियों को रगड़ करते हैं तब अग्नि के रूप में नया पैदा हुआ बच्चा विभिन्न प्रकार की बलिदान की अग्नियों को जलाने के लिए इधर-उधर ले जाया जाता है जैसाकि उसको पैदा करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है इसलिए उसको सहासा, सुनु एवं शक्ति का पुत्र कहा जाता हैं।[46] सूखी लकड़ी से यह जीवित देवता जन्म लेते हैं।[47] जन्म लेते ही यह शिशु अपने माता-पिता का भक्षण कर डालता है।[48] यह ऐसी माता से जन्म लेते हैं कि वह अपने सन्तान को स्तनपान भी नही करा सकती है।[49] अग्नि के उद्‌गम से सम्बन्धित अनेक प्रकार के विवरण वेदों में प्राप्त होते हैं। हे अग्नि, तुम स्थायी रूप से लकड़ी में छुपी हुई थी, तुमको अंगीरस ने खोजा था जब दो लकड़ियों को शक्तिशाली रूप से रगड़ा गया था। वे तुमको शक्ति के पुत्र के रूप में सम्बोधित करते हैं।[50] वह डान द्वारा भी स्त्रीत्व में लायी गई क्योंकि वह प्रातः काल में पैदा की जाती है जिसे उष्ब्रबुधः भी कहा गया है।[51] अर्थात् वह प्रातः काल में जगने वाली कही गई है। इसे प्रतिदिन पैदा किये जाने के कारण यह सदैव युवा रहती है, यद्यपि यह प्राचीन है। मैत्रायणी संहिता[52] ने वर्णित है कि सूर्योदय के पहले घर्षण द्वारा अग्नि को प्रज्जवलित करने का कार्य कभी भी नही करना चाहिए। अग्नि यज्ञ के उद्‌देश्य से प्रातः कालीन समय में उत्पन्न होने के कारण इसे यविष्ठ की बहुप्रयुक्त अलंकरण से विभूषित किया गया है तथा यह उपाधि एक मात्र इनकी विशेषता है। अग्नि का नवीन जन्म होता रहता है।[53] वृद्ध हो जाने पर यह एक युवा के रूप में पुनः

जन्म लेते हैं,[54] अर्थात् यह कहा जा सकता है कि यह कभी वृद्ध होती ही नही है एवं इसका नया प्रकाश प्राचीन प्रकाश के समान ही रहता है।[55] ऋग्वेद में ही दूसरे मंत्रों में ऋषि विवश्वान ने दो माताओं से अग्नि को उत्पन्न किया था अर्थात् अग्नि को दो छड़ियों के द्वारा उत्पन्न किया गया था। प्रायः अग्नि की दो माताओं का उल्लेख प्राप्त होता है।[56] वह स्वयं को द्विमात्र कहता है।[57] इन दो माताओं का सम्बन्ध स्वर्ग एवं पृथ्वी पर दुबारा जन्म का सम्बन्ध घनिष्ठतम एवं सर्वाधिक प्राकृतिक व्याख्यों पर आधारित है,[58] किन्तु कुछ गद्यांशों में उसकी दो माताओं का अर्थ आग की छड़ियाँ हैं। वह द्विजन्म हैं।[59] ऋग्वेद का प्रथम ग्रंथ सूखी लकड़ी को 'सुस्क' नाम से सम्बोधित करता है जिससे अग्नि पैदा हुई।[60] अरणियों के मंत्रों में इन्हें 'तेजीष्ठा' कहा गया है।[61]

अरणि मंथन के द्वारा अग्नि को पैदा करने का विवरण तैत्तिरीय संहिता में वर्णित है। यहाँ पर यह उल्लेख मिलता है कि एक बार अग्नि भाग कर शमी के वृक्ष में जाकर छिप गये तब उसकी लकड़ियों (अरणियों) को मथकर देवताओं ने अग्नि को निकालना प्रारम्भ किया था।[62] अग्नि के जन्म को ऋषि अथर्वा से भी जोड़ा गया है। ऐसा कहा जाता है कि सबसे पहले अथर्वा ऋषि ने अरणिद्वय के मन्थन के उपरान्त अग्नि को उत्पन्न किया था।[63] अथर्वा ऋषि द्वारा सिखाये जाने के अनुसार लोग वर्तमान में भी उसी प्रकार से अग्नि को उत्पन्न करते हैं।[64] अग्नि की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक उल्लेख अन्तरिक्षीय जल में भी मिलता है अर्थात् अग्नि जल का एक प्रकार से गर्भ है।[65] शतपथ ब्राह्मण में आकाशीय जल से सम्बन्धित होने के कारण अग्नि को जल का पुत्र अथवा (अपांगर्भः) कहा गया है। उसी प्रकार समुद्र से उत्पन्न होने के कारण इसे 'समुद्रिय' भी कहा गया है।[66] अग्नि को वनों में पौधों के भ्रूण के रूप में उत्पन्न कहा गया है[67] अग्नि समस्त पौधों में प्रवेश करके पुनः उन्ही के गर्भ से जन्म लेती है।[68] अर्थात् यह कहा जा सकता है कि अग्नि इन वनों के पौधों की शाखाओं के आपस में घर्षण के परिणामस्वरूप वैश्वानर अथवा दावानल की उत्पत्ति होती है। अर्थात् यह एक अप्रत्यक्ष रूप में अग्नि की उत्पत्ति के संदर्भ में आशय प्रतीत होता है।

समाहार : प्रस्तुत प्रपत्र में यह विश्लेषण एवं मीमांसा करने का सम्यूक प्रयास किया गया है कि भारतीय संस्कृति एक जीवन शैली है जिसे लोक जीवन का उद्भाषित रूप माना जाता है। लोक जीवन ही अतीत को वर्तमान से तथा वर्तमान को भविष्य से जोड़ता है। इसके माध्यम से ही सामाजिक जीवन को गति एवं प्रभाव मिलता है। यदि भारतीयता को जानना है तो यहाँ की कथाओं, उत्सवों, परम्पराओं, यात्राओं, वार्ताओं, ऋतु-चक्रों आदि का अनुशीलन एवं अन्वेषण करना होगा। जहाँ पर लोक के विविध स्वरूप विद्यमान हैं। वैदिक लोक जीवन में अग्नि की भूमिका एवं उपयोगिता स्पष्ट एवं सर्वजनीन है। बिना अग्नि के मानव जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। मानव के जन्म से लेकर मरण तक की जीवन-यात्रा में इसकी भूमिका एवं उपादेयता विविध रूपों एवं स्वरूपों में दृष्टिगत होती है। वैदिक काल में अग्नि को अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करके इन्हे लोक जीवन से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ

1. 'अग्निमीळे, पुरोहितं, यज्ञस्य देव मृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्'।। ऋग्वेद 1/1/1
2. अग्निः पृथ्वीस्थानः। अग्निः कस्मात्-अग्रणी र्भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। निरूक्त 7/4/14
3. रेनाऊ, लुईस, 'वैदिक इण्डिया', सुशील गुप्ता (इण्डिया) प्राईवेट लिमिटेड, कलकत्ता, 1957, पृ. 57.
4. टायलर, इसाक, 'द ओरिजिन ऑफ द आर्यन्स', स्करीबनर एण्ड बेलफोर्ड, न्यूयार्क, 1890, पृ. 312.
5. मैक्डोनेल, आर्थर एन्थोनी, 'ए वैदिक रीडर फॉर स्टूडेन्ट्स', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1933 पृ.12
6. स्क्रेडर, ओ., 'आर्यन रिलिजन, ब्लड फ्यूड, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स', वाल्यूम II, जेम्स हेस्टिंगस (सम्पादक), टी.एण्ड.टी. क्लार्क, एडिनवर्ग, 1909, पृ. 35.
7. वही, पृ. 35.
8. हर्मन, ओल्डेनवर्ग, 'डाई रिलिजन डेस वेदा', वर्लाग वॉन विलहेल्म हर्टज, बर्लिन, 1894, पृ. 103.
9. नॉस, जॉन बी., 'मैन्स रिलिजन', मैकमिलन पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 1949, पृ. 54.
10. शर्मा, मधुलिका, 'फायर वर्शिप इन एन्शिएन्ट इण्डिया', पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 2001, पृ. 23.

11. नॉस, जॉन बी., 1949, पूर्वोक्त, पृ. 41.
12. कॉक्स, डब्लू जार्ज, 'द माइथोलॉजी ऑफ द आर्यन नेशन्स', चौखम्बा, संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी 1882, पृ. 424.
13. वही
14. जेम्स, हेस्टिंग्स (सम्पादक), 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स', वालूम II, टी.एण्ड.टी. क्लार्क, एडिनवर्ग, 1909 पृ. 35.
15. भार्गव, पी.एल., 'इण्डिया इन द वैदिक एज', द अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1956, पृ. 267.
16. आयंगर, श्रीनिवास, 'प्री आर्यन तमिल कल्चर', जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, वाल्यूम, II, मद्रास, 1928, पृ. 63.
17. ग्रीसवोल्ड, एच.डी., 'द रिलिजन ऑफ द ऋग्वेद', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1923, पृ. 151.
18. त्रिपाठी, गया चरण, 'वैदिक देवता, उद्‌भव एवं विकास', वाल्यूम II, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, 1982 पृ. 411.
19. यास्क, निरूक्त, 7/2/5.
20. कीथ, ए.बी., 'द माइथोलॉजी ऑफ आल रेसेज', वालूम VI, मार्शल जोन्स कम्पनी, बोस्टन, 1917, पृ. 20-21.
21. ऋग्वेद, III.9.9
22. बोवेज, प्रतिमा, 'द हिन्दू रिलिजियस ट्रेडिशन : ए फिलॉसोफिकल अप्रोच', राउटलेज एण्ड केगनपॉल, 1978, पृ. 109.
23. ऋग्वेद, VI.6.7
24. ऋग्वेद, VI.6.5.6
25. ग्रिफीथ, राल्फ टी.एच., 'द हायमन्स ऑफ द ऋग्वेदा', इ.जे. लाजरस एण्ड कम्पनी, बनारस, 1889, पृ. 288.
26. ऋग्वेद, I.143.1.1.1
27. ऋग्वेद, III.9-5.VI.8.4
28. ऋग्वेद, I.60.1
29. शर्मा, मधुलिका, 2001, पूर्वोक्त, पृ. 27.
30. ऋग्वेद, I.31.3
31. ऋग्वेद, I.128.2
32. ऋग्वेद, I.96.4
33. ग्रीसवोल्ड, एच.डी., पूर्वोक्त, पृ. 164.
34. ऋग्वेद, 7.78.3
अजीजनन्सूर्ययज्ञमग्निमपा चीनंतमो अगादजुष्टम्।।
35. ऋग्वेद, 7.99.4
उरूं यज्ञायचकथुरूलोकं जनयंता सूर्यमुषासमग्निम्।।
36. ऋग्वेद, II.1.1, ग्रिफिथ, राल्फ टी.एच., पूर्वोक्त, पृ. 130.
37. ऋग्वेद, II.12.3
38. ऋग्वेद, 1.59.2
तंत्वादेवासोजनयन्तदेवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय।।
39. ग्रिफीथ, राल्फ टी.एच., पूर्वोक्त, पृ. 137.
40. ऋग्वेद, III.29.1-2
41. ऋग्वेद, 3.29.3
42. ऋग्वेद, 1.31.2
विभुर्विश्वस्मैभुवनायमेधिरोद्विमाताशयुः कतिधाचिदायवे।।
43. ऋग्वेद, 3.29.2
44. ऋग्वेद, 5.9.3 एवं 4
45. ऋग्वेद, I.95.2
46. ऋग्वेद, I.143.1
47. ऋग्वेद, 1.68.2
आदितेविश्वंक्रतुंजुषन्त शुष्काद्यददेव जीवोजनिष्ठाः।
48. ऋग्वेद, 10.79.4
तद्वामृतंरोदसीप्रब्रवीमि जायमानो मातरागर्भो अत्ति।
49. ऋग्वेद, 10.115.1
50. ऋग्वेद, V.11.6
51. ऋग्वेद, VII.78.3
52. ऋग्वेद, II.4.5
53. मैत्रायणी संहिता 1.6.10
54. ऋग्वेद, 3.1.20
एताते अग्ने जनिभासनानिप्रपूर्ण्यायनूतनानिवोचम्।
55. ऋग्वेद, 2.4.5
सचित्रेण चिकितेरंसुभासा जुजुर्वांयोमुहुरायुवाभूत्।।
56. ऋग्वेद, 6.16.21
स प्रत्नवन्नवीचसाग्नेद्युम्नेन संयता।
57. ऋग्वेद, I, 31.2
58. हीलब्रान्डट, अल्फ्रेड, 'वैदिक माइथोलॉजी', वरलाग वांन एम. एण्ड एच. मार्कस, ब्रेसला, 1902, पृ. 58.
59. ऋग्वेद, I.60.1
60. ऋग्वेद, I.68.2
61. ऋग्वेद, I.127.4
62. तैत्तिरीय संहिता 6.2.8
63. ऋग्वेद, 6.16.13
64. ऋग्वेद, 6.15.17
65. ऋग्वेद, 3.1.13
66. शतपथ ब्राह्मण 6.4.4.8
67. ऋग्वेद, 2.1.14
68. ऋग्वेद, 8.43.9

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया का प्रभाव

❑ डॉ. कुमारी स्वर्ण रेखा

सूचक शब्दः शिक्षा, माध्यमिक स्तर, व्यक्तित्व, समायोजन, सोशल मीडिया, छात्र एवं छात्राएँ।

प्रस्तुत शोधपत्र में "माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया का प्रभाव" का अध्ययन किया है। शोध हेतु विवरणात्मक अनुसंधान प्ररचना का प्रयोग किया गया है। शोध उपकरण के रूप में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि मापन हेतु कक्षा 9 वीं एवं 10 वीं के प्राप्तांकों को आधार बनाया गया एवं विद्यार्थियों पर सोशल मीडिया के प्रभाव की जाँच हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली के आधार पर आँकड़ों का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है। जनसंख्या के रूप में बिहार राज्य के दरभंगा जिले से चयनित दसों प्रखंड से 10 माध्यमिक विद्यालय अर्थात् प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय से उत्तरदाताओं के रूप में 15 छात्रों एवं 15 छात्राओं, कुल 300 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रतिशत, मानक विचलन एवं टी–परीक्षण आदि सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मानव जीवन का आधार शिक्षा है। मानव उन्नति और विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा व्यक्तित्व को बढ़ाती और मजबूत करती है। जब कोई बच्चा पैदा होता है, तो उसका व्यवहार एक जानवर जैसा होता है क्योंकि उसके कार्य उसके प्रारंभिक आवेगों से प्रेरित होते हैं। इन प्रवृत्तियों को सही ढंग से निर्देशित करके, शिक्षा परिपक्वता को बढ़ावा देती है। शिक्षा से बच्चों की रचनात्मक क्षमता का विकास होता है। वह अपने परिवेश के अनुकूल होने के अलावा शिक्षा के माध्यम से प्रकृति और पर्यावरण को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा मृत्यु से अनंत की ओर मनुष्य की यात्रा शिक्षा से संचालित होती है। शिक्षा वास्तव में एक व्यक्ति को उसकी परिस्थितियों और पर्यावरण के अनुकूल होने के लिए शिक्षित करती है। शिक्षा द्वारा मानव को ज्ञानवान, कला–कौशल युक्त और सभ्य बनाया जाता है। यह माता के समान पालन–पोषण करती है और पिता के समान उचित मार्गदर्शन प्रदान करती है। शिक्षा के द्वारा ही हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों ओर फैलता है अर्थात् जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्य अस्त होने पर कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर प्रत्येक व्यक्ति फूल की भाँति खिल उठता है तथा अशिक्षित रहने पर दरिद्रता, शोक एवं कष्ट के अन्धकार में डूबा रहता है।[1]

वर्तमान युग को 'सोशल मीडिया युग' के रूप में जाना जाता है। राम के अनुयायी हनुमान ने कथित तौर पर राम के दूत के रूप में लंका की यात्रा की। मेघदूत की रचना करते समय मेघ ने संदेश के लिए एक वाहक के रूप में कार्य किया। इसलिए उन्होंने इन माध्यमों का उपयोग अपने विचारों, भावनाओं और संदेशों को एक दूसरे के साथ साझा करने के लिए किया। जैसे–जैसे तकनीक उन्नत होती गई, संचार माध्यम बदलते रहे। **जनसंचार** साधनों के उपयोग से शिक्षा से जुड़े अनेक प्रकार के उद्देश्यों अथवा शैक्षिक कार्यों के पूरा करने की कोशिश की जाती है। जैसे राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में सबके लिए शिक्षा पहुँचाने का कार्य, शिक्षा का अधिकार कानून को सही तरह लागू करवाने का कार्य या रेडियों, दूरदर्शन आदि के माध्यम से सामाजिक नाटकों के प्रसारण से सामाजिक चेतना विकास या सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रदर्शन से संस्कृति से परिचय व संस्कृति का संरक्षण आदि। यह शिक्षा का बहुत ही शक्तिशाली साधन है। इन्हें तेजी से पहुँचाने वाले या द्रुतगामी साधनों के रूप में देखा जा सकता है।[2]

एक छात्र के लिए सोशल मीडिया बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह उनके लिए जानकारी को साझा करने, जवाब प्राप्त करने और शिक्षकों से जुड़ने में

❑ सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा (बिहार)

सहायता करता है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से छात्र और शिक्षक एक-दूसरे से जुड़ सकते हैं और इस प्लेटफॉर्म का अच्छा उपयोग करके जानकारी साझा कर सकते हैं।[3]

सोशल मीडिया का उपयोग व्यापक हो गया है और वर्तमान में, सबसे लोकप्रिय सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म फेसबुक, ट्विटर, माइस्पेस, लिंक्डइन और गूगल़, स्काइप हैं।[4] फेसबुक प्रोफाइल उपयोगकर्ता को एक-दूसरे के साथ सूचनाओं का संचार करने की अनुमति देता है और उपयोगकर्ताओं को संबंध बनाने और बनाए रखने की अनुमति देता है और दूसरों को कॉलेज के छात्रों के बीच एक समुदाय का हिस्सा बनने के लिए प्रोत्साहित करता है। ऑनलाइन सामाजिक वेबसाइट लोकप्रिय हो जाती हैं।[5]

छात्र इंटरनेट केंद्रों के माध्यम से विभिन्न प्रकार की सामग्री का उपयोग कर सकते हैं। व्यापार, खेल, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृषि, विदेश नीति, रक्षा, पर्यावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, फिल्म, मनोरंजन, अपराध, सामाजिक कार्यक्रम आदि इनमें से कुछ क्षेत्र हैं। इसके लिए केवल शैक्षिक ज्ञान से अधिक की आवश्यकता है। सोशल मीडिया साइट्स इस प्रकार विद्यार्थियों के ज्ञान को बढ़ाती हैं, जो आंशिक रूप से उचित है और आंशिक रूप से जरूरी भी है। अधिकांश माध्यमिक विद्यालय के छात्र जो सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं, उनके मन में वर्तमान में कुछ लक्ष्य हैं। इन उद्देश्यों में सामाजिक और शैक्षणिक लक्ष्य सम्मिलित हैं। इन्हीं दोनों के आधार पर वह अपने सारे निर्णय लेते रहते हैं। वास्तव में, सोशल मीडिया के कई रूपों में उपयोग का विद्यार्थियों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।[6]

अकादमिक प्रदर्शन एक छात्र के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि यह शैक्षणिक संस्थानों या नौकरी में उसकी नियुक्ति को निर्धारित करता है। इसके कारण, कई माता-पिता, शिक्षक, अभिभावक, छात्र और शुभचिंतक इस बात से चिंतित हैं कि उनके छात्र अपने शैक्षणिक प्रदर्शन को कैसे बढ़ा सकते हैं।[7]

परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया का माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों पर कई तरह से महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से उनके शैक्षिक प्रदर्शन पर, जो समस्या और अध्ययन के विषय का आधार बनता है।

समस्या कथनः- “माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया का प्रभाव”।

साहित्य समीक्षा :- तारेक ए. अल-बदावी और यास्मीन हाशेम[8] ने अपने शोध के अंतर्गत स्कूली छात्रों के शैक्षणिक विकास पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया है। शोधार्थी ने व्यक्त किया है कि आज, छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर सोशल मीडिया के प्रभाव को निर्धारित करना महत्त्वपूर्ण है। प्रौद्योगिकी साल-दर-साल तेजी से प्रगति कर रही है, और युवा पीढ़ी इस तेजी से बदलाव की चपेट निरंतर आ रही है। फेसबुक और ई-मेल के माध्यम से प्रश्नावली वितरित की गई, ताकि यह पता लगाया जा सके कि छात्रों का शैक्षणिक प्रदर्शन सोशल मीडिया से प्रभावित है या नहीं। निष्कर्ष प्रदर्शित करते हैं कि सोशल मीडिया और अकादमिक प्रदर्शन के बीच कोई संबंध नहीं है यह उनके समग्र ग्रेड औसत में स्पष्ट रूप से अनुमानित है।

जाहिद अमीन[9] ने अपने शोध के अंतर्गत छात्र के अकादमिक प्रदर्शन के सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया है। अध्ययन केंद्रीय विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर सोशल मीडिया साइटों के बढ़ते उपयोग के प्रभाव को निर्धारित करता है। परिणाम बताते हैं कि सोशल मीडिया का प्रभाव सकारात्मक हो सकता है क्योंकि इस अध्ययन में सोशल मीडिया साइटों के वास्तविक प्रभाव को बारीकी से निर्धारित किया गया है। हाल के समय में यह छात्रों के कैरियर और भविष्य को प्रोत्साहित करता है। फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप और स्काइप जैसी सोशल मीडिया साइटें छात्रों का ध्यान अध्ययन के लिए आकर्षित करती हैं और उनके शैक्षणिक ग्रेड बिंदुओं को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं।

मणि मुक्कियाहो[10] ने अपने शोध के अंतर्गत माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया। निष्कर्ष बताते हैं कि पुरुष और महिला माध्यमिक छात्रों के बीच सोशल मीडिया के संपर्क में और रेडियो, कंप्यूटर और मोबाइल के आयामों में महत्त्वपूर्ण अंतर है। अध्ययन से पता चला कि अधिकांश आरोपियों के पास मोबाइल फोन थे और उन्हें कई के सोशल मीडिया पर सक्रिय होने की जानकारी थी।

तुलसी सी.ई. ओगुगुओ[11] ने अपने शोध पत्र के अंतर्गत छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन ने वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर

सोशल मीडिया के उपयोग के प्रभाव को निर्धारित किया। परिणामों से पता चला कि छात्र अक्सर नए दोस्त बनाने, अपने असाइनमेंट और अन्य शैक्षिक सामग्री के स्रोत के बारे में शोध करने, नवीनतम रुझानों और समाचारों के साथ अद्यतित रहने के लिए सोशल मीडिया में संलग्न होते हैं। खोज से यह भी पता चला कि छात्र सोशल मीडिया पर रोजाना औसतन 2 से 4 घंटे बिताते हैं। लेखांकन में उनकी औसत शैक्षणिक उपलब्धियों पर छात्रों द्वारा सोशल मीडिया के उपयोग की आवृत्ति का कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं था।

आर. शिवकुमारी[12] ने अपने शोध पत्र के अंतर्गत "छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर सोशल मीडिया का प्रभाव" का अध्ययन किया है। सोशल मीडिया दुनिया की युवा पीढ़ी के बीच तेजी से बढ़ रहा है। स्कूली उम्र के छात्र व्यापक रूप से सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। इसलिए, वे छात्रों के व्यक्तिगत और शैक्षणिक जीवन को प्रभावित करेंगे। यह अध्ययन कुड्डालोर जिले में छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर सोशल मीडिया के प्रभावों का पता लगाने के लिए बनाया गया है। यह निष्कर्ष निकाला गया कि समाज में छात्रों के बीच सोशल मीडिया के दुरुपयोग के संबंध में सार्वजनिक विचारों के बावजूद, अधिकांश स्कूली छात्र अपने शैक्षणिक उद्देश्य के लिए सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग करने में रुचि रखते थे। यह इंगित करता है कि सोशल मीडिया छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित करता है।

कुप्पुस्वामी और नारायण[13] का तर्क है कि सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटें छात्रों को उनकी पढ़ाई से विचलित करती हैं, लेकिन ये वेबसाइट अच्छे शैक्षणिक सिद्धांतों और शिक्षकों द्वारा उचित पर्यवेक्षण के आधार पर शिक्षा के लिए उपयोगी हो सकती हैं। इसके अलावा, शोध का निष्कर्ष है कि सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों का युवाओं की शिक्षा पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव पड़ता है, जो उनकी शिक्षा के लिए सकारात्मक तरीके से उपयोग करने की रुचि पर निर्भर करता है।

आलम एलुदा और डिमेट्री[14] ने समझाया कि अकादमिक प्रदर्शन पर सामाजिक नेटवर्क का उपयोग करने के नकारात्मक प्रभाव का प्रचलन है और यह उच्च है।

ओस्कौई[15] ने निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक नेटवर्क का छात्रों और शिक्षकों दोनों पर अकादमिक प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है यदि ज्ञान निर्माण और प्रसार के एक उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है। प्रभाव छात्र द्वारा उपयोग किए जाने वाले सोशल नेटवर्क के प्रकार पर निर्भर करता है, यदि यह अवकाश गतिविधि के लिए है जो शैक्षणिक कार्य में बाधा डालता है या हस्तक्षेप करता है, तो यह छात्र के शैक्षणिक प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।

कुप्पुस्वामी[16] के अनुसार फेसबुक, माइस्पेस और यूट्यूब जैसी सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटें लोकप्रिय हैं और लोगों की बढ़ती संख्या के लिए दैनिक जीवन का हिस्सा बन गई हैं। अध्ययन का तर्क है कि ये सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटें छात्रों को उनकी पढ़ाई से विचलित करती हैं। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों का युवाओं की शिक्षा पर सकारात्मक और साथ ही नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो किसी के उपयोग की रुचि पर निर्भर करता है। सोशल नेटवर्क मीडिया छात्रों के लिए लाभदायक हैं क्योंकि यह छात्रों और शिक्षकों के बीच संचार को खोलता है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता:- वर्तमान समय में सोशल मीडिया सबसे अधिक प्रचलित व सशक्त माध्यम है। सोशल मीडिया का विद्यार्थियों पर बहुत अधिक प्रभाव दिखाई देता है। सोशल मीडिया के विकास के साथ-साथ समाज में परिवर्तन हो रहा है विशेषकर विद्यार्थी वर्ग पर इसका अमिट प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार से दृष्टव्य हुआ है। वर्तमान में सोशल मीडिया के साधन प्रत्येक घर में उपलब्ध है। जिससे इन साधनों का प्रभाव जीवन के हर पक्ष (यथा सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक इत्यादि) पर दिखाई देता है। इसके माध्यम से जहाँ हमें नवीन जानकारियों का पता लगता है, वहीं दूसरी तरफ नयी परम्पराएँ (सांस्कृतिक तथा सामाजिक) तथा अनेकानेक नवीन समस्याओं का भी प्रादुर्भाव हुआ है। साथ ही हमारे मूल्यों (सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक) का भी ह्रास दिखाई देता है। सोशल मीडिया के माध्यम से विद्यार्थी अपने ज्ञान में तो वृद्धि कर रहे हैं परंतु कुछ अनेक अपराधिक कार्यों में लिप्त होते जा रहे हैं। अतः विद्यार्थियों पर सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव पड़ रहे हैं। इसलिए इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस समस्या पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

उद्देश्य एवं शोध पद्धति :- प्रस्तुत अध्ययन का सामान्य उद्देश्य माध्यमिक छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया के प्रभाव का पता लगाना था।

शोध परिकल्पना:- माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर सोशल मीडिया का नकरात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत शोध हेतु विवरणात्मक अनुसंधान प्ररचना को निर्धारित किया गया है। जिसमें सर्वेक्षण विधि के माध्यम से प्रश्नावली, साक्षात्कार अनुसूची भरकर तथ्यों का संकलन किया गया है। अध्ययन के अंतर्गत शोधकर्ता ने समस्या के न्यादर्श के चुनाव हेतु स्तरित दैव निदर्शन पद्धति के आधार पर चयनित प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय से उत्तरदाताओं के रूप में 15 छात्रों एवं 15 छात्राओं अर्थात् कुल 300 छात्रों का चयन किया गया है। अध्ययन में तथ्यों को एकत्र करने हेतु मुख्य उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त चर:-

स्वतंत्र चर-शैक्षणिक उपलब्धि।

आश्रित चर-माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राएँ तथा सोशल मीडिया

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु मात्रात्मक प्रदत्तों का विश्लेषण एस.पी.एस.एस. कंप्यूटर सॉफ्टवेयर संस्करण 22-0 की सहायता से वर्णनात्मक आँकड़ों का उपयोग करके किया है, जबकि गुणात्मक प्रदत्तों को वर्गीकृत किया गया था और अनुसंधान उद्देश्यों के आधार पर इसका विश्लेषण किया गया है। परिणाम प्रतिशत और बारंबारता का उपयोग करके तालिकाओं के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। विश्लेषण किए गए गुणात्मक प्रदत्तोंको विवरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्न प्रकार से है-

उत्तरदाताओं की जनसांख्यकीय रूपरेखा

तालिका संख्या 1

लिंग के आधार पर उत्तरदाताओं का चयन

लैंगिकता	आवृत्ति	प्रतिशत
छात्र	150	50.0
छात्राएँ	150	50.0
कुल	300	100.0

उपर्युक्त तालिका संख्या 1 में स्पष्टतः उल्लेखित है कि 100 उत्तरदाताओं में से, 50 प्रतिशत उत्तरदाता छात्र एवं 50 प्रतिशत उत्तरदाता छात्राएँ हैं।

तालिका संख्या 2

कक्षीय आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

कक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
9वीं	150	50.0
10वीं	150	50.0
कुल	300	100.0

उपर्युक्त तालिका संख्या 2 के माध्यम से स्पष्टतः उल्लेखित है कि 100 उत्तरदाताओं में से, 50 प्रतिशत उत्तरदाता 9वीं एवं 50 प्रतिशत उत्तरदाता 10वीं कक्षा के छात्र हैं।

तालिका संख्या 3

आवासीय क्षेत्र के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

आवासीय क्षेत्र	आवृत्ति	प्रतिशत
शहरी	150	50.0
ग्रामीण	150	50.0
कुल	300	100.0

उपर्युक्त तालिका संख्या 3 के माध्यम से स्पष्टतः उल्लेखित है कि 300 उत्तरदाताओं में से, 50 प्रतिशत छात्र शहरी क्षेत्र से, 50 प्रतिशत छात्र ग्रामीण क्षेत्र से हैं।

प्रदत्तों का विश्लेषण :- छात्र जागरूकता और सोशल मीडिया तक पहुँच:-

तालिका संख्या 4

इंटरनेट के प्रति जागरूकता और सोशल मीडिया तक पहुँच

कथन	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
इंटरनेट के प्रति जागरूकता	270	90	30	10
सोशल मीडिया तक पहुँच	240	80	60	20

उपर्युक्त तालिका संख्या 4 के अंतर्गत माध्यमिक विद्यालयों में अध्यनरत विद्यार्थियों की इंटरनेट के प्रति जागरूकता और सोशल मीडिया तक पहुँच को दर्शाया गया है। आँकड़ों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि 90 प्रतिशत छात्र सोशल मीडिया साइटों से अवगत हैं, जबकि 10 प्रतिशत नहीं थे और 80 प्रतिशत

छात्र इंटरनेट का उपयोग करते हैं जबकि 20 प्रतिशत जैसा दिखाया गया है नहीं करते थे।

विद्यार्थियों द्वारा उपयोग की जाने वाली सोशल मीडिया साइट्स शिक्षकों और प्रधानाचार्यों से स्थापित अध्ययन उन छात्रों का साक्षात्कार करता है जो ज्यादातर फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और ट्विटर को पसंद करते हैं।

तालिका संख्या 5

विद्यार्थियों द्वारा प्रयुक्त सोशल मीडिया की गणना

नेटवर्किंग	साइट	प्रतिशत
फेसबुक	75	25
यूट्यूब	81	27
व्हाट्सएप	54	18
इंस्टाग्राम यूजर	18	6
अन्य	12	4
कोई भी नही	60	12
कुल	300	100

उपर्युक्त तालिका संख्या 5 के अन्तर्गत अध्ययन में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा सोशल मीडिया यूजर्स को दर्शाया गया है। आँकड़ों के विश्लेषणा से स्पष्ट हुआ कि 27 प्रतिशत विद्यार्थी यूट्यूब का उपयोग करते हैं, 25 प्रतिशत विद्यार्थी फेसबुक का, 18 प्रतिशत विद्यार्थी व्हाट्सएप तथा 18 प्रतिशत विद्यार्थी इंस्टाग्राम का उपयोग करते हैं। वहीं 8प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो किसी अन्य सोशल साइट से जुड़े हुए हैं और 12 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो किसी भी मीडिया का उपयोग नहीं करते हैं। निष्कर्षतः सोशल नेटवर्किंग साइट यूट्यूब एवं फेसबुक ज्यादातर लोगों के द्वारा प्रयोग में लाया जाता है।

सोशल मीडिया पर विद्यार्थियों द्वारा बिताया गया समय शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों से कि जो छात्र सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं, वे अपने खाली समय के दौरान अकादमिक कार्यों की तुलना में इंटरनेट पर बहुत अधिक समय व्यतीत करते हैं।

तालिका सं. 6

सोशल मीडिया पर व्यतीत समय

कथन	सहमति		असहमति	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
शिक्षा संबंधी अध्ययन की तुलना में सोशल मीडिया पर बहुत अधिक समय व्यतीत करते हैं	210	70	90	30

उपर्युक्त तालिका संख्या 1-6 के अन्तर्गत अध्ययन में शोधकर्ता ने माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा सोशल मीडिया पर व्यतीत समय से संबंधित प्रतिक्रिया (सहमति एवं असहमति) की जाँच की है। आँकड़ों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात् निष्कर्षतः प्राप्त हुआ कि 70 प्रतिशत विद्यार्थी, शिक्षा संबंधी अध्ययन की तुलना में सोशल मीडिया पर बहुत अधिक समय बिताते हैं, जबकि 30 प्रतिशत विद्यार्थी सोशल मीडिया पर कम समय बिताते हैं।

तालिका संख्या 7

सोशल मीडिया से शैक्षणिक प्रदर्शन पर प्रभाव

कथन	सहमति		असहमति	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
सोशल मीडिया पर अधिक समय बिताना शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करता है	228	76	72	24

उपर्युक्त तालिका संख्या 1-7 के अन्तर्गत अध्ययन में शोधकर्ता ने माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा सोशल मीडिया पर व्यतीत समय से संबंधित प्रतिक्रिया (सहमति एवं असहमति) की जाँच की है। आँकड़ों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि 76 प्रतिशत विद्यार्थियों ने सहमति व्यक्त की, जबकि 24 प्रतिशत विद्यार्थियों ने यह नहीं माना कि सोशल मीडिया पर बहुत अधिक समय उनके प्रदर्शन को प्रभावित कर सकता है।

निष्कर्ष : उपरोक्त आँकड़ों के विश्लेषणात्मक अध्यनोपरांत

शोधार्थी ने पाया कि माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत विद्यार्थियों का अपनी शैक्षिक संबंधी अध्ययन की तुलना में सोशल मीडिया एवं सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर अत्यधिक समय व्यतीत करने की वजह से उनके शैक्षिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव दृष्ट्व्य हुआ।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन से, यह पाया गया कि छात्रों की इंटरनेट और सोशल मीडिया साइटों तक पहुँच और अक्सर आने वाली साइटें फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम और यूट्यूब थीं। यह भी नोट किया गया कि जो छात्र सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं, वे दो घंटे से अधिक समय अकेले बिताते हैं। छात्रों ने दृढ़ता से सहमति व्यक्त की कि वे सोशल मीडिया का उपयोग चैटिंग, फोटो पोस्ट करने, मनोरंजन, अश्लील वीडियो देखने, समाचार और खेल प्राप्त करने के लिए करते हैं। सोशल मीडिया तक इस पहुँच का उनके शैक्षणिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसी तरह यदि शैक्षणिक उपलब्धि की बात करें तो यह कहना गलत नहीं होगा कि सोशल मीडिया के माध्यम से विद्यार्थियों के ज्ञार्नाजन विकास को बल मिलेगा और उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के स्तर में निश्चित सीमा से अधिक बदलाव अवश्य आएगा और उसकी शैक्षणिक उपलब्धि उच्चतम स्तर पर पहुँचेगी।

सन्दर्भ

1. http://echetana.com/wp-content/uploads/2018/10/27-Balwan-Singh.pdf
2. राठी दीपक 'शिक्षा में मीडिया का योगदान', एलाइड एजुकेशन में एडवांस एंड स्कॉलरली रिसर्च जर्नल वाल्यूम, 2017, 13, अंक संख्या 2, http://ignited.in/a/55784
3. Naizabekov, S. 'Negative Impact of Social Networking Sites on Academic Performance of Students' Academia.edu., 2012
4. Sivakumar, R. 'Effects of Social Media on Academic Performance of the Students', The Online Journal of Distance Education and e-Learning, 8(2), 2020, pp. 90-97.
5. हैन्स, जे. 'भारतीय मीडिया और सकारात्मक युवा विकास', जीआरए - वैश्विक अनुसंधान विश्लेषण, 2013 4 (5), 99
6. Olowo, B. F., Alabi, F. O., Okotoni, C. A., & Yusuf, M. A. 'Social Media: Online Modern Tool to Enhance Secondary Schools Students' Academic Performance', International Journal on Studies in Education, 2(1), 2020, pp. 26-35.
7. Ullah, M. A., Hassan, M., Anwar, A., Butt, R. M., & Rasheed, A. 'Impact of Social Networking Sites on Academic Performance of University Students: A Quantitative Analysis', Reviews of Management Sciences, 3(1), 2021, pp. 1-10.
8. El-Badawy, T. A., & Hashem, Y. 'The Impact of Social Media on the Academic Development of School Students', International Journal of Business Administration, 6(1), 2015 46.
9. Amin, Z., Mansoor, A., Hussain, S. R., & Hashmat, F. 'Impact of Social Media of Student's Academic Performance', International Journal of Business and Management Invention, 5(4), 2016, pp. 22-29.
10. Mookkiah, M., & Prabu, M. M. 'Impact of Social Media on the Academic Achievement of Secondary School Students', Journal of Xi'an University of Architecture & Technology, 2020, 12(3), 3106-3109.
11. Oguguo, B. C., Ajuonuma, J. O., Azubuike, R., Ene, C. U., Atta, F. O., & Oko, C. J. 'Influence of Social Media on Students' Academic Achievement', International Journal of Evaluation and Research in Education, 2020, 9(4), 1000-1009.
12. Sivakumar, R. 'Effects of Social Media on Academic Performance of the Students' The Online Journal of Distance Education and e-Learning, 2020, 8(2), 90-97.
13. Kuppuswamy, S., & Narayan, P. 'The Impact of Social Networking Websites on the Education of Youth' International Journal of Virtual Communities and Social Networking (IJVCSN), 2010, 2(1), 67-79
14. A'lamElhuda . D and Dimetry.A 'The Impact of Facebook and Others Social Networks Usage on Academic Performance and Social Life Among Medical Students at Khartoum University' International Journal of Scientific & Technology Research Volume 3, issue 5, 2014
15. Oskouei, R. J. 'Analyzing Different Aspects of Social Network Usages on Students Behaviors and Academic Performance', In 2010 International Conference on Technology for Education, 2010 pp. 216-221, IEEE.
16. Kuppuswamy, S., & Narayan, P. S. 'The Impact of Social Networking Websites on the Education of Youth', International Journal of Virtual Communities and Social Networking (IJVCSN), 2010, 2(1), 67-79.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

ग्रामीण महिला के आरोग्य की स्थिति और समस्या : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. राजेश कुमार एम0 सोसा

वर्तमान समय में महिला अपने अधिकार के प्रति जाग्रत हुई है। संविधान में उनको विशिष्ट स्थान मिला है लेकिन व्यवहार में स्वीकृति नहीं मिली है। सरकार और स्वैच्छिक संगठन उनकी स्थिति सुधारने का काफी प्रयत्न करते हैं फिर भी उनकी स्थिति दिन प्रतिदिन ख़राब होती जाती है। ग्रामीण समुदाय में इसका खास प्रभाव देखने को मिला है। सामान्यतः निर्धनता को वस्तिवृद्धि का उत्तरदायी कारक माना जाता है, और वस्ति वृद्धि से वस्ति गीचता पैदा होती है जिसके कारण आरोग्य की समस्या उत्पन होती है। आरोग्य से जुड़ी समस्या की महत्तम भोगी महिला होती है। ग्रामीण महिला में पोषण की कमी से स्वास्थ्य की समस्या उत्पन्न होती है। विशेषकर के गर्भावस्था के दौरान पोषणाहार नहीं मिलता और भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक कुटुंब की प्रथा के अनुसार परिवार के आदमी के भोजन के बाद महिला भोजन करती है, इससे काफी समय पूर्ण और आहार युक्त भोजन नहीं मिलता है। भारत का सबसे बड़ा हिस्सा ग्रामीण समुदाय में रहता है, इसलिए ग्रामीण महिला का स्वास्थ्य सुधार अनिवार्य बन गया है। अतः प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत ग्रामीण महिला के आरोग्य की स्थिति और समस्या का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

सूचक शब्दः आरोग्य, महामारी, स्वास्थ्य।

"**सामान्यतः** स्वास्थ्य के लिए इंग्लिश शब्द 'Health' का प्रयोग किया जाता है। ये शब्द जर्मन और एंग्लो सेक्शन शब्द 'Hale' से लिया गया है। जिसका अर्थ होता है 'Wholeness' मतलब समग्र स्वास्थ्य और पवित्र होता है। स्वास्थ्य को आरोग्य एवं तंदुरस्ती भी कहा जाता है। विश्व आरोग्य संगठन द्वारा 1946 में स्वास्थ्य की परिभाषा प्रस्तुत की जिसमे स्वास्थ्य का अर्थ मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेम कुशल की सम्पूर्ण अवस्था और सिर्फ बीमारी की अनुपस्थिति नहीं लेकिन स्वास्थ्य को क्षेम कुशलता की सिद्धि माना जाता है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की संकल्पना एक व्यापक दृष्टिकोण है।

आयुर्वेद में स्वास्थ्य की अवधारणा का एक व्यापक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। आयुर्वेद में निरोगी अवस्था को प्रकृति और रोग की अवस्था को विकृति कहा जाता है। चरक संहिता के सूत्र 11135 में "त्रय उपस्तम्भा आहारः स्वन्यो बहमचर्यमिति" में स्वास्थ्य की देखभाल के लिए सूचित किया है। इसके अनुसार शरीर और स्वास्थ्य को स्थिर, सुदृढ़ और उत्तम बनाये रखने के लिए भोजन, निंद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीन उपस्पतंभ हैं। स्वास्थ्य एक विस्तृत संकल्पना है जिसमें व्यक्तिगत, पारिवारिक युवा के लिए स्वास्थ्य, बुजुर्ग के लिए स्वास्थ्य, महिला के लिए स्वास्थ्य, ग्रामीण एवं नगरीय का स्वास्थ्य सम्मिलित होता है।

भारत में आरोग्य : स्वतंत्रता के बाद स्वास्थ्य सेवा का विस्तृतीकरण हेतु ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवा केन्द्र शुरू किए। 1951 में भारत के लोगों की औसत आयु 32 साल की थी। इसके बाद अनाज, पोषणयुक्त आहार और स्वास्थ्य संबंधी सक्रिय कार्यक्रम की उपलब्धि में 2011 में औसत आयु 64.6 देखने को मिलती है। ये बात निर्दिष्ट करती है कि भारत में स्वतंत्रता के बाद स्वास्थ्य संबंधी हुए भौतिक विकास और सुविधा में वृद्धि हुई है। विकासशील राष्ट्रों में स्वास्थ्य की सेवा की कमी को दूर करने के लिए 1978 में एक कार्यक्रम का गठन किया जिसको Health for all by the year नाम से जाना जाता है। इन कार्यक्रम के लिए 1981 में एक कमेटी का गठन किया जिसकी रिपोर्ट में निम्न सुझाव दिये हैं। 2000 तक प्रवर्तमान बाल मृत्यु दर 125 से 60 तक ले जाना तथा 2000 तक जन्म दर 33 से 21 तक ले जाना। स्वास्थ्य का तय किया हुआ लक्ष्य पाने के लिए स्वास्थ्य नीति में नियमित रूप से बदलाव किया है। जैसे कि 1985, 1990, 1995, 2000, 2005, 2010, 2013 तक स्वास्थ्य लक्ष्यांक को सिद्ध करने के लिए बदलाव किया है।[3]

❑ प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, एल.आर.वलिया विनयन एवं पी.आर. मेहता वाणिज्य महाविद्यालय, भावनगर (गुजरात)

भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य क्षेत्र में उपलब्धि

वर्ष	योजना
2003	प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना
2003	नेशनल वेक्टर बोर्न डिजीज कंट्रोल प्रोग्राम
2007	नेशनल प्रोग्राम ऑफ प्रिवेन्शन एंड कंट्रोल ऑफ डैफ्नेस
2007	नेशनल टोबैको कंट्रोल प्रोग्राम
2008	नेशनल प्रोग्राम ऑफ प्रिवेन्शन एंड कंट्रोल ऑफ सोरोसिस
2008	राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना
2010	प्रोग्राम फॉर प्रिवेन्शन एण्ड कंट्रोल ऑफ केंसर, डायबिटीस, कार्डियोवैस्कुलर डिसीज एंड स्ट्रोक
2010	नेशनल प्रोग्राम फॉर हेल्थ केयर ऑफ एल्डरली
2011	जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम
2014	नेशनल प्रोग्राम फॉर प्रिवेन्शन एण्ड मैनेजमेंट ऑफ बर्न इंजरीज
2014	नेशनल मेंटल हेल्थ पॉलिसी
2014	राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम
2016	प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान - नेशनल हेल्थ मिशन
2018	आयुष्मान भारत - नेशनल हेल्थ मिशन

ग्रामीण स्वास्थ्य की संस्था के रूप में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र : भारत के विशिष्ट भू भाग में वास्वत करते लोगों का सर्वागीण स्वास्थ्य देखभाल हेतु ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य संस्था मतलब प्राथमिक आरोग्य केन्द्र। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1951 में स्वास्थ्य सेवा के बारे में उल्लेख किया है कि व्यक्ति और समुदाय का स्वास्थ्य को देखने के उद्‌देशय से शारीरिक, सामाजिक और पारिवारिक वातावरण का विचार करके प्रतिबंधात्मक उकेल लेने के लिए कार्यक्रम का समावेश लिया है।

भारत में स्वास्थ्य सुविधा की उपलब्धता

वर्ष	सेवा आरोग्य केन्द्र	प्राथमिक आरोग्य केन्द्र	सामूहिक आरोग्य केन्द्र	कुल
1981-1985	48376	9115	761	94252
1985-1992	130165	18671	1910	150746
1992-1997	136258	22149	2633	161040
1997-2002	137311	22875	3054	163240
2002-2007	145272	22370	4045	176187
2007-2012	148366	24049	4833	177248
2012-2017	156231	25650	5624	187505

स्त्रोत- राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोफाइल 2018

सरकारी स्वास्थ्य केंद्र और स्वास्थ्य संस्था

वर्ष	अस्पताल	जनता स्वास्थ्य केन्द्र	प्राथमिक आरोग्य केन्द्र	कुल केन्द्र
2004-05	269	273	1070	1612
2005-06	268	272	1072	1313
2006-07	268	273	1073	1617
2007-08	268	273	1073	1614
2008-09	257	283	1054	1624
2009-10	257	291	1105	1653
2010-11	256	305	1114	1675
2011-12	259	318	1158	1730

स्त्रोत- Statistical Outline [Gujarat State Directorate of Economics and Statistics] Gandhinagar

सरकारी अस्पताल में बेड की संख्या और आरोग्य केंद्र

विगत	वर्ष	गुजरात	भारत	राज्य का हिस्सा
सरकारी अस्पताल की संख्या	2014	388	1947	1.96
बेड की संख्या	2014	27908	628708	4.44
प्राथमिक आरोग्य केन्द्र	2014	1158	25020	4.63
सामूहिक आरोग्य केन्द्र	2014	300	5363	5.59
सेवा केन्द्र	2014	7274	152326	4.78

स्त्रोत- सामाजिक - आर्थिक समीक्षा, अर्थशास्त्र और आंकड़ा शास्त्र नियामक की कमेटी, गांधीनगर

भावनगर जिले में स्वास्थ्य सुविधा की स्थिति

तहसील का नाम	सामूहिक आरोग्य केन्द्र	प्राथमिक आरोग्य केन्द्र	सेवा प्राथमिक आरोग्य केन्द्र	मातृत्व एवं बाल कल्याण केन्द्र
वल्लभीपुर	00	03	17	00
उमराला	00	02	16	00
भावनगर	01	04	25	23
घोघा	00	03	14	00
सीहोर	03	03	26	01
गारियाधार	00	03	26	17
पालिताना	00	04	29	00
तलाजा	02	08	42	02
महुवा	00	10	53	22
योग	06	08	48	291

स्त्रोत : हैण्ड बुक ऑफ भावनगर डिस्ट्रिक्ट, सेन्सस 2011

गुजरात में स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा : गुजरात की स्वास्थ्य सेवा राष्ट्रीय, सामान्य और समुदाय की आवश्यकता के आधार पर तीन भागो में विभाजित किया है। राज्य में 300 सामूहिक आरोग्य केन्द्र, 1174 प्राथमिक आरोग्य केन्द्र और 7710 सेवा केन्द्र अक्टूबर 2014 के अंत में कार्यरत थे।

साहित्य समीक्षा : महिलाओं के स्वास्थ्य और समानता के विषय पर केवल भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में अध्ययन हो रहा है।

हितेश जागानी[1] भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा की स्थिति, समस्या और समाधान की प्रस्तुत लेख में चर्चा की गयी है। जिसमें महिलाओं से संबंधित स्वास्थ्य के पहलूओं और स्वास्थ्य के संरचना की गई है।

आर. हरिहरन[2] ने ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की परिस्थिति पर चर्चा की है। जिसमें न्यूट्रीशन द स्ट्रेस, प्रजोत्पादन क्षमता पर विशेष ध्यान दिया है। इसने लिखा है कि बार-बार प्रसूती के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य पर विपरीत असर हुआ है। साथ में लिखा है कि बाल विवाह भी महिला के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाते हैं।

N. Malathi & Dr. Harihuran[3] Health Status of Rural Women in India में ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य की संबंधी स्थिति का आलेखन किया है। इसमें महिलाओं को स्पर्श करती सामाजिक-सांस्कृतिक समस्या की समीक्षा की है। इसके साथ पोषण आहार संबंधी तनाव, प्रजनन क्षमता, प्रजनन स्वास्थ्य और इनको स्पर्श करने वाली परिबलों विषयक समानता की चर्चा की है।

रमेश मकवाणा[4] ने डांग जिले के आदिवासी समुदाय में सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन किया है। इनके अध्ययन में आदिवासी समुदाय का स्वास्थ्य संबंधी अध्ययन किया है। आदिवासी समाज में लोग बीमारी के समय किस प्रकार की चिकित्सा कराते हैं और प्रसूती, इमरजेंसी, साधारण बीमारी, कुटुंब नियोजन में स्वास्थ्य संबंधी

वास्तविकता उजागर की है।

मानचंद खंडेला[5] ने अपनी किताब ''महिला और बदलता सामाजिक परिवेश'' में भारतीय महिलाओं और इनके स्वास्थ्य के बारे में लिखते हैं कि भारत में 2004 के समय में 78 हजार महिलाओं की प्रसूति के दौरान मृत्यु हुई है। जिनमें 37 प्रतिशत हेमरेज, 11 प्रतिशत सेप्टिक और 8 प्रतिशत गर्भपात के कारण मृत्यु हुई है।

चंद्रकांत लहरिया[6] ने अपनी किताब भारतीय आरोग्य प्रणाली में भारत में स्वास्थ्य सेवा में परिवर्तन लाने के लिए सुजाव दिये हैं। उसने भारतीय स्वास्थ्य नीति 2017 में जो स्वास्थ्य संबंधी परिवर्तन के लिए प्रयास किया है उनके अमलीकरण के आधार पर स्वास्थ्य सुविधाओं को विकसित करने की बात की है और उन्होंने स्वासथ्य केन्द्र की रूपरेखा पुनः गढ़ने की बात की है।

महिला स्वास्थ्य सेवाएँ और योजनाएँ : भारत जैसे देश में हर आदमी तक स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध करवाना एक दुलर्भ कार्य माना जाता है। भौगोलिक विषमता, सुविधा की कमी और विशाल जन समुदाय के कारण यह मुश्किल माना जाता है। प्रवर्तमान में तकनीकी विकास और भौतिक विकास के कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें बढ़ी हैं इस परिस्थिति में महिला स्वास्थ्य के लिए कुछ योजनाए लागू की गई हैं। जो इस प्रकार हैं-

1. टेलीमेडिसिन
2. माता एवं बाल ट्रेकिंग सिस्टम
3. किलकारी योजना
4. राष्ट्रीय स्वास्थ्य पोर्टल
5. पोषण अभियान योजना
6. अंतर्राष्ट्रीय महिला स्वास्थ्य अभियान दिवस
7. दूध संजीवनी योजना
8. जननी सुरक्षा योजना
9. कस्तूरबा उचित पोषण योजना
10. चिरंजीवी योजना
11. राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना
12. मुख्यमंत्री अमृतम योजना
13. राष्ट्रीय पोषाहार योजना

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध विषय "ग्रामीण महिलाओं की अरोग्य की स्थिति एवं समस्या का समाजशास्त्रीय अध्ययन" का चयन ग्रामीण समुदाय को केंद्र में रखकर किया है, ग्रामीण समुदाय का जीवन परंपरा केन्द्रित है, जहां महिलाओं का सामाजिक और आर्थिक महत्व निम्न रहता है इसीलिए स्वास्थ्य के संदर्भ में ग्रामीण महिला की स्थिति और दयनीय है। साथ ही अध्ययन क्षेत्र में महिला आरोग्य सम्बंधित अध्ययन बहुत कम होने के कारण भी इस विषय को चयन किया है।

प्रस्तुत अधययन के उद्देश्य

1. उत्तरदाता की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करना।
2. ग्रामीण महिलओं की आरोग्य की स्थिति और समस्या की जानकारी प्राप्त करना।
3. ग्रामीण महिला की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या का कारण का पता लगाना।
4. ग्रामीण महिलाओ के स्वास्थ्य सम्बन्धी देखभाल के लिए उनका पता लगाना।

अभ्यास क्षेत्र की पसंदगी : प्रस्तुत अभ्यास ग्रामीण महिला की स्वास्थ्य की स्थिति और समस्या का अभ्यास क्षेत्र गुजरात राज्य के भावनगर जिले के भावनगर तहसील के दस गावो को चयन किया है। प्रत्येक गांव में से सोद्देश्यपूर्ण यादृच्छिक निदर्शन पद्धति के आधार पर 10-10 महिला उत्तरदात्ता निदर्श में समाविष्ट किया है। इसी तरह प्रस्तुत अध्ययन के लिए 100 उत्तरदाता का निदर्श तैयार किया है। प्रस्तुत अभ्यास के हेतु को ध्यान में रखते हुए उत्तरदाता के पास से जानकारी एकत्र करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का आधार लिया है।

प्रस्तुत अध्ययन में स्वतंत्र और आधारित दोनों परिवर्त्यो का आधार ले के प्राप्त जानकारी का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। जिस परिवर्त्य का चालित मूल्य का गुणधर्म को हम पहचान सकते हैं, उस परिवर्त्यो को स्वतंत्र परिवर्त्य कहा जाता है। अध्ययन में आयुष्य, आय, व्यवसाय और शिक्षा को स्वतंत्र परिवर्त्य में समाविष्ट किया है। जिस परिवर्त्य का मूल्य अन्य परिवर्त्य के मूल्य पर निर्भर रहता है उस परिवर्त्य को आधारित परिवर्त्य कहा जाता है। प्रस्तुत अभ्यास में ज्ञान, समाानता, पारिवारिक जीवन, पारिवारिक कटौती, आदि आधारित परिवर्त्य माना गया है।

ग्रामीण महिला की स्वास्थ्य स्थिति और समस्या : प्रस्तुत शोध अध्ययन में ग्रामीण महिला की स्वास्थ्य की स्थिति देखने के लिए उनसे सम्बंधित जानकारी का एकत्रीकरण करने का प्रयास किया है। ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य की सुविधा, महिला में स्वास्थ्य की कमी, स्वास्थ्य कर्मचारी, महिला की स्वयं की स्वास्थ्य सम्बन्धी बीमारी

जैसे मुद्दे को ध्यान में रखते हुए एकत्रित माहिती का विवरण किया गया है। ग्रामीण क्षेत्र की महिला की बीमारी सम्बंधित असमानता के कारण दिन प्रतिदिन बीमारी में बढ़ोतरी होती है। प्रस्तुत अध्ययन में खांसी, जुकाम, बुखार जैसी सामान्य बीमारी ज्यादा होती हैं और ये बीमारी की देखभाल या उपचार में महिला में उदासीनता दिखाती है। जो महिला उपचार करवाती है इनमें से सबसे अधिक घरेलु उपचार ज्यादा है और इसके बाद अस्पताल में सारचार करते है। प्रस्तुत अध्ययन में 86 प्रतिशत महिलाओं के गांव में अस्पताल की सुविधा है। इनमे से सब से ज्यादा सरकारी आरोग्य कर्मी देखने को मिलते हैं। 28 प्रतिशत उत्तरदाता डाक्टर के पास इलाज करते हैं और 26 प्रतिशत गांव में सरकारी अस्पताल की सुविधा है। गांव के सरकारी अस्पताल में डाक्टर की उपस्थिति नियमित रूप से नहीं होती है। 68 प्रतिशत गांव में डाक्टर नियमित उपस्थित रहते हैं जबकि 7 प्रतिशत गाव में सप्ताह में एक बार उपस्थित रहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में 10 प्रतिशत महिला डाक्टर के कहने पर उपचार कराती है, जब की 8 प्रतिशत महिला जब दर्द सह नहीं पाती तब उपचार कराती हैं और 7 प्रतिशत महिला अपनी आर्थिक स्थिती अच्छी होने पर उपचार कारती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में 27 प्रतिशत महिला बीमारी का खर्च स्वयं ही उठाती है, 58 प्रतिशत उनके पति खर्च करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण महिला को कौन कौन सी योजना का पता है ये जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है तो पता चलता है कि 44 प्रतिशत महिला माँ अमृतम योजना 27 प्रतिशत प्रसूति सहाय योजना और 11 प्रतिशत परिवार नियोजन योजना की जानकारी रखती हैं। ग्रामीण क्षेत्र में घर की सफाई के साथ घर में पशु की सफाई भी महिला करती है और इनके कारण भी बीमारी का भोग बनती है। प्रस्तुत अध्ययन में 66 प्रतिशत महिला खुद पशु की सफाई करती है। जिनमे पशु का बचा हुआ चारा इक्कठा करना, पशु का मलमूत्र भी इक्कट्टा करने के कारण बीमारी का शिकार बनती है। क्योंकि पशु के रखने की जगह की सफाई स्वयं करते हैं और सफाई के दौरान कोई साधन का प्रयोग नहीं करते हैं। पशु की जगह साफ करने के बाद महिला अपनी सफाई भी अच्छी तरह से नहीं करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में अधिकांश महिलायें सिर्फ पानी से सफाई करती हैं बहुत कम मात्रा में साबुन पावडर का इस्तमाल करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में देखने को मिलता है कि अध्ययन इकाई के 92 प्रतिशत महिला सरकार की '108' योजना से परिचित है। गरीबी रेखा के नीचे जो लोग अपना जीवन गुजारते हैं उनके लिए सरकार ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू की है। इस योजना में 30000 तक की सहायता मिलती है। प्रस्तुत अध्ययन में 61 प्रतिशत महिलाओं ने अपना स्वास्थ्य बीमा नहीं कराया है। वर्तमान समय में बीमारी के प्रमुख कारकों में से एक है पीने का पानी। नगरीय समुदाय में पीने का पानी की सुविधा अच्छी होती है लेकिन ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की दिक्कत बहुत ज्यादा रहती है और गाँव में पानी की सुविधा उपलब्ध काराना महिला की जिम्मेदारी रहती है। प्रस्तुत अध्ययन में महिला के गांव में पीने का पानी का स्त्रोत क्या है ये पता लगाने पर मालूम होता है कि, 70 प्रतिशत महिला गाव के खुले कुओं में से पीने के लिए पानी का इस्तमाल करते है। जबकि सिर्फ 1 प्रतिशत महिलायें आर.ओ. का पानी पीने के लिये इस्तेमाल करती हैं। महिला की छोटी उम्र में शादी का उनके स्वास्थ्य पर विपरीत असर होता है। ग्रामीण क्षेत्र में महिला की शादी की आयु बहुत कम होती है और कुछ गांवो में बाल विवाह भी होता है, इसी कारण उनका प्रजनन का समय बहुत लम्बा समय चलता है और प्रसूति की मात्रा भी बढ़ जाती है। इन सब परिस्थितियों के कारण महिला का स्वस्थ्य कमजोर बनता है। प्रस्तुत अध्ययन मे 99 प्रतिशत महिला की शादी 14 साल से ले के 23 साल के बीच में हुई है। इस बात से पता चलता है की महिला का प्रजनन समय बहुत लम्बा है और इसी के कारण प्रस्तुत अध्ययन में 66 प्रतिशत महिलाओं को 2 से ज्यादा बच्चे हैं।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन भावनगर जिले में ग्रामीण महिला की स्वास्थ्य की स्थिति और समस्या के सन्दर्भ में किया है। प्रस्तुत अध्ययन में सबसे अधिक 78 प्रतिशत उत्तरदाता 20 से 40 आयु के हैं। 75 प्रतिशत उत्तरदाता ओ.बी.सी. है। ये बात बताता है की के उत्तरदाता सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हैं और ये पछातता स्वास्थ्य के लिए जिम्मेदार हैं। प्रस्तुत अध्ययन में 67 प्रतिशत लघु कुटुंब में रहते हैं, ये बात दिखती है कि ग्रामीण समुदाय में प्रजनन समानता दिख रही है। 62 प्रतिशत उत्तरदाता बीमारी के दौरान अस्पताल जाते हैं। लेकिन सिर्फ 26 प्रतिशत उतरदाताओं के गावों में सरकारी अस्पताल की सुविधा है। प्रस्तुत अध्ययन में 24 प्रतिशत बीमारी के समय मेडिकल चेक उप करवाते हैं। 69

प्रतिशत बताते है कि सरकारी अस्पताल के स्टाफ रोगी को संतोषजनक मार्गदर्शन देते हैं। 92 प्रतिशत सरकारी एम्बुलेंस और 108 की सुविधा के बारे में जानकारी रखते हैं। प्रस्तुत अध्यन में 26 प्रतिशत उत्तरदाता बीमारी का खर्चा खुद उठाते हैं, 57 प्रतिशत पति और 02 प्रतिशत पुत्र या पुत्री करते हैं। 65 प्रतिशत उतरदाता के घर में साथ में पशु को रखते हैं और उनकी साफ-सफाई और देखरेख खुद रखते हैं और उनका मलमूत्र खुले हाथ से साफ करते हैं और पशु की निवास में जाते समय पैर में चप्पल या जूता नहीं पहनते जो बीमारी का कारक बनता है। प्रस्तुत अध्यन में 77 प्रतिशत उतरदाताओं की शादी सिर्फ 18 से 23 साल की आयु में हो गई जिनके कारण उनकी प्रजनन क्षमता लम्बी रहती है और प्रसूति के दौरान अच्छी तरह से स्वास्थ्य की देखभाल के आभाव से स्वास्थ्य का स्तर निम्न रहता है। 70 प्रतिशत उतरदाता अपनी गर्भावस्था के दौरान स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या के हल के लिए डॉक्टर के पास जाते हैं ये बात बताता है कि ग्रामीण महिला में गर्भावस्था की देखभाल और अपने स्वास्थ्य प्रति समानता बढ़ी है। अध्ययन में महिलाओं को कोई न कोई व्यसन है और ये व्यसन उनके स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचातें है वे इस बात से परिचित है। 74 प्रतिशत महिला घर की रसोई चूल्हे पर बनाते हैं जिनमें लकड़ी और केरोसिन का उपयोग करते हैं जिनके कारण आँखों को नुकसान और सर दर्द रहता है।

ग्रामीण महिला के स्वास्थ्य पर असरकारक विभिन्न कारक हैं जो सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हैं। ग्रामीण महिलाओं मे पोषणयुक्त आहार की कमी से जरुरी पोषक तत्वों, विटामिन और लौहतत्व की कमी दिखती है। ग्रामीण महिला में स्वास्थ्य की कमी के प्रमुख कारक देखे तो निर्धनता, कुपोषण, स्वच्छता की कमी, शिक्षा का निम्न स्तर, निम्न आर्थिक स्थिति, बारंवार प्रसूति, परंपरा, स्वास्थ्य सुविधा की कमी, बहुविध भूमिका, अंधश्रद्धा आदि करके देखने को मिला है।

शोध का महत्व :- सामाजिक अध्ययन का महत्व दो तरीके से देखा जाता है। एक शोध की यथार्थता और दूसरा उनकी व्यवहारिक उपयोगिता देखने को मिलती है। प्रस्तुत शोध का महत्व देखा जाये तो, अध्ययन में दिखाई गई समस्या के आधार पर भविष्य में जब महिला आरोग्य निति विषयक चर्चा होगी तब प्रस्तुत अध्ययन उपयोगी बनेगा। ग्रामीण महिला की आरोग्य विषयक जानकारी प्राप्त कर के उनका निवारण हेतु अध्ययन उपयोगी बनेगा। ग्रामीण क्षेत्र में आरोग्य विषयक सुविधाएँ और जाग्रति निम्न देखी जाती है जिसके कारण ग्रामीण महिलाओं में आरोग्य विषयक समस्या है। प्रस्तुत अध्ययन भावी अध्ययनकर्ताओं को ग्रामीण क्षेत्र में आरोग्य विषयक अध्ययन करने के लिए प्रेरणादायक बना रहेगा।

सन्दर्भ

1. जगानी हितेश, 'भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा की स्थिति, समस्या और समाधान', 2017 https://in.m.wikipedia.org
2. हरिहरन आर, 'ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य', 2016 https://in.m.vikaspedia.org
3. Malathi N, and Hariharan, 'Health Status of WOmen in India', 2015 https://serialpublication.in
4. मकवाणा, रमेश, 'आदिवासी ग्रामीण महिलाओं के विकास में सखी मंडल की भूमिका', 2011 shodhganga.inflibnet.ac.in
5. खंडेला मानचंद, 'महिला और बदलता सामाजिक परिवेश', पोइन्टर पब्लीकेशन, दिल्ली, 2018
6. लहरिया चंद्रकांत, 'भारतीय आरोग्य प्रणाली', पेंग्वीन पब्लीकेशन, दिल्ली, 2011

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 24 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2022
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता एवं वर्तमान जनमाध्यम

❑ सुश्री शालिनी श्रीवास्तव
❖ प्रोफेसर गोपाल सिंह

सूचक शब्द: गाँधी, पत्रकारिता, हिंदी, जनमाध्यम, प्रासंगिकता।

प्रस्तुत शोध में महात्मा गाँधी की पत्रकारिता एवं उनकी पत्रकारिता संबंधी विचारधारा का अध्ययन किया गया है। वर्तमान में इन मूल्यों की पत्रकारिता जगत में क्या प्रासंगिकता है इस पर विचार किया गया है। इस शोध अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा गाँधी जी द्वारा लिखित विभिन्न आलेखों की विषयवस्तु का अध्ययन एवं विश्लेषण कर विवेचना की गयी है। इसके लिए उद्देश्यपरक निदर्श चयन विधि द्वारा आवश्यकता एवं उद्देश्य अनुरूप विषयवस्तु का चुनाव किया गया है। वर्तमान पत्रकारिता की गुणवत्ता को बनाये रखने एवं पत्रकारिता जगत की चुनौतियों के समाधान खोजने की दृष्टि से यह शोध महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है। पत्रकारिता शिक्षा के दौरान विदेशी पत्रकारों के पत्रकारिता के सिद्धांतों के साथ–साथ भारतीय अग्रणी पत्रकारों के जनसरोकारी पत्रकारिता के सिद्धांतों की जानकारी एवं उन्हें अपनाने की सीख पत्रकारिता की वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों को सशक्त बनाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

महात्मा गांधी, यह नाम आज किसी परिचय का मोहताज नहीं है। यह मात्र एक नाम नहीं है ये एक विचारधारा का नाम है जिसे हम गांधीवादी विचारधारा कहते हैं। ये विचारधारा जो लोकतांत्रिक मूल्यों की समर्थक विचारधारा है। इस विचारधारा के अनुसार अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है और समस्त मानवजाति के कल्याण को सदा ध्यान में रख कर कर्म किये जाना ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। महात्मा गाँधी एक समाज सुधारक, एक पत्रकार के रूप में भी जाने गए। उन्होंने हरिजन नामक पत्रिका निकाली थी जिसमें ऊंच–नीच छुआ– छूत जैसी कुरीतियों की बेड़ियों से समाज को मुक्त करने के लिए महात्मा गाँधी अपने कलम से इन बहुत पुरानी कठोर बेड़ियों पर वार करते रहे और उन शब्दों को पढ़कर लोग इन कुरीतियों के खिलाफ एकमत होते गए।

उन्होंने सर्वप्रथम अफ्रीका में वकालत करने के दौरान जब वहां की एक अदालत ने उन्हें कोर्ट परिसर में पगड़ी पहनने से मना कर दिया था। इस दोहरेपन का विरोध करते हुए गांधी ने तब डरबन के एक स्थानीय संपादक को चिट्ठी लिखकर अपना विरोध प्रकट किया था, जिसको उस अखबार ने प्रकाशित भी किया था। तत्पश्चात, अफ्रीका प्रवास के दौरान उन्होंने 'इन्डियन ओपिनियन' के जरिए अपने सिद्धांतों की बात करते हुए देशवासियों के हित में आवाज उठायी, गांधी की निर्भीक पत्रकारिता से प्रभावित होकर अफ्रीका जैसे देश में, जहाँ रंगभेद चरम पर था, वहां पांच अलग–अलग भारतीय भाषाओं में इस अखबार का प्रकाशन होता रहा था। इस विरोध के साथ शुरू हुई पत्रकारिता बाद में 'इंडियन ओपीनियन', 'नवजीवन', 'हरिजन' आदि के प्रकाशन तथा और कई अखबारों में लेख लिखने के साथ बढ़ती गई।

साहित्य समीक्षा – गाँधी जी[1] ने अपनी आत्मकथा में पृष्ठ 267 में लिखा है कि ''इंडियन ओपीनियन के पहले महीने के कामकाज में ही मैं इस परिणाम पर पहुंच गया था कि समाचार पात्र सेवाभाव से ही चलाने चाहिए। समाचार पात्र एक जबरदस्त शक्ति है उसी प्रकार निरंकुश परवाह भी नाश की सृष्टि करता है।''

सक्सेना वंदना[2], "गांधी जीवन और दर्शन", पुस्तक में 16 अध्याय हैं जिनमें गाँधी जी के दर्शन के संबंध में आत्म प्रकाश, जीवन उत्कृष्टता, अहिंसा, निष्काम कर्म, गांधी दर्शन और गरीब, पंचायती राज, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण, श्रम की महत्ता एवं अन्य गांधीवादी विचारों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है।

समाजशास्त्री आनंद कुमार[3] "गाँधी जी संवादी पत्रकार थे" इस आलेख में लिखते हैं, ''एक पत्रकार के रूप में गाँधी जी किसी भी दबाव से परे थे। उनकी पत्रकारिता भी नैतिकता और सत्य के आग्रह से संचालित थी। भिन्नताओं के बावजूद उनके लिए न तो भाषाएँ दीवार खड़ी कर सकीं और न ही वर्गीय दबाव, उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य कर सके।"

❑ शोध अध्येत्री, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर (केंद्रीय) वि.वि., लखनऊ (उ.प्र.)
❖ पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर (केंद्रीय) वि.वि., लखनऊ (उ.प्र.)

आनंद कुमार जी इसी लेख में आगे कहते हैं कि "गांधी जी पाठकों को अपना स्वामी मानते थे वे अपने स्वामी यानी पाठकों को उनके दुर्गुणों से अवगत कराते थे, वे उनकी बुराईयों के बारे में बताने में जरा भी नहीं कतराते थे। जैसे- छुआछूत, बाल विवाह, औरतों को न पढ़ाना, कोढ़ियों को उपेक्षित करना ये सब समाज के दुर्गुण थे। लेकिन गांधी जी उस समाज के साथ संवाद करके उक्त समस्याओं का समाधान करते थे।"

जैन माणक[4], द्वारा 'गांधी के विचारों की 21 वीं सदी में प्रासंगिकता', 2010 पुस्तक को सात अध्यायों में बांटा गया है जिसमें गाँधी के सामाजिक और राजनीतिक विचारों का आधार अहिंसा है। इस पुस्तक में गाँधी जी द्वारा चलाये गए आंदोलनों की अहिंसात्मक कार्यशैली व उनके प्रभावों पर प्रकाश डाला गया है। गाँधी के स्वराज एवं ग्राम स्वराज संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला गया है तथा उनकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गयी है।

इसके अतिरिक्त एस.एन. भट्टाचार्य ने 1965 में उनके पत्रकार रूप पर पुस्तक लिखी थी- 'महात्मा गांधीः द जर्नलिस्ट', भवानी भट्टाचार्य की पुस्तक 'गांधीः द राइटर' नेशनल बुक ट्रस्ट से 1969 में आयी। इला गांधी ने 'गांधीज एनकाउंटर विद द फोर्थ स्टेट' लिखा और गांधी के अधिकारी इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने लेख- 'गांधी द जर्नलिस्ट' (द हिंदू, 8 जून, 2003) लिखा।

मार्कोविट्स[5], "द अन गांधीयन गाँधी", पुस्तक को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में गाँधी जी की आत्मकथा के अनुभवों पर प्रकाश डाला गया है। पश्चिमी देशों में उनके विचारों के प्रसार के बारे में बताया गया है। गाँधी जी के अनुभव 1948 के बाद में भारत में कैसे रहे इसका वर्णन किया गया है।

द्वितीय भाग "इतिहास में गाँधी" नाम से वर्णित है। इसमें गाँधी जी के निजी एवं सामजिक जीवन, दक्षिण अफ्रीका में उनका योगदान, राष्ट्रीय नेतृत्व के रूप में भारत में सन 1915 से 1920 तक उनकी भूमिका, गाँधी जी के अहिंसा के सिद्धांतों आदि का वर्णन किया गया है।

डालटन डेनिस[6] की पुस्तक में गांधीज पॉवर सत्याग्रह एवं स्वराज' किस प्रकार संबंधित हैं ? गांधी जी के अहिंसा के प्रभाव, रवींद्र नाथ टैगोर एवं एम एन राय के गाँधी के संबंध में विचार, नमक सत्याग्रह एवं विभिन्न रूपों में गाँधी जी योगदान इस पुस्तक के मुख्य विषय रहे।

कमल किशोर गोयनका[7] की पुस्तक 'गाँधी पत्रकारिता के प्रतिमान', सत्तरह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक में गाँधी जी की पत्रकारिता, पत्रकारिता का मूल आधारः राष्ट्रीयता, पत्रकार के दायित्व और दायित्वहीनता, प्रेस की स्वतंत्रता, विज्ञापन का बहिष्कार, देशी भाषाओं में पत्रकारिता का विकास आदि महत्वपूर्ण विषयों के विषय में वर्णन है। लेखक का मानना है कि गाँधी को महात्मा बनाने में सर्वाधिक योगदान उनकी पत्रकारिता का है।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी ने विषयवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया है। शोधार्थी ने गांधी जी द्वारा उनके पत्र पत्रिकाओं में पत्रकारों को दिए गए निर्देशों, सुझावों एवं उनके आलेखों का अध्ययन करके उनका आज के परिपेक्ष्य में गुणात्मक विश्लेषण किया है। विषयवस्तु गुणात्मक विश्लेषण से वर्तमान जनमाध्यमों की समस्याओं के हल गांधी जी के लिखित आलेखों, भाषणों, सुझावों (द्वितीयक स्त्रोतों) में खोजे गये और उनका आज के परिपेक्ष्य में किस प्रकार प्रयोग हैं इसका भी शोधार्थी द्वारा उल्लेख किया गया है.

विषयवस्तु का गुणात्मक विश्लेषण

विश्लेषण को निम्न बिंदुओं में विभक्त किया है -

जनमाध्यमों के विषय एवं मुद्दे -

गांधी की पत्रकारिता में भारतीय मूल के लोगों की समस्याओं को हमेशा से ही शिद्दत से उठाया जाता रहा। उनकी पत्रकारिता प्रभाव इस कदर फैलने लगा था कि उनके लेखों से विचलित अफ्रीकी प्रशासन ने 1906 में उन्हें जोहांसबर्ग में एक जेल में बंद कर दिया तो, गांधी की सटीक लेखनी का लोहा मानते हुए किसी अंग्रेजी लेखक ने यहां तक कहा है कि 'गांधी के संपादकीय लेखों के वाक्य 'थाट फॉर द डे' के तौर पर इस्तेमाल किये जा सकते हैं'।[8]

गाँधी जी के समय में जब कुछ समाचार पत्र अपने कर्तव्यों का निर्वाह न करते हुए देश की शान्ति व्यवस्था को संकट में डालने पर आमादा थे। ऐसे समाचार पत्रों का जिक्र गांधी जी ने "विषैली पत्रकारिता" नामक एक टिप्पणी के माध्यम से जिक्र करते हुए लिखा था कि समाचार पत्रों की नफरत फैलाने वाली बातों से भरी हुई कुछ कतरनें मेरे सामने पड़ी हैं। इनमें साम्प्रदायिक उत्तेजना, सफेद झूठ और खून खराबे के लिए उकसाने वाली तथा राजनैतिक हिंसा को प्रेरित करने वाली बातें हैं।[9]

आज के जनमाध्यमों की बात करें तो वे आम जन की समस्याओं से दूर होते जा रहे हैं। वो मात्र कोरी लोकप्रियता की दौड़ में दौड़ते जा रहे हैं। किसी एक सनसनीखेज खबर को दिन भर शोर शराबे के साथ पेश करना आज भारतीय जनमाध्यमों खासकर टीवी न्यूज चैनलों के लिए बहुत ही आम

बात हो गयी है। किसी एक खबर को इतना अधिक प्रचारित, प्रसारित करना और अन्य महत्वपूर्ण खबरों को बिलकुल महत्व न देना एक स्पायरल ऑफ साइलेंस बना देता है जिसमें महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा नहीं हो पाती।

डिजिटल मीडिया – आज के डिजिटल युग की एक सकारात्मक बात यह है कि इस युग में एक आम व्यक्ति भी जन समस्याओं को डिजिटल माध्यमों के द्वारा और तकनीकी के बेहतर इस्तेमाल से लोगों तक पहुंचा सकता है। आज प्रत्येक नागरिक ही पत्रकार है। सोशल मीडिया ने भी प्रत्येक नागरिक को मंच दिया है और इससे वर्तमान जनमाध्यमों में आम जन की प्रतिभागिता भी बढ़ी है। तकनीकी के प्रयोग ने गांधीवादी विचारों की भांति जनमाध्यमों को लोकतांत्रिक प्रकृति का बनाया है। इस परिदृश्य का भी एक नकारात्मक पहलू यह है कि ये डिजिटल माध्यम भी कुछ विकसित देशों के नियंत्रण में हैं। ये माध्यम फेसबुक डेटा लीक जैसी घटनाओं के कारण बनते हैं और कभी सांस्कृतिक उपनिवेशवाद को बढ़ावा देते हैं।

ऐसे में गाँधी जी के उन परिवर्तनशील विचारों को अपनाने की आवश्यकता है जो अहिंसा के समर्थन करते हैं किन्तु परिस्थितियों को देखते हुए करो या मरो का नारा भी दे देते हैं। हमें आज मीडिया क्षेत्र में भी स्वदेशी आंदोलन की आवश्यकता है। भारत को तकनीकी रूप से आत्मनिर्भर बनने के लिए उठ खड़े होना होगा। हमें स्वदेशी डिजिटल मीडिया माध्यमों के विकास पर ध्यान देना होगा जिससे अन्य देशों पर हमें आश्रित न होना पड़े।

गांधी जी का स्वदेशी के परिपेक्ष्य में सामाजिक चिंतन एक अनुपम चिंतन है। "बापू" ने स्वदेशी शब्द के आशय संकुचित राष्ट्रवाद न कहकर बल्कि इसे और अधिक व्यापक बना दिया। उन्होंने स्वदेशी तकनीकी से निर्मित वस्तुओं को अपनाने पर बल दिया। वर्तमान सरकार का मेक इन इंडिया कार्यक्रम भी इसी विचार को ध्यान में रखकर प्राम्भ किया गया है।

झूठी खबरें (फेक न्यूज)– गाँधी ने गलत समाचार प्रकाशित करने वाले पत्रकारों के प्रति अपना क्रोध व्यक्त करते हुए "खतरनाक संवाददाता" नामक शीर्षक लेख में लिखा था कि ऐसे मौकों पर अक्सर असहयोगी या शांति होते हुए भी क्षण भर के लिए मेरा मन उनके खिलाफ क्रोध से भर गया है। ऐसी खबरें फैला कर भोली भाली जनता को आघात पहुंचाना सरासर क्रूरता है। असत्य समाचारों के संबंध में एक अन्य लेख में लिखा था कि पाठकों को देने के वास्ते जब अखबार वालों के पास सनसनीखेज समाचार नहीं होते तो, वे मनगढ़ंत कहानियां बना लेते हैं। ऐसे पत्रकारों की तुलना उन्होंने बेईमान नौकर से की है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता – गाँधी जी अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के पक्षधर थे उनके अनुसार प्रेस की स्वतंत्रता किसी भी देश के लिए आवश्यक एवं कीमती अधिकार है जिसे किसी देश के द्वारा भुलाया नहीं जाना चाहिए।

गांधी जी ने यंग इण्डिया के एक अंक में पत्रकारों के मार्गदर्शन के कुछ सुझाव दिए थे – उन्होंने लिखा था कि मैं चाहता हूँ कि समाचार भेजने वाली एजेंसियां समाचारों को केवल पैसा कमाने का जरिया बनने के बजाय लोकहित का ख्याल रखें। गाँधी जी का यह सुझाव आज भी बिलकुल प्रासंगिक है। इसी प्रकार आज सभी जनमाध्यमों को मात्र पैसा कमाने से ध्यान हटाने की आवश्यकता है। उन्हें अपने सामाजिक जिम्मेदारियों के निर्वहन करने के लिए दायित्व बोध की आवश्यकता है। गांधी जी ने यह भी लिखा कि समाचारों को अप्रत्यक्ष स्त्रोतों से प्राप्त उलटे सीधे साधनों को बटोर कर उन्हें समय से पहले छापना पत्रकारों का कार्य नहीं होना चाहिए।

आज भी डेडलाइन और ब्रेकिंग की दौड़ में भागते पत्रकार अक्सर जल्दबाजी में बिना विश्वसनीय स्त्रोतों से प्राप्त हुई खबर बिग ब्रेकिंग बनाकर प्रसारित, प्रकाशित कर देते हैं। कभी दो हजार के नोट में चिप लगे होने की खबर एक बड़ा राष्ट्रीय चैनल चला देता है तो कभी किसी की मृत्यु से पूर्व ही उसकी मृत्यु की खबरें फ्लैश होने लगती हैं, जो कि अत्यधिक शर्मनाक है। गांधी जी ने इन्हीं सुझावों में एक सुझाव यह भी दिया कि मैं अपने सहयोगी पत्रकारों को सावधान कर देना चाहता हूँ कि वे समाचार छापने या पाने के अंग्रेजी तरीकों की नकल न करें। अपने विवेक, आत्म संयम और निष्पक्षता के साथ इस क्षेत्र में कार्य करें।

आज के दौर में डिजिटल पोर्टलों में कॉपी पेस्ट का जो चलन बन गया है उससे कोई भी पत्रकार जिसने पोर्टल की कार्यशैली को करीब से देखा है वो बखूबी जनता ही होगा और अन्य अधिकाँश वर्तमान जनमाध्यम भी आज अंग्रेजी तरीकों की कोरी नकल ही करते नजर आते हैं। हमें इस नकल की आदत को छोड़ना ही होगा और अपने विवेक से काम लेकर बेहतर से सीख कर आगे बढ़ना होगा। उन्होंने आगे के अपने सुझाव में बताया कि अन्य क्षेत्रों की भांति ही पत्रकारिता के क्षेत्र में भी शुद्ध प्रमाणिकता और सच्चा व्यवहार ही सर्वोत्तम नीति है। आज भी अपनी शाख और विश्वनीयता को बनाये रखने का, तमाम जनमाध्यमों की भीड़ में अपनी एक उज्ज्वल पहचान बनाने का यही मूलमंत्र हो सकता है। विषैली

पत्रकारिता के लिए उन्होंने लिखा था कि इसका वास्तविक इलाज तो स्वस्थ लोकमत है। जो विषैले समाचार पत्रों को प्रश्रय देने से इंकार करता है। इसी प्रकार आज भी यदि दर्शक विषैली पत्रकारिता करने, झूठी खबरें दिखाकर दंगे भड़काने वाली खबरें देने वाले और जनसमान्य के मुद्दों से अलग व्यर्थ के अर्थहीन मुद्दों पर बहस कराने वाले जनमाध्यमों का बहिष्कार शुरू कर दें तो वाकई ऐसी पत्रकारिता करने वालों का इलाज सम्भव है। गाँधी जी ने यंग इण्डिया में दिए सुझाव में ही लिखा था कि "हमारे यहां पत्रकार संघ है वे एक ऐसा विभाग क्यों न खोले जिसका कार्य विभिन्न्न समाचार पत्रों को देखना और आपत्तिजनक लेख मिलने पर उन पत्रों के सम्पादकों का ध्यान तुरंत उस और आकर्षित कराना हो।[10]

यही काम आज प्रेस परिषद का होता है, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की निगरानी डीएवीपी द्वारा होती है। डिजिटल जनमाध्यमों की निगरानी के लिए तकनीकी रूप से अत्यधिक कुशल काउंसिल की स्थापना किये जाने की आवश्यकता है।

प्रेस की स्वतंत्रता – गाँधी जी प्रेस की निरंकुश स्वतंत्रता के पक्षधर नहीं थे इसलिए वे उनके ऊपर बाह्य अंकुश लगाने की अपेक्षा आंतरिक अंकुश लगाने के पक्ष में थे क्योंकि समाचार पत्र पत्रिकाओं को चलने का मूल उद्देश्य जन कल्याण की भावना में समाहित है। उनका मानना था कि समाचार पत्र वस्तुतः एक जबरदस्त शक्ति है किन्तु जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गाँव के गाँव डुबो देता है उसी प्रकार निरकुंश कलम का परवाह भी विनाश करता है। यदि वह अंकुश बाहर से आता है तो वह निरंकुशता से भी अधिक विषैला होता है इसलिए अंकुश अंदर का ही लाभदायक होता है। इसी प्रकार आज भी आज भी पत्रकारिता को बाह्य नियंत्रण से मुक्त करके स्व-सेंसरशिप की दिशा में बढ़ाने का प्रयास करना होगा।

समाचार पत्रों की भाषा – गाँधी जनभाषा की लोगों को समझ में आने वाली और प्रयोग की जाने वाली भाषा की शक्ति को पहचानते थे। वह दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीय समुदाय को एकजुट करना चाहते थे इसलिए उन्होंने इंडियन ओपीनियन का प्रकाशन चार भाषाओं गुजराती, हिंदी, तमिल और अंग्रेजी में प्रकाशित किया। अपनी बात अंग्रजी प्रशासन एवं दुनिया भर ले देशों के लोगों तक वो हर अंग्रेजी में एक अखबार अथवा संस्मरण निकालते रहे।

हिंदी भाषा को वह दक्षिण अफ्रीका में भी महत्वपूर्ण मानते रहे इसलिए इंडियन ओपीनियन का प्रकाशन हिंदी में भी किया। भारत लौटने के बाद भारत भ्रमण के बाद उन्हें यह बात स्पष्ट रूप से समझ आगयी थी कि कोई एक अखिल भारतीय भाषा हो सकती है तो वह हिंदी ही हो सकती है। यही कारण रहा कि उन्होंने अपनी मातृभषा गुजराती में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र नवजीवन को हिंदी में प्रकाशित करना आरम्भ किया। इसकी आवृत्ति भी चौगुनी यानी एक माह में एक के बजाय चार बार कर दी।

गाँधी जी का शब्द की शक्ति पर दृढ विश्वास था। उनकी भाषा स्वच्छ, सुग्राह्य और प्रभावशाली थी। गाँधी इस प्रकार लिखते थे कि प्रत्येक नागरिक उसे समझ सके उनमें साहित्यिक महत्वाकांक्षा नहीं थी पर उन्होंने जो भी लिखा वह साहित्य है। वर्तमान में भी पत्रकारिता को जन मानस द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा में प्रकाशित किया जाना चाहिए।

राजस्व नीति – गाँधी पत्रकारिता में बाहर से प्राप्त धन को लगाना खतरनाक मानते थे। यही कारण था कि वह अपने पत्र नवजीवन और यंग इण्डिया में विज्ञापन प्रकाशित नहीं करते थे। अपनी इस नीति के बारे में उनका यह अनुभव रहा कि विज्ञापन प्रकाशित न करने से उन्हें किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ बल्कि पत्रों की वैचारिक स्वतंत्रता की रक्षा हुई। उनका मानना था कि पत्रकारिता दो प्रकार की होती है एक व्यावसायिक पत्रकारिता जिसका उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है दूसरी लोकसेवी पत्रकारिता जिसका उद्देश्य लोकसेवा होता हैं.उनके अनुसार पत्रकारिता को व्यवसाय बनाने से तो वो दूषित हो जाती है और लोकसेवा के मार्ग से भटक जाती है।

समाचार पत्र संचालन के लिए वे अपने पाठकों से दान एवं चंदे की मांग जरूर करते थे, लेकिन शासन तंत्र से नहीं। उनकी निष्ठा पाठकों के प्रति थी वो अपने पत्रों में उन्हीं की समस्याओं और उनके समाधान को प्रमुखता से रखते थे। वे अंग्रजों के प्रति द्वेषभाव नहीं रखते थे उन्होंने इस तथ्य को स्वयं कई बार रेखांकित किया है लेकिन उनकी निष्ठा भारतीय समाज के प्रति थी। यही कारण था कि मात्र कुछ हजार की प्रसार संख्या वाले उनके समाचार पत्रों की प्रतीक्षा सम्पूर्ण देश और दुनिया भी करती थी। अंक आते ही समाचार एजेंसियां उनके लेखों को उसी दिन या अगले ही दिन एक साथ सभी समाचार पत्रों को प्रेषित कर देती थीं।

सामाजिक समरसता – 1942 में एक प्रश्न का जवाब देते हुए गांधी ने कहा, मैं चाहता हूँ कि भारतीय प्रेस (या पत्रकार) वे काम न करें जो उनकी अंतरात्मा की आवाज के विरुद्ध हों। राष्ट्रीय संस्थाओं और नीतियों की ईमानदारी से आलोचना करने से राष्ट्रीय हित को कभी नुकसान नहीं होगा। लेकिन सांप्रदायिक उन्माद भड़काने की खबरों के प्रति हमें सावधान

रहना है। यदि भावी आंदोलन से लोगों के साथ सांप्रदायिक सद्भावना तथा शांति स्थापित नहीं हो पाती है, तो इस आंदोलन का कोई अर्थ नहीं होगा। आज के पत्रकारों को इस घटना से सबक लेना चाहिए एवं समाचरों के प्रकाशन अथवा प्रसारण में किसी एक सम्प्रदाय विशेष का पक्ष लेने और साम्प्रदायिक टिप्पणी करने से बचना चाहिए। सामाजिक समरसता बनाये रखने हेतु प्रयत्नशील होना होगा।

निर्भीक पत्रकारिता – गाँधी जी की पत्रकारिता की शुरुआत ही निडर अभिव्यक्ति के तौर पर हुई। जब गाँधी जी अफ्रीका में वकालत कर रहे थे उन्हें कोर्ट परिसर में पगड़ी पहनने से मना कर दिया गया। उन्होंने अपने साथ हुए इस पक्षपाती बर्ताव का विरोध करते हुए डरबन के एक स्थानीय सम्पादक को पत्र लिखा, जिसको उस अखबार ने प्रकाशित किया। इसे ही गाँधी का पत्रकारिता जगत में पहला कदम माना जाता है। इसके उपरान्त भी गाँधी ने उसी निडरता से रंगभेद जैसी कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए अफ्रीका में ही पांच भारतीय भाषाओं में इंडियन ओपीनियन का प्रकाशन किया। इस पत्र में वह अफ्रीका में रह रहे प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को प्रकाशित करते थे। गांधी की ख्याति दिनों दिन बढ़ने लगी और उनके विचार अन्य पत्रों के सम्पादकीय पृष्ठों में प्रकाशित होने लगे। उनकी निभऍक पत्रकारिता से विचलित होकर अफ्रीकी प्रशासन ने वर्ष 1900 में उन्हें जोहान्सबर्ग जेल में बंद कर दिया लेकिन निर्भीक पत्रकारिता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करते हुए गाँधी जी ने जेल से ही सम्पादन कार्य जारी रखा। पत्रकारिता की पारदर्शिता कायम रखने के लिए ये फैसला लेना भी एक साहसिक कार्य ही था सम्पादक रहते हुए वो कभी किसी से विज्ञापन की मांग नहीं करेंगे। उनके सम्पादकीय लेखों का असर अफ्रीका एवं भारत की अंग्रजी प्रशासन पर भी दिखाई देने लगा था।

सरकारी तंत्र की निगरानी – गाँधी जी का मानना था कि पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ है और उसका कार्य सदैव सरकार के कार्यों की निगरानी करने का होना चाहिए। उन्होंने पत्रकारों के उत्तरदायित्व का याद दिलाते हुए लिखा कि अगर सरकार को अप्रसन्न करने वाला कुछ प्रकाशित हो गया हो, तो भी सम्पादक को क्षमा नहीं मांगनी चाहिए क्योंकि सम्पादक का कद बड़ा होना चाहिए। उनका यह प्रसिद्ध कथन है कि हम जो आज करते हैं उस पर भविष्य निर्भर करता है। वर्तमान पत्रकारिता को भी स्वयं को इतना सशक्त एवं निष्पक्ष बनाना होगा कि वे भी सरकारी कार्यों की निगरानी एवं आलोचना भयमुक्त हो कर सकें।

पाठकों का दायित्व एवं अधिकार – गाँधी पाठकों को यह अधिकार देते थे कि वे समाचार पत्र पर नजर रखें कि कहीं कोई अनुचित और झूठी खबर तो नहीं छपी है। अविवेकपूर्ण भाषा का इस्तेमाल तो नहीं हुआ है। उन्होंने यहां तक लिखा है, संपादक पर पाठकों का चाबुक रहना ही चाहिए, जिसका उपयोग संपादक के बिगड़ने पर हो। ऐसा लिखते हुए गांधी एक तरह से जनचेतना वाली पत्रकारिता को चोट पहुंचाने वालों को संदेह की नजर से देखने की वकालत करते थे। संदेह करने वाली उनकी सीख आज कहीं अधिक प्रासंगिक है। आज पत्रकारिता में जिस तरह से खबरों के प्रकाशन व प्रसारण में पक्षपात किया जा रहा है उसे देखते हुए पाठकों को हर खबर को शक की नजर से देखना होगा। पत्रकारिता ने तथ्यों को क्रॉस चेक करने वाला सिद्धांत लगभग भुला दिया है, लेकिन पाठकों को ये जिम्मेदारी उठानी होगी।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोष से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान जनमाध्यमों के लिए गांधी उतने ही प्रासंगिक है। यदि इन विचारों का पालन कर लिया जाये तो आज भी पत्रकारिता अपनी श्रेष्ठ अवस्था में पहुंच सकती है। जो सम्पूर्ण दोषों से मुक्त होकर जनसामान्य के हित के लिए कार्य करेगी। गांधी जी के विचार पारदर्शी, निष्पक्ष और स्वतंत्र पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त करेंगे। गाँधी पथ प्रदर्शक एवं प्रेरणा स्रोत हैं एवं सच्चे अर्थों में भारत के "बापू" हैं सदैव रहेंगे।

संदर्भ

1. महात्मा गाँधी, 'सत्य के प्रयोग', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. सक्सेना वंदना, 'गाँधी जीवन और दर्शन', 2006
3. सिंह, र. 'गाँधी की पत्रकारिता' (संपा. आनंद कुमार), 'लोकनीति', प्रज्ञा संस्थान, नई दिल्ली, 2 फरवरी, 2019
4. जैन, ड.स.. 'गाँधी विचार और साहित्य', वाल्यूम 1, वाणी प्रकाश, नई दिल्ली
5. मार्कोविट्स, ''द अन गांधीयन गाँधी'', परमानेंट ब्लेक प्रकाशन, दिल्ली, 2004
6. डालटन डेनिस, 'गांधीज पॉवर', हैकेट पब्लिशिंग कं., दिल्ली, 1996
7. गोयनका कमल किशोर, 'गाँधी पत्रकारिता के प्रतिमान', सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली, 2016
8. रविभूषण, 'गाँधी की पत्रकारिता', प्रभात खबर, 24 सितंबर, 2019
9. संपूर्ण गांधी वाङ्मय खंड –46 'विषैली पत्रकारिता', प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1939, पृ. 251
10. गांधी, 'यंग इण्डिया' अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र, 6 मार्च, 1930

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की वर्तमान समय मे प्रासंगिकता

❑ डॉ. सन्जू चलाना बजाज

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व भयानक आपदाओं से घिरा हुआ है और आपदाओं से घिरने के कारण मनुष्य के विचार सत्यता से परे व हिंसात्मक तत्वों से भरपूर हैं, जिसमे परमाणु युद्व से लेकर संस्कृति के समापन का खतरा बढ़ा हुआ है। इन्सान ने जहाँ विज्ञान, तकनीकी और यांत्रिकी में विकास और उसके उपयोग से सफलता प्राप्त कर ली है तो दूसरी तरफ स्वार्थ, लोभ, हिंसा आदि भावनाओं के वशीभूत होकर चोरी, डाका लूटने की प्रवृत्ति, ज्यादा से ज्यादा पाने की होड़ में ऐसे मार्गो को अपना लिया है जो मनुष्य को विनाश की तरफ ले जा रहा है। आज दुनिया को इस विनाश से बचाने के लिए महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को व्यक्तिगत, सामाजिक, पारिवारिक व सांस्कृतिक रूप से अंगीकृत करने की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध ने मानवीय प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए कहा था कि मनुष्य का मन ही सभी कर्मो का नियंता है। अतः मानव की गलत प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने के लिए उनके मन में उत्तम विचारों का संचार कर उन्हें सही मार्ग पर ले जाने की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से ही मनुष्य को उत्तम विचारों से अवगत करवाया तथा उनका मानना है कि इन्ही शिक्षाओं पर चलकर मनुष्य सभ्य समाज की रचना कर सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की वर्तमान समय में प्रासंगिकता को जानने का प्रयास किया गया है।

सूचक शब्दः मानवतावाद, चार आर्य सत्य, अहिंसा, अराजकता, शान्ति, विश्व बन्धुत्व।

छठी शताब्दी ई.पूर्व भारत में धार्मिक क्षेत्र में हुई क्रान्ति ने नए धर्मो को जन्म दिया जिनमें बौध्द धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा बुध्द ने अपनी मधुर वाणी, जातीय भेदभाव की समाप्ति, साधारण जीवन व्यतीत करने की नीति का प्रचार करके भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर विशेष प्रभाव डाला जिसके परिणाम स्वरूप बौध्द धर्म न केवल एक अखिल भारतीय बल्कि एक विश्व धर्म बन गया। एक मानवतावादी धर्म के रूप में बुध्द धर्म तिब्बत, चीन, मंगोलिया, थाईलैण्ड, श्रीलंका, बर्मा, कोरिया, जापान, नेपाल तथा बांग्लादेश तक प्रसारित हो गया है।

पुस्तक समीक्षा :

वियोगी हरि[1] ने "बुद्धवाणी" नामक पुस्तक में महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं आर्य सत्य, चतुष्टर्य, आष्टिंगक मार्ग, स्मृत्युपस्थान आदि का विवरण पूर्व दार्शनिक सूक्तियों के साथ किया गया है। इसके साथ-साथ महात्मा बुध्द के विचार जो गृहस्थ, मित्र, ब्राह्मण सबके लिए उन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है तथा पुस्तक के अन्त में बौद्व साहित्य में प्रयुक्त प्रमुख पारिभाषिक शब्दों का शब्दकोष भी दिया गया है।

भरत सिंह उपाध्याय[2] की "बोधि वृक्ष की छाया" में महात्मा बुद्व व बौद्व धर्म से सम्बन्धित विचारों का संग्रहण है। बुद्व क्या है- इस पुस्तक में इस अवधारणा को बताते हुए कि वे एक सामान्य मानव से परे जिसमें राग द्वेष, विलास, कामेच्छा की भावना नही है उन सबसे ऊपर उठे हुए हैं। इसलिए वे प्रबुद्व मानव व आश्चर्यमय पुरूष हैं इसके अलावा उनके उपदेश जो कि उनके अनुभवों पर आघारित है। उनका सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। इसके अलावा उनके मानवतावादी रूप एक योगी के रूप में तथा बौद्व धर्म का अन्य देशों में प्रसार व उनके अनुयायी प्रसेनजीत व महाकवि अश्वघोष के जीवन का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है।

भरत सिंह उपाध्याय[3] की पुस्तक **"बुद्व और बौद्व साधक"** में महात्मा बुद्व के स्वभाव व जीवन की विशेषताओं के साथ साथ उनके तथागत स्वरूप का वर्णन किया गया है। साथ ही उनके अनेकों शिष्य जैसे धर्मसेनापति, सारिपुत्र, आनन्द, अंगुलिमाल, अनाथपिंडक, पटाचार महाप्रजापति गौतमी, आम्रपाली, खज्जुन्तरा आदि के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

पी. वी. बापट[4] की पुस्तक "बौद्व धर्म के 2500 वर्ष" में बौद्व धर्म के प्रारम्भ होने से लेकर उनकी चार बौद्व परिषदें, अशोक और बौद्व धर्म का विस्तार तथा बौद्व धर्म का अलग अलग शाखाओं में बांटना इस पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसके साथ साथ बौद्व साहित्य व बौद्व धर्म में शिक्षण व्यवस्था पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में अलग अलग लेखकों द्वारा अपने शोध पत्रों का सम्पूर्ण प्रकाशन किया गया है। जो बौद्व महापुरूषों, चीनी यात्री, बौद्व कला व बौद्व धर्म में उत्तरकालीन परिवर्तनों पर प्रकाश डालती है। इस पुस्तक

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, भाग सिंह खालसा कॉलेज फॉर विमेन, काला टिब्बा, अबोहर (पंजाब)

में आधुनिक संसार में बौद्व धर्म के सांस्कृतिक व राजनैतिक निष्कर्षो का विस्तार से विवेचन किया गया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में महात्मा बुद्व की शिक्षाओं का अध्ययन करते हुए उनकी वर्तमान में महत्ता के बारे में जानना।
2. शान्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करना।
3. संसार में शान्ति व्यवस्था कायम रखने के लिए प्रयास करना।

शोघ पद्वति : प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्वति का उपयोग किया गया है। विषय की अधिक गहन जानकारी के लिए प्रमुखतः द्वितीयक शोध सामग्री का उपयोग किया गया है, जिसमे अलग अलग लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों व महात्मा बुद्व पर प्रकाशित अन्य लेखों की सहायता ली गयी है।

महात्मा बुद्व विश्व के उन महापुरूषों में से एक थे जिन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज को सुधारने मे लगा दिया था। उनकी महान उपलब्धियों की उपेक्षा करके कोई सुधार आन्दोलन का इतिहास लिखा ही नही जा सकता। उन्होने आर्य समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ा। उनका धर्म ऐसा था जो कि विश्व की बाधाओं से मनुष्य को मुक्ति का मार्ग सिखाता है। यद्यपि महात्मा बुद्व ने जो रास्ता दिखाया वह उनका दर्शन है न कि धर्म। यदि परम्परा के अनुसार इसे धर्म भी मान लिया जाए तो इसमे ईश्वर के लिए कोई स्थान नही है। अपनी नास्तिकता के चलते ही महात्मा बुद्व ने तत्कालीन समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों, परम्पराओं, मान्यताओं, वर्ण व्यवस्था का घोर विरोध किया था। उन्होने हमेशा तर्क के साथ बात करने पर बल दिया। वे भिक्षुओं से कहा करते थे कि किसी बात को इसलिए नही मानना चाहिए कि वह किसी धर्म ग्रन्थ में लिखी हुई या परम्परा से प्रचलित है, बल्कि उसे तर्क की कसौटी पर परखना चाहिए। यदि सत्य पर खरा उतरे तो उसे मानना चाहिए अन्यथा नही।[3] उनके इस छोटे से वाक्य ने उस समय के वैदिक धर्म को जड़ से हिला दिया।[5]

बौद्व धर्म ऐसे नियमों का संग्रह है जो हमें यथार्थ के सही स्वरूप को पहचानकर अपनी सम्पूर्ण मानवीय क्षमताओं से विकसित करने में सहायता करता है। बौद्व धर्म मूलतः अनीश्वरवादी है और अनात्मावादी है अर्थात इसमें ईश्वर और आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है लेकिन पुर्नजन्म को मान्यता दी गयी है। बुद्व ने सांसारिक दुखों के सम्बन्ध में चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया तथा मध्यम मार्ग के रास्ते दिखाए।

बौद्व धर्म का उदय छठी शताब्दी ईसा पूर्व हुआ था। एक संभ्रात परिवार में जन्म लेने के बावजूद महात्मा बुद्व का मन सांसारिक क्रियाकलापों से दूर भागता रहा। तत्पश्चात शीघ्र ही उन्होने घर परिवार को छोड़ने का मन बना लिया। मज्झिम निकाय में लिखा है – "ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व मैने सोचा कि घरेलू जीवन कष्टदायक और कठोर है। घर में रहकर पूर्णतः पवित्र और धार्मिक जीवन नहीं बिताया जा सकता। मै अभी युवक था मेरे बाल उस समय काले थे जब मैने अपने सिर के बाल और दाढी मूंड दिए। मैने पीले कपड़े पहन कर अपने माता पिता को रोते छोड़कर घर त्याग दिया और बाहर निकल पड़ा।[6]

ज्ञान की खोज में इधर उधर भटकते हुए ऋषि अलर और उड़क के चरणों मेें बैठकर ध्यान लगाने की विधि सीखी। चेतना और सुप्तावस्था के बीच की समाधि को उन्होने पाया। उरूवेला नामक स्थान पर पहुंचकर उन्होने इतनी तपस्या की कि उनका शरीर सूखकर हड्डियों का ढांचा रह गया। इतने कष्ट सहने के बावजूद भी उन्हे ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकी। तब उन्होने एन्द्रिय सुखों और दूषित विचारों से परे रहकर ज्ञान प्राप्ति का यत्न किया। अनेक कठिनाइयों को उठाने के बाद उरूवेला में ही पीपल के वृक्ष के नीचे समाधिस्थ अवस्था में उन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात उन्होने अपना शेष जीवन लोगों के हित में लगाने का निश्चय किया तो वे सारनाथ आ गए और यहां उन्होने अपना प्रथम उपदेश दिया। यह घटना बौद्व धर्म में धर्मचक्र परिवर्तन के नाम से जानी जाती है। उन्होने अपने शिष्य आनन्द को जो अंन्तिम शब्द कहे वे इस प्रकार थे – "इसलिए आनन्द अपने लिए स्वयं दीपक बनो। कभी बाह्‌य साधनों की शरण मत लो। सच्चाई के दीपक को दृढता से थामे रहो। सत्य की शरण ही वास्तविकता और यथार्थ की शरण है। शरण के लिए अपने आप को छोड़कर किसी अन्य की ओर मत देखो।"[7]

बौद्व धर्म दर्शन में परस्पर निर्भरता, सापेक्षता और कारण कार्य सम्बन्ध जैसे विषयों के बारे में चर्चा की जाती है। इसमें सम्मुचय सिद्वान्त और तर्क वितर्क पर आधारित तर्कशास्त्र की एक विस्तृत व्याख्या है जो हमें अपने चित्त की दोषपूर्ण कल्पनाओं को समझने में सहायता करती है।

बौद्ध नीति शास्त्र स्वयं अपने लिए और दूसरों के लिए हितकारी और हानिकारक बातों के बीच भेद करने की योग्यता पर आधारित है।

महात्मा बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं में कर्म, समानता, नैतिकता के नियम, सत्यवचनों व स्वतन्त्रता पर बल दिया हे। बुद्ध ने सांसारिक दुखों के सम्बन्ध में चार आर्य सत्य का उपदेश दिया है। ये आर्य सत्य बौद्ध धर्म का मूल आधार है। प्रथम सत्य है- शोक की विद्यमानता संसार में सभी कुछ शोकपूर्ण नश्वर और पीड़ा से भरा हुआ है। द्वितीय दुखों का कारण अवश्य होता है। केवल इच्छा लालसा के साथ मिलकर मनुष्य को पुर्नजन्म के चक्र में फेंक देती है और मनुष्य वासना तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए छटपटाने लगता है। बस यही दुखों का कारण है। तृतीय सत्य इस शोक की समाप्ति है। इच्छा के त्याग से ही मनुष्य इनसे छुटकारा पा सकता है। जब दुखों का अन्त हो जाता है तब परमानन्द की उपलब्धि होती होती है। जन्म मरण का प्रश्न ही मिट जाता है। **चौथा सत्य** है कि परमानन्द की प्राप्ति और इच्छाओं की समाप्ति का कोई मार्ग अवश्य होना चाहिए। इसके लिए महात्मा बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग पर चलने की बात कही। अष्टांग मार्ग है- सम्यक विचार, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक व्यवहार, सम्यक जीवन, सम्यक उपाय, सम्यक ध्यान और सम्यक समाधि।[8]

मध्यम मार्ग का उपदेश देते हुए महात्मा बुद्ध ने कहा कि मनुष्य को सभी प्रकार के आकर्षण और काया क्लेश से बचना चाहिए अर्थात न तो अत्यधिक इच्छाएं रखनी चाहिए न ही अत्यधिक तप करना चाहिए। बल्कि इनके बीच का मार्ग अपनाकर दुख निरोध का प्रयास करना चाहिए। महात्मा बुद्ध का मानना था कि दुखों के कारण ही मनुष्य आँसू बहाता है। उनका मानना था कि इच्छा बुरी नही है परन्तु स्वार्थमय इच्छा बुरी है और सबसे ज्यादा बुरी तो कामेच्छा ही है जिसकी वजह से मनुष्य पुर्नजन्म के चक्करों में पड़ा रहता है। महात्मा बुद्ध के शिष्यों ने उनके मन को और अधिक जानना चाहा तो बुद्ध ने नैतिकता के नियमों की बात कही।[9]

सम्यक का अर्थ दो अतियों के बीचन मध्यम स्थिति है। दोनो तरह की अति बुरी है। बीच का रास्ता ही ठीक है। बुद्ध का कहना है जो व्यक्ति अपनी जीवन परिदृष्टि ठीक रखेगा। जो सही संकल्प या इरादा रखेगा, जिसकी वाणी अच्छी होगी, कर्म अच्छे होगे, जिन्होने जीविका के लिए बेहतर अर्थात भ्रष्टाचार मुक्त साधन चुने होगें, जो अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने के लिए व्यायाम करते रहेंगे, वे दुख मुक्त होंगे। सम्यक वाणी, सम्यक कर्म और सम्यक जीविका शील है और सम्यक प्रयत्न, सम्यक स्मृति व सम्यक समाधि को समाधि कहते है।[10]

विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों में इसकी विवेचना की गयी है। जैसे शील पांच हैं जिन्हे पंचशील कहा गया है। कोई भी व्यक्ति संघ में शामिल होने से पूर्व इन पंचशील की शपथ लेता है। ये पंचशील है- अहिंसा, चोरी न करना, झूठ न बोलना, जाति व्यवस्था को न मानना, काम सम्बन्धी व्याभिचार न करना और नशा नही करना। ये पांच शील आम जनों के लिए हैं लेकिन भिक्षुओं के लिए पांच और शील है। उनके लिए दिन में कई बार भोजन करना, आभूषण और कीमती चीजें धारण करना, संगीत सुनना, गद्देदार बिस्तर पर सोने की मनाही थी। इस तरह महात्मा बुद्ध ने जीवन की छोटी से छोटी चीजों पर पूर्ण ध्यान दिया जिससे इन्सान यथार्थ में जीवन जी सके। महात्मा बुद्ध का कथन है कि - "क्रोध पर दया और बुराई पर अच्छाई से विजय प्राप्त करनी चाहिए। विजय घृणा को जन्म देती है क्योंकि विजित व्यक्ति अप्रसन्न होता है। इस विश्व में घृणा को दूर नही किया जा सकता। घृणा तो केवल प्रेम से ही परास्त हो सकती है।"[11]

महात्मा बुद्ध जो कहते थे पहले स्वयं उसी मार्ग पर चलते थे इसलिए उन्हे तथागत कहा गया। अपने उपदेशों के बारे में भी वे तर्कसंगतता के आधार पर मानने या न मानने की सलाह दिया करते थे। बुद्ध की ऐसी जनतान्त्रिक बुद्धिपरक अवधारणा एक नमूना "मज्झिम निकाय" में वर्णित प्रसिद्ध घोटमुखसूत्र में मिलता है। एक बार बुद्ध वाराणसी में ठहरे हुए थे। उनसे मिलने एक घोड़मुखी अर्थात घोड़े के मुख वाला ब्राह्मण आया। इस ब्राह्मण से वार्तालाप शुरू होने से ठीक पूर्व बुद्ध ने कहा! ब्राह्मण! हमारी तुम्हारी बातचीत इस ढंग से शुरू होनी चाहिए कि मेरी जो बात तुम्हे स्वीकार्य हो, उसे स्वीकार कर लेनी चाहिए। जो खंडनीय हो उसे खंडन कर लेना, मेरे कथन का कोई तात्पर्य तुम्हे न समझ मे आए तो मुझसे ही पूछ लेना। जातिगत बन्धन को बुद्ध नही मानते थे इसलिए सबसे बुद्ध ने भिक्षु संघ मे दलितों को प्रवेश दिया। उन्होने सुनीत एवं प्रकृति जैसे अनेक दलित भिक्षु भिक्षुणियों को संघ में सम्मिलित किया। वे हर जाति से भिक्षा ग्रहण करते थे तथा उन्होने भिक्षुओं को आदेश दिया था कि गांवों में

वे जाति के आधार पर किसी घर को छोड़कर भिक्षा न लें बल्कि बिना किसी भेदभाव के लगातार स्थित घरों से भिक्षा ग्रहण करे।[12]

अंगुतर निकाय में एक स्थान पर कहा गया है कि किसी भेदभाव के बिना लगातार स्थित घरों से भिक्षा ग्रहण करे। अंगुत्तर निकाय में एक स्थान पर भिक्षुओं से कहा गया है कि जिस तरह गंगा, यमुना, माही आदि नदियाँ समुद्र में मिलते ही अपने नाम और अस्तित्व को खो बैठती हैं वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बौद्ध संघ में आने के बाद अपनी जाति, वर्ण, गोत्र आदि को सदा के लिए खो बैठते हैं।"[13]

वैसे महात्मा बुद्ध स्त्री समानता के पक्षधर थे। परन्तु शुरू के दिनों में बुद्ध ने भिक्षुणियों के लिए नियम बनाया था कि वे सब भिक्षुओं के सामने झुककर उनका अभिवादन करेंगी। इस पर यद्यपि यह कहा गया गया कि वे स्त्रियों को हीन समझते थे। किन्तु वास्तविकता यह थी कि जब शुरूआती दिनों में स्त्रियों को संघ में सम्मिलित करने की आज्ञा दी तब मूलतः राज घरानों से ही भिक्षुणियां आती थी, जो पुरानी अवधारणा के अनुसार उच्च कुलीन हुआ करती थीं जबकि भिक्षुओं में अनेक शूद्र हुआ करते थे। इसलिए बुद्ध ने जातीय अभिमान को तोड़ने के उद्देश्य से भिक्षुणियों के लिए नियम बनाया था कि वे भिक्षुओं के सामने झुकें।[14]

महात्मा बुद्ध का धार्मिक दृष्टिकोण पूर्णतः नैतिक था। संस्कारों और पूजा पाठ में उन्हे विश्वास न था। उन्होने शुद्ध आचरण पर सर्वाधिक बल दिया था। एक ब्राह्मण ने बुद्ध के समक्ष इस बात का सुझाव रखा कि गंगा में स्नान करने से पापों को धोया जा सकता है। ब्राह्मण के विचार को जानकर बुद्ध कहा कि तुम यहीं स्नान करो और बिल्कुल यही। सभी प्राणियों पर दया भाव रखो। ब्राह्मण! यदि तुम झूठ नही बोलते, यदि तुम किसी प्राणी की हत्या नही करते, यदि तुम उस वस्तु को नही लेते जो तुम्हारी नही है तो फिर तुम्हे गंगा जाने से क्या लाभ होगा। यदि तुम में उपर्युक्त दोष नही है तो कोई भी जल तुम्हारे लिए गंगा ही है। महात्मा बुद्ध के ये कथन यद्यपि कर्म के सिद्धान्त पर बल देते हैं। बौद्ध धर्म में भविष्य कर्म की विरासत माना गया हैं। परन्तु यहां ब्राह्मण मतों से थोड़ा विपरीत है क्योंकि बौद्ध दर्शन नित्य आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नही करते कि जो कर्म करता है वही उसका फल भोगता है। क्योंकि जिस व्यक्ति ने कर्म किया वह तो फल भोगने तक रह ही नहीं गया। यद्यपि परिवर्तन सर्वथा भिन्न भी नही माना गया बल्कि परिवर्तन में धर्म का कारण गुण संक्रमित हो जाता है।[15]

इस सम्बन्ध में बौद्ध निकाय में कहा गया है कि कर्म ही अपना है वही विरासत है, वही प्रभाव है, बन्धु सखा और सहारा है। कर्म ही जीवों को हीनता और उत्तमता में विभक्त करता है। अतः कर्म व उसके फल की महत्ता को बुद्ध ने अपने नवीन दर्शन से ओत प्रोत किया है और यह बताया कि कर्म एवं फल तथा कर्म से पुनर्जन्म होता है। अतः पाप कर्मो को छोड़कर पुण्य का संचार करना चाहिए। सत्य ज्ञान से चित्त को शुद्ध करना चाहिए। इसलिए सदा कुशल कर्म को करना चाहिए। बौद्ध दर्शन में कर्म के सिद्धान्त की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संसार के समस्त जीव निरन्तर प्रवाहमान है। अतः एक क्षण की स्थिति समाप्त हो जाने पर ही दूसरे क्षण की प्राप्ति हो सकती है। इससे यह भी स्वयं सिद्ध हो जाता है कि जो कर्म करता है वही फल भोगता है अर्थात क्षणिकवाद सिद्ध हो जाता है। परन्तु इसके साथ क्षणिकवाद निराशावाद व वैराग्य की भावना को भी संतुष्ट करता है। लेकिन मनुष्य अपने विचारों व क्रियाकलापों पर संयम रखकर इससे बाहर आ सकता है। वैसे महात्मा बुद्ध का यह सिद्धान्त अप्रत्यक्ष रूप से अहिंसा के सिद्धान्त के बहुत निकट है। क्योंकि जब वे कर्म सिद्धान्त की बात करते हैं तो हिंसा न करना मनुष्य का परम कर्तव्य माना जाता है और इसी पृष्ठभूमि में देखें तो जीवों को कष्ट न देने का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण लगता है। यह पहला अवसर था जब अहिंसा की अवधारणा का प्रचार किया गया। बौद्ध धर्म में जीव हत्या से बचने का स्पष्ट आदेश दिया गया है। हालांकि उसने अपने अनुयायियों को किसी गैर बौद्ध कसाई द्वारा दिया गया मांस खाने से मना नही किया। लेकिन मवेशी की हत्या न करने पर बुद्ध ने सोच समझ कर खास जोर दिया। एक आरम्भिक बौद्ध ग्रन्थ में कहा गया है कि मवेशी की रक्षा की जानी चाहिए क्योंकि वे माता पिता और कुटुम्बियों की तरह हमारे मित्र हैं और खेतीबाड़ी अनिवार्य है। दीर्घ निकाय में बुद्ध ने राजा महाविजित की कथा सुनाई है जिसके पुरोहित ने उसे किसानों को बीज और राज्य की सेवा करने की इच्छा रखने वालों को मवेशी तथा उपर्युक्त उपकरण देने की सलाह दी।[16]

महात्मा बुद्ध ने इस बात का विशेष जोर दिया कि कम

से कम बौद्व भिक्षु बौद्व धर्म के प्रमुख प्रचारक एवं धर्म प्रधान स्वयं अपने घर में मांसाहार के लिए जीव हिंसा नही करेंगे। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से मांसाहार पर रोक लगी नही तो कम अवश्य हो गयी होगी। यह जीव हिंसा पर रोक अशोक द्वारा बौद्व धर्म स्वीकार करने के बाद लगाई गयी थी। अशोक ने लोगों को प्रेरित किया था कि धार्मिक कृत्यों के लिए पशुओं की हत्या नही करनी चाहिए। अशोक की इन बातों का प्रभाव यहां तक रहा कि अशोक के बाद उसके इस सुधार से प्रभावित कुछ हिन्दू व जैनों ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाया और जनता में उसके लिए सहानुभूति पैदा की है जिसके परिणामस्वरूप बौद्व संघ ने मांस भोजन का पूर्णतः निषेध कर दिया है। कई शताब्दियों बाद जब हर्षवर्धन का उदय हुआ तो उन्होने गद्दी पर बैठते ही घोषणा कर दी थी कि उनके राज्य में कोई मांस न खाए। इसके बाद जो उत्तरकालीन वैष्णव और शैव साधु हुए उनके उपदेशों के परिणामस्वरूप शाकाहार को और अधिक बल मिला तथा जनता ने इसे ग्रहण कर लिया था। क्योंकि जनता यह मानने लग गयी थी कि प्रत्येक वस्तु के अन्दर ईश्वर है और ईश्वर में सब वस्तुएँ है। इसलिए वे चलते समय भी सावधानी रखने लगे। महायान बौद्व भिक्षु भी अपने शरीर के पोषण के लिए निरीह पशुओं की हत्या को घृणा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि उनका स्वयं का जीवन भी तभी तक रहने के योग्य है जब तक वह दूसरे प्राणियों की इच्छा की पूर्ति का साधन थी। इन भिक्षुओं के उपदेशों के फलस्वरूप ही शाकाहार को बल मिलने लगा।''[17]

महात्मा बुद्व मानव जाति की समानता के अनन्य पोषक थे। उनका कहना था कि मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नही है। परन्तु देखा जाए तो वर्तमान समय में पूरी दुनिया में धार्मिक कट्टरवाद व टकराव दिखाई देता है। पूरी दुनिया में हिंसा, नस्लीय टकराव जैसी गम्भीर समस्याओं से जूझ रही है। मानव अस्तित्व के लिए बड़े और गम्भीर संकट खड़े हो गये है। विज्ञान व तकनीकी विकास से मनुष्य ने समृद्वि प्राप्त कर ली है किन्तु हम यह देख पाने में असमर्थ हैं कि विकास एवं उपभोग की अतिशय चाहत मनुष्य को न सिर्फ मनुष्येत्तर के बल्कि मनुष्य के भी विरूद्ध खड़ी करती जा रही है। विकास प्रगति के नाम पर हरेक इन्सान में दूसरों को पीछे छोड़ते हुए आगे निकल जाने का इच्छा इतनी हावी होती जा रही है कि उसकी गतिविधियां आतंक पैदा करने लगी हैं। अतः आज दुनिया में भौतिक सम्पदा के साथ साथ मानव अस्तित्व को बचाना आवश्यक हो गया है। इसलिए आदमी के विनाशकारी विचारों को बदलना व उन पर नियन्त्रण रखना बहुत जरूरी है। महात्मा बुद्व ने मानवीय प्रकृति का विश्लेषण करते हुए कहा था कि मनुष्य का मन ही सभी कर्मो का नियंता है। मन चंचल है अतः चंचलता पर नियंत्रण आवश्यक है तथा मन में सद्विचारों का प्रवाह कर उसे सद्मार्ग पर ले जाना भी आवश्यक है। उन्होने यह सद्मार्ग बौद्व धर्म के रूप में दिया था। दूसरों से आगे निकलने की होड़ भी हमारी इच्छाएँ हैं जो हमारे दुखों का कारण हैं। वर्तमान के उपभोक्तावादी समाज में यह बात प्रासंगिक लगती है। वैसे भी इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक या सामाजिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में अगर सभी व्यक्तियों के अन्दर इच्छाओं की प्रबलता बढ़ जाए तो प्राकृतिक संसाधन नष्ट होने लगेंगे। साथ ही सामाजिक सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होने लग जाएगा। ऐसे में अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना समाज और नैतिकता के लिए अनिवार्य हो जाता है। महात्मा बुद्व का मानना था कि क्रोध को क्रोध से शान्त नही किया जा सकता। इसलिए क्रोध को जन्म देने वाले तत्वों को पहचानो व शान्त रहने का प्रयास करो। महात्मा बुद्व का मध्यम मार्ग का सिद्वान्त आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना महात्मा बुद्व के समय में था। अति हर चीज की बुरी होती है। चाहे वह प्रेम हो या क्रोध हो। उनके इन विचारों की पुष्टि इस कथन से होती है कि वीणा के तार को इतना नही खींचना चाहिए कि वह टूट ही जाए और इतना ढीला भी न छोड़ा जाए कि उससे स्वर ध्वनि ही न निकले। इतना ही कसा जाए कि मधुर संगीत की आवाज सुनाई दे। उनका यह सिद्वान्त हमें सभ्य समाज के निर्माण में सहायता करता है। एक सच्चे समाज सुधारक के रूप में वे अपने समकालीन समाज की जाति व धर्म के दोषों से मुक्त करना चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि धर्म के नाम पर बहुत जनसंहार होता है, युद्व होते है। इसलिए यदि वर्तमान भारत को धार्मिक रूप से सक्षम बनाना है तथा दंगों से मुक्त कराना है तो बौद्व धर्म के धार्मिक सहिष्णुता, करूणा व मैत्री के सिद्वान्तों को बचाना जरूरी है।

बौद्व धर्म मन में शान्ति का संचार करके उसका प्रसार करना चाहता था। इस प्रकार उसका काम अंदर से शुरू होकर बाहर फैलता है। उसके पास मैत्री का ही सबसे

बड़ा बल है, जो तटस्थ है और सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेटे हुए है। अशोक के धर्म विजय के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के पश्चात भारत के लिए यह स्वाभाविक ही था कि सबके प्रति मैत्री के आदर्श को वह विश्व मामलों में अपनी गतिशीलता तटस्थता की नीति का आध्यात्मिक आधार बनाता।

सन्दर्भ

1. हरि वियोगी, 'बुद्धवाणी', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
2. उपाध्याय, भरत सिंह, 'बोधि वृक्ष की छाया में', सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली 2012,
3. उपाध्याय, भरत सिंह, 'बुद्ध और बौद्ध साधक', सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली 2015
4. पी. वी. बापट, 'बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
5. महाजन बी.डी., 'प्राचीन भारत का इतिहास', एस चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 2012, नई दिल्ली
6. वही, पृ.160
7. उपाध्याय भरत सिंह, 2015, पूर्वोक्त, पृ. 7–9
8. हरि वियोगी पूर्वोक्त, पृ. 13–15
9. वही, पृ. 15–17
10. http://www.nammabharat.com/influence of buddhs in Indian Society in hindi
11. महाजन बी.डी., पूर्वोक्त, पृ. 162
12. पी.वी. बापट, पूर्वोक्त, पृ. 20–22
13. धर्मवीर यादव, 'बहुजन वैचारिक प्रवेशांक' कार्यालय (संपा.), फ्रैंडस इण्डस्ट्रीज सरिया कॉलोनी, नई दिल्ली, जनवरी 2016 पृ.12
14. महाजन बी.डी. पूर्वोक्त, पृ. 163
15. योगमणि निरन्जन सिंह, 'प्राचीन भारत का साहित्यिक व सांस्कृतिक इतिहास', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2019 पृ. 313
16. झा डी. एन., 'प्राचीन भारत का इतिहास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 78–79
17. पी.वी. बापट, पूर्वोक्त, पृ. 607–608